॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

श्री

प्राण-संगली सटिप्पण

(प्रथम भाग)

श्री गुरु नानक साहब विरचित प्राणो का अपूर्व कवच

जो

सुरत शब्द-योग साधन मई अमोघ तारौं
से रचा हुआ काल कर्म माया कृत्
विघ्नौं से गुरमुखौं का सुरक्षक
तथा हितकर है

जिसको

गुरुमुखी अक्षरौं से भाषा अक्षरौं मैं टिप्पण
सहित तय्यार करके गुरू साहब के संक्षिप्त
जीवन-चरित्र समेत संत सम्पूरण सिंह
ने प्रेम प्रसाद रूप से
अर्पण किया

जिसे मालिक बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद ने अपने ख़र्च से
अपने यन्त्रालय मैं प्रकाशित किया।

Allahabad

PRINTED AT THE BELVEDERE STEAM PRINTING WORKS,
BY E. HALL

1912

[प्रथम बार १०००] [दाम १)

निवेदन

सतबानी पुस्तक-माला के छापने का अभिप्राय जक्त-प्रसिद्ध महात्माओं की बानी व उपदेश को जिन का लोप होता जाता है बचा लेने का है। अब तक जितनी बानियाँ हम ने छापी हैं उन में से विशेष तो पहिले छपी ही नहीं थीं और कोई २ जो छपी थी तो ऐसे छिन भिन्न, बेजोड या अशुद्ध रूप में कि उन से पूरा लाभ नहीं उठ सकता था।

हमने देश देशान्तर से बडे परिश्रम और व्यय के साथ ऐसे हस्तलिखित दुर्लभ ग्रंथ या फुटकर शब्द जहाँ तक मिल सके असल या नकल कराके मँगवाये हैं और यह कारवाई बराबर जारी है। भर सक तो पूरे ग्रंथ मँगा कर छापे जाते हैं और फुटकर शब्दों की हालत में सर्वसाधारन के उपकारक पद चुन लिये जाते हैं। कोई पुस्तक बिना कई लिपियों का मुकाबला किये और ठीक रीति से शोधे नहीं छापी जाती, ऐसा नहीं होता कि औरों के छापे हुए ग्रंथों की भाँति बेसमझे और बेजाँचे छाप दी जाय। लिपि के शोधने में प्रायः उन्हीं ग्रंथकार महात्मा के पंथ के जानकार अनुयायी से सहायता ली जाती है और शब्दों के चुनने में यह भी ध्यान रक्खा जाता है कि वह सर्व साधारन की रुचि के अनुसार और ऐसे मनोहर और हृदय-बेधक हों जिन से आँख हटाने को जी न चाहे और अंतःकरन शुद्ध हो।

कई बरस से यह पुस्तक-माला छप रही है और जो जो कसरें जान पडती हैं वह आगे के लिये दूर की जाती हैं। कठिन और अनूठे शब्दों के अर्थ और संकेत नोट में दे दिये जाते हैं। जिन महात्मा की बानी है उन का जीवन-चरित्र भी साथ ही छापा जाता है और जिन भक्तों और महापुरुषों के नाम किसी बानी में आये हैं उन के संक्षेप वृत्तान्त और कौतुक फुट-नोट में लिख दिये जाते हैं।

॥ सूचीपत्र ॥

(अध्यायवार)

५-२६९ आव्य
६५। ६-४-५८

आवश्यक सूचना।

गुरु नानक साहेब ने यह अपूर्व ग्रंथ प्राण-संगली किस अवसर पर सिंगलादीप में वहाँ के परम भक्त राजा शिवनाभ जी को उपदेश करके बख़्श दिया और फिर उनकी पाँचवीं गद्दी के अधिष्ठाता गुरु अर्जुनदेवजी ने उसे कैसे सिंगलादीप से मँगाया तथा किस कारण से उसे "गुरुग्रंथ साहेब" के संग्रह से अलग रक्खा इसका वर्णन गुरु नानक साहेब के जीवन चरित्र में दूसरी यात्रा के आख़िर हिस्से में, और टिप्पनकार के "निवेदन" में लिखा है। गुरु नानक साहेब ने इस अनमोल ग्रथ का नाम "प्राण-संगली" क्यों रक्खा यह तो पक्के तौर पर वही कह सकता है जिसकी गति उनकी सी हो, तौभी कुछ लखाव उसका उनके उस वचन से होता है जो निज मुख से उन्होंने राजा शिवनाभ से कहा—"इह ग्रंथ मेरी देह है, मेरा स्थूल रूप है, प्राणाँ मेरिआँ का संग्रह कह्यो कवच है, जगत समुद्र का इह पुल है। इह प्राण-संगली मैं तैनूं बपशी है, इह अजर वस्तु है, सो तैं ही जरी है। इह प्राण-संगली अंम्रित प्रवाह है; तेरे ही मुख विषे प्रवेश होई है, होर तिन्न लोकाँ विच इस वस्तू नूं सम्हालता कोई नहीं ताँते प्राणाँ विषे प्राण-सगली रखनी"। इस वचन से स्पष्ट होता है कि यह ग्रंथ प्राणों का संग्रह रूप है जिसमें प्राणपिंड का निर्णय और प्राणों से मन के निरोध का पूरा भेद लिखा है। संभव है कि इसको "गुरु ग्रंथ साहेब" की जिल्द में शामिल न करने की वजह यही हो कि गुरु अर्जुनदेवजी

ने समयानुसार इसे हरएक छोटे बडे की दृष्टि में लाना उचित न समझा।

इस दुर्लभ ग्रंथ के छापने का हमारा कदापि साहस न होता यदि संत सम्पूरणसिंह सरीखे तरनतारन के नानक-पंथी महात्मा जिन की गहरी जानकारी और अनुभव विचार का उनकी टिप्पनी प्रत्यक्ष प्रमाण है इस काम को अपने जिम्मे न लेते। यह प्रथम भाग केवल एक छोटा हिस्सा पूरे ग्रंथ का है जिसे अपने पाठकों के तगादे और बेकली के कारण हम झटपट तैयार करके भेट करते हैं, और साथ ही उस के यह भी है कि कई भागों में छापने से गरीब अमीर सभी इस का लाभ उठा सकेंगे।

जीवन-चरित्र गुरू नानक साहेब का भी संत सम्पूरण सिंह जी का ही लिखा हुआ है, यद्यपि उनकी आज्ञानुसार हमने उसे जहाँ तहाँ इस देश की बोल चाल में बदल दिया है परन्तु असल ग्रंथ के अक्षर और मात्रा ज्यों की त्यों वही रक्खी गई हैं जो बाबाजी ने गुरू साहेब के ग्रथ की कई लिपियों और पंजाब पबलिक लैब्ररी लाहौर की प्रमाणिक प्रति का मिलान करके सिद्ध की है, और कहीं कहीं छंद शास्त्र या इल्म उरूज के कायदों और नियमों को छोड़ कर पंजाबी सगीत विद्या के अनुसार लिखी है, ऐसे ही स्वर और व्यजन की रचना और मेल भी पजाब की रीति अनुसार रक्खा गया है जो सतबानी पुस्तकमाला के क्रम के किंचित विरुद्ध है।

किसी किसी शब्द की अक्षर-रचना भिन्न २ अध्यायों में भिन्न भिन्न रीति से रक्खी गई है, जैसे "अमृत" शब्द जो

तीन प्रकार से लिखा है—इस का कारण यह कहा गया है कि जिस प्रकार की अंतर वृत्ति या खिंचाव की दशा में गुरू साहिब के मुख से उस शब्द का उच्चारण हुआ वह उसी रीति से लिखा गया और उस करुणा का प्रकाशक है।

यद्यपि टिप्पनी में कहीं कहीं ऐसे पंजाबी शब्द और महावरे आ गये हैं जिन्हें सर्व साधारन को समझने में कठिनता होगी परन्तु इस में संदेह नहीं कि संत सम्पूरण सिंह जी की टिप्पनी ने बहुत सी गूढ बातों और गुप्त भेदों को खोल कर दरसा दिया है जिस से जीवों को विशेष परमार्थी लाभ मिलने की आशा है और हम उन को इस भारी परोपकार के लिये अंतर से धन्यवाद देते हैं।

एडिटर, संतबानी पुस्तकमाला।

निवेदन

श्रीगुरू नानक साहब के पचम स्थान पर श्रीगुरू अर्जन देव जी हुए हैं, जिन्होंने गुरबाणी की बीड़ बाधते समय भाई पैड़ा नामी एक शिष्य को सगलादीप भेजकर राजा शिवनाभ के पौत्र के पास से यह ग्रथ मँगाया था; जिसे किसी कारण विशेष से श्री गुरू ग्रथ साहब की बीड़ में रखना उचित न समझ कर सर्वथाही जल प्रवाहित कर दिया था। जोकि एक परम प्रेमी साधू की अत्यत प्रार्थना से द्रवीभूत हुए गुरू साहब के बचन अनुसार जल से निकलवाया और जैसे का तैसा उसेही बपशिश कर दिया गया था जिसका प्रसग गुर प्रताप सूर्ज प्रकाश नामक प्रमाणिक इतिहास की त्रितिया राशिगत ३२वें अशु में लिखा है॥

उसी प्राणसगली नामक ग्रन्थ में से कुछ थोड़े से आगे पीछे के अध्याय गुरमुखी अक्षरो में बर्तमान में ही तीनबार छप कर प्रेमियो को सलाभ कर चुके हैं। जिनकी प्रवृत्ति तथा उनमें लोगों का प्रेम देखकर और इस बाणी को सुरति शब्द योग का पूर्ण भडार तथा गुरमत सतमत की वास्तविक कुजी समझ कर हमने इसे सतबाणी पुस्तक माला का सुमेरु होना निश्चय किया। सतबाणी प्रचारक लाला बालेश्वर प्रसाद जी इलाहाबाद वाले की (इस प्राणों के कवच रूप ग्रथ की) परम प्रेम भरी स्वीकारता तथा प्रेर्णा से हमने गुरमुखी अक्षरों से इसका उल्था हिन्दी भाषा में गुरमुख प्रेमी जन अभ्यासियों और सतों और सत्सगियों के बिनोद अर्थ सटिप्पण तय्यार करके उक्त लाला साहब को केवल प्रेम प्रसाद रूप से समर्पण कर दिया है जिसके वास्ते पूर्ण आशा है कि गुरमत सतमत के प्रेमी पाठक इस परम गुप्त ग्रथ से पूर्ण लाभ को प्राप्त होंगे। प्रथम थोड़े से अध्यायही हमारी दृष्टि गोचर हुए परन्तु ज्योंही कि उनका उल्था किया तो भीतर उमग उपजी कि शुद्धि के वास्ते कहीं से हस्त लिखित प्रति प्राप्त होजाय तो ठीक है सो गुरू महाराज की कृपा से दो प्रतिया एक सबत १८५१ बिक्रमी की और दूसरी सबत १८८० बिक्रमी की (बड़ी प्राचीन) प्राप्त हुई। रोम २ से अतर्यामी श्रीगुरू महाराज का धन्यवाद करते हुए बड़े हर्ष के साथ उल्था का उनसे मुकाबला किया गया। परन्तु वह भी आगे पीछे के केवल ६० अध्याय थे और सर्वथा शुद्ध नही थे इस कारण पूर्ण ग्रथ की खोज का उत्साह बढा "खोजी उपजै बादी बिनसै हउ बलि २ गुर करतारा"—खोजी कभी निराश ना रहेगा। पूर्ण ग्रथ भी प्राप्त हो गया (पूर्ण तो शायद ससार पर ही नही रहा जो प्राप्त हूआ है उसे पूर्णही समझो) सो सभ को आपस में मिलान करके शुद्ध किया गया जहाँ अशुद्धि रही वहाँ मजबूरी समझनी चाहिए॥

संगलादीप को जाते २ मार्ग में या राजा शिवनाभ से लोप होने काल में (प्राय संगली से सबंधित) जो २ उपदेश, ज्ञान चरचा तथा गोष्टि गुरू साहब की सतो महात्माओ आदि से हुई असल प्रति (पूर्ण) में विद्यमान हैं, जिन्हें पाठको के (ग्रंथ खरीदने में) अधिक व्यय और अपने अनअवसरतादि कारणो से उलथा नही कर सके। सो शरीर रहा तो पाठको की रुचि तथा प्रेम देखकर दूसरे छापे में न्यारी जिल्द के रूप में निकलवा देवेंगे। वर्त्तमान में श्रीगुरू साहबो की परम कृपा से बपशे हुए अनुभव से यथा बुद्धि टिप्पण बढाया गया है—लिखते २ मानुषी स्वभाव वशात् यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो "भुलन अंदर सभ को अभुलि गुरू करतार" इस गुरू बचन अनुसार पाठक वृंद क्षमा रक्खें। जिन कृपालुओ ने प्राचीन प्रतियो के प्रदान में हमारी सहायता की है उन महोदयों का भी रोम २ से धन्यवाद करते हैं। अंतर्यामी ऐसे उपकारी काम में सदैव उनके हृदय को द्रवनशाली बनाय रक्खे ॥

जहाँ परयत हो सका उलथा असल के अनुसारही रक्खा गया है। गुरुबाणी के शब्दों को अपनी समझ अनुसार उलटने पलटने की हम सरीखे अधमों को सामर्थ्य नहीं है इस कारण हिन्दी भाषा के संकेत लिखाई से कहीं विरुद्ध पाकर मन में गिलानी लाना उचित ना होगा। और प्राय ि ु इन मात्राओं का प्रयोग हर एक शब्द में दृष्टि आवेगा सो उन्हें भी संस्कृत भाषा के संकेत पर ई–ऊ करके नहीं पाठ करना चाहिए। स्वर के बगैर कोई व्यंजन नहीं बोल सकता सो स्वर अ–इ–उ–तीन हैं। इनका प्रयोग केवल इसी बात के सूचन अर्थ रक्खा है। और किसी २ जगह इन मात्रिक निशानों से शब्दों की कारक अवस्था सूचन कराई है जोकि अर्थ की मूल कारण होती है ॥

शास्त्रीय भाषा में उलथा नहीं लिखा गया क्योंकि शास्त्रीय शब्द हर एक की समझ गोचर नही है–समिलित हिन्दी भाषा को हर कोई समझ सकता है। शास्त्रीय भाषा के ना लिखने में उपरोक्त लाला साहब की बारबार की मजबूरी तथा कुछ २ हमारी असमर्थता भी हेतु समझ कर विद्वान छमा रक्खें ॥

गुरमुख जनो का सेवाभिलाषी–

सटिप्पण उलथाकार,

सम्पूरण सिंह,

तरनतारन।

(पंजाब)

नोट एडिटर सतनामी पुस्तक माला—वास्तव में यह पुस्तक असल ग्रंथ की ज्यों की त्यों नक़्ल देवनागरी अक्षरों में है उसका उलथा या तर्जमा नहीं है।

जीवन चरित्र
(श्री गुरु नानक साहेब का)

घोर अत्याचार और अन्याय का एक ऐसा विकट समय था कि जिस के स्मरण से रोंगटे खडे होते हैं। धर्म का मोल उस समय में कौडी के बराबर भी न था खास कर ऐसे धर्म का जो बादशाह के मजहब से व्यतिरिक्त हो। इस के निमित्त लाखों सिरों का गर्द में मिलादिया जाना लड़कों का खेल था। निष्ठुरता अन्याय तथा उपद्रव ने साधुओं और सज्जनों के हृदय को ऐसा दुखी और चकनाचूर कर दिया था कि उससे निरतर हाहाकार और आरत नाद उठता था जिसने कि अंत को सातवें आसमान पर अपनी गूंज पहुंचाई और परम पुरुष परमेश्वर के दिव्य सिंहासन को डोलाय कर उसकी ऐसी अनूठी दया उमगाई कि उसे अपने अपूर्व निजअंश को निढाल और आतुर जीवों की सम्हाल के लिये ससार में भेजना पड़ा, जिस का अवतार सुल्तान बहलोल लोदी के समय में सम्बत १५२६ विक्रमी तथा सन १४६९ ईसवी में कार्तिकी पूनों को चार घड़ी रात रहे कल्यानचद* नामी वेदी खत्री की सुपत्नी तृप्तां के गर्भ से प्रगट हुआ। कल्यानचद जी पंजाब के जिला लाहौर, तहसील शरकपुर, तलवंडी नगर के सूबा राय बुलार पठान के कारकुन थे, जिनके इस दैवी बालक से बड़ी एक कन्या भी थी जिसका नाम बीबी नानकी था।

जितने धर्म के प्रचारक आचार्य या औतार या ऋषी मुनी अथवा पीर पैगम्बर औलिया इन महापुरुष से पहले हुए थे उन सब से यह किसी अश में कम न थे बरन उन सब की अपेक्षा

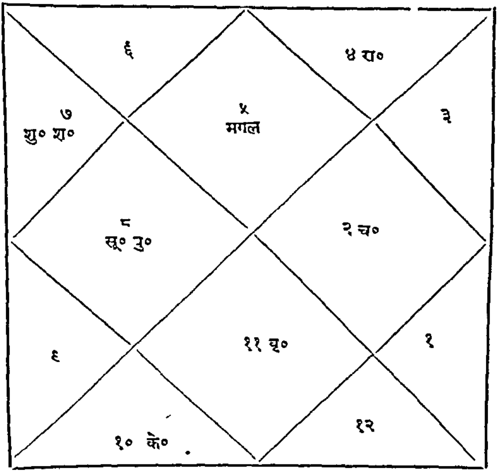
---

* कई इतिहासकारों ने गुरु साहेब के पिता का नाम कालू चद भी लिखा है और किसी ने केवल कालू जी।

इन मैं कई एक अंश की अधिकता थी। इन्होंने न तो कभी इस बात का दावा किया कि हम मालिक के भेजे हुए आये हैं या उसके पुत्र या निज अंश होने का लोगों को विश्वास दिलाया, और न लम्बी चौडी बातें बनाईं, वरन बाल अवस्थाहो से सीधे सादे तौर पर बिना दिखलावे के ऐसा परोपकारी सचाई से भरा हुआ सत मारग का उपदेश करते थे जो सुनने वालों के कलेजे में बिध जाता था जैसाकि आज परयंत उनकी बाणी में निरतर झलकता है। लाखों हिन्दू, मुसलमान और दूसरे मत के आदमी जिनका आपस में भारी बिरोध था बिवश होकर इनके चरणों पर गिरे और आपस की शत्रुता छोड कर और इन महापुरुप को अपना परम पिता और रक्षक मान कर वह एक दूसरे के सच्चे भाई वन गये और इनके बचन और बानी को वेद पुरान कुरान इंजील और सर्व शास्त्रों से बढ़ कर मानने लगे।

यह गुरू रूप अवतार धारी बालक जन्म समकाल ही से परम संत सरूप थे। वैठना आरंभ करतेही सदैव पद्मासन मार कर वैठते, और कुछ न कुछ स्मरण भजन के ढग पर मुख से अवश्य उच्चारण किया करते थे। पाँच वर्ष की आयु में अपने सहचारी बालकों को धार्मिक तथा परम पुरुप की प्रशंसा मिलित कथायें और उपदेश सुनाते और समय २ पर जो कुछ आपको घरसे मिल जाता फकीरों तथा अभ्यागतों को बाँट दिया करते थे॥

इन महा पुरुप की जन्म कुंडली, जिस के ग्रह आदि अवतारी पुरुपों के समान देखकर सब ज्योतिपी चकित होते थे, नीचे दी जाती है। सब के मुँह से यही निकलता था कि किसी साधारण जीव के ऐसे ग्रह नहीं हो सकते वरन किसी भारी अवतार के जिस का प्रताप कि भूमंडल और आकाश को सूर्य्य के समान छा लेगा।



जिस भूमि (तलवडी) मे इनका अवतार हुआ इनके आने के कारण वह तब से नानकाना साहेब प्रख्यात है ॥

बाल लीला के कौतुक करते २ क्रम २ से बढते २ जब गुरू साहेब की उमर पढ़ने के योग्य हो गई तो छः बरस की अवस्था मैं इन के पिताजी ने इन्हें देशी भाषा पढने के लिये पाठशाला मैं बिठाया जहाँ के गोपाल पंडित पाधा थे परंतु जब उसने प्रथमही अक्षर (अंक) लिख कर दिये तो गुरूजी ने कहा कि जिस २ पुरुष ने इस संसार का हिसाब किताब पढा है अंत काल मैं उसे अत्यंत क्लेशही उठाना पडा, इस कारण मुझे इस से कुछ प्रयोजन या लाभ नहीं है । मैं तो परमेश्वर का नाम पढाने आया हूँ इस वास्ते आप के लिये भी मुझे यही उचित जान पड़ता है कि आप इस ससारिक झूठे पठन पाठन को छोड कर सच्चा पठन

पाठन करें ऐसा कहते समय पाधाजी के प्रथाय[1] पर "जाल मोह घसि मसि करि मति कागद करि सार" इस प्रथम कड़ी वाला श्री राग के सुर में एक शब्द उच्चारण किया तथा "तिथी पट्टी" निरूपण करी जोकि श्री गुरूग्रंथ साहेब में मौजूद है, जिनको सुनकर पाधा द्रवीभूत होकर गुरू साहेब के चरणों पर गिर पड़ा और कभी कभी एकांत के सत्संग से लाभ उठाता रहा ॥

नौ बरस की अवस्था में संस्कृत सीखने के लिये वृजनाथ पंडित के सुपुर्द किया परंतु पहिले ही दिन इन महापुरुष ने उनको ऐसे अनुभवी वचन चेतावनी और उपदेश के सुनाये कि शिक्षक की ऊँची गद्दी से उतरकर पंडित जी उलटे शिष्य बन गये और इनकी शरण ली।

जब इनकी सात बरस की उमर थी इन की मासी एक दिन इन की माता से मिलने आई और यह देख कर कि गुरू साहेब जो कुछ घर में मिलता है उठा कर साधू और भूखों को बाँट देते हैं कहने लगी कि बहिन तेरा लड़का तो पागल सा है। गुरू जी यह बात सुन कर बोले कि मासी मेरे जैसा पागल तेरे घर भी पैदा होगा सो उस के घर में रामरत्न नामक एक महात्मा उत्पन्न हुए जो वैरागी साधुओं में एक भारी आत्म-ज्ञानी गिने जाते हैं और जिन का स्थान "कसूर" नगर में अब तक प्रसिद्ध है। ऐसे ही जो बातें गुरू साहेब खेलते फिरते में सहज सुभाव किसी के सामने कह दिया करते थे वह थोड़े ही काल में साक्षात देखने में आया करती थीं और जहाँ कहीं छोटे बड़े से भेटने का अवसर उन को मिलता था तो छिन २ और बात २ में उन्हें भगवत महिमा के चेताने और गुणानुवाद गाने में नहीं चूकते थे। इस निराली चाल को देखकर लोग भाँति २ की भली बुरी चरचा गुरू साहेब के विषय में किया करते और अपनी २ समझ अनुसार अर्थ लगाते जिन को सुनते २

(१) प्रसंग, निमित्त।

उन के पिता को भी अपने पुत्र की बावत अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे।

पढ़ने की ओर से उनका चित्त बिल्कुल उपराम पाकर पिता ने उनको किसी घर के कार्य में लगाना चाहा और गाय भैंस चराने का काम उनके सपुर्द किया पर यहाँ भी या तो वह मालिक के ध्यान में मग्न या ग्वाल बाल के साथ हरि चर्चा में लवलीन रहते जिसका फल यह होता कि गाय भैंस बिचर कर आज इसका कल उसका खेत खाजातीं—अतएव इस काम के योग्य भी गुरूजी न समझे गये।

जब गुरूजी की उमर ग्यारह बरस की हुई तो पिता ने एक बार पढ़ने में उनको फिर लगाना चाहा और इसलिये संबत १५३७ में फ़ारसी सीखने को मौलाना रुकनुद्दीन के पास भेजा परन्तु इनको भी गुरू साहेब ने पाधा और पंडित की नाईं सच्चा अलिफ़-बे उपदेश करके अपना मुरीद बना लिया। अलिफ़नामा जिससे गुरू साहेब ने मौलाना को चिताया यह है—

अलफ अलह नों याद करि गफलत मनहु बिसार।
सास पलटै नाम बिनु धृग जीवणु ससारि ॥१॥
बे बिदायत[1] दूर करि कदम शरीयति राखु।
सभ किथि खिजें निव चलीऐ मदा किथै न आखु ॥२॥
ते तोबह करि सिदक दिल मत तूँ पछोताय।
तनु बिनसै मुख गडीऐ तब तूँ कहा कराय ॥३॥
से सनाई[2] बहुत करि पाली सास न कढि।
छुटो हटु विकाउँदे बहुरि न लहसी अढु[3] ॥४॥
जीम जमायत जमै करि चलणे दा करि बधु।
बाझहुँ सॉई आपने फिरसहिँ अन्धो अधु ॥५॥
हे हलेमी[4] पकडि तूँ दिलदी हवस निवारि।
धावत बरजहु रुकनदीं हरदम पालक सार ॥६॥

(१) बिद्अत=जुल्म। (२) गुणानुवाद। (३) कौड़ी। (४) शील।

पे पायन[1] तेऊ भए जिन विसरिआ करतारु ।
मन माया कै संगि रचि मूहि उठावहि भारु ॥७॥
दाल दयानत[2] करि मना अठे पहर न सोइ ।
एक पहर करि जागना साँई नाम बगोय ॥८॥
ज़ाल जिकर[3] करि आजजी कतरा मनु न डुलाय ।
तितु[4] न लागै रावली लोभ मनहु चुक जाय ॥९॥
रे राहत[5] ईमान की सोई देखहि जाय ।
पजे वरजहु[6] रुकनदीं साँई स्यौं चितु लाय ॥१०॥
जे जारी[7] करि आजजी साँई बेपरवाहु ।
जो किछु लोरे सो करै तिस दा क्या वेसाहु ॥११॥
सीन सोधि मनु आपणा सभ किछु इसही माहि ।
तनु भाँडा कारीगरी हिकमत बधि समाहि ॥१२॥
शीन शहादत[8] पाईअै थिर रहीअै लिवलाय ।
रुकनदीन तन जायगो कीजै तलब खुदाय ॥१३॥
साद सलवात[9] महमदी आखहु मुखहु नित्त ।
सासा वदा सिरजिया सिर मित्राँ दे मित्त ॥१४॥
ज़ुआद जलाल[10] गुमरही[11] इन दूतन स्यौं मेलु ।
वै उठी तू नदरि करि चीनहि नाही खेलु ॥१५॥
तोय तलब कर रास्ती दायमु जिना वसालु ।
जिन डिठे दुख जायगो माया छूटै जालु ॥१६॥
ज़ोय ज़ालम तेऊ भए चेतहि नाही नामु ।
साँई तेरे नाम बिनु क्यौं आवै बिस्राम ॥१७॥
अैन अमल[12] कमाईअै जेका पारिवसाइ[13] ।
बिनु अमलाँ क्यौं पाईअै मत मरीअै पछुताय ॥१८॥
ग़ैन गनी[14] तेऊ भए जिनाँ पछाता आपु ।
इसु पिंजर महि खेल है ना तिस माई बाप ॥१९॥
फ़े फ़ारग[15] तेऊ भए चलहिँ गुर कै भाय ।
आपु किया तहकीक तिन रगहु रग मिलाय ॥२०॥

---

(१) दगाबाज । (२) ईमानदारी । (३) जाप । (४) तिसको । (५) सुख । (६) रोको । (७) प्रेम में रोना । (८) परिचय । (९) नमाज, वजीफा । (१०) भूल भटक । (११) गुमराही । (१२) सुकर्म । (१३) जितना पुरुषार्थ । (१४) धनी, बेपरवाह । (१५) फुरसतवद, आजाद ।

फ़ाक करार[१] न होवई जिन मनि उपजै चाय।
ते कचन पारस भए जिन भेटे हरिराय ॥२१॥
काफ कलमा याद करि नफा अवरु कित बात।
नफस हयाई रुकनदीं तिस ते होवत मात ॥२२॥
लाम लानत बरसै तिनाँ तरक नमाज करेनि।
थोडा बहुता खटिया[२] अपणा आपु वजेनि[३] ॥२३॥
मीम महमद मन्न तूँ मन किताबा चार।
मन्न खुदाय रसूल नो हरदम खाराक सार ॥२४॥
नून नहीं को गुमरही सभ कीते अमल कबूल।
माया वधन गल पई मतवाली वजहि भूल ॥२५॥
वाउ जि वावहि रुकनदीं सिर धुनि फटकित नालि।
उमर गवाई बावरे तू परिओ कित खियाल ॥२६॥
हे हैवत[४] तिन दिन्नैं दी जिस दिन अदल करे।
वाय हमारे रुकनदीं केहा अमर करे ॥२७॥
लाम लायक तेऊ भए रहमति नदरि करे।
सहजि भाए प्रभु आपणा नित दिन समाले ॥२८॥
अलफ अलह तुध नालि है चेतहि क्यों न अजान।
गुर सेवा ते पायै छूटै अति निदान ॥२९॥
ये यारी करि रब्ब स्यों जिसु अबचल है राज।
एक अकेला नानका नाहीं किसे मुहताज ॥३०॥

फिर उसी साल में पिता ने शुभ महूरत देखाकर पुरोहित को बुलवाया और पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार कराना चाहा परन्तु जब जनेऊ पहिनाने का समय आया तो गुरू साहेब ने कहा कि इस जनेऊ से कुछ अर्थ न निकलेगा और सच्चे यज्ञोपवीत की महिमा सुनाई जिसका पुरोहित पर ऐसा असर हुआ कि वह आप उनका शिष्य बन गया।

॥ श्लोक महला १ ॥

दया कपाह संतोष सूत जत गढी सत वट्ट।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाँडे घत्त ॥

---

(१) चैन। (२) कमाया हुआ। (३) गँवा दें। (४) डर, खौफ।

ना इहु तुटै न मलु लगै, ना इहु जलै न जायं।
धन्य सु माणस[1] नानका जो गलि चल्ले पाय॥१॥
चउकड मुल्ल अणाया बहि चउके पाया।
शिषा कन्न चढाईश्रा गुर ब्रह्मण थीश्रा।
श्रोह मुश्रा श्रोह भड़ पया वेतगा गया॥२॥
लख चोरीश्राँ लख जारीश्राँ लख कूडीश्रा लख गाल।
लख ठगीश्रा पहिनामीआ रात दिनस जीअ नाल॥
तग कपाहहु कत्तीश्रै ब्राह्मण वट्टे श्राय।
कुहि बकरा रिन्न खाया सभ को आखै पाय[2]॥
होय पुराणा सुट्टीश्रै भी फिर पायै होर।
नानक तग न तूटई जे तग होवै जोर॥३॥
नाँइ मनिश्रै पति ऊपजै सालाही सचु सूत।
दरगहि अदरि पायै तग न तूटसि पूत[3]॥४॥

एक दिन का वृत्तांत है कि श्री गुरू जी अकस्मात् घर से बाहर एकांत जंगल में निकल गये और कुछ काल तक करतार के गुणानुवाद गाते गाते समाधि में अचल स्थित हो गये तो घाम से बचाने के वास्ते एक बड़े साँप ने अपने फन से उनके मुख पर छाया कर लिया उसी समय में राय बुलार भी शिकार खेलता २ उस जंगल में आन पहुंचा और बालक की ऐसी दशा देखकर समझा कि यह कोई साधारण पुरुष नहीं बलकि अवश्य ही कोई वली-अल्लाह है। ऐसी २ अनेक बातों से बाल अवस्था ही में गुरू साहेब की प्रसिद्धी हो रही थी परंतु उनको एकांतही प्रिय था, इसी कारण नित्य जगल को चले जाते और कदाचित घर रहते तो एक ओर किनारे होकर ध्यान समाधि में मगन रहते थे। उठने पर यदि कोई बार्त्तालाप करना चाहता तो मालिक के गुणानुवाद के सिवाय मौनही रहते थे। इनकी ऐसी खिंचाव तथा उपराम दशा पर दीर्घ रोग होजाने

(१) मनुष्य। (२) बकरे को कुह (मार) कर और पकाय कर (जब) पाया अर्थात् जब जियाफत खायली तब सब कोई कहता है कि (अमुक ने) जनेऊ पाया है। (३) पवित्र।

के सदेह से वैद्य बुलाया गया, जव उसने नाड़ी पकड़ी तो गुरू साहेब ने यह श्लोक उच्चारण किये।

वैद बुलाया बैदगी, पकड ढढोले बाँह।
भोला बैद न जानई, करक करेजे माँह॥
जाहु बैद घर आपने, मेरी थाह न लेह।
हम रत्ते शहु आपने, तू हमैं दारू देह॥ आदिक॥

राय बोलार नगराधीश का विश्वास गुरू साहेब पर देख कर और भी बहुत से लोगों के चित्त में उनकी महिमा समागई। सबत १५४१ में भाई मरदाना की प्रार्थना पर गुरू जी पाकपट्टन शहर में बाबा फ़रीद के मेले में गये, जहाँ अनेक मतौं के साधू फ़क़ीर जमा हुआ करते थे। वहाँ बाबा फ़रीद की गद्दी पर उन दिनों शेख़ इब्राहीम ज़ाद: जिसका उपनाम बहराम था उसके साथ गुरूसाहेब की खूब गोष्टी हुई, जोकि श्री गुरूग्रंथ साहेब में "मारू डखने" के नाम से प्रस्तुत है। तीन दिन पीछे गुरू साहेब घर को लौट कर आये तो उनके पिता ने इस भय से कि कहीं साधुओं की विशेष सगत करने से यह आपभी भेप न ले लेँ, उन्हें किसी ससारी कारोबार में लगा देना उचित समझा, और इस मतलब से उनके साथ में एक भरोसे का आदमी बाला नामक और कुछ रुपया देकर भली प्रकार समझा दिया कि बेटा खूब सोच विचार कर सच्चा सौदा लाभ-दायक करना इस प्रकार समझा बुझाकर लाहौर की ओर भेजा॥

जब चलते २ चूहडकाना गाँव में पहुँचे तो एक मन्डली साधुओं की क्षुधातुर मिली जिसे देखकर गुरू साहेब बोले कि इससे बढकर "सच्चा सौदा" क्या हो सकता है! और उन रुपयों का उन्हें भंडारा खिला दिया और आप खाली हाथ तलवंडी को लौट आये परतु पिता के स्वभाव को विचार कर घर नहीं गये वरन एक पीलू के वृक्ष तले आसन मार

कर ध्यान में बैठ गये। यह वृक्ष आज तक तम्बू साहेब के नाम से प्रसिद्ध है। जब पिता को (बाला से) बेटे की कार्रवाई का हाल मालूम हुआ तो वह क्रोध में भर कर उनको राय बोलार के पास पकड़ लेगया और सब समाचार कह सुनाया जिस पर राय बोला कि मेहता तुम कब तक ऐसे कामिल आमिल फ़क़ीर से अनजान बने रहोगे ! जो कुछ इनके ख़र्च के लिये ज़रूरत हो हम से ले जाया करो और इनको किसी तरह की तकलीफ़ न दो। लेकिन पिता फिर भी अपने पुत्र की उदारता और अनूठी कार्रवाइयों से दुखी ही रहा करता था और आख़िर को लाचार होकर गुरू साहेब को उनकी बड़ी बहिन बीबी नानकी और बहनोई लाला जैराम के पास सुलतानपुर भेज दिया जो नवाब दौलतख़ाँ लोदी के दीवान थे और इन्हें बड़े प्रेम से अपने घर रक्खा। गुरू साहेब ने अपनी बहिन और बहनोई की ख़ातिर से सम्बत १५४२ में नवाब के मोदीख़ाने में मोदी का काम अपने ज़िम्मे ले लिया। प्रति दिन जितना सीधा सामान नवाब साहेब के घर के लिये तौलते उससे चौगुना साधू फकीरों को बाँट दिया करते थे और जब रसद तौल कर लोगों को देते तो "तेरा है तेरा है" मुख से उच्चारण करते जाते और हिसाब किताब नाम मात्र को भी न रखते। इस फ़ज़ूल ख़र्ची की शिकायत लोगों ने नवाब साहेब को पहुँचाई परन्तु जब २ जाँच की गई तो गुरू साहेब ही का अधिक पावना नवाब की ओर निकलता रहा॥

२४ ज्येष्ठ संवत १५४५ को बहिन बहनोई के आग्रह से गुरूजी का ब्याह पक्खो ज़िला गुरदासपुर के निवासी मूल चन्द्र चोना खत्री की सुलक्षणी नामक पुत्री से हुआ और ५ श्रावण संवत १५५१ को गुरूजी के घर एक ऐसा रत्न पुत्र उत्पन्न हुआ कि जिसकी कीर्त्ति अब तक भारतवर्ष में छा रही है। उनका नाम गुरूजी ने श्रीचन्द्र रक्खा जो आगे

चलकर उदासी साधू सम्प्रदाय के मूल पुरुप हुए । इनका जन्म माता के गर्भ से जटा, विभूति, कर्णमुद्रादि वेप सहित हुआ था । १९ फाल्गुन सवन १५५३ को दूसरे पुत्र लक्ष्मी चन्द्र प्रगट हुए जिनकी वंश परपरा अब तक विद्यमान है ॥

इसी काल में एक देवी-भक्त भागीरथ नामी अपने वहुत से चेलों और साथियों सहित गुरू साहेब का शिष्य हुआ ॥

एक बार मरदाना मीरासी अपनी पुत्री के व्याह के खर्च के लिये गुरू साहेव से सहायता माँगने आया । उन्होंने व्याह की सब सामग्री की एक फ़िहरिस्त वनाकर भागीरथ को लाहौर शहर भाई मनसुख की दुकान से लाने को भेजा। मनसुख ने और सब सामान तो बाँध दिया परन्तु अच्छे चूड़ा (चिउडा) के लिये कहा कि दो दिन पीछे मिलेगा लेकिन जोकि भागीरथ को गुरू साहेब की एकही रात लाहौर में ठहरने की आज्ञा थी इस लिये उसने अपनी मजबूरी जाहिर की । मनसुख बोला कि बादशाही नौकर भी इस तरह अपने मालिक की आज्ञा नहीं पालते तुम किस के नौकर हो जिससे इतना डरते हो । भागीरथ ने अपने सतगुर का नाम लेकर उनकी किंचित महिमा जताई जिस पर रात भर दोनों में बाद बिवाद और वार्तालाप होने के पीछे मनसुख के चित्त में गुरू नानक साहेब के दर्शन की उमंग जागी और प्रात:काल ही वह अपने गृहस्ती खर्च का उत्तम चूड़ा लेकर भागीरथ के साथ स्वय सुलतानपुर आया । सामने आतेही गुरू साहेब ने उस पर दया दृष्टि डाल कर यह वचन फ़रमाया—

"पूर्व थो मनसुख यह काचा । कियो नाम चाहत अब साचा ॥
याँते आन्यो अपने सगा । धन्य सत मत कीट भृगा ॥"

इसके सुनतेही मनसुख गुरू साहेब के चरणों पर गिर पडा और शिष्य होकर बड़े प्रेम से सुमिरन ध्यान और भजन में लग गया ॥

संवत १५५४ में गुरूजी एक दिन नियमानुसार पहर रात रहे सेवक के साथ वेईं नदी पर स्नान को गये तो वहाँ एक साधू[1] से भेंट हुई जिसने चेताया कि बाबा नानकजी तुम किस काम के लिये इस संसार में भेजे गये हो, तुम्हारे लिये सच्चे दरबार से क्या आज्ञा है और कर क्या रहे हो! इस पर गुरूजी उस साधू के साथ वेईं नदी में घुस कर तीन दिन तक गुप्त रहे। लोग अपनी २ समझ के अनुसार कोई कहते थे कि डूब गये, कोई, और कुछ अनुमान करते थे परन्तु वास्तव में गुरूजी अपने शरीर को योगबल से समाधि की दशा में नदी में स्थापित करके सत्य पुरुष के चरणों में सत्य नाम का खुल्लम खुल्ला उपदेश करने की आज्ञा के लिये सच्च खंड में गये। तीन दिन पीछे जब वह नदी से निकले तो मोदीखाने में जाकर सब सामग्री सीधा साधुओं और भूखों को लुटा दिया और आप अतीत रूप धारण करके स्मसान भूमि में जा पधारे। इनके बहनोई दीवान जयराम ने इनको घर लाने का बहुत जतन किया परन्तु इन्होंने एक न मानी॥

द्रोहियों को यह अच्छा अवसर मिला और उन्होंने यह शोर मचा दिया कि मोदीखाने में घाटा आने से नानक पहिले तो छिप बैठा था और अब यह स्वाँग रचा है। जब यह ख़बर नवाब के कान तक पहुँची उसने दीवान जयराम से मोदीखाने की परताल कराई तो ७३०) गुरूजी का नवाब के जिम्मे निकला जिसे आधा तो गुरूजी ने भूखों और अनाथों को बंटवा दिया और आधा ससुर के आग्रह से बाल बच्चों को दिलवाया॥

अब तो गुरू साहेब ने सत मार्ग और सत नाम का भंडारा खोल दिया और सब को उसका उपदेश करने लगे

(१) किसी इतिहासकार ने इस साधू को नारद लिखा है किसी ने वरुण। नारद उस दैवी शक्ति का नाम है जो मालिक की ओर से भूमि तथा आकाश पर महात्माओं के पास उसकी आज्ञा को पहुँचाती है, और जल में आज्ञा पहुँचाने वाली शक्ति वरुणदेव कही जाती है।

जिसका नतीजा थोडे ही समय मे यह हुआ कि बहुत से हिन्दू और मुसलमान आदि अपने २ मत या दीन का वधन तोड कर उनके चरनौं में आ लगे। यह बात काजी और मुल्ला लोगों से सही न गई और सब ने मिल कर नवाब साहेब से शिकायत की कि बाबा नानक अपने को सच्चे खुदा का बंदा और हिन्दू मुसलमान को एकसा मानना ज़ाहिर करता है सो यह बात बनावट की है हम उसे तब सच्चा मानें जब वह खुदा की बन्दगी में हम लोगौं के साथ मसजिद में चलकर नमाज़ पढ़े। इस पर नवाब ने गुरू साहेब को बुलवा कर कहा कि हमारे साथ नमाज पढ़ने मसजिद को चलो। गुरू साहेब साधारन स्वभाव से नवाब और काजी के साथ हो लिये। जब मसजिद मैं पहुँच कर लोग नमाज को खडे हुए तो गुरू नानक साहेब उनसे अलग होकर एक कोने मैं जा बैठे। जब नमाज हो चुकी तब लोगौं ने नवाब से कहा कि देखिये! इन का कपट खुल गया, क्योंकि हम लोगौं के साथ नमाज मैं शरीक नहीं हुए। नवाब ने गुरू साहेब से इसका कारण पूछा तो उन्होंने जवाब दिया कि जो कोई एक चित्त होकर खुदा के सामने सिजदा करे हम उसी के शरीक हैं चाहे वह हिन्दू हो चाहे मुसलमान, परन्तु जिसका चित्त ठिकाने नहीं रहता हमारा उसका साथ नहीं हो सकता। यहाँ पर साधारन लोगों का क्या कहना, न तो नवाब साहेब ही का चित्त नमाज में था और न काज़ी का; क्योंकि नवाब साहेब का चित्त तो काबुल क़न्धार में घोड़े ख़रीद कर रहा था और क़ाज़ी का मन अपने घोड़े के नये जनमे हुए बछडे की रक्षा के लिये दौड़ रहा था कि कहीं अस्तबल (घुडसाल) के कुए मैं न गिर पडे--भला यह मालिक की वन्दगी हुई या किसकी? इसी कारण हम आप लोगों के नमाज मैं शरीक नहीं हुए। यह सच्चा वचन और अंतर-यामता का कौतुक देखकर दोनों

चकित हो गये और गुरू साहेब के चरनों पर गिर कर बोले कि आप सच्चे वली-अल्लाह हैं अब बतलाइये कि हमारे लिये क्या कर्तव्य है कि जिस से दीन दुनियाँ दोनोँ की भलाई हो। गुरू जी ने जवाब दिया कि यदि तुम दीन दुनियाँ दोनों का सुधार चाहते हो तो हमारे कहने मुताबिक पाँच नमाजेँ सदा पढा करो। काजी ने पूछा कि वह कौन सी 'नमाजेँ हैं। गुरू जी ने "पज नमाजाँ वक्त पज आदि" का शब्द उच्चारण किया और देर तक परमार्थी और ससारी सच्ची लाभदायक चरचा करते रहे; इस प्रकार उनकी अभिलाषा को पूर्ण करके फिर पहिले की तरह स्मसान भूमि मेँ जा बैठे। वहाँ कई २ दिन तक बिना अन्न जल के ध्यान भजन मैँ निरंतर जुटे रहते थे और जो जिज्ञासू उनकी सेवा मेँ आते उन को सत मार्ग का उपदेश करते थे, परंतु जब वहाँ भी बहुत भीड भाड़ होने लगी तब एकान्त के रसिया गुरू साहेब ने उस जगह (सुलतानपुर) को भी छोडने की ठानी। लेकिन इसी अवसर मेँ तलवडी से पिता का भेजा हुआ घर का मीरासी मरदाना गुरू जी का कुशल समाचार लेने को पहुँचा और उन के साथ बाहर जाने की अभिलाषा प्रगट की जिस को गुरू जी ने मंजूर किया और जब तक मरदाना एक बार अपने घर होकर लौट न आवे तब तक वहाँ पर ही ठहरे रहना स्वीकार किया।

अब तो गुरू जी का अतीत भेप धारन करने का समाचार सुन कर उन के पिता और दूसरे सम्बन्धी और ससुराल वाले सब घिर आये और जहाँ तक उन का बश चला उन को घर लेजाने का जतन किया पर गुरू जी किसी तरह न माने और वाला तथा मरदाना को अपने साथ लेकर सम्बत १५५६ मेँ

---

(१) पूरा शब्द श्री गुरू ग्रथ साहेब में मौजूद है। (२) ऐसे गाढ़ आवेश की दशा को भूत-ग्रस्त समझ कर एक झाड़ने फूकने वाले मौलाना को बुलाया गया था जिसके जन की बत्ती जला कर नासिका में देते समय गुरू साहेब ने इस श्लोक द्वारा उसे उपदेश किया —

"खेती जिनकी उजड़ी खलवाड़े नाहीं थाऊँ। ध्रिग तिनाँ दा जीविआ जे लिख २ वेचन नाऊँ"॥

सुलताँपुर से चल पड़े। रास्ते में अच्छे अच्छे साधुओं फकीरों आदि से गोष्टी करते हुए लाहौर में पहुँच कर अपने भक्त जवाहिरमल के स्थान पर ठहरे जहाँ अब तक उन के नाम का गुरुद्वारा मौजूद है। यहाँ अनेक हिन्दू व मुसलमान साधुओं से जिन की सिद्धी शक्ती और करामात का शोर था और बादशाह सिकन्दर लोदी के गुरू वली सैयद अहमद से सतमत सम्बन्धी चरचा करते रहे और अपने अपने मत के बन्धन की उनकी टेक तुड़वाई और सात दिन में बहुत से साधुओं और गृहस्तों को सतमार्ग का उपदेश देकर ऐमनाबाद को चले आये—यहाँ लालो नामक तक्षक से पहले भेंट हुई और उसी का अन्न ग्रहण करते रहे—दीवान मलिक भागो के ब्रह्म भोज के निमंत्रण को किसी प्रकार भी अंगीकार न करके भरी सभा में उसके अन्याय उपार्जित धान्य का प्रजा के रक्त समान होना प्रत्यक्ष दिखलाकर धर्म के कमाये हुए अन्न की बड़ाई जताई। इस प्रकार जहाँ तहाँ सतमार्ग का उपदेश करते हुए सम्वत १५६० में स्यालकोट पहुँचे और वहाँ के नामी फ़कीर हम्ज़ागौस को उपदेश दिया और फिर वहाँ से पूरब की यात्रा का विचार करके उसी साल हरिद्वार, कनखल में पधारे, जहाँ इनका स्थान "नानक बाड़ा" के नाम से अब तक मौजूद है। यहाँ भी कितने ही पंडों और यात्रियों को सत मार्ग में लाकर सम्वत १५६१ में दिल्ली आये।

दिल्ली के तख़्त पर उस समय सिकन्दर लोदी बादशाह था जिस का कायदा था कि जिन साधुओं में सिद्धी और कारामात न हो उन को बन्दीखाने में डाल दिया करता था सो गुरू नानक साहेब को भी बाला और मरदाना सहित क़ैद कर दिया, परन्तु गुरू साहेब ने ऐसा चमतकार दिखलाया कि बादशाह ने लज्जित होकर उन से छिमा माँगी और उसको (सत् उपदेश की जिज्ञासा पर)--

॥ तिलंग महला १ ॥

यक अरज गुफतम पेशि तो दर गोश कुन कर्तार ।
हक्का कबीर करीम तू बेऐब परवरदिगार ॥ १ ॥
दुनिया मुकाम फानी तहकीक दिल दानी ।
मम सर मूइ अजराईल ग्रिफत दिल हेच न दानी ॥ १ रहाउ ॥
जन पिसर पिदर बिरादर कस नेस्त दस्तगीर ।
आखिर बयफतम कस न दारद चू शवद तकबीर ॥ २ ॥
शबो रोज गशतम दर हवा करदेम बदी खयाल ।
गाहे न नेकी कार करदम मन ईं चुनीं अहवाल ॥ ३ ॥
बदबखत हमचु बखील गाफिल बेनजर बेबाक ।
नानक बुगोयद जन तुरा चाकराँ पापाक ॥ ४ ॥

इस शब्द द्वारे उपदेश दिया । उसने केवल उन्हीं को नहीं बल्कि और बहुत से साधुओं को भी जिनको पहिले से क़ैद में डाल रक्खा था गुरू साहेब की आज्ञा से छोड दिया ।

इस प्रकार दिल्ली में गुरू जी ने कौतुक दिखलाकर और मियाँ मारूफ सरीखे नामी फकीरों को भी अपना प्रेमी बना कर और बहुतों को सत नाम का उपदेश दे कर अलीगढ़ को प्रस्थान किया और वहाँ हो कर मथुरा वृन्दावन वासियों को चेताते हुए आगरा में पहुँचे । आगरा में जहाँ आपने निवास किया था वह स्थान अब तक "गुरू की धर्मशाला" के नाम से उपस्थित है । वहाँ से चल कर कानपुर, लखनऊ, अयोध्या की यात्रा करते हुए सम्वत १५६३ में काशी जी में पधारे और नगर के पच्छिम दिशा में एक बगीचे में जिसे अब तक "गुरू का बाग" बोलते हैं विश्राम किया । काशी में गुरू जी के आने की धूम मच गई और सब मत के लोग हिन्दू मुसलमान प्रति दिन उनका दर्शन करने और उपदेश सुनने को आया करते थे परन्तु गुरू जी ऐसे मध्यभावी शब्दों से उपदेश किया करते थे कि बडे विचारवान भी उन के मत के सिद्धांत को नहीं जान सकते थे । मुसलमान समझते

थे कि वह उनके दीन की हिदायत करते हैं, वैष्णव और शैव और शाक्त इत्यादि उन्हें अपने २ मत का प्रचारक समझते थे किन्तु गुरूजी एक सत्य वस्तु को ही दृढाते तथा वर्णाश्रम भेद का खंडन और एक सत्य नाम का मंडन करते रहे जैसा कि

"दूजा काहे सिमरीए जम्मे ते मर जाय।
एको सिमरो नानका जो जल थल रहिआ समाय॥"

उस समय के इस वचन से प्रतीत होता है।

उस काल में काशीवासी कई प्रमाणिक भक्तों के साथ भी गुरू जी का मेल तथा चर्चा वार्ता का प्रसंग होता रहता था। पंडितो के साथ जो वार्तालाप हुआ श्री गुरू ग्रंथ साहेब में सहसकृती श्लोकों के रूप में यथावत् अंकित है। जिस समय में बाबा नानक साहेब काशी में ठहरे थे कबीर साहेब नगर से बाहर रघुनाथपुर गाँव में गये हुए थे। गुरू साहेब का आगमन सुन कर मिलने की अभिलाषा से कबीर साहेब तो काशी को लौट रहे थे और बाबा नानक साहेब रघुनाथपुर को जा रहे थे कि रास्तेही में दोनों महापुरुषों का मिलाप हुआ और कई दिन तक वहाँ ही चर्चा वार्त्ता होती रही जिसका सार-गर्भित भाव इसी प्राण-संगली के ग्रंथ में "कबीरजी की गोष्टी" के नाम से प्रगट है। कितने लोग कहते हैं कि गुरु नानकजी कबीर साहेब के चोला छोड़ने के पीछे उत्पन्न हुए और इस लिये कबीर गोष्टी का होना नहीं मानते हैं परंतु जैसा कि कबीर साहेब की शब्दावली भाग १ में उनके जीवन-चरित्र में अनेक प्रमाणों से दिखलाया गया है कि कबीर साहेब सम्बत १४५५ से १५७५ तक [धनी धर्म्मदास जी के कथन अनुसार १५७१ तक] वर्त्तमान थे तो फिर सम्वत १५२६ से १५७१ या १५७५ तक दोनों महात्माओं का सहकाली होना सिद्ध होता है। "कबीर कसौटी" के प्रमाणिक ग्रंथ में लिखा है—

पंद्रहसौ पचहत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी, रली पौन में पौन॥

काशी में कुछ दिन रहकर गंगा तट के रास्ते गुरू साहेब बकसर, छपरा, पटना में सदुपदेश करते हुए सम्वत १५६३ में राजगिरी तथा बिहार प्रांत की यात्रा करते हुए गया पहुँचे जो हिन्दुओं के पिंडदान और दीपदान का मुख्य स्थान है। यहाँ पंडों ने उनसे पिंडदान आदि करने को बहुत आग्रह किया पर गुरूजी ने एक न सुनी और

"दीवा मेरा एक नाम दुख विच पाया तेल ।
उन चानन उन सोखीआ चूका जम सिउँ मेल ॥"

इत्यादि शब्दों से उनको उपदेश दिया ॥

गया से चलकर बुद्धगया अर्थात बुद्धदेव की अवतार भूमि में पहुँचे वहाँ के गोसाँई देवगिरि महन्त जो प्रतापशील महाराज सरकार कहलाते थे गुरू साहेब के वचनों से ऐसे मोहित हुए कि उन्होंने "सत्य नाम वाह गुरू" की रटन पपीहा की भाँति लगा दी, जिसके प्रभाव से कुछ काल पीछे उनका प्रतिष्ठित गद्दी-नशीन चेला भक्तगिरि अपनी सारी सम्पति को त्याग के अपने बहुत से शिष्यों समेत पंजाब में आकर गुरू साहेब की सातवीं गद्दी के मालिक श्री गुरू हरिराय साहेब का सेवक बन कर "भगवान" के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसी के नाम पर उदासीन साधू "भेष भगवान" कहलाते हैं । बुद्धगया की मूर्त्ति की केवल पीठ का दरशन होता है इसका कारन मरदाना ने गुरूजी से पूछा जिसके जवाब में गुरूजी बोले कि यह महात्मा अब से दो हजार बरस पहिले केवल राजनीति का उपदेश किया करते थे और परमार्थी ठगों से जो परलोक का उपदेश देने के ओझले में सीधे सादे लोगों से लाखों रुपया ठग कर दुराचार में खर्च करते थे ऐसे दुष्टों से उन्हें बचाने के लिये इन्होंने लोगों के चित्त में परलोक तथा उनके ईश्वर का अभाव

बिठलाया था और इस प्रकार से उस समय के धूर्तों की ठगई से उनको बचाया, और फिर यह विचार कर कि जिस मुख से मैंने ईश्वर के विपरीत उपदेश किया है उसे अब संसार को क्या दिखलाऊँ "यह आज्ञा की" कि लोग मेरी कमर ही का दरशन करें ॥

वहाँ से चलकर गुरूजी वैद्यनाथ होते हुए और रास्ते के नगरों में सत्य नाम का उपदेश करते सम्वत १५६१ में मालदेव पहुँचे और वहाँ से ढाका को आये और वहाँ की जादू टोना में कुशल स्त्रियों को मिथ्या दुराचारों से हटा कर सत्य नाम का उपदेश किया और फिर कामरूप तथा दूसरे दुराचारी स्थानों में बिराजे और वहाँ के वाममार्गी मत वालों को जो कमक्षा देवी को अपना इष्ट मानते थे अपने सदोपदेश से एक अकाल पुरूष की पूजा दृढाई। इसी सम्वत की १३ फालगुन को गुरूजी समुद्र के किनारे गौरीपुर धोबिया बन्दर में पहुँचे जहाँ पर इनके ठहरने का स्थान "दमदमा साहेब" के नाम से अब तक वर्तमान है ॥

वहाँ से सम्वत १५६५ में ब्रम्हपुत्र नदी से पार होकर आसाम के अजमेरीगज, करीमगंज, सिलहट आदि नगरों के निवासियों को चेताते हुए सरिता नदी के पार कछार देश में पहुँचे और मनीपुर, रोसमफल आदि होते हुए लोशाई में पधारे और वहाँ के राजा देवलूत को जो महा दुष्ट, परदेसी जनों का घातक था दया दृष्टि से सुधार कर शरण में लिया। फिर मथुराफाड़ी, अगरतला, लक्षीपुर और पदुमा नदी के पार फरीदपुर, केशवपुर आदि २४ नगरों के निवासियों को अपने सदुपदेश का लाभ देते हुए कलकत्ता में आन बिराजे जो उस काल में बहुत छोटा सा शहर कलीकिट के नाम से बोला जाता था। वहाँ के जीवों को चेता कर हुगली नदी के पार बालेश्वर, मेदनीपुर आदि

शहरों की यात्रा करते हुए कामठी, बैतरनी, ब्राह्मणी, महादेवी आदि नदियों के पार कटक नगर में जा विराजे और इन सब स्थानों में सच्चे परमार्थ का सदावरत चलाया। इन सब जगहों में गुरूजी के नाम से गुरस्थान या धर्मशाला अब तक मौजूद हैं। इस प्रकार भ्रमन करते करते २७ चैत सम्वत १५६६ को जगन्नाथपुरी में पहुंचे और लोगों के भ्रम और पाखड का खडन करके—

"गगन मय थाल रवि चन्द दीपक बने, तार का मडला जनक मोती।
धूप मल्यान लो पवन चवरो करे, सगल बनराय फूलत जोती॥
कैसी आरती होय भवखडना दयाल तेरी—
आरती, अनहता शब्द वाजत भेरी॥"

इत्यादिक परमार्थी आरती निरूपक शब्दों के द्वारा उपदेश दिया। वहाँ से क्रमागत (इतिहास प्रोक्त) अनंत शहरों के अधिकारियों को चेताते हुए तथा साधू फ़कीरों से गोष्टी करते हुए कुरुक्षेत्र को लौटे और रास्ते में करनाल शहर में शेख़ शर्फ़क मुरीद शेख़ शमल को जो बहुत से फ़कीरों तथा अमीरों को साथ लेकर गुरूजी से भेंट करने आया था गुरू साहेब ने अपनी अनूठी दया दृष्टि और सदुपदेश से ऐसा मोहित किया कि सब उनके मुरीद हो गये। फिर सूर्य्य ग्रहण में थानेसर पहुँच कर वहाँ के पंडितों को परास्त किया तथा नानकचन्द्र पंडित जिसने कि भविष्यत पुरान के लेख अनुसार गुरू नानक का अवतार होना जान कर अपना नाम नानकचन्द्र प्रसिद्ध कर रक्खा था उसका सम्पूर्ण विद्या मद चूर्ण करके उसको चतुर्दास आदि पंडितों समेत सत्य नाम का उपदेश दिया। इसके पीछे सुलतानपुर शहर में लौट आये और प्रथम यात्रा समाप्त हुई॥

॥ इति प्रथम यात्रा ॥

पूरब दिशा की यात्रा के पीछे गुरू साहेब सुलतानपुर को लौट आये और कुछ काल वहाँ ठहर कर अपने पुराने

प्रेमियों और सेवकों को निज दर्शन और वचन से कृत्यकृत्य किया। फिर १५६७ वैशाष मास में दक्षिण दिशा को (वहाँ) सत्य नाम की वर्षा करने के हेतु चल पड़े। रास्ते में मारवाड, गौड़ देश आदि के सब मत के गरीबों अमीरों और भेषों को चेताते हुए अवडा में पहुँचे और नामदेव भक्त के साथ ज्ञान गोष्टी की। वहाँ से चल कर मार्ग के नगरों में सत मत का बीजा डालते हुए हैदराबाद, अमराबाद होते हुए बिदर शहर में आन पधारे जहाँ उनके ठहरने का स्थान "नानक किहरा साहेब" के नाम से प्रस्तुत है। सैयद याकूबुद्दीन और जलालुद्दीन से इसी जगह गोष्टी हुई। यहाँ से गिनपुर पांगल प्रांत में एक पहाड की चोटी पर आन विराजे जहाँ बहुत कनफटे नाथ रहते थे जिन्होंने गुरु नानकदेव जी की परीक्षा के लिये एक तिल का दाना आन भेंट रक्खा। गुरू साहेब ने उसे जल में पिसवा कर अपने नियम अनुसार सब को बँटवा कर उनको परचा दिया इसी कारण यहाँ का गुरुस्थान "तिल गज" के नाम से विख्यात है॥

वहाँ से चल कर रास्ते के नगरों और पहाडों को पवित्र करते मदरास प्रांत होते हुए तजोर आये और फिर पालमकोट शहर में पधारे जहाँ एक प्रसिद्ध गुरुस्थान अब तक है। आगे चल कर सेतबध रामेश्वर में पहुँचे जहाँ सिद्धों के साथ चार पाँच बार गोष्टी हुई जो इस प्राण-सगली में मौजूद है॥

सेतबंध रामेश्वर से समुद्र पार कर गुरू साहेब सिगलादीप में आन विराजे जहाँ का विरहातुर राजा शिवनाभ उनके दर्शन के लिये पपीहा की नाईं रटन लगाये तड़प रहा था। इस जगह संक्षेप में हाल राजा के ऐसी दशा को प्राप्त होने का लिखा जाता है:—

भाई मनसुख भक्त, जिसके शिष्य होने का हाल पृष्ठ १६ जीवन-चरित्र में छपा है, कुछ काल पहिले सिंगलादीप में बनिज के निमित्त आया था जहाँ का राजा शिवनाभ उस समय तक बडा पक्का वैष्णव था और उसकी सारी प्रजा भी उसी मत में दृढ थी। भाई मनसुख की रहनी अर्थात सवा पहर रात रहे ही स्नान करके गुरू साहेब के शब्दों के पाठ और उनके ध्यान सुमिरन में बिना दिखावे के लग जाना व और किसी प्रकार के लौकिक कर्म धर्म की पर्वाह नहीं करना वहाँ के लोगों को खटकी और राजा तक शिकायत पहुँची कि यह आदमी धर्म के बिरुद्ध चाल चलता है। राजा ने बुला-कर भाई मनसुख से कारन पूछा और बहुत से प्रश्न किये जिनके मनसुख ने जो उत्तर दिये वह थोडे से लिखे जाते हैं-

"हे राजन जगत एक तरवर समान है जिसके शिपर पर मुक्ति का फल लगा हुआ है। सर्व सतों तथा शास्त्रों ने उस की प्राप्ति के दो मार्ग कहे हैं-एक विहगम मार्ग और दूसरा कीटि चाल। जिन को सतगुर दयाल मिल जाते हैं वह तो पक्षी के समान बिना परियास उस फल को पा लेता है परन्तु जिन जीवों की सतगुर से भेट नहीं हुई उनको इस फल की प्राप्ति अति कठिन है। तुम एकादशी व्रत का सजम पंद्रह दिन पीछे एक दिन करते हो और काम क्रोध आदि विकारों के त्याग तथा अल्प अहार और जागरन के लिये तुम लोगों ने केवल एक दिन नियत किया है पर सतजनों का तो यह प्रति दिन का सजम है-अल्प अहार स्वल्प निद्रा उन का सहज ही धर्म है और काम क्रोध आदि का बल उन पर चलही नहीं सक्ता। यह तो सतमत के धर्म तथा सजम की बात हुई अब स्नान की सुनो। रात्रि के स्नान का फल अधिक होता है। पहर रात रहे स्नान का फल स्वर्ण तुला दान के समान होता है, चार घड़ी रात रहे नहाने का फल चाँदी के तुला दान के

तुल्य है, एक घडी रात रहे नहानेवाला सवा मन दूध के दान का और प्रातःकाल नहाने वाला मन भर जल दान का पुण्य पाता है, परन्तु जो दिन चढे नहाता है वह देही का मल धो डालने के सिवाय किसी फल का भागी नहीं होता—ऐसा निगमागम का वचन है। अब पाषान पूजा के विषय में सुनो—हे राजन पाषान मूर्त्ति न तो कुछ खाती पीती और न कुछ उपदेश ही करती है उस की पूजा से मुझे किंचित फल प्राप्त होने की आशा नहीं, मैं तो केवल अपने परम दयालु पूरे सतगुरों की ही आराधना करता हूं जिन के वचन सूर्य समान अज्ञान अंधकार की निवृत्ति करते हैं, जिन्होंने कि बिहंगम समान उडने की युक्ति का मुझे दान देकर मुक्ति फल का रस चखाया है उसे त्याग कर मैं कर्म धर्म व्रत पूजा आदि कीटि मार्ग रूप तुच्छ आचार को कैसे ग्रहण करूँ, इन के प्रभाव से तो केवल अंतःकरण की किंचित शुद्धि होती है किन्तु मुक्ति तो सतगुरों की दया दृष्टि और उपदेश से ही हाथ लगेगी। तिलक लगाने के विषय में भी सुन, जिसे राज दिया जाता है उसके माथे पर तिलक चढ़ाया जाता है, हमको सिक्खी के राज का ताज गुरु शब्द का तिलक सतगुरों ने हमारे सिर पर हाथ धर कर एक वार बख्श दिया है सो हमें वार २ अब तिलक की आवश्यक्ता नहीं रही, हम केवल गुरू साहेब का हाथ ही सदैव अपने मस्तक पर चाहते है॥"

ऐसी २ बहुत सी उपदेश तथा प्रेम की चरचा से राजा शिवनाभ के सम्पूर्ण मर्म भेद होगये और श्रद्धा और प्रीत हृदय में उमँगने से राजा चक्रित सा रह गया। फिर बिरहातुर राजा ने मनसुख से प्रश्न किया कि आप के सतगुर कौन हैं, उनके कुछ बचन भी सुनाओ। उत्तर--

"श्री नानक सब पातक हारी। अस कहि प्रेम बढ्यो वर भारी॥
गद्गद वाणी पुलकित अंगा। लोचन छावा नीर उमगा॥"

फिर मनसुख ने राजा को धीरज देकर गुरु बाणी पढ़ कर सुनाई जिसके सुनते ही वह प्रेम बान से घायल हो गया और विरह से बेकल हो कर दर्शन की लालसा में बोला—

"मुझ को दर्शन देहु कराई। कर उपकार दीन की न्याई॥
जिस प्रकार श्री नानक पूरण। मिलहिँ, उपाय करहु सो तूरण॥
गवनौं मैं अब तुमरे संगा। तज करि देश राज सबैंगा॥
करिकै दर्शन भर्म मिटावौं। ले उपदेश परम पद पावौं॥
जिन के बचन चुभे मन मेरे। शांति न आवत बिन अब हेरे॥"

यह प्रेमातुर दशा राजा की देख कर और राज पाट त्याग कर अपने साथ ले चलने का उसका हठ जानकर मनसुख बोला कि हे राजन यदि तुम मेरे साथ चलोगे तो एक मुहूत में दर्शन होंगे इस लिये अपने देश और राज को मत त्यागो बरन यहीं रह कर सतगुर का स्मरन करते रहो वह अंतरजामी और भक्त-वत्सल हैं थोड़े ही दिनों में दर्शन देकर आशा पूरन करेंगे। राजा ने मनसुख के इन आज्ञामई वचनों को स्वीकार किया और घर ही रह कर दिन रात "गुरू नानक" "गुरू नानक" का रटन करने लगा, नींद भूख घटने लगी, संसारी काज की ओर से मन उपराम हो गया और केवल गुरु नाम और गुरु दर्शन की आशा उस के जीवन के आधार हो गये।

ऐसी दशा राजा की थी जब कि गुरू साहेब सिंगलदीप में आन पधारे। यद्यपि राजा के विरह और प्रेम का हाल सुन कर कई एक साधू फकीर गुरू नानक साहेब का भेप धर कर राजा को ठगने आचुके थे परन्तु जब सच्चे सूर्य्य का उदय हुआ तो उसने क्षण मात्र में घट घट को प्रकाशित कर दिया। यद्यपि राजा परिचित होकर गद्गद तो होगया फिर भी इस कहन के अनुसार कि दूध का जला छाछ फूक फूक कर पीता है, गुरु साहेब की कुशलता के साथ मनसुख की बताई हुई बातों से पूरे तौर पर परीक्षा कर ली। तब हाथ जोड कर बडी दीनता से

उनके सन्मुख खड़ा हो कर पूरे प्रेम से उन के रूप को निहारने लगा, परन्तु गुरू जी उस की ओर पीठ कर के मौनी स्वरूप हो बैठे और राजा उसी प्रकार ढाई पहर तक हाथ बाँधे खड़ा रहा। जब गुरू जी ने उस की प्रीत और प्रतीत को अडिग देखा तो बोले "राजन कुशल आनन्द तो है कहो तुम्हारे मन की क्या अभिलाषा है"।

राजा—"प्रेम विषै भी गद्गद बानी। भनत विनै उस्तति[1] पद सानी॥
जन्म धन्य बड़ भाग हमारा। जाँ ते दर्शन भयो तुमारा॥
मन मेरे की जानहु स्वामी। बनै न कहियो अंतर्यामी॥
अस न मनीषा तुमहिँ पछानौं। रसना शक्ति न तुतहि' बखानौं॥"

ऐसी प्रार्थना के पीछे राजा तीन प्रदक्षिणा देकर चरणों पर गिर पड़ा और बोला कि मुझे तन मन धन से अपना दास जानिये और मेरे घर पधारिये। गुरू साहेब ने आज्ञा की कि धर्मशाला बनवाओ तो वहाँ हम चलैं। राजा ने हज़ारों कारीगरों से रात दिन काम करा कर धर्मशाला जल्द तैयार करादी और चदन गुलाब आदि से सुगंधित करके गुरू साहेब के लाने को गया तो महाराज उसके देखते २ योग बल से अंतर्ध्यान हो गये और—

"विना बिलोके बिहबल राऊ। धरनि गिस्यो तन सुधि नहिँ काऊ॥
लगी चित्तिका अगन माहीं। लीन उचाय सेवकन ताहीं॥
पोंछ अग कर पौन झुलाई। चेतनता भूपति तन आई॥
बोल्यो बानी होय सशोका। कित गे श्री नानक सुख ओका॥
जिन के दर्शन तीनहु तापा। तनक बिलोकत होवत खापा॥
कितक दिवस की लगी उडीका। अब प्रापत भा सुख मम जी का॥
मद भाग भा मोर महाना। भये शपद ही अतर्ध्याना॥
अस कहि कानन[2] की दिश दौरा। प्रेम प्रबल ने कीनो बौरा॥
आरत होय पुकारत भारी। प्राननाथ मिलिये इक बारी॥
दौर दौर सुध हेतु मुकदा। ढूंढत बिटप[3] बिहगन वृंदा[4]॥

(१) स्तुति। (२) बन। (३) पेड़। (४) झुंड।

गिरिवर सरवर हूँ कर तीरा। तुम देख्यो कत गुनी गहीरा॥
बिकल बचन बोलत बन माहीं। किंह अस्थान बिलोके नाहीं॥
स्वेद[1] अंग पुन लोचन नीरा। सर्व भींग गे चीर[2] शरीरा॥
गिरयो धरनि पर ह्वै मुरछाई। तब प्रगटे श्री गुरु जग साँई॥"

इस तरह गुरू साहेब ने स्वयं प्रगट होकर अपने हाथ से विरह बान से घायल राजा का मुख पोंछा और मंद २ पवन डोला कर मुख में जल चुवाया। जब राजा को शरीर की सुधि आई तो अपने निकट प्रीतम को खड़ा देखकर निढाल हो चरणों पर गिरा और प्रेम रस में सनी गद्गद बानी से बोला—

"धर्मशाल[3] मैं त्रिगी[4] स्वामी। तुम कित गमने अंतर्यामी॥
अब चल करिये नगर पवित्रा। बैस राजिये भवन बचित्रा॥"

गुरूजी महाराज राजा की प्रेमभरी और दीनतामय विनय से प्रसन्न होकर धर्मशाला में जा पधारे जहाँ राजा ने बड़े उत्साह के साथ रानी सहित उनकी षोड़श प्रकार की पूजा करके स्वर्ण थाल में विधिवत आरती की और सच्चा शिष्य बन कर गुरू साहेब से अष्ट योग तथा भक्तियोग (सुरत शब्द) का सांगोपांग उपदेश पाकर मुक्ति का परवाना हासिल किया। गुरू साहेब ने राजा के प्रेम के वश कुछ काल वहाँ रह कर और ११३ अध्याय रूप "प्राण संगली" की रचना द्वारा सब प्रकार के योग में उसे दृढ़ करके उस योग कलानिधि रूप अनमोल ग्रंथ को इस आज्ञा के साथ राजा के अर्पण कर दिया कि उसे अपने पास सँभाल कर रक्खे और जब कोई शिष्य गुरू साहेब के देश का लेने को आवे तो उसे दे देवे।

इस प्रकार सगलादीप के राजा और रानी और मन्त्रियों सहित सब प्रजा को सत्य नाम दृढ़ाने के पीछे गुरू साहेब मालाबार को आये और वहाँ के गद्दीनशीन को अपना

(१) पसीना। (२) कपड़ा। (३) धर्मशाला। (४) बनाई।

शिष्य बनाया और शंकराचार्य्य जी के श्रिंगेरी मठ के महंत से गोष्टी की। फिर वहाँ से रास्ते के शहरों को चेताते हुए नीलगिरी रत्नागिरी आदि स्थानों में पहुँचे और फिर सुतलानपुर को लौट कर अपनी परम प्रेमिन बहिन नानकीजी को दर्शन दिया और सम्वत १५६९ में करतारपुर के नाम से एक नगर बसाया और उसमें धर्मशाला आदि बनवा कर अपने परिवार के लोगों को भी वहाँ ही बुला लिया।

॥ इति द्वितिय यात्रा ॥

सम्बत १५७० में करतारपुर से चलकर नूरपुर सुजानपुर कोट-काँगडा के लोगों को उपदेश देते हुए ज्वालामुखी देवी के पडों तथा जात्रियों को जा चेताया और वहाँ से डलहौजी, धर्मशाला, मनीकरन होते हुए रावलसर, नादौन, बिलासपुर, कहलूर इत्यादि शहरों में विचरते हुए कीर्तिपुर आये और वहाँ पर बुढनशाह फकीर से ज्ञान गोष्टी की। उसने दूध की मटकी गुरू साहेब के भैंट की परन्तु उनकी इस आज्ञा पर कि इसे हमारी अमानत की तरह रख छोड़ो हम किसी और काल में ले लेंगे, उस फकीर ने उसे एक जगह उत्तम भूमि में गाड दिया (जिसे छठवीं गद्दी पर के गुरु हरगोबिन्द साहेब ने अपने साहेब-ज़ादे बाबा बूढा साहेब को जो वृद्ध सरूप ही प्रगट हुए थे गुरु नानक साहेब के रूप में भेजकर वापस लिया)। कीर्ति-पुर से चल कर महाशिवशील आदि पहाडी जगहों में घूमते हुए महाराज देहरादून पहुँचे और मसूरी, चकोतरा आदि में सत्यनाम की वर्षा करते हुए उत्तरकाशी को आये और वहाँ साधुओं, महात्माओं आदि से गोष्टी करके वहाँ के अग्नि जल आदि के उपासक जीवों को सच्चा नाम दृढाया। तदनतर यमुनोत्तरी, गगोत्तरी, श्रीनगर आदि होते हुए बदरी नारायण में पहुँचे और उस तीर्थ के ब्राह्मणों तथा भेषों

को सत्मार्ग का उपदेश देते हुए भीमकोट पहाड पर जा विराजे और उसके समस्त शिषरों की सैर करके रानीखेत, अलमोड़ा, नैनीताल पहुँचे और वहाँ के एक घने जंगल में जो गोरखमता के नाम से प्रसिद्ध था जा विराजे जहाँ पर कि कनफटे जोगी रहा करते थे जिन्हें अपनी सिद्धताई का वडा घमड था। उनसे गुरूजी का गहिरा वाद विवाद हुआ। उन्होंने अपनी शक्तियाँ भी वहुत चलाई पर अत को यह लोग हर तरह परास्त हुए जिससे वह गोरखमता स्थान नानकमता स्थान के नाम से आज तक वोला जाता है। सिद्धों की याचना अनुसार मधुर किया हुआ एक रीठा का पेड वहाँ अव तक मौजूद है जिसका अपनी ओर का आधा हिस्सा तो गुरू साहेब ने मीठा कर दिया था परंतु सिद्ध मंडली अपनी ओर का दूसरा हिस्सा मीठा न कर सकी। प्रतिवर्ष वहाँ मेला लगता है, जो जात्री लोग वहाँ जाते हैं उनको मीठे रीठे प्रसाद में अव तक दिये जाते हैं॥

वहाँ से चल कर गुरूजी गोरखपुर आये और उस नगर के भूत प्रेत पूजने वालों को सदुपदेश दिया फिर खाँची झील, मानसरोवर आदि स्थानों में विचरते हुए सम्वत १५७१ के फाल्गुन को धवलागिर पहाड के रास्ते से नैपाल की राजधानी में पशुपति नाथ महादेव के स्थान पर डेरा किया जहाँ पर कि अव तक गुरु स्थान विद्यमान है। वहाँ से रवाने होकर ललतापाटी होते हुए सिकम देश, कचनचंगा, डारजिलग आदि पहाड़ी स्थानों में होते हुए भूटान में आन पधारे॥

गुरू साहिब के तेज प्रताप तथा मानसिक वल को देख कर वहुत से लोग इन के शिष्य वन गये यहाँ तक कि लामा गुरू जो सदैव से वहाँ का पीर माना जाता था उस को भी गुरू नानक साहेब का सनमान और प्रतिष्ठा करनी पड़ी और उसने उनके वहुत से शब्दों को भूटानी भाषा में तरजमा करके बड़े आदर से अपने पास रख लिया। उस देश में कितने गुरु-

स्थान नानक पीर के मकान के नाम से अब तक बोले जाते हैँ। इस प्रकार उत्तराखंड मैँ जगह जगह विचरते हुए सम्वत १५७३ मैँ गुरू जी फिर करतारपुर लौट आये। उन के करतारपुर पहुँचते ही पंजाब प्रांत के जिज्ञासू जन चारोँ ओर से घिर आये और हजारोँ हिन्दू मुसलमान मर्द और औरत कृत्रिम धर्मोँ को छोड़ कर गुरू जी की शरण मैँ आये और सत्य नाम के उपासक बन गये॥

इति त्रितीय यात्रा॥

कुछ काल करतारपुर निवास कर के गुरू साहेब भाई बाला तथा मरदाना को साथ लेकर पच्छिम दिशा की यात्रा को सिधारे। पहिले ऐमनाबाद और वजीराबाद होते गुजरात मैँ पहुँचे और जाहाँगीर शाह फकीर से मिलकर रुहितास पहाड पर आन पधारे। वहाँ पर पानी नहीँ था इस लिये प्यास से व्याकुल मरदाना की प्रार्थना पर भक्त वत्सल गुरू जी ने एक चश्मा मीठे पानी का प्रगट कर दिया जिस को शेरशाह बादशाह ने सम्वत १५९९ मैँ किले के भीतर ले लेने का बहुत जतन किया परन्तु उसका सबही परिश्रम व्यर्थ हुआ और वह चश्मा क़िले के बाहर आज तक मौजूद है। वहाँ से चल कर एक पहाडी टीले पर पहुँचे, यहाँ भी सिद्ध लोग रहते थे सो उनका भी मान मरदन करके पिंडदादनखाँ, डेरा इसमाईलखाँ, डेरा ग़ाजीखाँ, जामपुर, शिकारपुर, हैदराबाद आदि के गृहस्तोँ और साधुओँ को कृतार्थ करते कराची बंदर मैँ आन बिराजे। उस काल मैँ सिंध देश के लोग जड पदार्थोँ की पूजा करते थे परतु गुरू जी के सदुपदेश से अनेक सिंधियोँ ने सत मार्ग अगीकार किया और जगह जगह गुरुस्थान और धर्मशाला बनवाईँ॥

कराची से चल कर बलोचिस्तान आदि होते हुए सम्वत १५७५ मैँ मक्का पहुँचे और मक्के की ओर पाँव करके रात को सो रहे। प्रातःकाल जब जीवन नामी मुजाविर आया

तो उसने क्रोध में भर कर गुरू जी की टाँग पकड़ कर उन्हें चारो ओर घसीटा परन्तु जिधर को उनके चरन फिरे उधर को ही मक्का फिरता हुआ नज़र आया। यह कौतुक देख कर सब ने गुरू जी को वली माना। इस जगह काज़ी रुकनुद्दीन, कुतुबुद्दीन आदि के साथ बडी लम्बी गोष्ठी हुई जो मक्का मदीना की साखी के नाम से प्रसिद्ध है।

वहाँ से मदीना को गये और यहाँ के इमाम वगैरह के साथ गोष्ठी की और फिर रूम को आये जहाँ के ख़लीफ़ा को जो अति निर्दई था "नसीहतनामा" उपदेश किया। रूम से गुरू साहेब बगदाद आये जहाँ कई मुसलमान फ़क़ीरों से ज्ञान चर्चा हुई। फिर जलब, दयार-बकर होते हुए दरियाए फ़रात से पार होकर शहर स्वास में पहुँचे और वहाँ से ईरान के शहर तूरान में आये जहाँ के हाकिम को भलाई के रास्ते पर लाकर एक पानी का चश्मा निकाला जो कि "चरण गंगा" के नाम से अब तक विद्यमान है। यहाँ के बहुत से हिन्दू मुसलमान गुरू जी के शिष्य हुए जिनके वंश परम्परा के लोग गुरू साहब के उपदेश पर ऐसे पक्के हैं कि पंजाब वालों की भी हँसी उड़ाते हैं। उन के निश्चय की पकाई में यहाँ तक कहा जाता है कि जब कडाह प्रसाद को तैयार करके गुरू साहेब का भोग प्रसाद होने को रखते हैं तो यदि गुरू जी के पंजे का साक्षात आकार प्रसाद पर न खिंच जाय तो उसे भोग लगा नहीं मानते।

इस देश से लौट कर जलालाबाद पेशावर होते हुए गुरू जी हसन-अबदाल की पहाडी पर पहुँचे जहाँ एक कंधारी फ़क़ीर जिसे वली-क़ंधारी कहते थे रहता था उसने बहुत सी याचना पर भी मरदाना को जल न दिया तो गुरु जी ने उसके जल कुंड को स्वतन्त्र अपने आसन के समीप खैंच लिया। वली ने क्रुद्ध होकर एक शिला गुरूजी पर चलाई जिसे इन्होंने

हाथ से रोक दिया और उस शिला पर गुरू जी के पंजे का निशान बन गया जो अब तक मौजूद है। कितने विपक्षी लोग उस निशान को मिटाते २ हार गये पर वह चिन्ह भीतर से भीतर ही धसा हुआ प्रगट रहा। इस स्थान का नाम "पंजा साहेब" मशहूर है।

वहाँ से चल कर कशमीर, पुणच्छ होते हुए स्यालकोट को लौटे जहाँ बावली साहेब के नाम से गुरु स्थान प्रसिद्ध है। फिर ऐमनाबाद को आये। सम्बत १५७८ में गुरू साहेब के भविष्यत सूचक वचन[1] अनुसार बाबर बादशाह ने सेना समेत आकर ऐमनाबाद को मटियामेल कर दिया और गुरू जी का दर्शन करके उनसे हिन्दुस्तान की बादशाहत पाने का वर लिया। वहाँ से रवाने होकर शेख़ सरवर को अपना कृपापात्र शिष्य बनाया और साहोवालादि गाँवों में उपदेश करते हुए सम्बत १५७९ में फिर अपने करतारपुर स्थान को लौट आये।

कार्तिक १३ सम्बत १५९० को गुरू जी की माता तथा २० दिन पीछे पिता का देहान्त हुआ। इस के पीछे वह शिवरात्रि के मेला पर अचलवटाले पहुँचे। यहाँ भी सिद्धों से

॥ तिलग महला १ ॥

(१) "जैसी मे आवै पसम की बाणी तैसडा करी ज्ञान वे लालो।
पाप की जञ लै काबलहु धाया जोरी मगै दान वे लालो॥
शर्म धर्म दुइ छप खलोए कूड फिरै परधान वे लालो।
काजीआ बामणा की गल्ल थकी अगद पढ़ै शैतान वे लालो॥
मुसलमानिया पढ़हि कतेना कष्ट महि करें खुदाय वे लालो।
जात सनाती होर हिंदवानीआ एह भी लेखै लाय वे लालो।
खून के सोहले गावीअहि नानक रत्त का कुगू पाय वे लालो॥१॥
साहब के गुण नानक आखै मास पुरी विच आख मसोला।
जिन उपाई रग रवाई बैठा वेखै वख इकेला॥
सचा साहिब सच तपावस सचड़ा निआऊ करे गुम सोला।
काया कपड़ टुक टुक होसी हिन्दुस्तान सम्हालसी बोला॥
आवन अठत्तरे जान सतानवे होर भी उठसी मर्द का चेला।
सचु की बाणी नानक आखै सचु सुणायसी सचु की बेला" ॥२॥

चर्चा हुई । यह अंतिम गोष्टी जिस में भली प्रकार सिद्धों का सुधार हुआ श्री गुरू ग्रंथ साहेब में मौजूद है । फिर करतारपुर लौट आये और कुछ दिन पीछे मालवा देश की यात्रा करके बहुत से जीवों को चेताया। इस के उपरांत गुरू साहेब ने करतारपुर ही में ठहर कर कालक्षेप किया।

॥ इति चतुर्थ यात्रा ॥

गुरू नानक साहेब अपने वक्त के ऐसे पावद और स्वतंत्र विशेष प्रकृति के पूर्ण पुरुष थे कि बड़ी बडी यात्राओं में भी इन की नित्य क्रिया का समय कभी नहीं टलने पाया। पहर रात रहे सदैव उठ बैठते और शौच स्नान आदि कर के एकांत में ध्यान में बैठ जाते, और पहर दिन चढ़े ध्यान से उठ कर सदुपदेश करते, और फिर दर्शना-भिलापियों का यथा योग्य सतकार कर के आप भंडार घर में जाकर देखते कि कहीं कोई भूखा तो नहीं रह गया, सब को समान भोजन कराते। फिर एकांत में मालिक का गुणानुवाद करके सतसंग में जा बिराजते और करतार महिमा के मिश्रित उपदेश करते, और भजन कीर्तन के उपरांत सभा बिसर्जन हुआ करती और रात्रि काल को भी ऐसी ही रीति से बिताया जाता था। अब तक यही प्रवाह गुरस्थानों तथा गुर घर के महा-पुरुषों में चला आता है। उस समय के शिष्यों में बावा बूढा जी तथा लहना जी मुख्य गुरुमुख थे जिन में से लहना जी का दरजा बढा चढा था क्योंकि अनन्त शिष्यों तथा पुत्रों में से अंग देने वाली कई भाँति की परीक्षाओं में यही पूरे उतरे जिसके कारण यह अपना लहना अर्थात् लेना लेकर स्वयं गुरु साहेब की रसना द्वारा अगद नाम से विख्यात हुए।

गुरू नानक साहेब ६९ वर्ष १० मास और १० दिन की आयु भोग कर आश्विन बदी १० सम्वत १५९५ को सदेह परम धाम को सिधारे और उनकी गद्दी पर गुरु अंगद बैठे। गुरु

नानक साहेब तथा कबीर साहेब के परम धाम सिधारने की लीला एक समान मिलती है--दो पाट की चादर मात्र ही हिन्दू मुसलमान शिष्यों के हाथ लगी जिसे दोनों ने आपस में बाँट कर अपने अपने धर्म के अनुसार मक़बरा तथा देहरा बनाया जो देहरा बाबा नानक के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरु नानक साहेब का जीवन चरित्र अपरम्पार और गंभीर उपदेशों से परिपूर्ण है जो बहुत संक्षेप में (सूची मात्र ही) प्रेमियों की भेंट किया जाता है। विशेष जानने के अभिलाषी श्री नानक प्रकाश, नानक हुलास और इतिहास गुरु खालसा आदि ग्रंथों को देख सकते हैं। भूल चूक क्षमा करनी॥

॥ वाहगुरू सहाय ॥

॥ जीवन चरित्र समाप्त ॥

॥ इति ॥

॥ १ॐ सतगुरु प्रसादि ॥

उत्थानका श्री प्राण-संगली की

॥ श्री गुर परमात्माय नम ॥

प्रिथमे श्री गुरू नानक जी कछुक काल करतारपुर रहे। सर्व लोक शिष्य होय लगे गुरू गुरू जपन। जगत तारन मंत्र उपदेश करते भये। वणत्रिण वाहगुरू वाहगुरू होय रहिआ। तां करतारपुर[1] इक क्षत्री था। इक दिन (उसने) श्री गुरू जी से बेनती करी। कि हे प्रभो! मेरे घरि कन्या है वर के योग्य, अरु मुझ में संम्रथता[2] नाहीं तांते तुम सम्रथ गुर परमेश्वर हो। तब श्री गुरु कहिआ जो कछु सरंजाम[3] है सो लिखि ले आओ। तां ओह[4] लिख लै आया। ते इकु भगीरथ सिक्ख सी उसनो[5] हुकम होया, जो तूं लहौर जाय करि व्याह का सरंजाम लै आउ। पर जे कल्ल रहेगा तां तेरा जन्म बिगड़ैगा तां भगीरथ चक्रत होय लहौर भाग गया। ते इक वणीए शाह नू जा कहिआ। जो इतनी बस्तु सानू लोड़[6] है। सो मंगाय दे। शाह कहा। अज तूं रहो। भगीरथ कहा, मेरे गुराँ का हुकम है; मैं कल्ल नहीं रहिणा। जे रहांगा तां मेरा जन्म बिगड़ेगा, ताँते मै जरूर जाणा है। ताँ शाह कहिआ, होर[7] तां सभ कुछ हाजर है, पर चूड़े दे रंगदे[8] (होयां) रात पवैगी। ता भगीरथ कहा, जी मैं तां त्रैकाल नहीं रहिणा, 'गुरू थो[9] बेमुख नहीं होना। तां शाह कहा कलिजुग विच ऐसा कोई नहीं, जु जिस दे वचन ते जन्म बिगड़ैगा। तां भगीरथ कहा मेरा गुरू निरंजन पुरुष है। तां शाह कहा मेरे घर इक चूड़ा है मै तेरे नाल[10] चलता हौं। जे[11] मै डिठा[12] शक्तिवान—तां तेरा भी, मेरा भी, गुरू होया

(१) प्रथम उदासी की यात्रा के पश्चात इस नगर को रावी नदी के किनारे पर गुरु साहब ने आपही बसाया था। (२) हिम्मत, शक्ति। (३) सामग्री। (४) वह। (५) उस के तईं। (६) जरूरत, आवश्यक्ता। (७) और तो। (८) रागने हुए। (९) गुरुओं से, गुरुओं के आगे। (१०) साथ। (११) यदि। (१२) देखा।

नहीं तां मुल्ल[1] लै आवांगा। तां दोवैं सरंजाम लै करि गुरू पास आए। तां अंतरजामी समर्थ गुरू आगे ही आखिआ[2], जो भगीरथ आंवदा है पर वड़ी देर लाय करि आंवदा है; तॉं दोवै आय पहुते[3]। ते इह अवाज सुण लई। शाह कहणे लगा जो इह परमेशर है, सच्च है। तां दोवै चरनी पए। दर्शन देखते ही शाह दी निशा[4] होई। ते उह होया—जि तिन्न वर्ष उत्थेही[5] रहिआ। गुरू की बाणी बहुत कंठ कीती भी, ते लिखी भी बहुत; श्री गुरू जी की पुशी होई। मत्था टेक के शाह विदा[6] होया। घर आया, सौदा परीद कै जहाज समुद्र विच भर चलाये। जांदा जांदा सगलादीप राजे शिव नाभ दे शहर जाय उतरिआ। वपार करने लगा। निता प्रति पहर राति तोड़ी[7] कीरतन करै। स्वा पहर रात नाल उठ करि स्नान करि बाणी प्रेम नाल पढ़ै। जपजी[8] सिमरै। कयोंजु गुरू का वचन है:—जो अंम्रित वेले जपजी जपै तां सतिगुर दे अंकि[9] समावै। ते शास्त्र भी कहा है जो प्रातः काल का वड़ा पुन्न है तैसेही उह शाह निता प्रति जपु पढ़ै; ते लोक शहर के दिन चढ़े स्नान करि वरत पूजा तिलक करैं। तां लोकां कहिआ हे वणीए! तू किस देश का है? जो वरत न नेम, न इकादशी न थ्रैत[10], न अमावस—कोई नहीं मंनदा[11]। ते इक बाणी ही पढ़दा है। तां उस शाह ने उनांदा आखिआ ना[12] मंनिआ। तां लोक शाह की निंदा करनें लगे। ते राजे नूं पवर कीती। सो राजे ने बुलाया ते पूछिया। जो भगत! तूं भगत होय कै इह कीह[13] रीति करता हैं। जो वरत, नेम, इस्नान, टिक्का[14] नहीं करदा। तां शाह कहिआ राजा जी! मैनू महॉं पुरुप दा दर्श होया है। मै मुक्त रूप होया हॉं। राजे कहा दर्शन ते तेरी निशा होई है? तां शाह कहा—जी! जॉं परमेशर मिलिआ

(१) मोल, क़ीमत। (२) कहा। (३) पहुचे। (४) समोध, तसल्ली। (५) उसी जगह। (६) रवाना। (७) प्रयंत, तक। (८) गुरू साहव की समग्र वचन रचना का मूलभूत पाठ। (६) गोदी। (१०) सूर्यवार (११) मानता, पूजता। (१२) उनका कहा या वचन। (१३) क्या। (१४) तिलक।

तां भरम केहा[1] रहे तां राजे कहा ; शाह! कली काल मै महां पुरुप किथे[2] है जिसदे मिले मुक्ति होवे । तां शाह कहा राजा जी! मेरा गुरू प्रत्तक्ष निरंकार है, निरजन पुरुप है। उस के तां नाम लीए मुक्ति होंदी है । तां राजे दे समझ विच कुछ न आवै ते गुस्सै हो करि बाणीए नू बंद[3] चा कीता ।

तां इक दिन एक ब्राह्मण दी गऊ समुद्र दी चिकड़ बिच फस गई। ब्राह्मण बहु जत्न करह । पर नॉ निकली, तां जाय राजे को कहा । तद राजे कहा; जद गऊ निकलेगी ताहीं[4] मै अन्न जल लेवांगा । ते पंजदिन बीते[5] तद भी नां निकली । तां जोतकीओं[6] कहा, हे राजा अश्मेध जग्ग[7] का फल तू देवहिं तां निकलैगी । तां राजे कहा मै तां अश्मेध नहीं कीता। इक द्वापर मै पांडवा ने कीता सी, इंद्र ने काम धेन भेजी सी–जग्ग करने को । तिस बिना जग्ग नहीं होता । तां किसे आखिआ जो पंजाबी शाह कहिंदा है, जो मै अश्मेध दा फल देदा हां ; तां राजा प्रसन्न होया अरु शाह को बंदी ते बुलाया अरु कहा हे शाह ! इक अश्मेध-गऊ दे नमित्त देहि । तब शाह जप सोहिला[8] पढ़ करि सकलप गऊ हेत दित्ता । तां गऊ निकल आई । ते राजे ने बणीए दे चरनो पर नमसकार कीती। अते कहा हे शाह! तू अश्मेध रोज कैसे करता है? तां शाह कहा मै अपने गुरू का जपु पढदा हां, मैनू अश्मेध दा फल रोज़ होदा है । राजे कहा तू अपने गुरू के वचन मैंनू सुनाओ। जां शाह बाणी सुनाई, तां राजा बहुत त्रिप्त होया। रोम रोम मगन होया । तां राजे कहा जिसके इह अंमृत बचन है सो मेरा भी गुरू होया । ते राजा (इस प्रकार) मन कर सिक्ख होया । राजे कहा शाह जी! तू मैनू नाल लै चलु। तेरे पीछे मैनू भी दर्शन

(१) कैसा । (२) किस जगह । (३) कैद कर डाला । (४) तभी ही। (५) व्यतीत हुये । (६) ज्योतिशियों । (७) यज्ञ । (८) किया था । (९) मूल पाठ पूर्वक कीर्तन सोहिले का पाठ कर के (यह बाणी श्री गुरु ग्रंथ साहब में अंकित है प्राणी के अंत समय की घटना पर इस के पाठ का विधान है)।

होवै। तां शाह कहा, राजा जी ! महा पुरुषाँ दे पदनो[1] कोई पुरपार्थ नाल नाहीं पहुंचिआ, पर जद तूं अपने दिल नू इकांत[2] करि सतिगुर सेवैगा, ता सतिगुर अंत्रजामी तैनू एथे ही दर्शन देवैगा। ताॅ राजे कहा ओह कौण देश है जिथे सतिगुर निवास करते है। ताँ शाह कहिआ लहौर थेॅ वीह कोहाॅ[3] ते द्रयाउ कनारे नगर करतारपुर है। तिथै[4] गुरूजी रहिदे हन। ताँ राजे कहा, हे भगतजी हुण[5] ओथे ही चली, दर्शन करीए। शाह कहिआ, हे राजा तू मेरे वचन ते परतीत कर, चित्त विच अराधन कर। सतगुर तैनूं एथेही दर्शन देवैगे। पर तू लखेगा कैसे ? की जापै[6] कित रूप दर्शन देवै, कि जोगी, कि जंगम ! क्योंजु अविनाशी पुरुप के अनंत रूप है; पर तूं हुश्यार रह्यो। ताँ राजे पासों शाह बिदा होया। राजे शाह जोग[7] बहुत द्रव्य दित्ता ते विदा कीता। शाह अपने घर आया। ताँ राजे को गुरूजी के दर्शन की लालसा वैराग लग रहा। उठते बैठते रात दिन गुरू गुरू जपै होर[8] कुछ सूझै[9] नाहीं। ताॅ राजे गुरू के दर्शन वास्ते होर उपाउ कीता। जो सदावरत लगाउ, ते भलीआँ सुंद्र इस्त्रीआॅ नों[10] राजे हुकम कीता जो कोई सत फ़क़ीर आवै, तुम सेवा करो। भावै[11] हिन्दू होवै, भावै मुसलमान, कोई भेष होवै। सभनाॅ दी सेवा करनी। पर जो महा पुरुप होवैगा सो तुसाॅ थेॅ[12] छलिआ न जावैगा। ते होर तुसाडे[13] हाउ भाउ विचि छलिआ जावैगा। सो कली काल बिच ताँ महां पुरुष गुरू नानक ही है होर ताॅ कोई नहीं, होर सभ भूलण[14] विचि है। जाॅ[15] इह वरत[16] राजे धारिआ ताॅ अतरजामी श्री बाबाजी जानते भये, जो राजे की भगति बहुत होई है हुण उसनू

(१) पदवी कूं। (२) अनन्य भाव से। (३) कोसों के फासले पर। (४) उस जगह। (५) अब वहीं हीं। (६) क्या जानीए कि किस सरूप में उनके दर्शन हों—अथवा जोगी या कि जगम। (७) तईं। (८) और। (९) भासै। (१०) को। (११) चाहे। (१२) तुम्हारे से। (१३) तुम्हारे। (१४) अविद्या, भूल में। (१५) यौंही, जरही। (१६) प्रथा, नियम।

दान देना योग है। सो बाबा राजा शिवनाभ को पवित्र करने की इच्छा कौ धार उदास होये, ते गुरू अंगद ते भाई बाला ते मरदाने नूं नाल लैके चले। (मार्ग विषे संतॉ साधूआँ फकीरां ते सिद्धाँ आदि नाल गोष्ट ज्ञान चरचा आदि करदिआँ)[1][2] तब संगलादीप की सुरत[3] होई। ते जाय समुंद्र अगाहि बिच खडे होए। तब बावे आखिआ एहा[4] असगाहि समुंद्र क्योंकरि तरीअै अतै लंघीअै[5]। तदहुं[6] सिक्खॉ-बेनती कीती सैदो अतैं[7] घेहो आखिआ जी! तेरे हुकम नाल पहाड़ तरनि। तब गुरू बोलिआ, आखिओसु,[8] एहु श्लोक पढ़दे आवहु।

॥ श्लोक ॥

१ ॐ सत्तिनाम करता पुरुष निर्भउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥[9]

तब बाबा बोलिआ, आखिओसु जिस सिक्ख के मुह एहु श्लोक होवैगा अते उह पढदा जावै, अते ओस[10] दे पिछै जितनी सुनैगी। तितनी भउजल पार लघैगी। तब सिक्ख पैरीं पए। आखिओ ने जिसनू तुध भावै तिसनूं पार उतारै। तदहुं पार गए–सगलादीप। शिवनाभ राजे कै बाहर बसेरा[11] कीआ। राजे शिवनाभ का बाग़ नौलखा सूका[12] पया था सो हरिआ होया। फूल वाले फूल पड़िआ, पत्ति वाले पात पड़िआ, फलवाले फल पड़िआ। तब सॅघरि बागवान देखै ताँ बाग बारॉ वर्षाँ का सूका पड़िआ था सो हरिआ होया।

(१) राजा शिवनाभ को प्राण संगली रूप उपदेश में प्रवृत्त होने के अवसर में जो २ उपदेश तथा ज्ञान चरचा आदि गोष्टियां हुई हैं वह सब प्राण संगली के पूर्व भाग में अंकित हैं—यदि पाठकों की रुचि तथा अंतर्यामी की प्रेरणा हुई तो दूसरे इडिशन में दी जावेंगी। (२) करते हुए। (३) स्फुर्ती, फुरणा। (४) यह। (५) उलंघन करिये। (६) तब। सैदो घेहो सेहो (इन्हीं तीनों ने प्राण संगली साथ २ लिखी है)। (७) और। (८) कहने लगे। (९) श्रीगुरू ग्रंथ साहब का मूल मन्त्र। (१०) उसके तुफैल से। (११) निवास। (१२) आज कल के नवीन रोशनी के लोग इस बात को असंभव समझेंगे परन्तु यह उनकी भूल होगी "सूके हरे कीए खण माहि। अंम्रित दृष्ट संचि जीवाहि" ॥

तदहुँ[1] उस जाय पत्र[2] कीती । राजे चेरीआँ[3] भेजीआँ, पद्मनीआँ आय निरत लगीआँ करन, अनेक रंग राग कीते । ते बाबा बोलिआ नाहीं । तब पिछोँ राजा शिवनाभ आया, आय कै लागा पूछण । आखिओस गुसाँई ! तेरा नाम क्या ? कवन जाति है ? तुम जोगी हो ? कृपा करिकै भीतरि महलीं[3] चलीऐ । तब बाबा शब्द बोलिआ--राग मारू[4] विच:--

गुसाँई तेरा कहा नाम कवन कैसे जाती ।
चलतहु[5] भीतरि महलि बुलावहु पूछहु बात निराती[6] ॥१॥
॥ रहाउ ॥
जोगी जुगति नाम निर्मायल ताके मैलु न राती ।
प्रीतम नाथु[7] सदा सचु संगे जन्म मरण गति बीती ॥२॥

तब राजे पुछिआ जी तुम ब्रह्मण हो ? तब बाबा दूजी पउड़ी बोलिआ :–

ब्रह्मण ब्रह्मज्ञान इस्नानी हरिगुण पूजै पाती ।
एकोनाम एकोनारायण गुरमुखि एको जाती ॥३॥

इस गुर वचन प्रमाण से हम किसी को उपरोध नहीं करते परन्तु स्मर्ण कराते हैं कि मदारी लोग एक सूखी हुई गुठली लेकर साधारण मट्टी में उसे रखकर तत्काल उसे आम्र आदि का वृक्ष खड़ा कर दिखाते हैं । जैसा कि हमने एक काल में अपनी आखों देखा था कि एक इन्द्र-जाली ने बहुत से लोगों के देखते २ आम्र का सफल वृक्ष खड़ा कर दिखाया था और उसी प्रकार लोप भी कर दिया था ऐसी २ बातें मदारी लोगों की प्राय सभ ही देखते हैं जिन से अनुमान किया जा सकता है कि जब किंचित मात्र मायक शक्ति से मदारी लोग ऐसा २ दुर्घट कार्य दिखला सकते हैं तो उस माया पति सच्चे मालक से जिनकी सदैव काल अभेदता हो रही हो क्या उनसे दुर्घट कार्यों का सद्भाव सभव नहीं हो सकता ? लेकिन शास्त्रीय प्रमाण युक्ति को एक ओर धर कर प्रत्यक्ष प्रमाण भी आज तक गुरू साहब की ऐसी यादगार के लिये मौजूद है —कोह अलमोड़ा के एक जगल में जिसका रास्ता पीलीभीत से जाता है एक सूखा पीपल (रीठों का) केवल जल सिंचन मात्र से हरा करा हुआ मौजूद है । प्रथम उस स्थान का नाम गोरखमता था अब नानकमता नाम से प्रख्यात है प्रति वर्ष यात्रा होती है ।(१) तब । (२) ग्रह अगनाए। (३) राज मन्दिरों में । (४) यह शब्द श्रीगुरू ग्रथ साहेब में भी है परतु दोचार जगह पर किंचित भेद है । (५) बाहर जाते मन को अपने मन्दिर में बुलाता रहता हों औ निरतर बात=सहजवाणी (सत्यनाम) का वृत्तात उससे पूछता रहता हों भाव शब्द में मन को जोड़कर उसकी परख निरख सदैव करता रहता हू । (६) निरती पाठ भी है । (७) श्रीगुरू ग्रथ साहब में नाथ पाठ है परन्तु यहां नाम या इतना शब्द हमने उसके अनुसार किया है ।

तब फेर राजे पूछिआ तुम खत्री[1] हो ? तब गुरूजी अगली पउड़ी बोली :-

जिह्वा डंडी इहु घट छाबा तोलउ नामु अजाची ।
एक हाटि शाहु सभनाँ सिर बणजारे बहु भाती ॥४॥
दोवै सिरे सतगुरू निबेड़े सो बूझै जिस एक लिउलागी
जीअ रहै निभराती ।
शब्दु वसाए भरम चुकाए सदा सेवक दिन राती ॥५॥

तब राजे शिवनाभ पुछिआ, जी ! तुम गोरखनाथ हो ? तदहुं बाबा पउड़ी बोलिआ ।

ऊपरि गगनि गगनि पर गोरख ताका अगम[2] गुरू
पुनि आसी[3] ।
गुर प्रसादि बाहरि घरि एको ताँ नानक भया उदासी ॥६॥

जब गुरू पाया ताँ राजा आय पैरी पया । बेनती कीतीओसु । आखिओसु[4] जी मिहर करिकै घर चलहु । तब बाबे

---

(१) खत्री—पंजाब में प्राय. खत्री वंश के लोग ही दूकानें आदि व्यवहार करते हैं इस कारण राजा के प्रश्नानुसार वैसा ही उत्तर दिया है। (२) इस जगह तीन परधान स्थान कहे हैं, लोग महा पुरुषों को परिछिन्न सरूप में देखकरि परिछिन्न विषय में ही प्रश्न किया करते हैं परन्तु वह अपरिछिन्न वस्तु से अभेद होते हैं—इस कारण अपने यथार्थ निश्चे को प्रश्न अनुसारी व्यंग वचनों में ही वह उत्तर दिया करते हैं। संसकारी भेद पा जाता है और असंसकारी श्रद्धा पात्र को उनके वचन खोजी बनाने का काम किया करते हैं—ऐसा भाव ही गुरू साहब के वचनों का है—पूर्ण पुरुषों की व्यंगता संसारी जीवों की सी नहीं होती वह जीवों के बंधन का कारण और यह अवश्य कल्याण का हेतु। राजा ने भेष देखकर गुरूजी को गोरख होने की संभावना में पूछा है। सो प्रथम गुरूजी ने असली गोरख अंतरही सूचन कराया है इस कारण कि गोरख सिद्ध की टेक इसके भीतरि ना रहनी पावे—गगन (त्रिकुटी) मंडिल इस शरीर रूप ब्रह्मंड के ऊपर है। उसके भी ऊपर गोरख (सचे) का स्थान सचखंड रूप (गोरख टीला) है। गोरख नाम परब्रह्म परमेश्वर का है जो सचखंड का धनी है। ताका भी गुरु अगमपुर का जो धनी है, वहां पर का वासी या आसी (रहने वाला) मैं हूं, भाव यह, कि मैं गोरख सिद्ध नहीं हूं वरन् जहां पर ब्रह्म परब्रह्म आदि शब्दों की भी गम नहीं उस अगम सरूप का (जल में जल तरंग वत) मैं वासी हूं। यह मत संशय करो कि मैं इतर जीवों वत ही विचरता हूं, नहीं—मैंने उस अगम गुरू के प्रसाद से बाहरि-भाव-संसार में विचरता हुआ, तथा अपने घर अगम देश में स्थित भया, एक सरूप ही हूं, ता (तभी) ही अनेकता से रहित सर्व संबंध शून्य में नानक उदासी हो रहा हूं। (यह अपना पता दिया है)—'बोलत सहज सुभाय जे बचन मनोहर संत। सप्त भूमिका ज्ञान की ताहू में दर्शंत ॥' पूरण संतों का यह सहज सुभाव होता है। (३) वासी—पाठ भी है। (४) कहा।

आखिआ जो मैं पिआदा ही चलिआ (ताँ लोक किआ कहैंगे कि शिवनाभ का गुरू पिआदा चलता है) तदहुँ[1] राजे शिवनाभ आखिआ जी तुमारा दित्ता[2] सभ किछु है हुकम होवै ताँ सुखपाल पर चलीऐ। हुकम होवै ताँ हाथी चढ़ीऐ॥ ताँ गुरू बाबे आखिआ जो राजा असीं[3] मनुख दी अस्वारी करते हाँ। तब राजे आखिआ अजी मनुख बहुत हैनि[4]—चढ़ चलीऐ। तब बावे आखिआ अहो राजा ओह मनुष कोई राजकुवर होवै, ते राजा होवै। तिसकी पीठ पर चढ़ाँ। तब राजे आखिआ जी तेरा कीता राजा मैं भी हाँ। मेरी पीठ पर चढ चलीऐ। ताँ बाबा राजे की पीठ ऊपरि चढ़िआ[5]। ते लोग लगे आखण, राजा कमला होया है। तब बाबा राजे की पीठ ऊपरि चढ कै राजे के घरि गया। आय वैठा ताँ राणी चंदकला अते राजा शिवनाभ हाथ जोड खड़े होए, लगे बेनती करन, जो प्रशादि[6] का हुकम होवै। तब बावे आखिआ असीं[7] प्रशाद नहीं छकदे। ताँ राजे आखिआ साडा[8] भला क्योंकरि होवै। तब गुरूजी आखिआ जो मनुख का मास होवै ताँ अहार कराँ। ताँ राजे शिवनाभ आखिआ जी! आदमी भी बहुत हैनि। तदहुँ बावे आखिआ हो राजा! उह आदमी होवै, जो राजे के घर इको[9] पुत्र होवै, अते बारहि वर्षाँ का होवै। ते ओस का ब्याह होय को दिन बाराँ होए होन। तिस दा मास अहार कराँ। तब राजा अते राणी चितामान होए। तब राजे आखिआ, अहो परमेश्वर जी! जो किसै राजे दे घरि पुत्र है, तां तेरे

(१) तब। (२) दिया हुआ। (३) हम। (४) हैं। (५) वरयोग्य सुंदरी विद्वान कन्या के अर्थ जैसे योग्यवर की आवश्यक खोज होती है ऐसे ही पूरण सत वस्तु के प्रदान निमित्त परमप्रेमी पूर्ण अधिकारी की भी पूर्ण पुरुषों को खोज करनी पड़ती है जैसा कि गुरुसाहब शिवनाभ के पूर्ण प्रेम तथा उसकी सच्ची शरण की परीक्षा उसका मान भग करके करते हैं। (६) भोजन। (७) हम भोजन नहीं खाते। (८) हमारा। (९) एकही बेटा हो। सच्ची शरण की परीक्षा यही है कि सच्चे मालक सतगुरू के नाम पर प्रियतम वस्तु को कुरबान कर देवे।

कहे[1] सिर्ऊ क्योँ करि देवैगा। ओस साथ जुद्ध कीजै,[2] जब ओह जीतीअै तां पुत्र देवै–अतै[3] एथे हुण चाहीए। तब रानी आखिआ अहो राजा! असाडे घर तां इको पुत्र है, ओस की जन्म-पत्री देखीअै। जब देखण तां बारह[4] बर्षां का है। तब राजे कहिआ बेटा! तेरा शरीर गुरू के काम आंवदा है। तेरी क्या मनसा है? तब लड़का बोलिआ–पिताजी! इसते क्या भला है जो मेरा शरीर गुरू के कंम आवै। तब राजे आखिआ जो एसनू[5] बारा दिन विवाहु कीते होए हैनि। इसकी स्त्री भी पूछी चाहीअै। तब राणी आखिआ–(हे पुत्री) तेरे भरत्ता का शरीर गुरू के काम आवता है, तेरी क्या रजा[6] है? तब उह लड़की बोली–पिता जी! माता जी!! जे एसदा[7] शरीर गुरू दे कंम आवै अते मेरा रंडेपा[8] गुरू ऊपरि होवै तां भला है। तब बिचार[9] लैकरि गुरू पास आय खड़े होए। ते राजा बोलिआ–आखिओसु जी! इहु लडका हाज़र है। तब बाबे आखिआ अहो राजा (इऊँ)[10] इहु मेरे कंम नाहीं। माता इस कीआं बाहां[11] पकड़ै अते इस्त्री इसके पैर पकड़ै। अते तूं हथि छुरी लै जिबह[12] करहिं तां कम है। तब राजे शिवनाभ गुरू का हुकम मंनिआ। हथ छुरी लैकरि ज़बहि कीता। रिन्न[13] करि आगै आनि राखिआ। तब बाबा बोलिआ–हे राजा तुसीं तिन्ने[14] अखीं मीट करि "वाहगुरू" आखि करि मुंह पावहु। तब राजे अते राणी ते राजे दी नुह[15] तिन्नां अखीं मीटीआं। जा[16] मुह पाया तां चारे बैठे हैनि। अखीं खोलण

(१) कहे अनुसार कहने मात्र करके। (२) करें। (३) और यहा तो अभी ही चाहियें (भोजन करना)। (४) गुरूजी ने स्वात्म सवेद्य शक्ति से प्रथम ही जान कर अैसा भोजन मागा था। इकलौते पुत्र समान कोई वस्तु प्रियतम ससार में नहीं मानी जाती। (५) इसको। (६) मरजी। (७) इसका। (८) और मेरा वैधव्य गुरू जी के भरोसे पर निभे तो उत्तम है। भाव में गुरू साहब के नाम पर पति अर्पण करती हू मेरी धर्म रक्षा का विरद गुरू महाराज सभालेंगे (तुम निश्चिंत होकर अपने पुत्र को समर्पो)। (९)। समत्ति, सलाह। (१०) इस तरह। (११) भुजा। (१२) काटहिं, तब हमारे अर्थ का है। (१३) रींध करि। (१४) तीनोंही। (१५) बधू। (१६) यूंही कि मुह में ग्रास डाला—तो लड़का जीवित उनके पास बैठा हुआ है, और

तां गुरू बाबा' नाहीं। तब राजा व्याकुल होइ गया। उद्यान' पकड़ीआ–पैरां ते वाहना' सिर ते नंगा गुरू २ करदा फिरै। तां बारह महीने पिछे आय दर्शन दित्तोसु, चरणीं लायोसु, जन्म' मरण राजे दा कटिआ, सिक्ख होया। सैदो अते

(देखें तो) मास की जगह कड़ाह प्रशाद पड़ा है। कैसी आश्चर्यकारी परीक्षा है बहुत से पाठक गुरू साहब के सेवकों की केवल घड़त मात्र यह घटना मानेंगे, कई नुक्ता चीन पाठक इसे असभवता की भेटा करेंगे। परन्तु विचार शीलों को इस में संशय का अविकाश नहीं है—लोगों में एक बात प्रसिद्ध है कि बिज्जू एक जगली जानवर ताजे मृतक बालकों को कबरों से निकाल कर अपने पजों से उनके पाव की कोई नाड़ी (जिसकी परीक्षा उसी को ही होती है) दाब कर उसे जीवित कर लेता है और उसके साथ खेल कूद कर फिर उसे खा जाता है—सत्य हो चाहे मिथ्या यह तो लौकिक उक्ति से मृतक को जीवत करने की पशुओं में प्रसिद्ध शक्ति है॥ अभी बहुत वर्ष नहीं हुए जब कि देश में जादू टामन, आदि विद्या का अधिक प्रचार था उस काल में छाया पुरुष विद्या के ज्ञाता हजरात का प्रयोग करके चिरकाल की मृतक आत्माओं को व्यक्तिमान दशा में बुलवाकर एक नियत बालक द्वारा (जिसका मध्यम पुरुष नाम धरा जाता था जीवत वत् ही बातें कराई जाती थीं॥ वर्तमान काल में मिसमरेजम विद्या प्रचलित है इससे जड़ वस्तुओं को चेतन बनाया जाता है, चिरकाल के म्रितक सबंधियों के दर्शन तथा उनसे वार्तालाप कराई जाती है और २ भी अकर्णो' योग्य कार्य किये जाते है। यह योग विद्या की एक तुच्छ मात्र कला का प्रभाव है॥

मदारी लोग एक तमाशा किया करते हैं एक बारह चौदह वर्ष का बालक एक छोटे से टोकरे में घुसाकर सबके देखते उसी में लोप कर दिया जाता है, छुरिया उस टोकरे के चारों ओर बीच में घुसाई जाती है, बडा आश्चर्य होता है कि जब बोह उस लड़का को पुकारता है तो जिस ओर से दर्शक लोग कहे, उधर से ही पाव मील भर से आवाज उसकी आती है, परन्तु देखो तो निकलता टोकरे में से है॥ सूत की एक तात के सहारे पर एक अपने सगी लडके को आसमान पर चढ़ाना पीछे छुरी लेकर आप चढ़ जाना और एक २ अग लड़के का काट कर नीचे दर्शकों के आगे फेंक देना। पश्चात् स्वय भी उतर कारि सपूर्ण अग बालक के इकट्ठे करके जीवत कर देना आदि लोगों ने नटों की ऐसी कई घटनाए देखी होंगी। इन पर विचार किया जावे तो स्वय ही उत्तर मिल जावेगा कि जब साधारण तन्त्र विद्या के ज्ञाता तथा तुच्छ मात्र सी योग कला के विद्वान ऐसे अकृत्य कार्य करने को समर्थ हैं तो गुरू साहब जैसे परम योगी राज जो सदैव के लिये उस सर्व शक्तिमान मालिक कुल से अभेद रहते थे क्या उनमें ऐसे कार्यों की शक्ति असभव हो सकी है। कदाचित नहीं नुक्ता चीन पाठकों को आस्तिक्यता से काम लेना चाहिए। मृतक बालक को जीवित कर लेने की शक्ति जब उस मालिक के रचे हुए इद जालियों और पशुओं में प्रसिद्ध प्रख्याति है तो क्या उसके परम सतों में यह शक्ति नहीं हो सकी? (१) योगियों में अदृश्य हो जानेकी शक्ति होती है, जब चाहें जितने काल तक जिस से चाहें अदृश्य रहि सकना उनके स्वाधीन होता है। (२) यह अनुमान करके कि जंगल में रहने के (गुरू साहब) रसिक हैं, सभव है जगल बियाबान को ही पधार गए हों, राजा उधर को ही प्रेमातुर हुआ भाग निकला। (३) पावों से चलता हुआ भाव राज्य का धनी होकर भी पैदल ही (ढूढने में) भाग पड़ा।

घेओ हुकम नालि पाहुल' दित्ती। सारा संगलादीप सिक्ख होया, गुरू २ लगा जपण, सारा खंड' वसिंआ राजे शिवनाभ के पिछे। बोलहु "वाहगुरू"। सगलादीप की सगति की रहरास—जब राति पवै तां सभै इकठे आन बहनि' धर्मशाला। इक सिक्ख प्रशाद कहि जावै, भलके' इकठे जाय पावन--इकीस मण' लूण रसोंई पवै। तित महल' गुरुजी बाणी प्रगट होई। आगे लिखी--

॥ इति श्री माया-सगली श्री गुर ग्रंथे माया-संगली उत्थानका बरनन—सपूर्णम् ॥

---

(१) गुरमुख शिष्य बनाते हुए चरणामृत पान कराया जाता है सो उस काल में गुरू साहब की आज्ञा पाकर सैदो अरु घेओ इन दोनों शिष्यों ने उनके चरण कमल धोय कर विधि पूर्वक राजा को पान करा के गुरमुख शिष्यों की श्रेणी में उसे शामिल किया। (२) सिंगला दीप का सारा देशही गुरमुख हो गया। (३) आय बैठें भाव दिन को अपने कार्यों का निर्वाह करें। रात्रि को सत्सग किया करें। (४) दूसरे रोज, कल। (५) इक्कीस मण नमक एक दिन की रसोंई में पड़ना कुछ बड़ी बात नहीं बहुत से पाठक हैरान हो जाते हैं। परन्तु विचार करें तो सशय को अवसर नहीं रहता—क्षेत्रों की मर्यादा है कि ८ आदमियों को १ सेर दाल के साथ (अदाजन) आध पाव नमक मिलता है। यदि ६४ आदमी हों तो १ सेर नमक रसोंई में एक वस्तु में पड़ता है। सिंगला दीप का मन ११ सेर का है (कच्चा)। अब ६४×११ चौसठ को ११ के साथ गुणा आवे तो ७०४ आदमियों की एक दाल मात्र में मण भर कच्चा नमक हिसाब से आता है। और इसी ७०४ सख्या को फिर २१ के साथ गुणा जावे तो ७०४×२१=१४७८४ पद्रह हजार से भी कम आदमी २१ मण नमक खाते होंगे। यह हिसाब तो रहा कच्चे मणों का। परन्तु यदि पक्के २१ मण भी समझे जावें तो बड़ी बात नहीं क्योंकि इसी ११ सेर को ही चौगुणा कर दिया जाय तो एक मण चार सेर पक्का तोल हो जाता है और इसको १६ के साथ गुणा जावे तो चार सेर कम २१ मण पक्का तोल होगा—ऊपर ७०४ आदमी ११ सेर का कच्चा मण नमक खा सकने का हिसाब लगाया गया था सो ७०४ को यदि ७६ गुणा कर दिया जावे तो ५३२०४ आदमी चार सेर कम २१ मण पक्का नमक खाते होंगे। या १४७८४×४ किया जावे ५९१३६ आदमी पक्के इक्कीस मण नमक खाते होंगे। महाभारतादि पुराणिक इतिहासों में बहुत से प्रमाण मिलते हैं कि अमुक राजा के यहा अट्ठासी हजार ऋषियों ने चौमासा काटा अब जरा विचार करना चाहिए कि उनके भोजन पर कितना नमक खरच आता होगा जो कि सताईस अट्ठाईस मन के दूर निकट होगा, सो जब सिंगलादीप में गुरू महाराज का उपदेश सुनने निमित्त गुप्त प्रगट सिद्ध ऋषि मुनि आदि का सघट इकत्र रहता था तो इक्कीस मण नमक कौन बड़ी बात है कि न लगता होवे। और फिर राजसी रसोंई में अकेली दाल तो बनती ही नहीं होगी दो एक साग भाजी भी तो जरूर ही बनने का अनुमान हो सकता है—सो ऐसी व्यवस्था के होते पचास साठ हजार जेवनारों की रसोंई पर इक्कीस मण नमक कैसे नहीं लगता होगा। इतिहासों की बातें तो किंचित दूर की हैं, वर्तमान में अब भी तरन तारन की तहसील में ही गोंदवाल साहब नामक त्रितिय श्रीगुरू अमरदास जी का गुर स्थान है। वहा पर भाद्र की पूर्णमा को उनका दिन मनाया जाता है उस रोज़ देग (भडारा) में २५ मण पक्का के लगपग नमक खरच होता है। तीर्थों के कुंभों पर और गुरू सिक्खन के भी केचित्त दीवानों पर बीस २ पच्चीस २ हजार की पंक्ति भोजन समय बैठती है तो नमक इस हिसाब से कम खरच नहीं होता। (६) उस मुकाम पर, उस मौक़ा पर ॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसाद ॥

प्राण संगली

॥ राग रामकली महला १ ॥

ओअंकार निरमल[1] सत वाणि । ताँते होई सगली खाणि ॥
खाणि खाणि महिँ बहु विस्तारा । आपे जानै सिरजनहारा ॥
सिरजनहारे के केते भेष । भेष भेष महिँ रहै अलेप ॥१॥
एकहि नाम जपहु मन माला । नानक सिमरहु गुर गोपाला ॥

॥ रहाउ ॥

ओअंकार हूआ परगास । साजे धरती धउल[3] अकास ॥
साजे मेरु मँदिर कविलास[4] । साजे पिंड धरे विच सास[5] ॥
साज्या काल न छोड़ै पास । छूटै पिंड उड़ावै हॅास[6] ॥२॥
ओअंकार हुआ चानायल[7] । तदहुँ तीने देव उपायल ॥
महादेव कीता भडारी । ब्रह्मा चारि वेद बीचारी ।
विस्नु हढाउन[8] दस औतारी ॥
आप निरालम करे तमासा । ज्यौं ज्यौं हुकम तिवैँ परगासा ॥३॥

---

(१) ॐकार मलीनता से रहित तथा सत्य नाम स्वरूप है । यद्यपि सतमत के अनुसार यह सत्य शब्द नहीं है और काल मडल की हद (त्रिकुटी स्थान) का शब्द होने से यह निर्मल भी नहीं है तथापि परा, पश्यती, मध्यमा, वैषरी यह चार प्रकार की वाणी पिंड देश सबधी होने से मलीन है उसकी अपेक्षा से ॐकार को निर्मल कहा है । इसी प्रकार ॐकार प्रकाशक तथा व्यापक का नाम है और शब्दही भीतर बाहर पूर्ण तथा प्रकाशक है इस कारण पूर्ण तथा प्रकाशक जो होवे घोही शब्द है तथा ॐकार है । और जो सर्वत्र पूर्ण होता है वह अविनाशी होता है इस वास्ते इस ॐकार शब्द को सत वाणी कहा गया है । और भी स्थूल सूक्ष्म रचना की उत्पत्ति स्थिति सहार का हेतु ॐकार है ऐसा वेदिक मत है सो जो ऐसा अधिष्ठान सरूप शब्द ब्रह्म है स्थूल सूक्ष्म प्रपच की अपेक्षा और इसमें पूर्ण तथा सर्वत्र लोक सबधी तथा परलोक सबधी कारजों का साधक (प्रकाशक) होने से सत्य शब्द रूप है । जो कथन या लिखने में आवे सो शब्द है और ऐसे वर्णात्मक शब्द की आदि ॐकार है। जहा शब्द जाल का विस्तार होवे वहां इस ॐकार की ही सत्ता होती है इस वास्ते शब्द की सत्ता का आधारभूत होने से यह सत्यवाणी कही गई है ॥
(२) पिंड ब्रह्मड के स्वामी स्वरूप । (३) स्वच्छ, निर्मल, उठाया हुआ । (४) कैलाश । (५) श्वास । (६) हंस । (७) चाँदना, प्रकाश । (८) फिरने वाला ।

ओअंकार चौरासीह[1] अंग । अंग अंग माहिँ बहुते रंग ॥
रंग रंग माहिँ बहुते रूप । रूप रूप माहिँ चतुर सरूप ॥
जम्मै मरै न विनसै सोइ । ऐसै नॉइ[2] लिये सुख होइ ॥४॥
ओअंकार वीरज[3] ससारै । ओअंकार गुरमुख चीतारै ॥
ओअंकार सिरजै अरु मारै । ओअंकार लागो सब कारै ॥
ओह देखे एनाँ नदरि[4] न आवै । को विरला गुरमुख सोझी पावै ॥५॥
ओअंकार खाणी अरु वाणी । किनही विरलै गुरमुख जाणी ॥
तिस विच कीते बहुते भेद । तॉ ते[5] शास्तर सिमृति वेद ॥
दूजै अंग किया पासारा । एको तारै तारणहारा ॥६॥
ओअंकार बहुता विस्थार । तॉ ते अँत न पारावार ॥
क्या कहिये किछु कहण न आवै । देखै आप न आपु दिखावै ॥
तॉ कै सद बलिहारी जाऊँ । जगजीवन[6] है निर्मल नाऊँ ॥७॥
ओअंकार पानी अरु पवन । सूर्य चद धरे महि भवन ॥
तारे बहुते कई करोड । गणेते अत न आवै ओड़[7] ॥
जिनि कीता एता पसारा । तिसकै नॉइ[8] तरै ससारा ॥८॥
ओअंकार सुनियें[9] चित धार । तॉ की जम्मण मरण न कार ॥
जपहु जाप गुर कै उपदेस । कर्ता अगम अलेखी भेप ॥
ते महरम[10] खासे दरबारी । हिरदै एक अनेक[11] विसारी ॥९॥
ओअंकार पूजा अरु मान । ओअकार जप सजम ध्यान ॥
ओअकार तप तीरथ दान । ओअंकार राखै सुर ज्ञान ॥
ओअंकार गुरू अरु चेला । ओअकार रह रासी[12] मेला ॥१०॥
ओअकार तिथी अरु वार । ओअकार पल चसे विचार ॥
पहर महूरत वर्ष अरु माह । ओअकार ते बाहर नॉह ॥
ओअकार निरंतर बानी । जिन जानी तिन गुरमुख[13] जानी ॥११॥

---

(१) चौरासी योनिगत शरीर । (२) नाम। (३) कारण। (४) दृष्टि। (५) "थापे" पाठ भी है। (६) जगत की स्थिति का कारण। (७) ओडक, अत। (८) तिसके नाम लिये अथात् ॐकार आराधन से। (९) सुरत की धार से सुनिये यही सुमिरन है। (१०) भेदी। (११) एक में मगन होकर जिन्होंने अनेकता विस्मरण कर दी हो अर्थात् शब्द से जिनकी सुरत पूर्ण एकता को प्राप्त हो गई हो। (१२) गुप्त पूजी वाले (मालिक कुल) से ॐकार द्वारे मेला हो जाता है या ॐकार से सीधे मारग मेला हो जाता है। (१३) सतगुरों के मुख से ही।

ओअंकार संजोग[1] विजोग । ओअंकार जुगती अरु जोग ॥
ओअंकार होय सब स्वाद[2] । ओअंकार होय वाद विबाद ॥
ओअंकार सुनहु चित लाय । किनै विरलै गुरमुख सोझी पाय ॥१२॥
ओअंकार होय पुन्न अरु पाप[3] । ओअंकार होय वर अरु स्राप ॥
नरक सुरग दोऊ थापे थान । गुरमुख ध्यावहिँ मारग[4] जान ॥
जाँ कै अंतर गुरु मति आई । ताँ कौ अंच[5] न लागै काई ॥१३॥
ओअंकार कीनी इक दाति । तिस ते होई दिन अरु राति ॥
बाजीगर इहु खेल पसारा । धन्धै लाय दिया संसारा ॥
काम क्रोध लालच अरु मोह । जाल पसास्या सगला ध्रोह[6] ॥
इत जाली फाथा[7] संसार । को विरला गुरमुख उतरहि पार ॥१४॥
पिता[8] रूप शब्द की जानहु । रहै कहाँ अस्थान बखानहु ॥
कौनं रूप केतक[9] पासारा । केतक हलुका केतक भारा ॥
सुनि सुनि शब्द रहै लिव[10] लाय । सूक्षम महिँ अस्थूल[11] समाय ॥१५॥
अधैं उर्धैं दुइ थमैं पवना । गुरमुख मेटै आवागवना ॥
गगन[12] शिपरि शिव का अस्थानु । जुगती सहज[13] मिलावै भानु ॥
भँवर गुफा महिँ डेरा करै । गुर परसादी जीवत[14] मरै ॥१६॥
सत्तवार[15] चौदह थिति सोधै । ज्ञान महारस मन परबोधै ॥
लागी लागि[16] रहै दिनु राति । निर्मल सर[17] न्हावै निभ्रांति[18] ॥
तन कौ छाँडि न बाहर जाय । कहु नानक गुर[19] शब्द समाय ॥१७॥
राचै शब्द सुशब्दै जेँह । गुरमुख ताँकौ मिलै सनेह[20] ॥

---

(१) अकाल पुरुष मे संजोग और अहंता ममता का विषय रूप परपंच और और भी जो कुछ उस परम पुरुष से भिन्न है सब से विजोग हो जाता है अर्थात् सुरति की धार सब से टूट कर एक से लग जाती है। (२) सर्व रसों का आधार। (३) वेदों का बीज होने से पुन्न पाप की प्रगटता का मूल भी ॐकार ही है। (४) युक्ती भजन ध्यान की। (५) आँच। (६) द्रोह। (७) फँसा हुआ। (८) सभ का कारण। (९) कितना। (१०) सुरति की डोरी। (११) अंतरमुखी अवस्थाओं में स्थूल पसारा लीन हो जाता है। (१२) शून्य मंडल से भाव है जोकि त्रिकुटी का शिखर है, और शिव कल्याण स्वरूप का नाम है—शून्य मंडल में सुरति कल्याण की भागी हो जाती है तां ते शून्य ही शिव की ठौर है। (१३) सहज योग की युक्ती द्वारा। (१४) शरीर से सुरति का संबंध सुरति शब्द युक्ती से टूटना जीवत मरना है। (१५) सप्ताह के दिन। (१६) लिव लगी हुई। (१७) मान सरोवर। (१८) भ्रांति से रहित होकर। (१९) ऊँचा शब्द, सब से बड़ा तथा भीतर प्रकाश करने वाला सत्य नाम। (२०) प्रेम रस।

दुर्मति दुविधा दोऊ निवारै । ज्ञान खडग ले पंचाँ मारै ॥
रसि[1] रसि सचे ब्रह्म कियारी । नानक इहि विधि लागै तारी[2] ॥१८॥
परम सुन्न परगास दुवार । गुरमुख चेतै ज्ञान विचार ॥
चारि कला[3] ले खेलै कोय । इस विधि ता कौ भरम न होय ॥
अजपा जप जपियै मन माहिँ । ता के दरशन बहु दुख जाहिँ ॥१९॥
पंच चारि ले तीनि समावै । काहे कौ घर छाडि सिधावै ॥
अटल अडोल रहै रँग राता[4] । अगम निगम[5] की जाणै बाता ॥
जग फूटै खेलै नहिँ सार । इह बिधि जन्म न आवै हार ॥२०॥
नाभि कँवल सोधन गति पावै । मूल कँवल सोधै बनि आवै ॥
हीरैं[6] हीरा वेधै रूप । तव मानस नहिँ आप सरूप ॥
बधन काटि भये निर्बंध[7] । गुरमुख चीन्ही विषमी[8] संध ॥२१॥
उलटा नीर चढै कविलासि[9] । तब बारह सोलह एकै रासि ॥
भँवर भवंते बहु दुख पाया । गुरमुख होय सहज घर[10] आया ॥
देखै मंदिर थान बिचारि । रंग महल राता रँग तारि ॥२२॥
गंग[11] मिली सर सागर माहीँ । जो जो जाँहि सो निकसहिँ नाहीँ ॥
नीर निराले को निरवारै । गगन मगन विस्माद[12] बिचारै ॥
क्रिया बसेरा ज्ञान घरि वाँ कै । जो मारै काल पच भाकि[13] न भाकै ॥२३
लिव[14] कार नकरे इह कारन । लिव लागी तो सगल विसारन ॥
जिवँ करि नारि खसम से मानी । दाई[15] बीचि भई हैरानी ॥
जे अब नारि खसम को पावै । तो अवगुण मेटि लगावै पाँवै ॥२४॥
नीर धरनि बाढ़ी आकासि । को बिरला सचै गुर परगासि ॥

(१) उत्साह तथा अनुराग पूर्वक । (२) त्रिकुटी में ध्यान करे, ताड़ी लावे । (३) गुरु उपदिष्ट रीति से नाभी हिरदे कंठ तथा सहस्रदल कमल में सुरत का नीचे ऊपर नाम द्वारे चढ़ाना उतारना । (४) ध्यान रंग में रचा हुआ । (५) अगम ज्ञान—केवल अनुभव मात्र से जानने योग्य=अगम लोक । (६) हीरा कणी रूप सुरति को तिल की ठौर पर स्थिर करै । (७) सुमिरन ध्यान के प्रभाव से निर्मल हुई सुरति शारीरक मानसिक बधनों से न्यारी हो जाती है । (८) जिन गुरमुखों ने कि पिंड ब्रह्मांड की विखड़ी सधी को पहिचान लिया है (सुषमना की सधी) । (९) कैलाश, शिव की ठौर या सुरति कमल की ओर "पाणी की न्याईं मन शरीर से तद्रूप हो रहने वाली" सुरति उलटावे । (१०) इड़ा पिंगला सुषमना की सधी सहज घाट या सहज घर है । (११) सुरति । (१२) आश्चर्य दशा मगनताई की । (१३) आनारागई होना । (१४) लय । (१५) माया, अविद्या ।

मूल संचि उपजै सब सिद्धि । मूल सचि होवै मन वुद्धि ॥
दादुर जल महिं कौल न तुलिया । गुरमुख भौंर रूप होय मिलिया ॥२५॥
उलटे जत्र पकावै सार । धुर महली पावै बीचार ॥
कोयलें कला पिछाणि जलावै । गुरुमुखि यौं मनूआ समझावै ॥
शब्द सुरति महिं रहै अडोल । नानक ताँ का पूरा बोल ॥२६॥
आसन चौरासी दस पवन[1] । द्वादस[2] उलटै राखै भवन ॥
पटचक्र[3] के पट अस्थान । जो जानै तेऊ परधान ॥
ताँ ऊपर इक नागिन[4] बसै । नानक गुर शब्दी ओहि नसै ॥२७॥
मेरु डंड[5] की विपमी वाट । गुर बिन कोउ न बतावै घाट[6] ॥
इह घाटी जो उतरै कोय । ताँ कौ जन्म मरण नहिं होय ॥
शव[7] रीती जीतै संसारा । नानक पावहु मोष दुवारा[8] ॥२८॥
अभ[9] माहिं वैसतर जालै । सूझै भवना सगल उजालै[10] ॥
त्रैगुण[11] त्यागि रहै विस्माद । शब्द अनाहद सुरति समाधि[12] ॥
सुष्मनि महल करै जो डेरा । ताँ कौ भौजल बहुरि न फेरा ॥२९॥
कवन खंड आछै घट खंड । कवन खंड काया की जिंद ॥
कवन खंड शब्द का वास । कवन खड होवे परगास ॥
कवन खड महि काल बसेरा[13] । सतगुरु मिलै ताँ करै निबेरा[14] ॥३०॥
कवन खड रूप का थानु । कवन खंड तपै नित भानु[15] ॥
कवन खंड काल फिरि आवै । कवन खड काली[16] गति पावै ॥
कवन खंड बोले सो होय । नानक गुरमुख चानण लोय[17] ॥३१॥

---

(१) प्राण, अपान, समान, व्यान, उद्दान, नाग, कूर्म, किकल, देवदत्त, धनज्य। (२) द्वादश राशि में विचरने वाला सूर्य यहाँ प्राण का सूचक है क्योंकि प्राण सूर्य का नाम है और अपान चद्रमा का—सो प्राण कीड़ी मारग द्वारा नाम मिला कर उलटाय राखै, न कि हठ योग द्वारा। (३) गुदा, लिंग, नाभी, हिरदे, कठ तथा भँवों के मध्य में पट चक्र हैं जहा २ पर अगली ओर गड्हा है उसके ठीक पीछे चक्र का स्थान है—यह पिंडी चक्र हैं। (४) कुडलनी शक्ति—परतु यहा पथम चक्र की मालिक माया सर्पेनी (आद्या) से भाव है। कुडलनी नाभी में है। (५) रीढ़ की हड्डी। (६) इडा पिंगला से सुषमना के मेल की ठौर। (७) मरण काल में मृतक दशा के ढग पर सुरत टिका कर। (८) तीसरा तिल। (९) प्राण गरभित नाम सुमिरन द्वारे ज्योति प्रगट करे अथवा पाणी का भडार नेत्र हैं उनके मध्य में ज्योति प्रगट करे। (१०) चाद्नना। (११) जाग्रत, स्वप्न, सुपुप्ति के पिंडी मडलों को त्याग कर सहसदल कमल में। (१२) स्थिर रक्खे। (१३) निवास। (१४) निरणाय। (१५) सूर्य। (१६) आद्या, योग माया। (१७) प्रगट चाँदना।

कवन खड शास्त[1] बुधि आवै । कवन खंड मन कौं[2] मन खावै ॥
कवन खड तजि रहै इकेला । कवन खंड शिव शक्ती[3] मेळा ॥
कवन खड तन की सुधि जाय । सतगुरु[4] बाणी रहै समाय ॥३२॥
कवन खड राता रँग रासि । कवन खड होय कवल बिगास ॥
कवन खड भौरा ठहराय । कवन खड घर छाडि न जाय ॥
कवन खड रहै सदा आनद । कवन खड तहाँ परमानंद ॥३३॥
जब ज्ञानी ज्ञान सम्पूरण पावै । तब इह ध्यान कहो कहाँ लावै ॥
सर्ब निरतर ब्रह्म समाना । जहँ जहँ जाय तहाँ है राना[5] ॥
मिरग सुबास रह्यो लपटाय । नानक गुर बिन सुरति[6] न पाय ॥
अचरज एक तमाशा आवै । जल[7] छाडे मीना[8] बिगसावै ॥३४॥
जिंह जल कारण फिरहु उदासा । सो जल छोडि निरतर[9] बासा ॥
श्रवते सुनते जीते गुर ज्ञान । नानक पाया पद निरवान ॥३५॥
सुन्न निरतर सहज समाधि । तिँह घरि जाय ताँ मिटै उपाधि ॥
त्रैगुण त्यागि रहै अतीत । सतगुर शब्द भई प्रतीत ॥
निर्मल नीर[10] किया अम्लान । नानक गुरमुख पाया दान ॥३६॥
सगल खड महि रहै अखड । सुरग पइआल[11] अरु ब्रह्मड ॥
करि किरपा खूलै दरवाजा । महरम भया अनाहद बाजा ॥
मगन भये तिँह सत[12] सर माहीँ । जो जो जाँहिँ सो निकसहिँ नाहीँ ॥३७
मीन की रीति गगन सर बास[13] । तहाँ पाप पुन्न सगले का नास ॥
गुर परसादि पदारथ पाया । ताँते सहजे[14] पलटी काया ॥

---

(१) सुमति । (२) पिंडी मन को ब्रह्मडी मन अपने में लीन करे । (३) इस शरीर में काम करने वाली ताकत जिसकी सत्ता से सम्पूर्ण मन इन्द्रियाँ आदि चेष्टा करते हैं उसका नाम यहाँ शक्ति है, जोकि सुरत (चैतन्यता) से भाव है । (४) सत्यनाम । (५) उसी जगह चलकर गया हुआ अर्थात् व्यापक (मौजूद) है । (६) सुध, समाचार, सूझ । (७) विषय मदिरा रूप या ससार भौजल । (८) जीवकला, सुरति । (९) सुन्न मडल सहज घर । (१०) मान सरोवर घाट, सुन्न सरोवर नाम भी गुरुजी इसी का रक्खा करते हैं क्योंकि उसी मडिल में यह अभ्यासी को मिलता है । (११) पाताल (पिंडी मडल हिरदे के नीचे के) । (१२) उसी मान सरोवर अर्थात् भीतरी अमृत सर से भाव है । (१३) जैसे मछली पानी के बहाव का त्याग करके प्रवाह के उलटी जिधर से प्रवाह आता है उधर (ऊपर) को चढ़ा करती है ऐसे ही नीचे का प्रवाह त्याग कर ऊपर को उलटी चढ़ कर सुरत मान सरोवर बासी हो सके । (१४) सहज घाट में (सुषमना की सधी में) ।

अहनिशि सदा रहिये रँगराते। किनहूँ बिरलै गुरमुख जाते ॥३८॥
कवन खंड आनि मिटै पियास[1]। कवन खंड महि छुटकै आस ॥
कवन खंड लागै नहिँ बान[2]। कवन खंड तहँ पद निरबान ॥
सगल खंड महि दिष्टि पसारी। ताँ कौ भेट बनै जोहारी[3] ॥३९॥
शब्द सुने का क्या उपकार[4]। ज्ञानी ध्यानी कहु बीचार ॥
सुनिये शब्द न दीसै सोय। बिन देखे क्या परचा[5] होय ॥
सुनि सुनि शब्द कहै संसारा। नानक बिरला को देखणहारा ॥४०॥
जब सूक्ष्म अस्थूलै खाय। गुर शब्दी पद पिंड समाय ॥
गगन सरोवर कवल बिगासि। भौरा उरझि रह्यो तिंह बासि ॥
मनूऐ बूझी उलटी रीति। नानक गुरमुख सदा अजीत[6] ॥४१॥
किंह कारण मन शब्द लगावहि। लागै शब्द कवन गति पावहि ॥
सुनि सुनि ज्ञान कह्यो जग माहीं। जो देखे सो आखै नाहीं ॥
गूँगे की गति गूँगा जानै। गूँगा भया त काह बखानै ॥४२॥
लिव लागी तहँ थानि सुहावै। लिव लागी तन की सुधि जावै॥
ऊँचे खंडि महल घर पाया। गुरमुख ज्ञानी त्यागी माया ॥
वैरी उलटि भये सब मीत। नानक बसिया केवल चीत ॥४३॥
पंच, पचीस अरु पचासि[7]। इनको जीति करै मन रास ॥
पवन[8] नाथ नाथै मन माना। उलटी कला तब आपु पिछाना ॥
तहँ गति अविगति दोउ हैरानी। जो देखहि सो कहहि नीशानी ॥४४
तहँ दूख भूख बहु मोह पियासा। काम क्रोध लालच अरु आसा ॥
अस्तुति निंदा लोकाचार। एते ठाके[9] तिंह दरबार ॥
इह ठाके जे जीते कोय। ताँ कौ मिलते बिलम[10] न होय॥४५॥
मास बिहूनी 'मिरगै[11] खावै। गुरमुख चकमक[12] ठनका लावै ॥

---

(१) पदार्थों की तृष्णा। (२) कामादि का विघ्न। (३) नमस्कार। (४) फल। (५) परतीत। (६) मन माया और कर्मों की घात उस पर प्रबल नहीं पड सकती। (७) अस्सी पवन। (८) चौटी मार्ग को गुरु-पदिष्ट युक्ति द्वारा श्वासा के साथ नाम सधान करके मन माया हुआ स्वाधीन हो जाता है, इसी युक्ति से उलटी बाजी लग जाती है और आत्म ज्ञान की प्राप्ती होती है। (९) रोके। (१०) ढील, देरी। (११) मन। (१२) जैसे चकमक पत्थर पर चोट मारने से अगनी प्रगट हो आती है ऐसे ही गुरूपदिष्ट ज्ञान (जुगती) से शिव शक्ति की सधी रूप सहस्रदल कमल पर सुमिरण ध्यान की चोट लगाने से ज्योति दर्शन रूप ब्रह्म अगनी प्रज्वलित हो आती है।

ब्रह्म अग्नि जारै गुर ज्ञान । निर्मल नीर करै इस्नान ॥
शिव शक्ति की चीन्है संधि । तौ बंधन काटि भये निर्बंध ॥४६॥
निर्गुन सरगुन कहा बखानहु । गुरमुख अपना आप पिछानहु ॥
जो तुम जाता अपना आप । तौ लाग[1] न लागै पुन्न न पाप ॥
अम्भै[2] माहि जो अम्भु समाना । ताँका आवागवन मिटाना ॥४७॥
तहँ दिवस न रैन न चंद न सूर । तहँ सर्व कला आपे भरपूर ॥
जीवत ठौर न कबहूँ पावै । जो जो मरै सोऊ घरि आवै ॥
कहु नानक घर की नीशानी । चिन्ता फिकर न आवन जानी ॥४८॥
पच चोर पंचाँ[3] दैंचि सूत । जो राखै सोई अवधूत ॥
गुरमुख जागि[4] ज्ञान बीचार । इहि विधि चोर न मुसै[5] भँडार ॥
छाया तरवर[6] माहि समावै । तिँह घर जाय तो बहुरि न आवै ॥४९॥
नप[7] शिप भरे न डोलै चंचल । पच्छिम सूर चढै तब निहचल ॥
अहनिशि तागा खिथा पहिरै । गुर परसादी अजर जरै[8] ॥
चद सूर्य दुइ टल्ली लावै । इहि विधि खिथा खिसनि न पावै[9] ॥५०॥
चचल थीर करहु जोगीशर । गुर शब्दी मन राखहु भीतर ॥
जुगती सहज लेहु आहार । मन जीतै जीता ससार ॥
जब लग चद भवन[10] आवै नहिँ भान । तब लगि कहु नानक कैसे कल्यान[11] ॥५१॥
शिव शक्ति एकै घर वास । तब मेटै बहु मोह पियास ॥
अमृत नीर भरे नित गागर । योँ करि गग मिली सर सागर ॥

---

(१) लेप, स्पर्श। (२) सुरति रूपी जल अपने सुरते रूप जल भडार में जो समा जाय। (३) पाच पच (सरपच) जो शब्द है उनसे पाच चोर सूत डाले। (४) जागे, सावधान रहे। (५) चुरावे। (६) वृक्ष—यहा सपूर्ण ब्रह्माड के धनी ब्रह्म से भाव है, सब प्रपच उसी की छाया है और छाया नाम माया का है जब यह अपने मालिक में अभेद हो जावे तो निर्मुक्त भई सुरत निज देश में पहुँच कर फिर नीचे नहीं गिरती। (७) पॉव के नाखून से सुरत को गुरू पदिष्ट युक्ती से ऊपर खच कर जो चोटी की ठौर शिर में है वहॉ पर भर देवे और हिलने न देवे तब पिछवाडे की ओर से अविनाशी सूर्य जो सूर्यों का भी महाकारन है प्रकाशित होगा। (८) सुरति की एक तार ताकी गुदड़ी पहिने तो न जरे जानेवाले महान आनद को भी जर (बरदाश्त कर) लेता है। (९) नेत्रों की टाकी लगावे अर्थात सुरत का एक तार रूप गुदड़ी में नेत्रों की धार पलट कर टाकी लगावे तब वह छीन नहीं होने पावेगी अर्थात् अडोल रहेगी। (१०) चद्रमा का घर सहस दल कमल है। (११) नेत्रों का मालिक सूर्य है, भाव यह कि नेत्रों की ज्योति सूर्य सरूप है जब तक कि यह ज्योति पलट कर वहॉ न ले जाई जावे कैसे कल्याण हो।

सरप[1] भरे दादुर घर नीर। नानक तन महि मन अस्थीर ॥५२॥
तन सागर[2] मन बोहिथ भारी। पवन के रथ करे असवारी ॥
जे करि राह अवत्तै[3] धावै। गुर शब्दी धुरि लंगर पावै ॥
गुर बिन राह वतावै कौन। बोहिथ क्यों पहुँचै बिन पौन ॥५३॥
तीन धार एकै घरि मेला। गुर सेवा करि न्हावै चेला[4] ॥
इह न्हाये का क्या उपकार। परलो[5] पाप कोट इक वार ॥
ऊँचे घर पावै घर वास। तव पाप पुन्न सगले का नास ॥५४॥
कॅवल एक जाके दल बत्तीस। गगन सरोवर इह बपशीश ॥
गुरमुख भॅवर रूप होय पावै। उहाँ सुबास[6] उरझै ठहरावै ॥
अहिनिशि मगन सदा विस्माद। नानक गुर मिलि मिटै उपाध॥५५॥
दर कौ जानै सो दरवेश। पंचों जीतै गुर उपदेश ॥
नगरी बैठि हकूमत करै। गुर परसादी जीवत मरै ॥
इहि विधि मारै मन कै मान। कहु नानक दरगह परवान ॥५६॥
जोगी जोग लिये नित खेलै। शिव शक्ति एकै घरि मेलै ॥
सच्च खंड अमृत सर नीर। उलटै मारग मन अस्थीर ॥
दुर्मति दूर पलट्टी काया। जोगी जोग लिये घर आया ॥५७॥
सन्यासी सो जो सुन्न का वेता[7]। गगन मॅडल महिं राखै चेता[8] ॥
अहिनिशि तारी कबहुँ न खूलै। कनक कामिनी देखि न भूलै ॥
अब[9] साचै खंड बसेरा पावै। महरम महल न को अटकावै ॥५८॥
जंगम जोग करै मन मारे। गुरमुख ज्ञान न कबहूँ हारे[10] ॥
सगल विपया अमृत कर पीवै। गुर परसादि जुगो जुग जीवै ॥
करम भुयंगम हिरदै धारै। आप तरै ले वहुते तारै ॥५९॥

(१) सर्प रूपी मन अपने शिकार के पात्र जीव रूप मेंडक के घर अर्थात् सुरत के घाट पर आधीन हो रहे। (२) शरीर समुद्र में मन जहाज को खेंचकर ले जानेवाला बादवान सरूपी पवन है उसपर सवार होकर अर्थात् मन सुरत तथा प्राण को एक करके धुर पद में जोकि शिपा सरोवर से भाव है भजन ध्यान का लंगर लगा देवे तब इसको उक्त समुद्र के तरंग चलायमान न करसकेंगे। (३) उलटे। (४) दृष्टि की धारों को इनके भंडार की धार से शिवनेत्र के स्थान पर एक करे तो शब्द गुरू की सहायता से सुरति चेला भीतरी त्रिवेनी स्नान को प्राप्त होता है। (५) पूरे पूरे नाश होते हैं। (६) रस रूप सुगंधी। (७) भेदी। (८) सुरत। (९) तत्काल ही, जीते जी। (१०) "जंगम जोग करै मन माहीं। गुरमुख आलस कबहूँ नाहीं"—ऐसा पाठ भी है। ऊपर के पाठ की कड़ी का अर्थ यह है कि गुरमुख के निश्चय को कभी कोई डोलायमान नहीं कर सक्ता।

बिष्नु प्रीति नित हिरदै धारे। कुचर[1] चींटी एक बीचारे॥
अनाहद धुनि राखै मन नीत। दूसर भाव न आनै चीत॥
चंचल मिरग बँधै गुर ज्ञान। बैशनो बिश्नु जानै परवान॥६०॥
सो ब्रह्म बिचारी जो चीन्है ब्रह्म। गुर साखी सुनि मेटै भर्म॥
सप्त ध्यान[2] धरै मन मारि। तब लागी धुन शब्द मँझारि॥
काटि कर्म होवै निःकर्मा। आवागवन मिटै गुर धरमा॥६१॥
सोई शेष जो सोधै काया। गुरमति पाय तियागी माया॥
दूख भूख करि पीवै पानी। चौथे[3] घर महि आबादानी[4]॥
पवन सूत मन[5] मनिया करै। जपि जपि नाम सरोवर तरै॥६२॥
काजी सो जाँका कवल बिगास। ज्ञान सम्पूरण है तिपतास॥
रोजे सदा रजाय पिछानै। चंद सूर्य[6] एकै घर आनै॥
पंजाँ मारे पंज निवाजै। ताँके घर अनहद धुनि बाजै॥६३॥
मुल्लाँ मन की मेटै चाला। चचल बधि करै पैमाला॥
अनहद बाजा बाँग सुनावै। सुन्न मसीत जाय सिर नावै॥
तहँ एका करणी दूजा नहिँ भाव। ना कोउ सेवक ना कोउ राव॥६४॥
मौनी मन के मरदन मान। त्रिकुटी घाट करै इस्नान॥
ब्रह्म अग्नि जारै मन जीति। काया समँधै[7] बिष्नू प्रीति॥
जम्मण मरण मिटै दुइ अंगा। नानक नीर नीर कै संगा॥६५॥
राग दोष रहिता बैरागी। अहिनिशि सुरति सदा लिव लागी॥
पलटै पवना निपजै काया। मन को जीति सहज घर आया॥
शशै[8] सिंह कीया घर वास। तब ऐसे सरवर माहि निवास॥६६॥

---

(१) हाथी। (२) तीसरे तिल से लेकर सच्च खंड के स्थान पर्यंत। (३) यदि तीसरे तिल से लिया जाय तो शून्य मंडल पर्यंत चौथा घर आता है परन्तु गुरू साहेब का भाव नभ कमल से लेकर प्रधान स्थानों को अंगीकार करते हुए सच्च खंड को चौथा घर कहने से है, और इसी का नाम चौथा पद है जैसा कि सच्च खंड का प्रकरण सप्त ध्यान में चला है, प्रमाण–"कहि कबीर हमरा गोविंद। चौथे पद महिं जन की जिंद॥" (४) निवास, स्थिति। (५) पवन सूत्र में मन मणिके को पिरो कर नाम की गाँठी देकर सुरति सुमिरन करे तो संसार सरोवर तर जावे। (६) दृष्टि अपने भंडार के स्थान पर जोड़े। (७) मन को लकड़ियों की भाँति उस ब्रह्म अग्नि के ध्यान में भस्म कर देवे अर्थात् विस्मृत कर देवे। (८) स्यार रूपी जीव ने काल रूप सिंह के घर सहस्रदल तथा त्रिकुटी के घाट पर स्थिति करी।

पूर्व[1] त्यागि पच्छिम करै गवन । उलटै पवना सोधै घर भवन ॥
नौसै नाडी सोलासै संधी । पवना खेलै तहाँ निर्बंधी ॥
उलटी गग समुद्र मिलावै । वहै अकार फिर बीच समावै ॥६७॥
किस विधि तन महि मन ठहराय । सतगुर मारग दिया बताय ॥
चंद सूर्य घर एकतु आनै । पूर्व त्यागि पच्छिम को तानै ॥
मोहि तोहि सब तरियो सागर । सुभर नीर न फूटै गागर ॥६८॥
उलटै बान गगन कौ साधै । पंच चोर गुर शब्दै बाँधै ॥
सुन्न कोठडी बज्र कपाट । इन कौ जानै औघट घाट ॥
गुरमुख ज्ञान लपेटै बुद्धि । मन लपटै निरवाणी सुद्धि ॥६९॥
औहठ[2] पटणि[3] ताँके दस द्वार । दसवें भीतर खेल अपार ॥
ताँ दर के बहुते दरबान । निगुरे मूल न पावहिं जान ॥
जाँके मन गुर का उपदेश । ताँ कौ ठाक[4] नहीं उह देश ॥७०॥
पदम आसन करि बैठहु मीता । अजपा जप जापहु नित नीता ॥
ब्रह्म अग्नि जारहु गुर ज्ञान । तीन लोक महि ताँ की मान ॥
इद्र चद्र सूर्य सरूप ध्यावहि । ताँ का दरशन देखि सुख पावहि ॥७१॥
पूरक घट महि राखहु पूरि । चंचल मिरगा खेलै दूरि ॥

(१) जिस ओर सूर्य चढ़ता है वह पूर्व है, जिस ओर उतरे वह पश्चिम कहाता है, परन्तु पिंड में जीव रूपी सूर्य जिस अपने देश से उतरता आया है वह इस में पश्चिम है और ब्रह्माडादि मडलों से उतर कर पिंड में अपना व्यवहार कर रहा है अर्थात् पिंडवर्ती मडलों में प्रकाश करने के लिये उद्यत है सो इसका पूर्व है, सो इसी को लक्ष करके गुरू साहेब अपने घर को लौटने की शिक्षा करते हैं कि पूर्व को त्याग कर के अर्थात् पिंडी मडलों को उलघन करती हुई सुरत को पश्चिम की ओर चलावे। पश्चिम से भाव सुरति कमल का है जहाँ पर कि इस का ऊपर से उतार हुआ और इसका सबध पिंड से होना आरभ हुआ था, यह स्थान पिंड तथा ब्रह्माड की मध्यवर्ती हद है और सुरति की अपनी ठौर है इस कारण पिंड से उद्धार करके इसे प्रथम वहा चढ़ा ले जावे, निराधार नहीं बल्कि श्वास की सहायता से ऊपर को उलटाकर अपना स्थान खोजे। पवन भी अपने आकाश मडल को त्याग कर नीचे मडलों में भ्रमण कर रही है सो गुरूपदिष्ट मारग से उसकी चाल भी सीधी करके उसी पर सवार करके सुरत को उलटे। इस प्रकार सुरति गगा को उलट कर सुरते समुद्र (निज भडार) में अभेद होने का गुह्य मारग सतगुरों ने बता दिया है, कि पूर्व को त्याग कर पश्चिम में जिस घर पर चद्र सूर्य उलट कर एकाकार हो जाते हैं सुरत को तान देवे और शब्द का बान उलटा अर्थात् ऊपर को गगनमडल में सधान करे तो सुन्न कोठरी जो सहज सुन्न का घाट है उसके वज्र किवाड खुल जाते हैं, यही औघट घाट है जिस में इसे निर्वाण अवस्था साक्षात् प्राप्त हो जाती है।
(२) उपरले हाट। (३) नगर—भाव ऊँचे स्थान। (४) रोक।

रक्त रेत[1] मल सोखै तीन । गुर मिलि शब्द रता मन लीन ॥
थिर थावर[2] घर चौथा पाया । निर्मल जोति निर्मली काया ॥७२॥
कुंभक कुंभ सम्पूरण भरै । (तब) जाय त्रिवेणी मंजन करै ॥
मन ते विसरै दूजा अंग । यौं आप आपने आपे संग ॥
विनु जिह्वा गुन अपने गावै । आप कहै आपै समझावै ॥७३॥
कर्म भुवगम करै विनाशन । गुर परसादि पिछानै आसन ॥
अग्नि[3] जलै पाकै निज सारि । डोरी लागी गगन मझारि ॥
तहँ अकल अरूप रूप सर्वंगी । राम नाम देही सब रंगी ॥७४॥
रंचक रंच जा की लिव लागी । माया संग रहै वैरागी ॥
ज्यौं करि कवल सरोवर माहीं । बीचि रहै डूबै पुनि नाहीं ॥
विषयाँ महि निर्मल होइ जीवै । गुर परसादी अमृत पीवै ॥७५॥
पंज तरणि[4] मेलहि सर सागर । यौं करि नीर समावै गागर ॥
पंज एक[5] होय एक समावै । नरक सुरग सगले बिसरावै ॥
ज्यौं तरंग जल अंग समाना । ताँ का आवागवन मिटाना ॥७६॥
मन[6] का जीव जाय नित छीजै । क्यौंकर झूठी बातन रीझै ॥
जब इह जीउ रहै घट माहीं[7] । तब मन तन कौ छाडि न जाही ॥
ना गुर मिलै न मारग पावै । बिन मारग क्यौं नगर सिधावै ॥७७॥
तन का जीउ रहै मन माहीं । मन का जीउ रहै केहिं ठाँई ॥
जो इह जुगति जीअ की जानै । सो नर अपना आपु पिछानै ॥
आपु पिछानि बँधन सब काटै । नानक विरला लागै घाटै ॥७८॥
आपस कौ ऊँचा[8] करि जानै । सो नर अपुना आपु पिछानै ॥
जिनि पाया गुर का उपदेश । उत्तम नीच नहीं उह देश ॥

---

(१) वीर्य (अल्प आहार तथा अल्प निद्रा से तीनों सूखते रहते हैं परन्तु हठ अग को न लावे) (२) दृढ़ परतीत पूर्वक भजन ध्यान में स्थिर रहने से। (३) ज्योती प्रगटे तो आत्मज्ञान पकता है। (४) पाँच शब्द सरूपी बेड़े (नौका)। (५) पाँचों शब्द सच खड में एक ही ठौर एक रूप हो जाते हैं पश्चात् एक में मगन होती भई सुरत जल में जल तरंगवत् सत्पुरुष में अभेद हो जाती है। (६) माया नित्यप्रति क्षीण हो रहे है। (७) सहज योग रीति से यदि यह जीव अर्थात् मन अपनी चचल गति से निवृत्त कर लिया जाय तो यह मन शरीर से बाहर नहीं जा सकता, भाव चपलता छोड़ कर अपने आप में ही रह जाता है। (८) ऊपर गगन मडल आदि में अपनी सुरत को चढ़ा कर अपने को ऊँचा जाने, न कि अभिमान से।

ज्ञान भानु हिरदै परगाशा । ताँके अंधकार सब नाशा ॥७९॥
देखहि बृच्छ फूल फल पावै । आपस कौ नीचा दिखलावै ॥
सुरते ज्ञानी इह ससारि । तरवर रंग रहै मन मारि ॥
जिन अंतर गुर मति नहिं आई । मेरु कहा[1] वहिं नाहीं राई ॥८०॥
जेकरि गागर कूप महि घाली । विनु नीची[2] भरिये नहिं थाली ॥
समझि बूझि गुर के पग लागी । पल महिं भरिये बिलम न लागी ॥
रिदै अशुद्ध कहा सिर निवावै । जो मनसा धारै सोइ फल पावै ॥८१॥
गुरमुख ज्ञान परापत हूआ । शब्द बिचारि जीवत फिरि मूआ ॥
अतर बाहर एकै रंग । तब हरि डोलै जन के सग ॥
प्रगट जोति निर्मल निरबाणी । गगन सरोवरि सुरति समाणी ॥८२॥
गुर दरियाव रतन भरपूर । नेडे रहै न जानहु दूर ॥
सर्व कला[3] जाणै जाणोई । ताँते छिपी नही विधि कोई ॥
जेहि घर जोति क्रिया परगासा । जम्मण मरण की चूकी आसा ॥८३॥
मन की चंचल चाल मिटावै । अपना जन्म सुकारज लावै ॥
चद सूर दुइ शिव सुर सारे । मन बशि कीया मुक्ति सिधारे ॥
सतगुर सेइ[4] लिया उपदेश । तुरत सिधावै हरि के देश ॥८४॥
गूँगे भये जिन्हूँ रस चाख्या । पाया स्वाद न जाई भाख्या ॥
लिव लागी मनुआ अलसाना[5] । सर्व निरतर ब्रह्म समाना ॥
नाद अनाहद अहिनिशि राते । पिया महाँ रस सहजे माते ॥८५॥
समरथ सदा अडोल अथाह । गुर मिलि मनुआ बेपरवाह ॥
गया बिलाय[6] इह दूसर भाव । सभनीं महलीं एको राव[7] ॥
वहदत[8] कसरत एकै रंग । ज्यों जल ते जल उमकि[9] तरंग ॥८६॥
भउ भागा निरभउ घरि आया । तब इहु चरण पखालै माथा ॥

---

(१) गुरमत से निहीन मनमुख अभिमानी अपने को सुमेरुवत् ऊँचा कहते हैं किन्तु राई समान (आपा भाव से रहित) अपने को नहीं मानते । (२) झुके बिना, निरअभिमानता धारे बिना । (३) सपूर्ण विद्या । (४) सेवा करके । (५) रस में निमग्न हुआ । (६) लीन हो जाना, भाग जाना । (७) समस्त पिंडी और ब्रह्मांडी लोकों में एक उसी मालिक का जलवा है । (८) एकता अनेकता सब एक ही सरूप है जैसे निस्तरग रुप जल तथा तरग सहित, एक ही रूप होता है । (९) उछलना, उत्पन्न होना ।

होय अधीन सेवक दरि ठाढी । जॉके चरन[1] कॅवल रुचि वाढ़ी ॥
दिष्टि माहि सारा जगु देखै । आप अलेख और सव लेखै ॥८७॥

प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

॥ १ ॐकार सतगुर प्रसाद ॥

(राग रामकली महला १)

॥ नौ नाड़ी, दश द्वार, चार जुग्ति का ध्याउ[2] चला— शरीर का वंधेज ॥

नौ नाड़ी की जो मिति[3] जानै । विचरि विचरि ओह आखि वखानै
ठौर ठौर की नाडि वतावै । जॉ कौ अगम[4] दृष्टि होय आवै ॥
प्रान पिड का करै विचार । तॉकौ सदा सदा नमस्कार ॥
नाड़ि नाड़ि का डेरा[5] कौन । कौन नाड़ि जितु वसता पौन ॥

---

(१) ब्रह्मांड में इसका मालिक निवास करता है और ब्रह्मांड उसका शरीर है। जो वाहर है वोही भीतर है। भीतरी ब्रह्मांड में भी मालिक वसता है और वह उसका शरीर है और शरीर में सव से नीचे अग का नाम पॉव है, सव से ऊपर का सिर। सव से नीचे का उसका अतरीय अग (पॉव) सहसदल कमल है। पॉवों का देवता वाहर अगनी है, भीतर भी सहसदल कमल में निरजन ज्योती देवता है, नाभी उसकी त्रिकुटी है। नाभी का मालिक विष्णु आदित्य भगवान पिंड में है। ऊपर ब्रह्मांड में त्रिकुटी का मालिक भी आदित्य ही है। हिर्दे में चद्रशेषर शिव रहता है और ध्यानी को ध्यान में चद्र दर्शन होते है। इसी प्रकार शून्य मडल में पूर्ण चद्र का प्रकाश होने से यह शिव लोक शून्य मडल अतर्यामी का हृदय है, सच खड सिर (उसका) है। सिर में सारी ज्योति दिमागी भडार में ही रहती है सो सर्व समर्थ मालिक अकाल पुरुष का पूर्ण तेज सच खड में है इस कारण उसका सिर है। मनुष्य शरीर के अतरवर्ती जीव का सर्व शरीर ही अपना निज रूप होता है परतु उसका असली निज रूप अतर दिल दिमाग में रहता है। इसी प्रकार अतरीय ब्रह्मांड का मालिक उक्त स्थानी स्वरूप अगों वाला होता हुआ भी सच खड वर्ती निरकार के सारभूत (स्वरूप) वाला है। भाव यह कि सच खड में निरकार का निवास है और निरकार का अपना असली स्वरूप और भी उसके अतरवर्ती है जो अपरपार और अवाच सपूर्ण आनद मात्र है। विना स्वरूप ज्ञान के इष्ट नहीं वॅध सक्ता और जिस इष्ट प्रीतम को प्रेमी अपने पर कृपालु करना तथा उससे अभेद होना चाहता है तो उसके चरणों पर गिर पड़े रहने से वढ़ कर और उपाव नहीं होता। इस कारण जो सुरति कि परम पुरुष से मिला चाहती है रुचि वढ़ा कर उसके चरण कमल रूप सहसदल के स्थान पर पड़ी रहे, वस जव चरण हाथ में आये अर्थात वहा निरजनी ज्योत प्रकाशित हुई और उस पर सिर (आपा-भाव) सुरति का झुका तत्काल आदि पुरुष आप झुक कर हृदय से लगावेगा और सिर चूम कर अपने स्वरूप में मिला लेवेगा। गुरू महाराज उन्हीं चरणों का इशारा करते हैं। (२) अध्याय। (३) मर्यादा। (४) अनुभव। (५) निवास स्थान।

नौ नाड़ी का क्या क्या नाँउ। नानक जो कहि देवै तिसके बलि[1] जाँउ१
वंक नाडि पहली का नाँउ। वंक नाडि रनकि[2] गुन गाउँ॥
वंक नाड़ि बोलत सुख जीउ। बक नाड़ि दृढियै[3] करणीउ॥
रसकि रसकि जब हरि गुन गावै। बक नाड़ि महि गाइ रिझावै॥
करि किरपा प्रभु अगम दिखावै। नानक पहिलो नाडि बंक नाँवै॥२॥
दूजी नाडि शहरग कर धरी। जाँ महिं सास बिराजत हरी॥
शहरग माहि बसै जब शाह[4]। शहरग चलै पौन का राह॥
पौन मारग शहरग है भाई। फिरि घरि आय तहीं ठहराई॥
बोलनहार शहरग महि आवै। नानक दूजी नाड़ि बतावै॥३॥
उहज नाडि पानी की जाय। बिन पानी पीते कुम्हलाय॥
हरिया होवै तब पीवै पानी। बिन नीर पीते नाड़ि कुम्हलानी॥
सरसा[5] रहै पानी के सग। बिन पानी सूखै निभरंग[6]॥
जब सूखै तबही तिप[7] लागै। तब पानी पीवन कौ भागै॥
पित्त नाड़िमहि आतश भाई। तौ नानक तीजी नाडि बताई॥४॥
हहू नाड़ि ऊष्म[8] का थाना। तब होय सम्पूर्ण जब मन शितलाना॥
बिन अहार ओह नहिं धापै[9]। हहू नाड़ि की तब गति जापै॥
हहू नाडि बिच राखी भडारा। एकसौ ग्यारह ताके डारा॥
डार डार महिं सब रस जाई। तब आहार हहू महि पाई॥
चौथी नाड़ि हहू की कीन्ही। नानक किनहूँ बिरले चीन्ही॥५॥
इद्री नाडि सँग सूत बनाये। नख सिख[10] का रस इंद्री जाये॥
इद्री की जड़ मस्तक भाई। जब इद्री चलै जोति[11] मिटि जाई॥
इद्री बाँधि रतन बस करिया। सोई रतन लै माथे धरिया॥

---

(१) बलिहार, कुरबान। (२) नाभी की बाई ओर मास हृदय से लेकर मध्य भाग छाती में से थोड़ा थोड़ा सा व्यग मारती हुई जो एक नाडी है जिसमें से श्वास आता जाता है उसे वक नाड़ी कहते हैं, उसके बीच में से गुप्त रीति से झनकार पूर्वक स्वत नाम की धुनि उठती रहती है उसे भी अजपा जाप कहते हैं—गुरू महाराज उसी की ओर यहाँ ध्यान दिलाते हैं। (३) उसी करने योग्य कार्य को अर्थात् नाम स्मरण ध्यान को वक नाडी में दृढ़ करे। (४) जीव। (५) सरसा, तरोताजा। (६) निश्चय करके। (७) प्यास। (८) हवाड़, भाफ। (६) धीरज नहीं धरती, तड़पती है। (१०) पाँव के नाखून से लेकर सिर की चोटी तक। (११) प्रकाश, तेज माथे का।

इंद्री की नाड़ि सोई जन जानै । तवही लाल[1] जोति पहिचानै ॥
पजवीं नाडि इंद्री की करी । नानक किसे विरले सोझी परी॥६॥
गुहल नाडि प्रान सुख शांति । तिलु[2] अटके तरफै दिन राति ॥
जव अटकै तव क्या सुख होवी । पेट गगन[3] जिय कौ दुख होवी ॥
गुहल नाडि का अटकै राहु । तव इस जिय कौ खरी महाहु[4] ॥
गुहल नाड़ि जव सहजी[5] चालै । तव इस जिय की सहजि वहालै॥
छठवीं नाडि गुहल करि साजी । नानक कीन्ही अचरज वाजी ॥७॥
वेनी नाडि महि तन की परखा[6]। नाडी का कूच[7] वीनी करि रखा ॥
नाटक महि जिय की सव जोति । वीनी महि नाटका ओत पोत[8] ॥
नाटक चलै तवहि जिय सुखी । ठौर छोड़ै नाटक जिय दुखी ॥
वेनी अरु नाटका रहि जावै । तव इस जिय कौ मरना आवै ॥
वेनी नाटका एकहि जाय । नानक सप्तमि नाडि वताय ॥८॥
अष्टम नाडि कोई जन जानै । तहाॅ सिद्धि नौनिधि ठहिरानै ॥
वाहू कर्म शोधि उह पावै । अठवीं नाडि जे कोइ वतावै ॥
अठवीं नाडि राखी विच त्रिकुटा[9]। जिस सूझै तिस एह ध्यान जुगटा[10]
अठवीं नाडि रखी है गुहजा[11] । नानक कोइ जन खोजै शुहदा[12] ॥९॥
नवीं नाड़ि महि सव जोति वनाई। कोऊ विरला खोजि लहै जन भाई
नवीं नाड़ि का महल[13] है कैसा । जो चीन्है सो उसही जैसा ॥
नवीं नाडि राखी है दूरे । खोजि लहै सोई जन पूरे ॥
नवीं नाडि राखी असमाना[14] । नानक कोइ जन उहाॅ समाना ॥१०॥
नौ नाडी का नाॅव वताया । जिन कहिया तिनि आप दिखाया॥
आपहु कोऊ किछू न जानै । जिनि डीठा सो आपि वपानै ॥
अनडीठा किछु कहिया न जाई । जिन सूझ परी तिनि साखि[15] सुनाई॥
रोम रोम की जव मिति आवै[16]। नानक हरि प्रभु साचै भावै ॥११॥

---

(१) आत्म ज्योती । (२) तिल मात्र, रत्तक भर। (३) पेट के अंतर्वर्त्ती जीव (कृम कीट आदि) (४) भारी कठिनता, मुशकिल। (५) सहज सुभाव, अपनी चाल के अनुसार। (६) पहिचान। (७) नाड़ी का जाल। (८) ताने बाने की नाई परस्पर गुथी हुई। (९) त्रिकुटी। (१०) जुड़ गया। (११) गुप्त। (१२) तत्त्वदर्शी। (१३) मुकाम। (१४) सहसदल, भ्रूचक्र में। (१५) प्रमाण, निशानी। (१६) मर्यादा।

आगे दस द्वारे चले, द्वार द्वार की रीति ।
जिस जन द्वारे निरखते[1], तिस ढाही भ्रम[2] भीति ॥
द्वार द्वार की मिति कही, द्वार द्वार की रहित ।
जिस गुर पूरा भेटिये, सोई कथनी कहित ॥
कहै वृतन्त दसवें द्वार का, मन मथि[3] कहै सुनाय ।
गुहल दुवारा नानका, सोई कहै लिव लाय ॥१२॥
गुहल दुवार प्रान महि, प्रान पिंड का राहु ।
वाई वहन[4] जब नीकसै, प्रान पिंड सुख ताहु ॥
जीव प्रान सुख शांति होय, जब चलै गुहल[5] की नाड़ि ।
जे इक किनका अकट[6] होय, रहै दसे दर ताढि[7] ॥
सहज चलत सुख होय जिय, प्रान मुक्ति उदमाद[8] ।
नानक गुहल दुवार की, कथा विषम बिसमाद ॥१३॥
इन्द्री द्वारा बिंदु का, रत्न गिरन का राहु ।
जिस खूले तिस हिरै[9] जोति, बधै रत्न[10] महाहु ॥
माथे प्रगटै रत्न जोति, जो इन्द्री बंधन देय ।
गुर का शब्द बिचारि जन, रत्न बिहाझहि[11] सेइ ॥
काम वध नरकहुं बंछै[12], वहु जूनी तें दूरि ।
नानक रत्न अमोलक तिनि लिया, पच भूआत्मा[13] चूरि ॥१४॥
तृतीया द्वारा मुख किया, जित बोलन बकन सुभाव ।
शब्द कुशब्द बकता रहै, बकते का दरियाव ॥
अमृत भोजन जित परै, करता स्वाद अनेक ।
निंदा अस्तुति बकता रहै, अहि निशि गणत अनेक ॥
भक्ष[14] अभक्ष अहि निशि रचै, कह्यौ मुख द्वार ।
नानक तीजे द्वार का, सुनिये इह बिस्थार ॥१५॥

---

(१) दिखाई देते हैं। (२) भरम की कंध। (३) मन को मर्दन करके। (४) अपान वायु का सरना, गुदा मारग से पौन का निकलना। (५) गुह्य नाड़ी, गुदा की। (६) थोड़े भी अटक जावे तो। (७) ताड़े रहना, खेंचे रहना, अफरे रहना। (८) प्रान खुली रीति से अपने उद्यम को धारे रहता है। (९) क्षीण या नष्ट हो। (१०) इकट्ठा करे, सौदा करे, ख़रीद करे। (११) बच जाना। (१२) पांच भौतिक शरीर को चूर करके अर्थात बड़ी ही कठिनता से। (१३) उचित अनुचित अहार।

दुइ द्वारे कर नासिका, महा मुशक[1] रस लीन।
खुशबूई रस झापने[2], बुरा भला बुधि दीन॥
खुश खुशबोई सौंघि[3] कै, सुमिरत सिरजनहार।
इस मन कै एकी एक गुन, बूझ न होहि गँवार॥
सब रस लीन्हा नासिका, सौंघन कै सुख वास[4]।
नानक कीन्हे दुइ द्वार, लेन साँस अरु वास॥१६॥
दुइ द्वारे नेत्तर किये, निरखन कै उत्पत्ति।
निरखि निरखि होवहि विसमा, जानत सब गति मित्ति॥
अठसठ तीरथ पगि भवै, साधू निरखन जाय।
चारि कुंट[5] चौदह भवन, निरखि निरखि बिगसाय॥
उत्पति परलौ निरखने, नेत्र किये प्रभु आप।
नानक निरखै नेत्र महिं, जल थल रह्यो व्यापि॥१७॥
दुइ द्वारे करन किये, हरि जस सुनहि सहज।
गीता[6] अरु भागवत की, कथा सुनीजै रज[7]॥
बेद चारि अठारह पुरान, सुनिये हित चित लाय।
जो जन प्यासा नाम का, हरि जस सुनि बिगसाय॥
शब्द कुशब्द सुनन को, दुइ दर करन कीन।
नानक करनी ब्रह्म सुनि, होइहै सत अधीन॥१८॥
सहजी दसवें द्वार की, कथा सुनीजै संत।
तहँ प्रगास अती घना तहँ, शशीअर[8] सूर अनंत॥

(१) अतर आदि सार सुगंधि। (२) सुगंधी रस को झपोकने के वास्ते। (३) सूंघ कर। (४) सुगंधी। (५) दिशा। (६) यह वचन लोगों की साधारण रुचि के अनुसार कहा है, भाव इस का यह है कि जिस प्रकार बालक मिठाई आदि का आग्रह करता है तो पिता कहता है लो तृप्त होकर एक बार खालो बार २ ऐसा खयाल न रक्खो यही अभिप्राय गुरु साहब का इस जगह है कि तृप्त होकर एक बार कथा पुरान सुन लो कि फिर २ यही काम न करना पड़े, असली काम और है जिसको गुर बाणी में आप दर्साया है—"रे नर क्या पुराण सुनि कीना। अनपावनी भक्ति ना कीनी भूखे दान न दीना॥" तात्पर्य यह है कि उनको सुने और सार ग्रंथ को लेकर सत्यासत्य की कसौटी पर कसे, जो धारणीय हो धारे, त्यागनीय को त्यागे, बार २ पीसे का क्या पीसना। (७) तृप्त होकर। (८) चद्रमा।

तहँ चढि मनूआ होय अकाल, तिस काल न निरखन[1] जाय ।
गुर किरपा उस द्वार महिँ, मनूआ सहज समाय ॥
दसवँ द्वारे की कथा, सुनिये सत सुभाय ।
नानक जीवत ही मरै, जब दसवँ द्वारे जाय ॥१९॥
नौ दरवाजे परगटै, दसवें गुहज अस्थान ।
नौ निरखत सभ सैँ किसैँ[2], दसवें संत समान ॥
संत भक्त जहाँ रचि रहे, जो नौ तें ऊपरि होत ।
नानक नौ दर निरखते, गुहजी निर्मल जोति ॥२०॥
महा अगम गढ किया बनाय । विच अठसठ[3] हाट किये जनाय ॥
सुरखी[4] फीफसु[5] पित[6] विचि कीन्हा । काया गढ की विषम है चीन्हा ॥
जीआँ महिँ जीअ केते हहिँ भाई । गुहज जियाँ की खबर न पाई ॥
इस नगरी महिँ अगनित जीया । अवर गुहज एक प्रगटीया ॥
एक प्रधान अवर हैँ गुहजे । जिन्ह गढ चीन्या तिसही सूझै ॥
प्रान पिंड अगम है भाई । नानक कथा कह्यो किछु कह्या न जाई ॥२१॥

प्रथमै जुगित महा निरवाण । नाहीं पीवण नहिँ तहँ खाण ॥
दुतिया जुगित अभय सँग धनी । नाम प्रसाद[7] पिंड नहिँ छनी[8] ॥
तीजी जुगित जत्त करि धारी । बाल बुद्धि सब दृष्टि उचारी ॥
चौथी जुगित दया मनि आई । चहुँ जुगती की तब मिति पाई ॥
काया नगरी का मारग जिन पाया । चहुँ जुगती का नाम बताया ॥
अगम नगरी[9] विषम दरियाव । नानक हड चम का किया बनाव ॥२२॥

---

(१) देखने मात्र को भी उसके समीप । (२) सभ किसी को नौ दिखाई पड़ते हैं मगर दसवें के गुह्य होने के सबब उसमें संत ही समाते हैं । (३) सविस्तर निर्णय आगे आवेगा । (४) कलेजी । (५) फेफड़ा । (६) पित्ता । (७) कृपा, प्रताप । (८) क्षीण होना । (९) अगम लोक, जब सुरत अगम लोक को सचखंड से ऊपर चढ़ती है तो एक प्रकार का तात्कालिक शब्द जिसके दृष्टांत के लिये कोई शब्द ही नहीं परंतु समझाने के वास्ते ऐसा कहा जा सक्ता है कि निर्मल अपूर्व तथा विस्तरित मैदान में अपनी मौज में मगन (अमृत के नशे में पड़े हुए) राजकुमार की सेज्या को अगम का हड़ (जल का शब्दायमान वेग) जैसे अपने ऊपर २ वहा ले जाकर उसे अपने निज पिता के गृह में पहुंचा देवे इसी प्रकार का एक अगमी शब्द सचखंड वासी सुरति को भी एक अकह दशा में उड़ा कर ले जाता है जहा पर कि अगम नगरी है । उस शब्द का महान् रसीली दशा में उड़ाते हुए चढ़ा ले जाना जिस अद्भुत परमानंद का उत्पादक है उसको कोई असंख्यात जीवों में से विरला ही अनुभव कर सक्ता है—उसी का इशारा गुरू महाराज ने दिया है ॥

पहली माहीं निर्मल नीर । दूजी महिं ले किया पॅत्रीर ॥
तीजी महिं ले थान थनोला । चौथी महिं सच दीये बोला ॥
पॅजवीं में ले फोटी फुटी । छठवीं में इहु देहु पलटी ।
सत्तवीं माहिं ले राखी उलटी ॥
अठवीं महिं अठसठ ले राखे । नावीं महिं ले नौं दर भाखे ॥
नौ नाडी बहत्तरि कोठडियाँ । नौं खड चारि कुड चौदह पुरियाँ ॥
इकीस ब्रह्मंड सत्त सत्तीका । धरती आकाश बंधन सब जी का ॥
पिंड ब्रह्मंड धरती आकाश । मिरत मंडल प्रगटे ले स्वॉस ॥
दसवेँ महिं कीया परगास । बिसम भया देखि नानक दास ॥२३॥
मानसदेह करि कीया कध[1] । नौं नाडी बहत्तरि बंध ॥
जैसे दूध महिं जावनु[2] दिया । रक्त बिंदु गुर शब्द अलीया ॥
पहिली माहीं निर्मल नीर । दूजी महिं उत्पन्न मथीर ॥
तीजी माहिं रक्त का गोला । चौथी माहीं जोति[3] वटोला ॥
पॅजवीं माहीं सगल शरीरा । छठवीं माहिं सम्पूर्ण मथीरा ॥
सतवीं महिं धातु ले सचियाजीउ । अठवीं महिं नप शिप साजि सरीउ
अंगुल पिंगल नप शिप नाक । नावीं महिं होवहि तन पाक ॥
दसवीं महिं जो होआ मुक्ता। नानक ऊर्ध कवलमहिं हरिहरिजपता२४
इगंला पिंगला सुष्मना नौ द्वारे । चारि चौदह इक्कीस भॅडारे ॥
दसवें मास दस द्वारा मुक्ता । उर्ध मुखि आवत उर्ध मुखि जाता॥
नेत्र रसना कर कीये पॉउॅ । करिबो बचन हरि भगति कमाउँ ॥
जब लगि भगति करै तब छूटै । नहीं गरभ अग्नि महिं काचै फूटै ॥
जब पाके तब भगति कमावै । नहीं फूटि जाय काची ही आवै ॥
दसवें मास आय बाहरि डीठा। नानक हरि बिसाख्याथ न लागा मीठा२५
जैसे साठ करी हडनारी[4] । अनील असख करी रूमारी[5] ॥
सवा घडा रक्त[6] का करिया । इहि बिधि ठाकुर देही सरिया[7] ॥

(१) सम्पूर्ण नाडियों का आधारभूत योग शास्त्र प्रसिद्ध नाडियों का पुतला जिसका शास्त्रीय नाम कद है। (२) जैसे दूध में दही की लाग। (३) तेज शामिल किया गया, लपेटा गया। (४) हड्डी। (५) रोमावली। (६) सवा घडा प्रमाण शरीर में रक्त है एक प्रति में पाठ रत्नें था यदि रत्न पाठ हो तो यह वीर्य का प्रमाण समझना चाहिये, रक्त का प्रमाण दस धारण वजन का आगे दिया है। (७) रची।

एक हाथ महिँ सव परकारा । जो चीन्है सो पावै पारा ॥
हाथ ऊपरि चपा बक नाले । ताँ ऊपर रसना नाम सम्हाले ॥
दुइ दरवान जव ताली खोलहिँ । तौ वैनी अपने रस बोलहिँ ॥
रक्त बिंदु का देँह उपाया । नानक अचरज रूप दिखाया ॥२६॥
करि कलबूत बिचि जीव समाया। कौल[1]-वचन दे भीतर आया ॥
अंतर देखि खरा लोभाना । कौल देने कै पछेताना ॥
अबपछताने क्या होता मीता । जब हरिसिउँ बोल वचन है कीता ॥
देखि अधेर वहुर उह डरिया । तव हरि सिउँ बोल वचन है करिया ॥
इस नगरी महिँ हाट बजारा । ऊहाँ मन जाय किया पसारा ॥
छोडि पसार मीत उठि चालु । अपना बोल वचन सम्हालु ॥
जिनि तू साजि स्वाँरि सिगार्‌या । नानक प्रभु सिउँ वचनन हार्‌या ॥२७
उह कैसी धीरी जित प्रभु पेखै । आँखि पसारि नहीँ प्रभु देखै ॥
ओइ दृग अवर जिनी प्रभु दीसै । बिनु उन आँखी मिलण न रीसै ॥
ओइ आँखी जिस आप दिखावै । ब्रह्मदृष्टि ताँ को होय आवै ॥
धन्य ओइ आँखी जिन प्रभु डीठा । नानक हैाँ मैं बिनसी ढीठा ॥२८॥
अठारह कुग[2] करि पिंजरू करिया । दुइ लट्टू लै ऊपरि धरिया ॥
सूति चौकाठि धरिदोय गुहजा । हिकमत साजि किया दरवाजा ॥
दरवाजे शिपरि करी दुइ वारी । इन महिँ केते मरद केती व्याहहिँ नारी
एक नारि[3] बत्तीस हहिँ मरदा । उन नारि सिउँ भेद न परदा ॥
उनकी रखवारी होइ उह नारि । जब ओह भागहि उहु देइ बिगारि ॥
उन नारि बिगरे भागहिँ दोइ वैरी । नानक दुहुँ भवर मरदाँ की होय खुभारी २९
दरवाजे की ताली[4] दोय । दुहुँ वारी ऊपरि दुइ रत्न[5] परोय ॥
उन रतनाँ की जोति सभ रचना दीसै । गुहज जोति नहिँ परगट कीसै

---

(१) इकरार । (२) करग अर्थात पिंजर की हड्डियाँ जो तादाद में अट्ठारह होती हैं—इन्हीं अट्ठारह करग की हड्डियों का पिंजर खड़ा किया गया है और उन के ऊपर दो लट्टू थनों के रक्खे गये हैं । (३) रसना नारी बत्तीस मरद रूप दाँतों में । (४) चाभी, नेत्रों से भाव है । (५) दोनों वारियाँ गोलक (पोल) नेत्र को कहा है उनके उपरले मुकाम पर पुतली रूप रत्नों को परोय कर एक कर देवे इन दोनों की आदि जोत जो शिव-नेत्र में है उसी का बाह्य प्रकाश सभ रचना दृष्टि आ रही है ।

दुइ स्रवन किये हरि कथा सुनन कौ । नेत्र किये दरशन पेखन कौ ॥
नासिका कीया मुशक' लेन कौ । मन कीया हरि भगति देन कौ ॥
मस्तक कीया साध निवन कौ । पिंजर किया सब रस पीवन कौ ॥
प्रान पिंड का किया मथत । नानक कोट मधे को बूझै सत ३०
धुन कै बीच धरी सब धरनाँ । हीये बीचि रखिया है फुरना ॥
गाँठी ऊपरि गाँठी धरी । होय निरंभ' प्रभ मिहनत करी ॥
गल विच अगनित नारि बनाई । अपने अपने ठौर रखाई ॥
नौसै नारि पिंजर की करी । कोटि मध्ये किसै सोझी परी ॥
जिस किरपा तिसही कुछ जाना । नानक प्रान नगर देखि रह्या हैराना ॥३१॥
दरवाजे के दोय बुरज' स्वाँरे । हिकमत करि उस्ताद सुआरे' ॥
करि हिकमत इह कला बनाई । डौले तले लेधरी कलाई ॥
नाटक वेनी' कोहन स्वाँरी । अनत कूच कीआ हहि नारी ॥
नौं नारी का कोइ मत जानै । भुजा भुजा सब कोय बखानै ॥
पंच नाम भुजा के कीने । जडाउ' किया है चौदह दूने ॥
चौदह दूने' गाँठी पाई । दोय मरद दश नारि उपाई' ॥
अठतीस' पौड़ी का किया बनाउ । दश नारि मरद का एको नाँउ ॥
आप जीवत मुख जाका मूआ । इह अचरज खेल प्रभु तुमतें हूआ ॥
बहुत बिस्थार कहियतु है ऐको । नानक देखहु एहु विवेको'' ॥३२॥
दुइ चुशमे'' पानी के करे । पानी साथ समपूर्ण भरे ॥
पानी की मटकी करि धरी । जैसे शीशी पानी भरी ॥
शीशी कौ जब ठनका आवै । तब पानी बीचउ विनसि समावै ॥
पानी वीचि ले जोति बनाई । कुदरत'' करि विच धीरी पाई ॥
धीरी बीच जोति सब धरी । चशमे बीच प्रभु कुदरत करी ॥

---

(१) सुगंधि । (२) सहारे से रहित, बिना दूसरे की सहायता के । (३) कथे । (४) बनाये । (५) बीणी (कलाई) की नाड़ी । (६) जोड़ । (७) अट्ठाइस गाँठें उँगलियों के पोर । (८) अंगुष्ठों के उपरले भाग दो मरद और निचले दोनों भागों समेत १० नारियाँ (अँगुलियाँ) । (९) अँगुलियों के पोरों की अंतरालिक रेखायें न्यूनाधिक होती है गुरू साहेब ने इनकी मध्यभावी औसत ली है सो भद्र पुरुष के ३८ ही होती है, विरक्त के ४२ और पंडित के (जो धारणाशील हो) ४८, ऐसा ऐसा इनका विचार है । (१०) निरणय । (११) आँखें । (१२) कारीगरी, शक्ति ।

रंग रंग के दस्ते[१] पाये । स्याह सुपेद रग सुरपाये ॥
भौहाँ सेली सूत[२] बनाई । नानक पानी की कला[३] जनाई ॥३३
कहहि कान की को मर्यादा । कोपर पुटपुटी त्रै अंदाजा[४] ॥
तीनौँ का एकोई वासा । प्रभु अबिनाशी किया तमाशा ॥
क्या कहिये किछु अत न पाया । अचरज करि प्रभु रचन रचाया ॥
गल ते ऊपर एह पसारा । आँख नाक मुख कान स्वाँरा ॥
ठोड़ी कीन्ही हड्ब[५] बनाई । नानक क्या कथिये कछु कथ्या नजाई ॥३४
कोपर[६] किया देही का छत्तु । अवर हाड चाम रक्त[७] पित्तु ॥
कोपर ऊपर अगनित बाल । कवन खान[८] कवन कहीअहिं साल[९] ॥
साल अढाई बाल कहावहिं । उन बालहि केई बिरले पावहिं ॥
जब ओइ भीगहिं तब होवहि पाक । जब ओइ कोरे तब सदा नपाक
हिन्दू मुसलमान ना जाने । ओइ ले राखे गुहजै थानै ॥
अगनित बाल कोपरी के भाई । नानक इह मिहनत आपि उपाई ३५॥
नासिका कक्ष[१०] इंद्री के मूआ[११] । हराम ओइ बिचि सगले लूआ[१२] ॥
और लूआ सगले हहिँ लेखे । उन लूअन कोइ बिरला देखे ॥
तीन बाल का सदा ही भर्म । बाल अढाई सदा अकर्म ॥
लूव लूव का करै विचार । वा कौ सदा सदा नमसूकार ॥
रोम रोम की आखि सुनावै । नानक वाका दास कहावै ॥३६॥

---

(१) डोरे, सूक्ष्म रेखायें जो क्रोध शोक तथा आनन्द आदि अवसरों पर प्रगट हुआ करती है। (२) जैसे विशेष पथाई फकीरों के गले में रेशमी तॉत की सेली पड़ी होती है इसी प्रकार श्याम श्याम कोमल रोमों का घेरा भँवों का आँखों के गिर्दे दिया हुआ है। (३) खेल। (४) काउली, कनपटियाँ और कान तीनों अदाजे (करीने) के साथ बनाये गये हैं। (५) चराड़िया, जबड़ों का संबंधित स्थान। (६) खोपड़ी। (७) लहू। (८) ढेर रूप बाल केशों से भाव है। (९) खोपड़ी पर के रोम जो केशों में गुप्त हैं, जो ब्रह्मरन्ध्र के स्थान पर होते हैं, जब तक उनपर जल का स्पर्श न होवे स्नान पूर्ण नहीं होता परंतु उनका भेद हर कोई न पाकर प्राचीन आचार्यों ने जोकि कर्म काड प्रवर्तिक हुए हैं साधारण तरह पर सभ में यह प्रचलित कर रक्खा है कि वह चोटी को जरूर ही जल स्पर्श करावें। यही कारण सहजधारी हिंदु मतावलंबियों के शिखा (चोटी) धराने का है। उन बालों का काटना धर्म नहीं है क्योंकि कुल आचार कर्मकाड आदि का स्नान पर निर्भर है और स्नान उनके बिना पूर्ण नहीं होता। यह प्रचार केश धारियों अर्थात् सिक्खों में भी है कि स्नान करते समय ब्रह्मरन्ध्र के स्थान पर बहुधा जल का स्पर्श करते हैं। मुसलमान सर्वथा भूले पड़े हैं इसी वास्ते चोटी तक भी नहीं रखते। सन्यासियों को कर्मकांड का अधिकार नहीं इस कारण वोह भी शिखा (चोटी) का मुंडन करा देते हैं। (१०) बगल। (११) मोटे बाल। (१२) रोम।

नाभ तलै नल किया वनाय। तिन महिँ काम रहिया घर छाय॥
काम द्वार इंद्री है कीनी। उनि वंद वद की रस हर लीनी॥
इंद्री जीतै सो साधू कहावै। इंद्री जीतै सो परम पद पावै॥
काम पदार्थ इंद्री महिं धरिया। जिनि चीनिया तिस कौ हथ चढिया।
जिनि खोलिया तिन रत्न गुँवाया। नानक इंद्री स्वाद जो निभरमाया॥३७॥
कूले[1] तले स्थल है कीनी। गोडे ऊपर चपनक[2] दीनी॥
चपनक तले आँखि[3] दुइ करी। नाडी सूति मिहनत करि धरी॥
सथल कोले तलै वनाई। दुहं नाड़ी की नींउ वॅधाई॥
दुइ नाडी सथल ते तले। तिनि प्रसादि प्राणी सुखि चले॥
सथल तले पिलाँ[4] ले दीनी। नानक ऐसी पुतली[5] कीनी॥३८॥
पिलकाँ कहि बीचार सुनावै। वद वद की खवर वतावै॥
एक नाली दुइ गिट्टे करे। नाडी के कूच तले लै धरे॥
पग के तले तली है कीनी। तली हिवार[6] चलन कैा दीनी॥
पग के आगे अंगुलि स्वारी। वारह मरद आठ है नारी॥
दुह मरदाँ[7] के मरद हहिँ दोय। कोई बतावै विरला ओय॥
आप जीवत मुख[8] मूए हैं उनके। कोई नाँउ वतावै तिनके॥३९॥
विद विद सभ कोई कहै। महा विदु[9] कोई बिरला लहै॥
महाँ विदु माँहिं लाल वनाया। जिनि चीना तिनही जन पाया॥
तत्त विदु की क्यों मिति आवै। जव वधै तवही मिति पावै॥
विदु भरोसे इंद्री कसी। राँडी[10] कै डरि वन महिं बसी॥
नेत्र न सोवहिं विन्दु गिरन ते। मन वाँधे चहुँ कुड[11] फिरन ते॥
दह दिशि धावत इह मन वाँधा। नानक महा रत्न विदु ते लाधा[12]॥४०॥

(१) कूले से भाव चूले या दोनों पहलुओं से है। (२) चपनी या घुटने के ऊपर की हड्डी। (३) घुटने के आस पास के छोटे २ दोनों गढे। (४) टाग के पाछे का गुद्दीदार मांस (पिडलियां) (५) शरीर। (६) हमवार-एकसार चपटी जगह मैदान आदि। (७) दो अगुष्टों के दो नाखून। (८) नाखून का बढा हुआ अगला भाग मुरदा होता है इसी कारण काटा जाता है उसके कटने में कलेश नहीं होता परन्तु किंचित भर पीछे से कट जाय तो कई दिन पर्यंत पीडा करता है, यही इसकी परख है। (९) ओज धातु वीर्य का सार जीवन तत्व (वैदिक कथनानुसार) ओज में ही स्थिर रहता है। (१०) स्त्री। (११) दिशा विदिशा, परन्तु यहां भाव पदार्थों से है। (१२) प्राप्त हो जाता है।

बाँधी बिंदु रत्न जब पाया । बिंदु बाँधी जब मन ठहराया ॥
बिंदु बाँधी जब जोति प्रगासी। बिंदु बाँधी जब मिल्या अबिनासी
बिंदु बाँधी तब पिंड थिर पाया । बिन्दु बाँधी जब अमर ठहराया
बिन्दु बाँधी जब आपि आप जाना। बिन्दु बाँधी जब तत्त प्रगटाना
बिन्दुबाँधीजबब्रह्मकौरलिया । नानक बिन्दु बाँधी फिरि गरभन गलिया॥४१॥
बिन्दु बाँधी तब रहत सभ जानी । बिन्दु बाँधी तब जोति प्रगटानी
बिन्दु बाँधी तब बिषम गढ़ साधा।बिन्दु बाँधी तब अभय पद लाधा
बिन्दु बाँधी तब उपमा[१] त्यागी। बिन्दु बाँधी तब अगम धुनि लागी
बिन्दु बाँधी तब जोग मिति पाई। बिन्दु बाँधी तब शिवजुगतिआई
बिन्दु बाँधी ते क्षिमा मन आवै । बिन्दु बाँधी ते रत्न मिति पावै॥
बिन्दु बाँधी तब काया बीचारी । नानककोट मध्ये कोई रत्न ब्योहारी ४२
रत्न की सार कोई और न जानै। रत्न की जोति कोई जौहरी पिछानै
रत्न जोति कौ कोइ जौहरी पावै । रत्न की जोति मिति आखि सुनावै
रत्नाँ का पारखू रत्न कौ पावै । बिन जौहरी नाँ परख्या जावै ॥
रत्न कै पारखू रत्न मनि जरिया। रत्नाँ कै पारखू रत्न हथि चढ़िया॥
रत्न कै पारखू रत्न मोल लीया। नानक रत्नाँ कै पारखू रत्न बशि कीया४३

जब रत्न हथि चढिया तब जोति पसारी ।
जब रत्न हथि चढिया तब लागी धुनि तारी ॥
जब रत्न हथि चढिया तब सुन्न समाया ।
जब रत्न हथि चढ़िया तब अगम दृष्टाया ॥
जब रत्न हथि चढिया तब बिमल जुगति[२] पाई ।
जब रत्न हथि चढिया तब भई शीतलाई ॥
जब रत्न हथि चढिया तब सभ मिति जानी ।
जब रत्न हथि चढ़िया तब भये मुनि ध्यानी ॥
सुन्न समाधि कौ पाया जिन रूप ।
नानक तिस हथि चढिया रत्न अनूप ॥४४॥

(१) हवाड़ अधिक बोलने आदि का स्वभाव। (२) निर्मल युक्ती सहज योग की।

जिनि बिन्दु खोई तिनि रत्न गुँवाया।
जिनि बिन्दु खोई सो गरभ महिं आया॥
जिनि बिन्दु खोई सो फिरै चौरासी।
जिनि बिन्दु खोई सो परै यम फाँसी॥
जिनि बिन्दु खोई तिस पिंड धरि[1] पाई।
जिनि बिन्दु खोई तिस काल सताई॥
जिनि बिन्दु खोई तिनि सब किछु गुँवाया।
जिनि बिन्दु खोई तिनि महा दुख पाया॥
जिनि बिन्दु खोई तिस कैा खरी भारी।
जिनि बिन्दु खोई तिस करै जम ख्वारी॥
जिनि बिन्दु खोई तिस अंत दुख होसी।
नानक जिनि बिन्दु खोई सो अंत कैा रोसी॥४५॥
जिनि बिन्दु खोई सो जन्म फिरि आवै।
जिनि बिन्दु खोई सो सदा दुःख पावै॥
जिनि बिन्दु खोई तिस नरक घर बाँधा।
जिनि बिन्दु खोई तिनि महा दुख लाधा॥
जिनि बिन्दु खोई सो गर्भ महिं गलै।
जिनि बिन्दु खोई सो अग्नि ज्यौं जलै॥
बिन्दु खोई का एही बिचारु।
नानक बिन्दु खोई फिरि फिरि अवतारु॥४६॥
जिनि बिन्दु नहिं साधी पर त्रिया जोहहि[2]।
जिनि बिन्दु नहिं साधी से अंत बहि रोवहि॥
जिनि बिन्दु नहिं साधी से घरमिन धावहि।
जिनि बिन्दु नहिं साधी से अंत पछुतावहि॥
जिनि बिन्दु नहिं साधी से स्वान[3] ज्यौं जूठे।
जिनि बिन्दु नहिँ साधी से पावक मँझ लूठे[4]॥

(१) धरती में पड़ता है अर्थात् मट्टी में बरबाद हो जाता है। (२) परस्त्रियों को ढूंढता फिरता है। (३) कुत्तों की न्याईं विषई सहचारी विषय व्यसनी स्त्रियों की जूठन खाता फिरता है। (४) अग्नि में लूटे जाते हैं भाव नरकाग्नि में भुलसे जाते हैं।

जिनि बिन्दु नहिं साधी से फिरहिं मुँह काले ।
बिन्दु के सादि[1] जीअ नरक महिं घाले ॥
बिन्दु के सादि होय रहिया दिवाना ।
नानक बिन्दु खोय कै पछोताना ॥४७॥

बिन्दु चीने का कैसा स्वाद । बिन्दु चीनै पेखै विसमाद ॥
बिन्दु चीने के लक्षण कौन । बिन्दु चीने सूझै सभ भवन ॥
बिन्दु चीने का क्या परकार[2] । बिन्दु चीने तरै संसार ॥
बिन्दु चीने तिस सभ आसान । बिन्दु चीने सो रहे निरबान ॥
बिन्दु चीनै तिस सभ मिति आवै । बिन्दु चीनै तिस रत्न प्रगटावै ॥
रत्न राखिया बिन्दु के साथ । नानक जिनि बिन्दु चीन्या तिस चढ्या हाथ ४८
बिन्दु की इह मिति सुनहु रे भाई । जिनि बिन्दु चीन्या तिन रत्न मिति पाई ॥
बिन्दु की जोति माथे महिं आवै । माथे माहिं चमक अगमि दिखावै ॥
अचरज कौ चीनै अचरज जब होय । तत्त कौ चीनै तत्तदर्सी होय ॥
ब्रह्म कैा चीनै ब्रह्महो होय । जोग कौ चीनै एहु जोगी होय ॥
बिष्नु कौ चीनै सो वैष्नव होय । तप कौ चीनै सो तपा होय ॥
एते तत्त कौ जो कोइ बूझै । नानक वा के चरन लगि सीझै[3] ॥४९॥

पच दुष्ट आय अंतरि वैठे । इसहि भुलाय चलहिं होय ऐंठे ॥
अपुने अपुने मारग चलते । इसहि भुलाय बिमारग घलते[4] ॥
नाभि कँवल ते ओअंकार उठाइयै । रसना रसकि रसकि[5] गुन गाइयै
गुन गावै कैसे फल पावै । पच बिदारै[6] एक एक घर आवै ॥
अमरु[7] एक का नगर फिराया । नाम प्रधान बिचि डेरा पाया ॥
होय एक दृष्टि सभ हाटै । कहु नानक जब ब्रह्म पछातै ॥५०॥

---

(१) काम के स्वाद का मारा हुआ। (२) ढग, तौर। (३) जिज्ञासू जन अपने परमार्थी मनोरथ को उससे प्राप्त कर लेता है, सिद्ध हो जाता है। (४) कुराह में भेजते हैं, कुमारग में प्रेरते हैं। (५) जो कामादि पच जीव पर प्रबल होकर अपने २ कार्य को साधते और उसे कुमार्ग में भेजते हैं उन पर जयजीत पाने की युक्ती गुरू महाराज दर्सात हैं कि नाभ कमल के स्थान से सुरत की अंतरीय धुनि से ॐकार की धुनि जो कि परम रसीली है सहज २ प्रेम से बारबार ऊपर को उठाता रहे। (६) इस प्रकार रसिक मालिक के गुन गाता हुआ पाचो दुष्टों को फाड़ मारता है और एक असग मात्र हुआ फिर उस एक आदि पुरुष के लोक में जा पहुचता है (उप्रत) (७) उसी एक की दुहाई (शब्द की प्रगटता द्वारे) इस शरीर नगर में फिरने लगती है।

नौ ताली[1] दे दसवाँ खोलिया । तब इस गढ़ महिं एको टोलिया[2]॥
कहत सुनत भाजरि[3] तब पाई । तब आज्ञा सच्च शब्द की आई ॥
सच्च शब्द अतरि आय वसिया । सभ दुष्ट लोक नगरी ते नसिया॥
सभ सिध[4] लोक आय नगर स्थाने । नानक प्रभु के नाम समाने ५१
नाभ उपजै हिरदे महिं आवै[5] । वक नाल रनकि गुन गावै ॥
नेत्री ध्यान त्रिकुटी महिं पेखै । सच्च पधान होरु सभहि अलेखै ॥
सच सिउँ कोई बिरला जन राचै । सोई शोभा पावै दरि साचै ॥
साच शब्दु जे को वीचारै । नानक सोई सगल कौ तारै ॥५२॥
आब आतश करि बुत्त[6] कमाया । पौन वचन दे भीतरि पाया ॥
अंतर देखि बहुत लपटाना । बाहर देखन कौ पछोताना ॥
बाहर वचन देइ भीतरि वरिया[7] । सरपर[8] कौल निकसन का करिया॥
हाट पटण[9] देखि रह्या हैरान । नानक एह गढ छूटै निदान ॥५३॥
उवाहू[10] ठाकुर महिं सभ किछु आन्या।अठसठ तीरथ माहिं समान्या
भार अठारह भीतरि धारे । सप्त दीप नौखंड मँझारे ॥
चौदह भार कर कला बनाई । बिचि आठ लाख की पाल बँधाई
छिअ[11] दरशन की माला पोई । नानक चीनै बिरला कोई ॥५४॥
उत्तर दक्षन अंतरि राखै । पूरब पच्छिम इस महिं भाखै ॥
सप्त समुद बीच दरियाउ । बिच चलै जहाज प्रेम की बाउ ॥

---

(१) नौ दरवाजे बंद करके अभ्यास की युक्ती द्वारा जब दशम द्वार खुलता है तो उसमें प्रविष्ट होकर (२) मालिक को खोजता है। (३) जब कहते (स्मर्ण नाम करते) तथा यत्न करि आकाशी शब्द को सुनते उधर को ही इस की दौड पाई जाती है तब सचखंड से सत्य शब्द का परवाना इसके पास आता है भाव अपने आप ही यथार्थ रूप में भीतर शब्द खुल जाता है।(४) ऊर्ध मंडलों के स्थानी तथा शुभ विचार आदि गुण। (५) पृष्ठ २७ के टिप्पणी ५ को स्पष्ट करते हैं, नाभि से स्वास उठ कर हृदय में आता है और वक नाल जो थोड़ा २ सा व्यंग मार के शाहरग के साथ मिली हुई स्वास की नाडी है उसमें से स्वास स्वत ही ऊपर नीचे आता जाता रहता है और उसकी इस लोम प्रति लोम रूपागति से एक प्रकार की अतरीय रसीली ध्वनी प्रगट होती है जिसका नाम 'हंस' मंत्र अजपा जप है, जिस किसी ने ध्यान दिया इसे अनुभव किया है, सोई गुरू जी शिव नाभ राजा को उपदेश करते हैं कि उधर ध्यान कर परन्तु नेत्रों की दृष्टि का त्रिकुटी के स्थान पर (जहाँ पर कि दृष्टि की तीन धारें एकरूप होती हैं) स्थिर करना जरूरी है। आगे इस अभ्यास की महिमा दो पदों में है। (६) शरीर यन्त्र, देह का पुतला। (७) प्रविष्ट हुआ, भीतर घुसा। (८) तत्काल, आज्ञा पहुचतेही, अवश्य ही। (९) बाज़ार, नगर। (१०) उसीही। (११) छः।

प्रेम भगति की वाउ उड़ारे । जाय निरंजन[1] के घाटि उतारे ॥
करि व्यापार साहु घर आये । नानक हरि प्रभु लीये मिलाये५५
इस देही महिं रोम उपाया । रोम रोम की सोझी पाया ॥
नौं दरवाजे कहियन भाई । दशवैं द्वार टिकन की दॉई[2] ॥
कव पुटपी[3] कब फुरनै आवै । कव नाभि कवल महिं जाय समावै
कव निरंकार का महल पछानै । कहु नानक सोई मिति जानै॥५६
फटक धातु के नेत्र वनाए । अचरज दीसै किछु कह्या न जाए॥
वहतर[4] करि मूरख वनाया । दश धारन का रक्त वँधाया ॥
अगनत वाल विचि सही[5] अढ़ाई । कोई इह विधि बीचारि देइ रे भाई
वीस नारी बीस[6] हैं मरदा । नानक उनकौ भेद न परदा ॥५७॥
जिह्वा रचती हरि हरि नाम । नेत्री लागै सहजि ध्यान ॥
श्रवणीं सुणीयै हरिजस गीता । हिरदै अघाय जब हरि रस पीता
अधर[7] वाह वाह करते रंग । मस्तकि निवै देखि सभ संग ॥
करि सेवा करनि[8] सुनि हरि जस बानी।सभ देह पवित्त सतसंग समानी
प्रान पिंड का एही उधार । नानक जो जानै सो पावै पार ॥५८॥
पीते[9] कौ मारै सोई जन पूरा । इन्द्री कौ जीतै सोई जन सूरा ॥
दृष्टि कौ ठाकि मन कौ समझावै।काम कौ साधि जाय महलि समावै
दुविधा कौ त्याग भरम कौ जालै । कूड़ हिरे[10] सच वधै पालै ॥
इह जुगती प्रभु पाये मीता । नानक हरि जस सुनीये नीता५९॥
प्रान पिंड का कीया वन्धेज । आब आतश महिं रखिया तेज॥
पाक पौन ले कहगलि[11] कीनी । इस महल की मिहनति चीनी॥
इस महलि महिं पच वसाये । उन अपने अपने राह चलाये॥
साचि आय अव कीया न्याउं । तौ नानक वसिया सुखी गिराउं[12] ६०

(१) नभ मडल, सहसदल कमल। (२) जगह, पासा, तर्फ । (३) सपुटगत सकुचित हुआ, कभी सिमट जाता अफुर हो जाता है। (४) बेहतर, श्रेष्ठ, सर्व का सरदार। (५) प्रसिद्ध। (६) बीस अगुली नारी है बीस नाखून मरद है। (७) होंठ सदा वाहगुरू के उचारण में तत्पर रहे अथवा गगन मडल अधर में सुरत वाह २ करती रहै। (८) कर्णा। (९) पित्ता। (१०) झूठ त्याग देने। (११) लिपाई। (१२) ग्राम, गॉव।

अनादि अनाहद पुरुष की लीला, विरलै किनै वीचारी ॥
आदि तपीसर वृक्ष कहावै, धूप सहै शिरि भारी ॥
कहु नानक पंच साधू कलि महिँ, विरले किनै वीचारी ॥६१॥
पंच दुष्ट जब ते कडि' बाँधे । जब अपने सतगुरू अराधे ॥
गुर प्रसादी नगरी वूठी' । हौं मैं दुर्मति त्यागी झूठी ॥
पंच दुष्ट को दीया निकाला । तौ नानक बसिया नगर सुखाला॥
काम क्रोध काया को खारे' । निन्दा उस्तुति लै नरकि उतारे ॥
नाँ निदा न उस्तुति धरै । आठ पहरि हरि सिमरन करै ॥
आठ पहिर हरि सिउँ लिव लागी । नानक कहै सोई वड भागी६२
तेरह तीन नौ छ. इस माहीँ । पन्द्रह सत्त अठारह आहीँ ॥
तीन चारि चौंसठि बहत्तरि । बारह चौदह बीस निरंतरि ॥
प्रान नगर महिँ सभ विधि साजी । कौन राजा कौन महता' काजी
नामु राजा सचु काजी थीया । नानक तहाँ धरम तपावस' कीया६३
पंच तत्त की मढी उसारी । पंच मरद' पँच दूनी नारी ॥
अठसठ हाट इसे गढ माहीँ । त्रिचि पच मुहाके' लूट लै जाहीँ॥
गढ़ के राखनहार बहाले । तिन चौंकी दीनी नामु सम्हाले ॥
आठ पहर जपि पहरा दीया । नानक पच चोर पकडि बँधि लीया६४
त्रिकुटी सगमि' जो मन मेलै । दीपक जालि धरै बिनु तेलै ॥
जब दशवे द्वार इकेला खेलै । इन विधि पवन पवन को मेलै ॥
वेनी कै ध्यानि जो रहै समाय । तब इस गढ की सोझी पाय ॥
आत्मा चीन परात्मै गया । तौ नानक सलल' सलल एको भया ॥६५॥
ज्ञान खडग ले मन सिउँ लरै । तौ ढाहि" भरम पट भीतरि वरै॥
भीतरि जाते कोई न ठाकै" । हरि के चरन बसे मनि जाँकै ॥
सोई सत जिनि भरम गढ जीता । घर बाहर तिनि अपना कीता॥
अंतरि बाहरि महरम होया । नानक गुर किरपा ते यह गढ गोया६६

(१) करड़े, मजबूत, दृढ । (२) बसी, आबाद हो गई। (३) गालते है । (४) पजाब (पोठोहार) में एक चलने क्षत्रियों के वश के लोगों को महता कहते ह जो महान पुरुष से भाव है। (५) न्याव । (६) पच प्राण मरद और दश इंद्रिया स्त्री । (७) मोहनहारे, ठग, लुटेरे। (८) इड़ा पिंगला सुखमना की सधी के स्थान से यहा भाव है, त्रिकुटी और त्रिवेणी यहा एक ही मुकाम के सूचक हैं। (९) जल। (१०) गिराय कर। (११) रोके।

मनूआ जीता निर्मल रीति । इंद्री जीती सतगुर परतीति ॥
जिह्वा जीती हरि गुन गावै । नेत्र जीते भ्रमता ठहरावै ॥
वकता[1] जीतै जब सुषमनि गही । सभ किछु जीतै जब होवै पद सही ॥
मनु तनु जीता जीता ब्रह्मंड । पंचि दुष्ट कीने खंड खंड ॥
राजे महते गढ़ के सभ जीते । नानक सतगुर की परतीते ॥६७॥
मुख दीया हरि नाम जपन कैा । हौंठ दिये वाह वाह करन कैा ॥
दंत दीये मुख कॅवल बिगसन कैा । रसना कीनी राम राम रसन कैा[2]।
कंठ दिया मुख ग्रास ग्रासन कैा ॥
बंकनाल सभ सहजि समाय । नानक पेट दीया नाडी[3] की जाय॥६८
ढाहि भीत[4] कीया मैदान । ऊहाँ जाय रचिया चौगान ॥
एहु मन मारि गोइ[5] लए पिंडा । एक पच सिउँ खेडै खंडा[6] ॥
?क जीता पंच हारे भाई । जब चौगान हुगाई[7] दाई ॥
ंच हारे एक ही जीता । जौ नानक ढाही भरम की भीता ॥६९॥

---

(१) बोलनहारा जीव परतु यहाँ मन से भाव है । (२) राम राम को रसीले रससे रसने के वास्ते । (३) नाड़ियों की जगह पेट में नाभी के नीचे कछू आकार में सपूर्ण नाड़ियों का जाल सभ के भीतर तना हुआ है। इसीको धरणी कला कहते है, अपने बल से उलघ कर वर्त्तने आदि कारणों से यह नाड़ियों का कूच अपनी जगह से हिल जाया करता है, जिसको धरन या नाफ का हट जाना कहते है। इससे बड़ा कलेश होता है। (४) कध (दीवार) भाव पिंड देश से सुरति खैंच कर त्रिकुटी के मैदान में जाकर स्थिर होता है (खिलता है)। (५) गेंद, बाजी-पिंड (नर तन) धारने का फल पा लेता है। (६) पजाब में एक खेल "लुकनमीची" प्रसिद्ध है, एक बालक दाई बनता है इसी पर खेल का निर्भार होता है। दाई एक लड़के की आख बद करती है बाकी छिपते हैं, उपरात आखें छुड़ा कर उन बालकों को वह ढूढ़ कर पकडने का जतन करता है, जो उससे बच कर दाई को हाथ लगा देवे उसको फिर नहीं पकड सकता, और वह 'दाई हाथ लाया, थूह थडि का पाया' ऐसे दाई का प्रताप गाता है, और बाजी जीत जाता है, परतु जो बालक बिना स्पर्श किये दाई के पकड़ा जाता है उस पर बाजी की हार होती है और फिर उसी की आँखें दाई बद करती है, दृष्टान्त में कर्तार (सत्पुरुष) दाई है, पॉच शब्द और सुरति इस खेल को खेल रहे हैं सुरति की आखें ज्ञान विचार की बद की गई है, भाव दृश्य ससार देखने में प्रवृत्त की गई है, जब इसको किसी जन्म जन्मातर के निष्काम पुन्न से छोड़ा जाता है और श्रद्धा भक्ति की दृष्टि इसको मिलनी है तो सत्पुरुष स्वरूप सतगुरों से भेद पाकर त्रिकुटी के मैदान पर उन शब्दों की खोज करके ॐकार शब्द को सुरति पकड़ लेती है और पिंड की बाजी को जीत कर आगे के लिये दाई को छूने के योग्य हो जाती है। सिद्धों और गुरू साहेब ने भी यह खेल खेला था । (७) दुहाई देना, ऊँचे गुन गाना ।

भीत ढाहि कै महरम होया । भेद भरम का डेरा खोया ॥
दुहुँ बारी[1] के तपते खोले । भेद गया विनशे सभ ओले ॥
महरम कौ कोई ठाक न पावै । महरम महिल को महली धावै॥
महरम अपुनै निकट बलाया । नानक महरम भरमि जलाया॥७०॥
जिस विषम कोठडी जदे[2] मारे। विनु कीजी[3] क्यौं खूलहिं ताले ॥
वडी वड़ आँखी किछु सूझै नाहीं । राह छॉडि औझड[4] क्यौं पाहीं॥
जिन कौ सतगुरु ऑखी देई । दगड़ु[5] राह फिरहि जन सेई ॥
राह फिरहिं तिन ऑखी दीसै । नानक जाय मिलै जगदीसै॥७१॥
सूर चॉदना तिस प्रगटावै । जॉ कौ हरि प्रभु आपि दिखावै॥
तीन[6] दलै चहुं ऊपरि चरै । तब जगन्नाथ सिउं बाता करै ॥
भीति ढाहि सभ किया मैदाना। तौ इस गढ़ महिं वुह जाय समाना
नानक निर्मल भगति कमावै । जिसु सूर चॉदना नदरी आवै७२
जो पवन पानी की जानै जाति । आतश पवन की समझै भराति॥
रूख विरख की जाति बतावै । जिस अंतरि राखै सो बाहरि जावै
ऐसा वेता[7] को ससारि । इन जाती कौ देइ बीचारि ॥
कौन सूद[8] कौन ब्रह्म[9] कहावै । तौ नानक विचरि विचरि उह ध्यावै॥
गुर[10] कौ खाय सो पापी होय । पिता[11] कौ खाय मरि जनमै सोय॥
माता[12] ते उपजै तिस कौ खाय । फिरि चौरासी आमहिं पाय ॥
अन्नादि[13] पानी तजि लागहि दूध । तिन कै अतरि भई कुबूधि ॥

---

(१) दोनों नेत्र, इनके तखते पलकें हैं। ससारी रीति से इनका खुले होना बद होना है और सोते या मरते आदमी की ऑखों सदृश इनकी दशा होना इनका खुलना है । (२) ताले। (३) चावी। (४) उजाड, वियावान। (५) सकोच रहित, सुतत्र, मौज से । (६) तीसरा तिल और दो ऑखों का या तीन गुनों का स्थान सहसदल इसको ध्यान से नपीड़ (लॉघ) कर इन चारों के ऊपर चढ़ जावे तो त्रिकुटी में जगत के मूल से परिचय होय। (७) ज्ञानी, जाननहारा। (८) शूद्र। (९) ब्राह्मण। (१०) पवन गुरू है इसलिये जो पवन अहार करते हैं पापी हैं। (११) सभ का पिता पानी है जो केवल जलाहारी हो रहते हैं वह पिता को खाते हैं। (१२) माता धरती है जो केवल मृत्तिका का ही आहार करते हैं वह माता को खाते हैं अथवा धरती का स्थावर अश फल फूल आदि में विशेष होता है जो घास पात फल तथा इनके प्रणाम दूध पर ही केवल अपने आपको छोड देते हैं अर्थात् मृत्तिकाहारी, फलाहारी, दुग्धाहारी बन बैठते हैं उनको माता के खाने का पाप लगेगा कि चौरासी में धकेले जायेंगे, या चौरासी के दुख का शिकार होंगे। (१३) भोजन करने योग्य अन्न आदि साधारन आहार।

जिसका दूध पीवहि तिस मुई न स्वारहि। नानक फिरि सौंपहि चमिआरहि
दूध पी कै देहि चमिआरा। सोई दरि कहीयै हत्यारा॥
दूध पीकै करहि हराम। ओहु मूई फिरि माँगहि दाम॥
चाम गोइ[1] लइ पाइँ हँढावहि[2]। तौ पापी ओइ दोजकि जावहि॥
नानक मूढ़ न करहि बीचार। इन कर्मी डूबा संसार॥७५॥
सोई उबरै होवै ब्रह्मज्ञानी। जिनि मनमहिँ काई भ्रांति न आनी॥
मॉऊँ धी[3] नारि सऊँ झरै। सो ब्रह्मज्ञानी किस ते डरै॥
अनादि[4] पानी का करै बीचार। ब्रह्मज्ञानी का ज्ञान अहार॥
ब्रह्मज्ञान करि देखि ध्यानु। तौ नानक प्रभ सिउँ जाय समानु॥७६॥
भ्रांति गनै सो अनादि न खावै। भ्रांति गनै जल निकटि न आवै॥
भ्रांति गनै सो लवै न वाउ[5]। भ्रांति गनै दुहि पीवै न माउ[6]॥
भ्रांति गनै वन फल नहिं खाय[7]। भ्रांति गनै तीरथि नहिँ न्हाय॥
भ्रांति गनै कहू निकटि न आवै। नानक सो दरि जाय समावै॥७७॥
भ्रांति न गनै अनादि की खाई। भ्रांति गनै नहिँ मिलीयै भाई॥
तुटै भ्रांति दरि ठाकै न कोय। तूटि भ्रांति जब, निर्मल होय॥
सम दिष्टी होय प्रभ कौ पावै। जॉ कौ भरम भेद नहीं आवै॥
भरम भीति ढाहि इस मन कौ ढोवैं[8]। तौ नानक दर की लायक होवै॥७८
होय पवित्त जब इंद्री बॉधै। रसि कसि[9] त्यागि अंतर कौ साधै॥
डोलनि चित्त न देई काहूँ। प्रेम भगति रसु पावै ताहूँ॥
नींद निवारै तारी[10] लावै। जब मूल ज्ञान का दिष्टी आवै॥
ब्रह्मज्ञान जब आवै दिष्टि। नानक तॉ कौ पूजै सृष्टि॥७९॥

---

(१) कमाय कर। (२) पहिनते हैं। (३) मैं मैं करने वाली अहंता माता है तथा धैर्य निश्चय बँधाने वाली धी (पुत्री) है, जो इन से झड़ जावे (इनको त्याग देवे) उसे पाप नहीं। इन से रहित भये ब्रह्मज्ञानी से यदि कोई अकार्य कार्य भी हो जावे तो उसे पातकजन्य भय नहीं होता परंतु हो सच्चा ब्रह्मज्ञानी। (४) अनादि। (५) प्राणायाम के आधार पर रहने वाले योगी भ्रांत हैं। (६) गाय—दूध का सर्वथा त्याग करनेवाले भी भ्रांत हैं—दूध से शरीर दिमाग का बल स्थिर रहता है। (७) जो वन फल का अहार मूल से ही त्यागते हैं, भ्रांत हैं क्योंकि शरीर की स्थिति फलों के आधार पर है ऐसे ही आगे आप हैं। (८) भेद करे, भेद करे। (९) रस में जकड़ने वाले भोग पदार्थ, राग में फसने वाले विषय भोग। (१०) नाड़ी।

ब्रह्मज्ञान जब अंतरि आया । उह जैसा जल महिँ बिंब[1] समाया ॥
होय रेनु धरनी रलि गया[2] । जीवति मूआ फिरि जूनि न पया ॥
अटल पिंड फिरि धरनि[3] न पाई । जब ऐसी ब्रह्म दिष्टि होय आई ॥
भरम न आनै एका गही । तौ नानक ब्रह्मज्ञानी सही ॥ ८० ॥
उह मन कैसा जो प्रभु कौ पावै । जब इहु मरै उत[4] जाय समावै ॥
उत समाय तौ प्रभु कौ मिलै । उत मनु मिलत सभ दुविधा जलै ॥
दुविधा जाय तौ उह मन आवै । एकहि राता[5] कतहि न धावै ॥
इस मन ते सब भरम जलावै । तौ नानक उत मन जाय समावै ॥८१॥
उह कैसे चरन[6] जित प्रभु दरि जाउ । उह कौन शब्द जित कतहूँ न धाउ ॥
उह सच शब्द जित कतहूँ न धाइये । साध चरन गहि प्रभु दरि जाइये ॥
अपने पग छॉडि साध पगि लागै । शब्द प्रीति मन सोया जागै ॥
गुर कै शब्द हरिचरन पछानै । तौ नानक प्रभु जन एक समानै ॥८२॥
उह मनु कैसा जो कथै अकथु । उह मनु कैसा जो उलटै चुनि तथु[7] ॥
उह मनु कैसा जो अगम कौ धावै । उह मनु कैसा जो परम तत्त पावै ॥
उह मनु कैसा जो परम पदु लहै । उह मनु कैसा जे उन्मुनि[8] होइ रहै ॥
उस मन की जो कथा सुनावै । तौ नानक उवा के चरन धिआवै ॥८३
ज्ञानी मनूआ कथै अकथु । परम हंस होइ लहै चुण तथु ॥
सुन्न ध्यान होय अगम कौ धावै । तहिँ ते रहित सो परम तत्त पावै ॥
जीवत मरै जब परम तत्त लहै । प्रेम की डोरी उन्मुनि होय रहै ॥
इन जुगती इस मन कौ पाये । नानक बिन गुर भरमि भुलाये ॥८४
इहु मन भ्रमता कित बिधि रहता । क्यौं क्षमा करै इहु कहता बकता ॥
बकन कहन ते एहु ठहराय । बिन गुर दीक्षा मन भरमि डुलाय ॥

(१) जल का गोलाकार तरंग जैसे जल से उपजि जल में ही समाय जाता है ऐसे ही जीव पूर्ण ब्रह्मज्ञान भये पर आदि पुरुष में । (२) ऐसी दीनता मन में धारे कि सभ की धूल होकर आपा भाव से रहित भया सर्व की आधारभूत वस्तू निर्मल चेतन कला (धरती) में ही रल जावे । (३) मृत मंडल से भाव है क्योंकि इस में सभ मर कर धरती में ही लीन हुआ करते हैं । (४) ब्रह्मांडी मन या ब्रह्मलोक के धनी में । (५) रचा हुआ, सलगन । (६) भाव चाल रहनी या शरण से है । (७) तत्व वस्तु सार, माखन । (८) उन्मुनी मुद्रा धार कर अंतर लक्ष स्थिर करके दृष्टि निरोध कर रक्खे अथवा ब्रह्मांडी मन में स्थिर होय रहे, या उलट कर अपने आप में (निज घर में) ही मगन होय रहे ।

बिनु गुर डूबे कतहूँ न तरै । बिनु गुर जम कंकर[1] बशि परै ॥
गुरु विन थाँइ न पाय आधी[2] । नानक गुर बिन उजरै राधी[3] ॥८५॥
गुर बिन लक्ष चौरासी भरमै । गुर बिन मरि मरि फिरि फिरि जनमै ॥
गुर विन खाजाहि वहुत सजाई । गुर विन मुशकिल इस जीअ ताई ॥
गुर विन बाधा कोइ न छुडावै । गुर विन जठर अग्नि जलि जावै ॥
गुर बिन रे मन कबहुँ न छूटहि । नानक गुर बिन काचेही[4] फूटहि ॥८६
गुर कै अंगि मन कौ सुख होय । गुर कै अंगि न पहुँचै[5] कोय ॥
गुर कै अंगि जम कंकर डरै । गुर कै अंगि जन भउजल तरै ॥
गुर कै अंगि रही चौरासी । गुर कै अंगि भये अबिनाशी ॥
गुर कै अंगि करहि सभ सेवा । गुर कै अंगि भये जन देवा ॥
गुर कै अंगीकार तरीजै । नानक गुर किरपा ते नामु जपीजै ॥ ८७
गुर किरपा ते मनु बशि आवै । गुर किरपा ते भ्रमता ठहिरावै ॥
गुर किरपा ते गुहज[6] मति जानी । गुर किरपा ते भया सुन्न ध्यानी ॥
गुर किरपा ते बिवल[7] मति पाई । गुर किरपा ते भई शीतलाई[8] ॥
गुर किरपा ते हउमैं सभ गई । नानक गुरु किरपा ते मति उत्तम भई ॥८८॥
गुर किरपा ते साधू नाम परिआ । गुर किरपा ते अजरु जरिआ ॥
गुर किरपा ते अनहदु समाया । गुर किरपा ते निरबान पदु पाया ॥
गुर किरपा ते सम दिष्टी होया । गुर किरपा ते भरम सभ खोया ॥
गुर किरपा ते मेरी तेरी सभ गई । नानक गुर किरपा ते अभय मति[9] लई ८९

अगम निगम सभ इस मन माहिँ । गुर किरपा ते कीमति पाहि ॥
सूक्ष्म अस्थूल इस माहिँ समाया । गुर किरपा ते नामु दिष्टाया ॥
नरक सुरग है इस कै अंतरि । कोई जन खोजै गुर कै मंतरि ॥

---

(१) किंकर, सेवक । (२) मन के रोगों में ग्रसित ससारी जीव । (३) वाही हुई या हलजोती बोई हुई खेती—भाव, सपूर्ण जप तप तीर्थ दान भजन पाठ आदि गुरुदेव की प्राप्ति विना सभ अकार्थही जॉयगे । (४) जो भजन वदगी आदि कर्म (साधन) गुरू विना किये जाते हैं पूरे नहीं पड़ते—अधबीच कच्चे ही टूट जाते हैं । (५) गुरु शिष्य की बरावरी कोई नहीं कर सका । (६) गूढ़ भेद, गुप्त मरम । (७) यहाँ दो भाव सूचन कराये है एक तो विमल या निर्मल बुद्धि, दूसरे विहल अर्थात् दीन भाव सयुक्त बुद्धि । (८) शांति । (९) अनुभव, निरभय ज्ञान ।

सोई पिंडी सोई ब्रह्मंडी । जो किछु खंडी सोई ब्रह्मंडी ॥
सभ किछु कीआ इसही माहीं । नानक मूढ़ सूझ[1] किछु नाहीं९०
कैान ठैार जित मनूआ बसै । अहि निशि कवलै वांगु[2] विगसै ॥
विगसि विगसि जब मानै रलीआ । विगसि रहिया भॅवर ज्यों कलीआ॥
डगमग करै भॅउर की न्याई । उस करनहार प्रभ कला बनाई ॥
करि अचरज पिंड परगासिआ। नानक ता महिँ मनूआ वासिआ९१
इस मन कैा सभ रंग बनाइ । प्रथमे दूध पीया मनि चाइ ॥
चार मास दूध मुख पीआ । आस अदेश अवर नहीं कीआ ॥
जब माँगै तब दूध ही मॉगै । होइ बाल ब्रह्म मति लागै ॥
जब सम दिष्टी तब होय अयाना[3]। भई बुद्धि तब भरमि भुलाना ॥
चार मास रहिआ बिसमादि । नानक इहु मन लागा अनस्वादि ९२
दूजै महलि हउँ मेरा करै । अहि निशि हउँ मैं खपि खपि मरै॥
मैं मतिवंत मैं ही अति ज्ञानी । मैं बेता मैं ही अति ध्यानी ॥
मैं चतुर सियाणा मैं ही अति शूरा । पूरन सारु न कबहूं ऊरा[4] ॥
आपस ऊपरि करत गुमाना । नानक दूजे महलि एहु भरम भुलाना॥९३॥
तीजै महलि कुटॅब सिऊँ राता । अहि निशि माया कैा बिल्लाता[5]॥
माया के सॅगि रहत बिसारी । माया लपट रहिआ जूआरी ॥
सुत बनिता कै मोहि लुभाया । आठ पहर महिँ चित्त[6] न आया ॥९४॥
करत उपाय कुटॅब कै कारनि । करि अखेड[7] लगा एहु हारनि ॥
तीजै महलि अनखेडि डुलाया । नानक रहिआ हारि जब चितु न आया॥
चउथे महलि निकट भया मरना । कपै देहु रहे हारि चरना ॥
घसि मिस[8] नेत्र न किसै पछानै । बोलत पामु[9] शरमु नहीं आनै ॥
जब बोलै तब स्वाद न कोई । चउथे महलि ऐसी मति होई ॥
सुत बनिता सभ को सगावै[10] । मीत कुटॅब कोई निकट न आवै ॥
कहु नानक जब मनु बिरधाना । जब चौथे महलि महिँ जाय समाना॥९५

(१) सोझी, ज्ञान, पता । (२) कवल की न्याई, कवल वत् । (३) बालकवत राग द्वेष रहित । (४) ऊना, अपूर्ण । (५) बिलाप करता । (६) याद, स्मरण । (७) जो खेलने योग्य नहीं ऐसी खेड (विषय भोग) तथा सर्वथा संसारी प्रवृति में मगन रहना । (८) मंद ज्योती, धुंध ग्रसित । (६) युक्ति रहित कच्ची बातें । (१०) संकोच करते हैं ।

चार महलि की कथा सुनाई । हित चित लाय सुनहु जन भाई ॥
चहुमहिला महिँ एहु बिस्थारा । कोट मध्ये को इस ते निआरा॥
इन ते निआरा आपि अजोनी । सभ उस मॉहि' जो उदोत उपन्नो॥
उन ते निआरा दीसै न कोई । सभ रचना उनहीं महिँ होई ॥
चारि महलि महिँ एहु बरतंतु । नानक बूझै कोई अनुभै सत ॥९६॥

बारीआ चलीआ

चहुँ वारी की कथा सुनीजै । जिस मनि बसै सोई जनु भीजै[2] ॥
कौन कौन बारी के नाँऊ । बारी वारी की ठौर बताउ ॥
चहुँ बारे के तखते मारै । जिस कै किरपा तिसहि उघारै ॥
चहुँ बारी महिँ हरि जस गाया । अनुभै नाम दानु जन पाया ॥
चारि महलु बारी सभ जानी । नानक कोटि मध्ये कोई जन ज्ञानी[3] ९७
प्रथमे सुरति की खूली बारी । करि किरपा गुर सहजि उघारी[4] ॥
सुरति गही आतम जब भीना । सुरति गही जब मंदर चीना ॥
सुरति गही जब कीआ बिबेकु । सुरति गही जब जानिआ एकु॥
सुरति गही जब सतगुर जाना । सुरति गही जब धरिया ध्याना ॥
बूडत नरक सबै बिधि पाई । तब सर्ब सुरति बारी खोलाई ॥
सुरति बारी के तपते[5] खोले । तब नानक बिनसे सगले ओले[6] ९८
दूजी बारी रहत है कीनी । हरि पद रत्ता करि मति हीनी[7] ॥
पदि[8] कहिआ सोई दृढ़ कीआ । मन ते त्यागी इह मति बीआ[9] ॥
पदि कहिया सोई मन दृढिया । जब रहै अडोल नहीं कब थिड़िया[10]॥
फिरन[11] घिरन ते जब मनु ठहराना।नानक रहत का कपट[12] खुलाना९९
तीजी बारी दृढ़ता जानी । हित चित लाय दृढ़हि जन ज्ञानी॥
दृढता दृढी भगति दृढ़ि होई । दृढता दृढ़ी जब सुरति मति होई॥
दृढ़ता के ऐसे गुन भाई । दृढता गही जब सभ मति पाई ॥
दृढ़ता ते नामु दृढ़ पाए । नानक दृढ़ता ते महलि वुलाए ॥१००॥

(१) जो कुछ भी उत्पन्न हुआ विदित हो रहा है अर्थात् जो कुछ है सभ उसी में है और वोह न्यारा है। (२) द्रवीभूत (प्रसन्न) हो जावे। (३) बारियों को जानने वाला । (४) उघाड़ दी, खोल दी। (५) किवाड़। (६) ओट। (७) गरीबी भाव दीनता को धारे है। (८) जिसको चरन कमल अथवा परम पद कहा है। (९) द्वैत बुद्धि, दुविधा। (१०) कपायमान । (११) वासना तरंग उठाने से। (१२) किवाड ।

जब धावत निरधारा वारी । निराधार होय रहै निरारी ॥
निराधार होय रहे निरारा । निराधार का ताक उघारा ॥
अधर निधर की तब मिति पाई । जब निराधार वारी खोलाई॥
खोलि वारी जब अतरि आया । तउ नानक इहु तन वैराया[१] १०१
जब ते चारि वारी जन डीठी[२] । तब अनभै वारी लागी मीठी॥
चहुँ वारी का मरम जब पाया । तब जन कौ सभ किछु दृष्टी आया॥
जब जाय हरि जन महलि समाना । तब प्रेम भगति मिलिआ पजाना
मुक्ति वैकुठ का मिलिआ सिरपाउ ।नानक चहुँ वारी की इहीगुनाव॥१०२

॥ दूसरा अध्याउ नाड़ी आदि का सम्पूर्ण हुआ ॥

॥ सतगुर प्रसादि ॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

॥ राग मारू महला १ ॥

आगे पंच तत्त का पूछना, सप्तदीप, सप्तसमुंद, सप्तपर्वत, नौखंड, चौदह भवन, अठारह भार, देही का वृत्तांत ॥

॥ श्लोक ॥

इकति पूछत तेरा जन सुआमी, ब्रह्म ज्ञान के लक्षण देहु।
पिड ब्रह्मंड कीतो[३] उत्पन्न, कथा सुनावहु मो कउ एहु ॥
ना किछु किछु करि देखाया, हरप सोग का बाँधिया देहु ।
करि मिहनत कलबूत सवारिया, मस्तक कर धरिया कर नेहु।
नानक जिनि किछु रचन रचाया, बहुरंगी मे[४] प्रीतम एहु ॥१॥
प्रथमै आप कि कीआ तेज । बाइ मध्ये रखिआ बंधेज ॥
अकाश कला करि धरिआ भाई । जब पच तत्त की कला बनाई ॥
ऐसा ब्रह्म बिचारै कोय । जाँकै अतरि भरमु न होय ॥

---

(१) सभ का आधारभूत होकर सभ से न्यारा हो जाता है (पुष्प सुगंधीवत्) तात्पर्य सभ में सभ का रूप होकर भी जो सभ से न्यारा रहनेहारा है उस में अभेद हो जाता है—उस कालमें इसको तन से इस प्रकार बावरता हो जाती है जैसे मस्ताने (कमले) को अपने शरीर की बेसुधि। (२) देखी। (३) किया। (४) मेरा।

ब्रह्म ब्रह्म जब सभ महि जानिआ। जिनि पंचतत्त का मरम पिछानिआ
कहु नानक एहु ब्रह्म बीचार। जिस मनि वसै सोई जन सार ॥२॥
पृथमै[1] आप दुतिआ करि तेज। त्रितीया कीआ बाय बधेज ॥
अकाश चतुरथो तत्त बनाया। तत्त तत्तकर इसहि बताया ॥
आप तेज बाय पृथमि अकाश। पंच तत्त का कीआ परगास ॥
पंच तत्त मनु के मधि कहे। नानक हुकमी चलै हुकमी वहि रहे ॥३॥
अवगत[2] ते उतपन्निआ आकाश। आकाश ते उतपन्निय वाय प्रगास॥
वायू ते उतपन्निय तेजु। तेज ते उतपन्निय तोयं प्रगटेजु ॥
चहुं तत्त की उतपन्न कही। नानक प्रान पिंड जब होया सही॥४॥
पंच तत्त के वरन[3] कोइ कहै। उवा के चरन नानक जन गहै ॥
अपु का बरन कहै को कैसा। जो चीनै सो उसही जैसा ॥
उवा का वरन कौन बिधि जापै। आकाश का बरन कित शब्द पछापै
पंच तत्तु के वरन बतावै। नानक उवा के चरन ध्यावै ॥५॥
कोई इन तत्तॉ के बली[4] बतावै। कौन बली ते कौन प्रगटावै ॥
तोय[5] बली ते होवै तेज[6]। तेज बली ते बाय बंधेज ॥
तेज बली ते हुआ आकाश। बाय बली ते अवगति प्रगास॥
पिंड ब्रह्मंड का कीआ बीचार। नानक तिस जन कौ नमसकार ६
पंच तत्त के रंग जब थापे। पिंगला[7] पृथमी सीता[8] आपे ॥

---

(१) पृथ्वी। (२) जब सहसदल कमल में सुरति पहुँचती है तो प्रथम ही नीलम रग का महा तेजोमई गोलाकार सा प्रकाशित मडल दृष्ट आता है वास्तव में आकाश उसका नाम है और यह स्थूल आकाश उसी से प्रगट हुआ है, महा आकाश या अवगत उसी का नाम है। (३) वरन नाम रग का भी है और वरन नाम अक्षर का भी है। रग तो तत्वों के आगे कहेंगे इस कारण यहा अक्षरों के विषय में प्रश्न है सो पाचों तत्वों के ल व य र ह यह पाच बीज अक्षर हैं। ल पृथ्वी का बीज चतुर्कोण स्वर्ण के समान प्रकाशमान सुगधी का आधार है। व जल तत्त का बीज अर्द्ध चद्र के आकार समान है। र अगनी तत्व का बीज रक्त वर्ण तिकोण स्वरूप है। य वायू का बीज गोलाकार श्याम रगवान है। ह आकाश का बीज अधिक कातिवान अव्यक्त स्वरूप है। सहसदल कमल में कदाचित् और कदाचित त्रिकुटी के स्थान पर भी यह स्वरूप भिन २ या सम काल दृष्ट आया करते हैं। (४) शक्ति। (५) जल, पानी। (६) अग्नि। (७) पीला रग पृथ्वी का। (८) श्वेत (सफ़ेद) रग जल।

रत्ता तेज नीली है बाय[१]। काल[२] आकाश की कला रहाय ॥
पंच तत्त के रंग बताए। नानक हरि प्रभु आप जनाए॥७॥
पंच तत्त के स्वाद हहिँ कैसे। जिन चाखे तिनि बरने ऐसे ॥
मीठी पृथमी मौला[३] आपि। तीखा तेज महा अचाख ॥
खाटी बाय कडूआ आकाश। पंच तत्त का कीआ प्रगास ॥
अपने अपने स्वाद बताइ। नानक गुर किरपा ते बीचार सुनाइ॥८॥
पंच तत्त के घर कोई कहै। आतम चीनि परातमा लहै ॥
पृथमै का घर कलेजा कीआ। अप का घर फीफ[४] सुदीआ ॥
तेज का घर कीआ है तिली। बाय नाभि महिँ सहजे मिली ॥
आकाश का घर कीआ है पीता॥नानक पंच तत्त का मरम सभ लीता॥९॥
पच तत्त के द्वार कहीजै। मैगल[५] मनूआ सहज पतीजै ॥
पृथमै द्वार कीआ मुख मीता। अप का द्वार लविका[६] कीता ॥
तेज का द्वार कीआ है छछू[७]। बाय का द्वार नासिका रसू ॥
आकाश का द्वार स्रवण हहि राखे।नानक गुर किरपा ते लाखे॥१०॥
पंच तत्त के तत्त बताए। करि किरपा सतगुरू जनाए॥
पृथमै तत्त धरिआ है पिन्ड। अप का तत्त कीआ जब बिन्दु॥
तेज का तत्त अगनि[८] है करी। बायका तत्त प्रान देह धरी ॥
अकाश का तत्त लोहू है कीना।नानक तत्त चीनिआ जब तत[९] लीना ११
पंच तत्त के देउ कहै जे कोई।उवाका नाउँ बतावै तिसकी गति होई॥
पृथमै का देवता ब्रह्मा क्षमा रूपी।अकाश का देवता चद्रमा शीत रूपी

---

(१) वायू नीली भी और हरे रग की भी है वास्तव में तो यह हरे रग की ही है परतु इसमें आकाश के गुण का अश प्रविष्ट होता है जिसके मिलने से नीला रग इसमें भान हो आता है। गुरू साहब ने उसकी प्रथम अवस्था ही बतलाई है। (२) काला। (३) सभ प्रतियों में मौला शब्द है परतु मौला के अर्थ प्रकर्ण से सबध नहीं खाते इस कारण जल का स्वाद दर्शाया जाता है। इसका स्वाद खारा होता है जो मधुरता इसमें अनुभव होती है सो पृथ्वी की है नहीं तो जल का प्रणाम खारी न होवे, जो जैसी वस्तु होती है उसका प्रणाम पूर्व का साक्षी हुआ करता है परतु जल का प्रणाम अत में खारा होता है जिस से अनुमान होता है कि ऐसा सत्य ही है। और मल भी सभ किसी का निवर्त करता है जो कि खारी वस्तु का ही धर्म है। (४) फेफड़ा। (५) हाथी। (६) तालू। (७) चक्षू, नेत्र। (८) जठरागनि। (९) सभ स्थूल सूक्ष्म आदि तत्तों का तत्त रूप परम तत्व।

तेज का देवता सूर्य तमरूपी[1] । बायका देवता महादेउ नादरूपी॥
आप का देवता निरजन अतीत रूपी ॥
एते तत्त की एती जानी। नानक गुरमुख मथि सहजि बखानी १२
पंच तत्त के पचीस गुन राखे । गुर किरपा ते किनै विरलै लाखे ॥
जाँ को अगम आपि जानाया।अगम निगम सभ जनहि दिखाया॥
अगम निगम को सभै सुनाई । नानक इह मति प्रगटी आई॥१३॥
अस्ती[2] मास तुच लोम है नारी । लक्ष चौरासी है उवा की वारी॥
सगल पृथमी पच तत्त ते कीनी। ब्रह्म ज्ञानी ध्यान धरि चीनी ॥
सवा घडा रक्त जय धरी । नौ सै नारि की पुतली करी ॥
सप्त दीप नौ खंड विचि धारै । नानक विरलै किनै बीचारै॥१४॥
आप के गुण कहहु हो स्वामी । रहै निआरा अंतरिजामी ॥
नामु दानु इस्नानु न तजै । इत सरजामि[3] गोविंद को भजै ॥
ब्रह्मज्ञान भखै[4] दिन राती । आपे ही अपनी जुगति पछाती ॥
आपेही अपने करम सुनाए । नानक आपे गुण बीचारि दिखाए १५
तेज के गुन पच हहिं भाई । क्षुधा निद्रा तृपा इस बाई ॥
आलस क्रोध आय बसहि शरीरा। तेज के गुन पचि सबीरा[5] ॥
तेज सबीरा कीआ पचरंग । पच क्रोध बसहि इक सग ॥
ब्रह्मज्ञान ते पच गुण साधे । नानक पूरे गुरू अराधे ॥१६॥
बाय के गुण कथत देवा । कौन जुगति पाईयै ओइ भेवा॥
चलन धावन पसरन निरोधन। ना ठहिरावन पच तत्ति विरोधन॥
पच गुण बाय के सुनाए । निशदिन चलहि बहनि सुभाए॥
बाय के गुन सुनहु रे मीता । नानक हरि प्रभ अचरज कीता१७
अकाश के गुण कहु हो नाथा । लोभ मोह इच्छ अस्ताथा ॥

---

(१) सूर्य प्रकाश रूप अंधकार का निवर्तक है पर गुरु महाराज उसे तम (अंधकार) रूप कथन करते हैं सो यथार्थ है उसके मंडल में दृष्टी स्थिर करके देखने से श्यामता दिखाई देता है और जो अधिक धूप को तापे उसका शरीर काला पड़ जाता है, जिस से सूर्य तम रूप सिद्ध है। इसकी उत्पत्ति धुधूकार से है सो जो जिसका कार्य होता है उसके कारण के धर्म अवश्य उसमें होते है। (२) अस्थि। (३) सजम, साधन। (४) भोजन करता रहे, भाव दिन रात उसी से ही अपना काल क्षेप करे। एक प्रति में पाठ "भाखे" भी है जिसका अर्थ यह होगा कि ब्रह्मज्ञान दिन रात कथन करता रहे। (५) समीर नाम पौन का है ॥

लज्या भाय ले जम सम ताही । अकाश के गुन पचि वरताहीं॥
ब्रह्मज्ञान सो भाखित पंचि । ब्रह्मज्ञान मथि इन ते बचि ॥
अकाश के गुण पच है कथै । नानक गुर किरपा ते प्रान जव मथै१८
पंच तत्त के गुन पंजीसा । विचारि विचारि मथि कीये अद्वीसा॥
तत्त तत्त की जुगति बताई । जब सतगुर साखी अगमु दिखाई ॥
सतगुर मिलिऐं सभ मिति जानी । नानक सतगुर कौ कुरबानी॥१९॥
कै गुन पृथमी कीनी भाई । कै गुन आप तेज कै बाई ॥
कै गुन अकाश करि कीआ बनाय । पंच गुन के गुन कहहु सुनाय ॥
एक गुन पृथमी दुइ गुन आप । तिगुन तेज चौगुनि बाय आकाश
पंच गुनाँ के गुन कहै बीचारि । नानक हरि प्रभु कीए सत्रारि॥२०॥
अगै चले चलित्र अनंता । पंचि गुनाँ का कीआ मथंता ॥
अपके गुन कहहु हो भाई । धावै तेज सोवत है बाई ॥
मैथुन भोग करंत आकाश । इंगुल पिंगुल पौन निवास ॥
द्वादश ऊँगलि सास उलटै बैठत बाय । तीस ऊँगलि सास उलटै धावति[१] बाय
चौसठि ऊँगलि सास उलटै । मैथुन भोग करंति बाय ॥
एकिस सास सहसर छाती । सहस आय सभ एका राती ॥
एक दिन कई बाय सास उसास टूटै । नानक पंचि तत्त ते किन विधि छूटै२१
प्रथमै प्रान पुरुप जब खेलै । तब पहिलाँ कौन तत्त बटोलै ॥
टोलै अकाश गरजै बाय । चमकै तेज साचि महि पाय ॥
भरमै पृथमी शोपै आकाश । माताकीमलबुंदपिताकी,दिष्टिमेंबचामनू पासास[२]
बोलै ध्यान करि ब्रह्म ज्ञान । नानक गुर मिलिआ सभ ब्रह्म पछानु ॥२२॥
पच तत्त जानै जोगिद्रा । कायाँ की मति नहीं आवै क्यापाईअहि मुद्रा
एते तत्त इस मन के माहिँ । एकु न चीनहि भरमि पचाहि ॥
अगमु नगरी अगमु थान । कवन बीचारु कथै क्या ज्ञान ॥
प्रान पिंड के अगनत राह । नानक लेत गने सभ साह ॥२३॥

---

(१) सोवति पाठ भी है । (२) माता के खून और पिता के वीर्य रूप जल दृष्टि में बचा रहा मन रूप होकर स्वास के मानिन्द चलायमान रहता है ।

सप्त समुंद इस गढ महिं कीने । कोट मंधे किनै विरलै चीने ॥
कीआ गडाड अंत किछु नाहीं । सप्त समुंद उलटि इतु पाहीं ॥
अगम सरि किछु मिति नहीं पाय । सप्त समुंद जिनि लीए छपाय॥
कौन कौन सागर किंह थाँई[1] । विचार देइ कोइ इस गढ माही ॥
कहु नानक एहु देहु बेअत । जाँका किछु न पाइयै अंत ॥२४॥
लवण समुद जब एहु मनु जाई । होय लीन लै अनहद लाई ॥
लिव लागी लविक सभ बूझी । लवणि समुद जाय लीला सूझी ॥
लालु लीआ ले लाली जानी । राडि[2] मिटी अनगति हैरानी ॥
अनगति की गति हरिजन पाई । नानक इस गढ महिं बिअत समाई२५
इक्षु समुद मनु कै ले दीया । इक्षु समुंद इस गढ महि कीआ ॥
अम्बृत रस दीआ है जाँकौ । इक्षु नाम रखिआ है ताँकै ॥
भया असान अउख[3] सभ खोआ । आँखि बेखि[4] का महाँ रस होआ ॥
कहु नानक प्रभु बेपरवाहु । इस तन का एको पतिशाहु ॥२६॥
सुरा समुंद कीआ मन माँहि । अगम सुरति[5] गही उह राहि ॥
अगम निगम सभ मन महिं राखी । गुर किरपा ते जानी साखी ।
सुरति शब्द बिचि निर्मल हंसु । उहाँ जाय प्रगटी निर्मल अंशु ॥
सुरति शब्द सभ तिस सर माहिं । इहु घट चीना सभ घटही माहिं
सूरा समुंद देखि मनु भीना । नानक इहु घट शोधि पतीना[6]॥२७।
सरपि घिरतु समुद्र चतुर्थु कीआ । प्रान पुरुप[7] करि तन महिं दीआ॥
सरपि महिं आवै सरपि महिं जाय।इहु मनु सरपि मँहि रहिआ समाय ॥
सरपि[8] निकसै तब दीपक बुझै । तब इस तन कै किछूअ न सुझै ॥

---

(१) किस २ जगह । (२) झगड़ा लड़ाई । (३) कठिनाई । (४) आप से देखे का । (५) अगम की खबर । (६) परचा पाया । (७) प्राण रूप होकर जो अतर्यामी की शक्ति प्राणी मात्र में सभ की स्थिति का कारण हो रही है उसे प्राण पुरुष या सूत्रात्मा कहा जाता है। पूर्ण पुरुष को भी ठेठ भाषा में प्राण पुरुष कह दिया जाता है। (८) जब सुरति बाहर से सिमट कर एकाग्र हो चुकती है परंतु अभी ऊँचे मंडिलों में चढ़ने नहीं लगती उस समय इस को रोम २ में विशेष रसमई सानिग्धता (सिमटाव) का रस साक्षात् प्राप्त होता है जिसे नाम का रस या एकाग्रता का आनंद—कुछ कह लेवें। उसका साक्षात्कार विशेष प्रकार की स्रावि का जनक तथा दिमागी विचार को बढ़ाने वाला होता है इस कारण उसे सर्पि रूप से गुरु साहेब ने कथन किया है। इसी रस का लेश संसार में सब को परेशान कर रहा है। यद्यपि यह पूर्ण अवस्था के सामने अत्यंत अल्प मात्र है तथापि उत्पत्ति स्थिति संघार का बीजा इसी में ही रहता है। बस—जान—यही ही शरीर में समझ सकते हैं॥

सरप समुंद सरपि जाय रहता । तब ते रहिआ बकता कहता ॥
कहु नानक एहु अगम बीचारु।सरपि घृत समुद का उर वार न पारु२८
दधि समुंद कीआ है अंतरि । अम्रृत स्वादु कीआ गुर मंतरि ॥
बिन गुर संत उवा का स्वादु न आवै । गुर किरपां ते प्रगट दिखावै ॥
दधि कैा तप ले दही जमावै । सुरति शब्द का जावनु पावै ॥
ज्ञान मधाना अहि निशि कथै । दधि समुद कैा सहजी मथै ॥
रोल विरोल तत्त मथि लीआ। नानक इस मनु महि एहु सागर कीआ२९
क्षीर समुद कीआ या माहिँ । मनु कीआ बसेरा सहजी ता माहिँ ॥
ता महिँ सहजि छावनी छाई । क्षीर समुदि खरी मिति पाई ॥
खोटा खोर खरा जब भया । क्षीर समुंद का मारग लह्या ॥
सभ तन मारि खाक होय रहै । तैा नानक क्षीर समुद कैा लहै॥३०॥
जल समुंद महि शीतल रहै । आन जला कछु निमिष न गहै ॥
सदा शीतल जल माहिँ समाना।जल ते निकसि जलि कीआ पिआना॥
शीतल शांति आई जल सागरि । तब मन जाय मिलिआ बैरागरि ॥
अगम[१] ते अगमु अगमु कैा धाया।जब इहु मन शीतल समुद माँहि न्हाया
सप्त समुद कीए जीअ माँहीं । नानक सभ किछु अंतरि आही ॥३१॥
सप्त समुंद की सभ मिति काढी[२] । तन को चीनि सुरति तन वाढ़ी ॥
रोम रोम करि सभ तन सोधिआ । इहु मन पूरे गुर परबोधिआ॥
पूरे गुर बिन सुधि[३] न होय । (पूरे गुर सूझसि सभ कोय) ॥
साढे तै[४] कर देह बुलाई । सप्त समुद कथे या माहीं ॥
मथि मथि देह चीन इह कीनी । नानक गुर किरपा ते इह बिधि चीनी ॥३२॥

---

(१) इस जगह तीन अगम मंडल दिखलाये हैं। योगी जन त्रिकुटी तक बस रह जाता है, वाचक ज्ञानी आत्म ज्ञान कथन करने तक, पर जो अगम अनुभव की ठौर है और त्रिकुटी मंडल से ऊपर है इन दोनों की समर्थता से परे है। बहुत से सहज योगाभ्यासी भी यहीं कल्यान के भागी हो आगे चलने से रह जाते हैं, उनके लिये सच खंड दूसरा अगम स्थान हो जाता है परन्तु जो सच्चा अनुरागी है और आगे चल कर मालिक के दर्शन पाता है तो वहीं पर रह जाता है और प्रचार आदि में प्रवृत्त हो, और यत्न छोड बैठता है, उसके लिये आदि पुरुष के साथ अभेद हो जाना अगम हो जाता है। इस प्रकार क्रम पूर्वक जो कोई इन तीनों अगमों को उलंघन कर लेवे वो ही पूर्ण शीतलता के समुद्र में जल तरंगवत डुबकी मारता है। (२) निकाली अर्थात प्रगट करदी है। (३) सोझी, खबर। (४) साढ़े तीन हाथ प्रमाण।

आगे दीप चलै है भाई। जो चीनै तिन इह मति पाई ॥
जंबू दीप जबि मनु ठहिराय। जपै लहरि तबि जोग कमाय ॥
दीप दीप की सभ मिति आवे। जपै लहरि तेज मिटि जावै ॥
जो जानै इह सुरति निरारी। सोई सूर जिस खूलै तारी ॥
जंबू दीप गया जब मनूआ। पच जीति गए सभ अनूआ ॥
आन त्याग एक लपटाना। नानक इहु मन जंबू दीप समाना ॥३३॥
पलक्ष दीपि पलकै मनु जाय। तजै पराई सहजि सुभाय ॥
सहजि सुभाय निंद सभ तजै। पलकि पलकि हरि सहजी भजै ॥
सहजि सहजि हरिके गुन गावै। पलक्ष दीपि मनु जाय समावै ॥
पलकि पलकि मनु हरि सिउँ जोरै। ज्ञान डंड[1] सभ भाँडे फोरै ॥
पायक[2] जारै दुर्मति छानि। इहु घर जारिआ तब जनु पतीआन ॥
भया निरारा जब छपरी[3] जारी। नानक पलक्ष दीप मनि तारी ३४
सिलमल दीप सैल मनु करै। रहै उदास मनु मैलि न धरै ॥
कबि उत्तरि[4] कबि पच्छम धावै। सिलमल दीप मनु जाय समावै ॥
अनेक ध्यान करै मन मॉहिं। तब मन सिलमल जाय समाहि॥
खंड ब्रह्मंड दीप सति भरमै। आवत जात न कितहूँ बिलमै ॥
ऐसा दीप कीआ मन माहिं। जित मनु जाहि अहिनिशि भरमाहि॥
इत सैल विगूता[5] नह किते ठहरावै। तब मनु सिलमल जाय समावै ३५

(१) जब पलक्ष दीप के घाट पर मन पहुँचता है उस समय पल पल में सुरति हरि विषे में जोड़ता है अर्थात हरएक में जिस आदि पुरुष की ज्योति विराजित है उस विषे में गुरुदेवोपदिष्ट ज्ञान युक्ति अभ्यास से सुरति का ऐसा तार बांधता है कि पिंड ब्रह्मंड के अंतर वर्ती संपूर्ण मंडलों से सुरति दूध से मक्खन की भांति न्यारी हो जाती है, जिसे जीवत मर जाना भी कहा जाता है जब इस प्रकार मन माया की उपाधी रूप पटलों से सुरति निर्मल तथा न्यारी हो जाती है उस समय (२) ज्योति रूप प्रचंड अग्नि सदृश प्रकाश होने से इसका भ्रम दूर हो जाता है अर्थात परिचा प्राप्त होने से दृढ़ प्रतीत बंध जाती है। (३) इस भांति जब न्यारा हो जाता है तो छपरी शरीर रूपी छप्पर भस्म हो जाती है अर्थात इसका ज्ञान भीतरि बाहरि से विस्मर्ण हो जाता है। (४) परंतु जब वहां पलक्ष दीप का पूर्ण प्रकाश अनुभव करके सुरति शाल्मली दीप में प्रविष्ट होती है उस समय कभी तो ज्योति के घाट पर ही स्थिर रहती है और कभी उससे दांई ओर सरक आती है ऐसे बारंबार सरकने में एक अद्भुत रस दायक तार बंधा करती है जैसा कि जाल बुनने के समय मकड़ी छत्त पर से कभी तार के सहारे दीवार पर जाती है कभी छत्त पर, परंतु सुरति का यह तार चढ़ाई के कारण पूरी शांति का हेतु नहीं होता बलकि तार टूटने की साधन है (५) क्योंकि इस सैल से विगोया हुआ (भरमाया हुआ) स्थिर नहीं रह सका और स्थिरता बिना पूर्ण रस कैसा।

कुशू दीप जब इहु मन जाय । एक प्रधान पच कुहि' खाय ॥
एको अमर' फिरावै नगरी । पिछल त्यागै राचै अगरी' ॥
आगल डोवै पाछल तारै । जब मन कुशू दीप महिँ बरै ॥
इह मनु आया पदवी नीची । कुशू जाय दिष्टानी ऊँची ॥
ऊँच नीच ते रहै निरारा । तब कुशू दीप जाय कीआ पसारा ॥
कुशू दीप मनु सहज समावै । तौ नानक अगम निगम कौ पावै॥३६॥
कुरंच दीप जब मनूआ वहै । रंचक हरि जस अतरि गहै ॥
रचक भाउ प्रीति करि धावै । कोट जोजन जम निकटि न आवै।
चौरासी का मारग तोरै । जे रंचक प्रीति नाम सिउँ जोरै ॥
नरक सुरग ते तब मन बचै । जे रचक प्रीति नाम सिऊँ रचै।
राई रचक जब मन आवै । तब इस मन कौ दुख न सतावै ॥
अह निशि पकड़ै एक अधार। नानक तब कुरंच दीप की पकडै सार३
शाक दीप कौ जब मन जानै । सभ महि एको साक पछानै ॥
एकसि न धावत सभि एका । शाक दीप नही करै विवेका ॥
एक पौन एकही माटी । सभ पुतरी एकस तनि ठाटी ॥
थाटनहारा एको साँई । एकही रीति एक ते आई ॥
सभ महि एको एकु पछानै । जब इहु मन शाक दीप महिं आनै।
शाक दीप जाय शक्ति गवाई । नानक किआ कथीऐ किछु कीम' न पाई ॥३८
पुहकरि दीप पुहमनु' बूझै । डाल पत्र फल अंतरि सूझै ॥
तरवर निरखत इहु मनु मगनाना । मूल फूल फल अंतरि जाना॥
फल चाखत मनु रहिआ अघाय। तब पुहप दीप की सोझी पाय॥

(१) हाँ इतना मात्र अवश्य होता है कि कुशू दीप का अगला घाट खुल जाता है जहा पर कि काम आदि पच को कोस (मार) कर खा जाता है, (२) एक की ही दुहाई घट रूप नगरी में फिर जाती है, शब्द की घनघोर से पिछली चलायमान रूप तार को सुरति त्याग देती है, (३) और अगली स्थिर दशा को प्राप्त हो जाती है—अगली अर्थात् जो पहिली दशा थी वोह डुबाने वाली भाव नीचे गेरनेवाली होती है और पिछला कुशू दीप अतरवर्ती अनुभव तारनेवाला अर्थात् ऊपरली चढ़ाई का कारण है । (४) कीमत, क़दर। (५) इस स्थान पर एक ऐसा अलौकिक वृक्ष दृष्ट आता है जिसमें रत्नों के फलों के गुच्छे और हीरे मोती के फूल लगे हुए महा प्रदीप्ती का झलका मारते हैं। कभी फलों के आकार में सूर्य और फूलों की जगह रत्न मणीआ लगी दिखाई देती हैं, पारिजात कल्पतरु उसकी एक शाख की भी समता नहीं कर सकता ।

मन पुहकर महिँ रहिआ समाय । नानक ताँ के बलि बलि जाय॥३९॥
सप्त दीप मन माहिँ जनाए । बिअत धनी मिति निमिप न पाए॥
सप्त दीप सभ मन महिँ बाँधे । गुर प्रसादि किनै बिरलै लाधे[1] ॥
तिन लाधे जिस किरपा भई । सप्त दीप की तब मिति पई ॥
सभ मिति जानी सतगुरू जनाई । नानक अगम पिंड की तब मिति पाई ॥४०॥
दीप दीप की सभ मिति जानी । तब मन महिँ उपजि रही हैरानी॥
होय हैरान रहिआ घट देखिआ । अगम पिंड क्या लिखीऔ लेखा ॥
इस देही का क्या बीचारउ । हाड़ नारि क्या रोम समारउ ॥
नौं दरवाजे दशवाँ द्वार । नानक इस प्रानपिंड का अगमु बीचार ४१
सप्त परबत इस मन महिँ कीने । महाँ विपम महिँ जाहि न चीने॥
उनके नाम बतावै कोई । तिनकी धूड़ि[2] मुक्ति गति होई ॥
कौन कौन परबत अस थापे । नानक गुर किरपा ते जापे ॥४२॥
प्रथमे परबत हिमंचल धरिआ । है भिहोसी[3] जिनि सभु किछु करिआ
होवनहार हिकमत इह कीनी । माटी की क्या पुतरी थीनी ॥
तिस महि अगम वस्तु बनाई । तूँ बिअत धनी मिति तिलु नहीं पाई ॥
तैं घट महिँ परबत सहजि बनाई । नानक कुदरति कही न जाई ॥४३॥
हेमकुंट कीआ है दूजा । घट बिअंत मुख कीआ कूजा ॥
हेमकुट जाकाँ नाम धरिआ । दूजा परबत घट मैं कर धरिआ ॥
हेमकुट की विपडी[4] घाटी । निरालंब होय हरि प्रभ थाटी ॥
आपि थाटु[5] कीआ निरंकार । इस पुतरी का बडा विस्थार ॥
बिअंत नगरी अनंत बाजारा । नानक धन्य नगरी जित हरि रहै निरारा ॥४४॥
निखधु परबत कीआ इस माहीं । होय निखधु जब उतघरि जाही ॥
उवा गढु जाय निखधु मनु होता । हाथ पछोडि[6] गुरू बिन ओह रोता
ओहि समुदा की जब गति जानी । तब मनु होय रह्या हैरानी ॥
निखधु समान नाहीं किछु जानै । नानक बिन गुर क्यों समुद पछानै ॥४५॥

(१) लाभे अर्थात् प्राप्त किये । (२) चरण रज । (३) अब भी मौजूद है और आगे को भी रहेगा । (४) विपम घाटी, कठिन मार्ग । (५) रचना, पसारा । (६) हाथ छुडा करि, गुरुदेव के आश्रे से रहित हुआ—अथवा पश्चात्ताप की दशा में जैसे आदमी हाथ को धुनता ऐसे हाथ मारता हुआ ।

सुमेर परवत इस मन महिँ राखा। सुमति सुभाउ गुर मत्ति पछाता॥
शीतल शांति सुमति मनि आई। सहजि सुभाय सोधि मिति पाई॥
सनक सनंद सिउँ मनु मानिआ। तब सुमेर अंतर महिँ जानिआ॥
सुमेर परवत जब अंतरि डीठा। नानक हरि का कीआ जनि लागा मीठा॥४६॥
नील परवत ले मन महिँ धरिआ। बिन गुर मत किसै हथि न चरिआ॥
अनजानत कैसे को पेखै। नील जाय मनु होआ अलेखै॥
नीली नजरि न साधू पहिचानै। नरकि जाय नहीं मनु सचि आनै॥
सचि शब्दि की नहीं मिति आवै। तब नानक इहु मनु नीलि समावै॥४७॥
सुअति परवत मनु सहजि समाना। सुअति परवत घट माहिँ दिखाना॥
सुअंत नक्षत्र सहज मुख मिलिआ। तब मनु स्वाँती सहजी हिलिया॥
हिल मिल सुआँती माहिँ समाना। सेत फटक का मरमु पछाना॥
तब मन सुआँती छावनी छाई। आठ पहर अगनत धुनि सुनाई॥
सुअतरि परवत इहु मनु आया। नानक मनका मथन सभ पाया॥४८॥
शृंगी परवत इस मन महि कीना। श्री[1] गुरु सत्त शब्दु जबि दीना॥
सत्ति सत्ति सत्ति मन महि आया। तब मनु शृगी माहिँ समाया॥
श्री गोपाल[2] मन महि जब जाना। तब मनु श्रीहरि माहिँ समाना॥

(१) एक शब्द के कई २ अर्थ होते हैं—श्री नाम लक्ष्मी या माया का ही नहीं किंतु शोभा, प्रदीप्ति, मंगल, कल्याण आदि कई पर्याय हैं, इस जगह कल्याण सरूप गुरू कहने से सतगुरों का सूचक है। श्री गुरू और सतगुरू कहि देना एकही बात है। (२) गो नाम संसार या इंद्रियों तथा अंधकार का है और पाल नाम पालनेवाले तथा रक्षक का, सो इंद्रियों के अंतरि (शरीर में) वोह श्री आत्मा अर्थात् अविनाशी आत्मा, रूप होकर (भाव पिंड में स्थित होकर) पिंड की पालना करता हुआ श्री गोपाल है—इसको मन में जान लेना आत्म ज्ञान कहलाता है। संसार नाम ब्रह्मांड कथन में आजाता है उसका पालक धनी ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म है सो भी परम प्रकाशमान होने से श्री गोपाल है। ऐसे मन में जान लेना ब्रह्म ज्ञान है। अंधकार नाम धुंधूकार अवस्था का है जो ब्रह्मांडी रचना से पूर्व की हालत होती है (हालत नहीं परंतु कथन में हालत है) सो उस धुंधूकार की स्थिती का कारण उसका निज रूप गोपाल है उसकी श्री प्रदीप्ती को जान लेना श्री गोपाल का जानना है—सो आत्म ज्ञान से ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान से उसकी ऊपरली अवस्था का ज्ञान एकही पद में वर्णन करके इसका फल गुरू महाराज कहते हैं कि श्री हरी में समा जाता है। सो हरएक में समाया हुआ हरी पुरी २ में शयन करने वाला पुरुष श्री सरूप, मंगलीक सरूप, कल्यान सरूप, प्रकाश सरूप, सत्त सरूप है—इस निमित्त श्री हरि जो सच खंड का मालिक सत्तपुरुष पूर्वोक्त ज्ञान द्वारे जब ज्यों का त्यों जान लीआ तो फिर उस में जाननेहारा या इसका ज्ञाता जल में जलवत समा जाता है। यह गुरू साहब के गंभीर कथन का अभिप्राय है।

सारंग होय सारग कौ मिलै । जाय न बिरथा सफलिउ फलै ॥
जब भृंगी महिं जाय समाया । नानक असथिरु तबि फिरनु मिटाया॥४९
सप्त परबत की सब बिधि लाधी । एकु पछाना दुर्मति बाधी ॥
दूजा त्यागि एकु रँगु लाया । मरनु पछाता मरमु सभु पाया ॥
सत्तिसत्ति जब मनु महि जानिआ । सप्तपरबत का मरमु पछानिआ
मनु तनु सोधिआ सभ इसकै माहिं ।नानक गुर किरपा ते नदरी आहि
गुर किरपा ते देहु सभ मथिआ । नानक ऐसा अचरज कथिया ॥५०

आगै खंड खंड का कीआ बनाउ । इस देही महिं बिअंत समाउ ॥
खंड खंड की जुगति पछानै । सगल खंड को आखि बषानै ॥
खड खंड के सूर[१] बतावै । ताँकौ अगम दिष्टि होय आवै ॥
अगम निगम की जोति प्रगासी । ताँकौ मिलिआ गुर अबिनाशी ॥
गुरू मिले का इही परतापु । जाँकौ दृष्टि परै सभु आपु ॥
आपु चीनि सभु देहु बीचारिआ । कहु नानक गुरु अनुग्रहु धारिआ॥५१
प्रथमे खंड इला परबत कीआ । ता महिं एकु अवरु नहीं बीआ[२]॥
एकुही आपि अवरु नहीं दूजा । तहाँ पाप पुन्न नहिं बरतु न पूजा ॥
इस मन महिं इह करी समाई । नौं खड की तहाँ बनत बनाई॥
इला परबत खंड कीआ है पहिला । जहाँ जाय मनु होवैं अहिला ॥
अहिलि मलगु[३] होय उत जाय । पैाण अहारी पीवै न खाय ॥
खान पीअन ते रहै निरारा । इला परबत खड महिं कीआ पसारा ॥
प्रथमे खंडि जाय मनु बसिआ । कहु नानक मनु सहिजी रसिआ ॥५२
भेदि खंडि मनु जाय समाना । भेद भरम का घरु बिसराना ॥
भेदाभेद का भेदु पछानै । आन भेद कौ मनु नहीं आनै ॥
भाँदू[४] मन कौ भी दिखलावै । भेदी कौ ले महलि मिलावै ॥
महलि जाइ मनि सहजु कमाना । जब ते हरि प्रभ मन महिं जाना॥
आतम चीनि परातम डीठा । नानक सतगुर ते आतम पैरीठा[५] ॥५३
हरि वर्ष खड मन माहिं बनाया । हरि हरि वर्षा सदा सवाया ॥

---

(१) स्थानी स्वरूप । (२) दूसरा । (३) अहलि वज्र, सच्चा मस्ताना । (४) भद्दूआ, भ्रामक, मूर्ख । (५) परमात्मा में प्रविष्ट होगया, लीन होगया, घिल कर मिल गया ।

अउ पवनु बादरु मनु कीना । सुरति बुंदा गुर ज्ञानु मुखि दीना ॥
बानी किरपा बरपत ही भीजै । जीवत मरै तौ देह न छीजै ॥
देह न छीजै अमरु तब होय । शब्दि सुहागै' इहु मनु कोय ॥
हरि हरि बरषा सहजी लाई । सहजे पाकी खरी सवाई ॥
जब मन गाहि लेत खलवारा' । छूटी ठाक' मूए सिकदारा' ॥
राजे महते सगल बिडारिआ' । नानक हरि वर्षे खड मन सहजि सिधारिआ ॥५४॥
केतमाल खंड कीआ बिचि देही । नेहु न लावै आनि सनेही ॥
करनहार करते नहीं जानै । दूजा भाउ जित कित महिं आनै ॥
एक न बूझै दूजै राता । शीतु न होवै सदही ताता ॥
कित कौ आया करी कमाई । काम क्रोध सिउँ रचि लिव लाई ॥
तब मन की सभ गई कमाई । जब केतमाल महिं करी समाई ॥
बिन प्रभ कित कौ अवर अराधहु । नानक केतमाल जपि छूटहु उपाधहु ॥५५॥
आसर खंडि सभ आस तिआगि । आसा मनसा तजी बैरागि ॥
आसा ना करु काहूँ की मीता । ऐसे आसनि रहत अतीता ॥
आस अंदेशा तमक बिडारी । आसर खंड महिं मारी तारी ॥
करम त्यागि भये निहकरमा । आसर खंड जाय बहुर न भरमा
आसर खंड की रहत सुनीजै । नानक तब मनु मद्रु भीजै ॥५६॥
अदोति खंड महिं आदि समाना । आदि पुरुष सुन्न शिपरि समाना
निर्मल सिक्ख सुनीजै साधू । अदोत जाय हरि नामु अराधू ॥
नामु अराधि इहु घट बिरोलहु । तब नानक गढ महिं निरजन टोलहु ॥५७॥

(१) जैसे धरती को हल से खोद कर ऊपर से सुहागा (हेंगा) फेर देते हैं जिससे उसकी उचाई निचाई निवृत्त हो जाती है, इसी प्रकार नाम स्मर्ण प्रताप से अन्तः कर्ण रूप धरती को शोध करके भजन अर्थात् सत नाम के ध्यान रूप सुहागे से अहंता ममता रूप उचाई निचाई से साफ कर देवे। परन्तु इस मन को कोई (विरला जीवही) इस प्रकार सुहागता है। (२) जब खेती पक कर काटी जाती है तो प्रथम ढेर (खलवाड़े) लगाये जाते हैं उपरांत उसका कण पात्र आदि के तले कुंद कर झाड़ लिया जाता है इसी प्रकार जब इस जीव की सहज खेती उग पक जाती है तो सम्पूर्ण शारीरिक मानसिक यत्नों से सुरति न्यारी हो जाया करती है। न्यारी हुई से फिर अनुभव रूप कण झड आता अर्थात् प्रगट होता है। बस जब अनुभव खुला (३) इसको कोई विघ्न नहीं डाल सकता (४) सिकदार नाम सरदार का है परंतु यहा यह भाव है कि सम्पूर्ण काम क्रोध आदिक तथा काल की सेना रूप काल समेत मर जाते हैं। (५) और (धोबी के कपड़े की तरह) पटका मारे जाते हैं।

सलोअत' खंडि सिलक' नभ खोई । शीतल देह साध की होई
माया सिलक मनि सहजि त्यागी । अनदिनु सलऊ' नामै सिउँ लागी
सिलरत' सिलकत हरि प्रभु जानै । गुर उपदेशु सहजु मनु मानै ॥
सलश्त सलकत' सलिल समाना । नानक प्रभ जन एक समाना॥५८॥
इत आवन खड जाय इत नहीं आवै । उतरि अवघटि सरवरि न्हावै॥
इत की रहत विसरै (जब) भाई । एत आवन खंड की सभ मिति पाई
ऊना कबहूँ न होवै हरिजनु । एत आवन खड वेधिआ जाँका मनु
मन तन की सभ जुगति पछानी । नानक खड खड की सार बखानी ॥ ५९ ॥
मित मलक खंड पलक नहीं लागे । सुन्नि समाय तब अनदिनु' जागे
पलक पलक धुनि ध्यान लगावैं । धुनि धरि हरि निरबाणि समावै॥
अठ' रव प्रगटै नावाँ गुहजा । जिस नावाँ प्रगटै सो होवै शोहदा
नावाँ खंड पल प्रीति (हि) साजै । नानक ताँमैं ब्रह्म बिराजै॥६०॥
नौ खंड की सखा सुनीजै । इहु मन सुलतानु हरि खडगि पतीजै
रारा' पोति ममा वपतरु कारि । ज्ञान खडगि मनुआनिआ जाँ धरि

(१) सिलहट पाठ भी है। (२) पेढ़ी, पथा। (३) डोरी अथवा मरक करके नाम से लगा रहे। (४) इस प्रकार नाम में मिलक यानी जंजीर की तरह जुड़ता जुड़ना। (५) सरकता सरकता। (६) निरंतर, प्रति दिन। (७) नीचे तथा ऊपरी पिंड में सतपद पर्यन्त आठ प्रकार का शब्द सुरति की अंतरमुखता से प्रगट होता है जिन को दृष्टांत से जताया जाता है परन्तु आगे का शब्द दृष्टांत से न जताने योग्य होने से वोह नावाँ शब्द गुप्त (स्वअनुभव गम्य) है। इन शब्दों में प्रिय नाम के लाने के लिये इन की साक्षात्कारता का कारण रूप शब्द राम नाम आगे नं० ५ में गुरू साहिब का उपदेश दर्शाया है सो ऐसे नाम का उपदेश करके सभ का सारभूत होने से "नाना ध्यान पुरान बेद विधि चौतीस अक्षर माहीं। व्यास विचार कहो परमार्थ राम नाम सर नाहीं॥" इस वचन अनुसार इसका आराधन कर। (८) रारे अक्षर की शिर पर लगी टोपी चढ़ाये और ममा की सीने और कमर पर लगी वास्कट पहिर कर ज्ञान रूपी खड़ग हाथ में ले कर मनु राजा से जंग करके इसे थकाकर जीता पकड़े—इस में गुरू साहिब राम मन्त्र के आराधन की युक्ती बयान करते हैं, "रा" को शिर पर से नीचे लाने और नाभी पर्यन्त लाकर "म" में उपसंहार करे उप्रान्त "म" के साथ सुरति को ऊपर लेजाकर "र" में उपसंहार करे पुन २ इस प्रकार उतरता चढ़ता रहे परन्तु हर एक उतराई चढ़ाई का ज्ञानरूपी खड़ग हाथ से न छोड़े तो मन हार कर अपने हथियार छोड़ शरनागत हो जाता है। यही मन का मारना है, कोई उसका नाश नहीं करना जो नाश करने का यत्न करते हैं, धोखे में हैं, तारेंगे किसको—बेढंगी प्रवृत्ति जीवों की तथा शिवनाभ की देख कर गुरु महाराज ने परम राम नाम का मन्त्र ही यथार्थ रीति से उपदेश किया है।

पंच बिदारि पंचीसाँ मारी । नौं करि हितु[1] पट दूरि बिदारी॥
खंड ब्रह्मंड निरखि मनु मानिआ । जब नानक सतगुर शब्द पछानिआ ॥६१॥

खट निवर्हे—आगे भउण चले ।

प्रथमे भउण की कथा सुनीजै । बकन कहन ते क्षमा गहीजै ॥
उतरि अवघटि मॅजनु करै । अनहद धुनि महिं शब्द उचरै॥
अकाश विमल जलु सहजी पीवै । रस सति पीवै सहजि मनु धीवै॥
चिहन भवन की साख सुनाई । नानक भवन दीप की तब मिति पाई॥६२॥
दुतीआ भवन बचिहन सुनाया । गगन निवास समाधि समाया।
पारसु परसि परमिति जबजानी। अति अगाध उपजी हैरानी॥
सतगुरु परचै तामस जाली । मुखु[3] काला करि प्रगटै लाली॥
बचिहनु भवनु का इह बृत्तंतु । नानक अंतु न पाये घनी बिअतु॥६३॥
अधर भवन घर धुन नहीं आवै। तन सरवर सभ गुरमति पावै॥
हिम घर चीने अग्नि बुझावै । शब्द सोधि गुर निज पदु पावै॥
चोटी रीति निज महलि समावै। अधर धरन की मनहिं हितावै॥
अधरधरनि की सभ बिधि पाई । नानक ताँते सतगुरू सहाई ॥६४॥
निआधर भवन क्वन धरि रहता। बकन कहन ते दम करि बहता॥
हिम घर जानि शीतल मिति पाई। सेवा सुरति बिभूति चराई॥
दरशनि पति सहज घरु जाना। निर्मल शब्दि जोगि लपटाना॥
निआधर भवन की कथा सुनीजै। नानक गुर की सीख पतीजै॥६५॥
निजल भवन नहिं जल निधि पाई। भ्रमत आत्मा नहीं शीतलाई॥
जे अंतरि ज्ञान होवै पदुसारा । तब जानै तीरथ मजन सारा॥

(१) और इस के प्रभाव से जो नैा प्रकार का शब्द सत्यनाम प्रगट होगा उसका हित चित्त में धारे रहो भाव उनका ध्यान रख और पट शास्त्र के मत को दूर फेंक क्योंकि जब सार लेलिया तो फोग से क्या मतलब। गुरू साहब ने राम नाम रूप साधन उपदेश करके नौ का इशारा प्रथमही कर दिया है कि कहीं इतने में ही बस न हो जावे और सगुरा होजाना समझ कर आज कल के लोगों की तरह शून्य २ हो बैठे । दशवें शब्द का अत्यन्त गुप्त होने के कारण गुरु साहब ने जिकर ही नहीं किया। (२) होवै। (३) दोनों जहान की ओर से मुँह काला करे तब परमार्थ की लाली पाई जा सक्ती है जैसे बाहर सतगुरू की प्रीति के परचे से जहान की ओर से बेपरवाही हो जाती है इसी प्रकार मालक के ध्यान में भीतर बाहर का सब ज्ञान इसी परचे में भूल जावे तब जाकर घट का पट खुलना और झलक दिखाई पड़ती है।

जब जोति जोति कौ सहजि समावै। तब पारस होय परम पदु पावै॥
निजल भवन की रहत निआरी। नानक सतगुर प्रगट दिखारी ६६
निशत भवन आपु सभु सोखै। पच तत्त सतगुर ते पोखै॥
तपति निवास कीआ मनि भाई। पचि निवारि अभय' मति पाई॥
शब्द वचन मन कार कमाई। तब ते मिटी फिरन की धाई॥
लखिआ न जाई अविगतु नाथु। नानक गुर मिल अकथह काथु ६७
भवन नितोट' तूँ एक अकेला। तुमरै खेलि न कोई खेला॥
जल ते उपजै दूरि अब रहता। अनडीठी की रहनी कहता॥
किसकै निकट दूरि किसु कहीऐ। सभ कै मध्य बाहरि सभ महीऐ॥
दूरि निकट करि एको जानै। इह गति नानक तबहि पछानै ६८
नितिप भवन तिपा सोपै भाई। अंतरि निधरा' धार चुआई॥
अमिउ पीआ अमरा पदु पाया। मग डोलन का पथ चुकाया॥
साखी सुनत साख सभ जानी। गुहज प्रगट गुर किरपा जानी॥
सभ जप सभ तप सभ चतुराईआँ। नानक गुर किरपा ते पाईआँ ६९
निधन भवन धुनि नाहिँ पछानी। अपर अपार की कछू न जानी॥
इह जगु बाँधा बहुती आसा। गुरमुखि खोजि तब भया पलासा॥
अतरि प्रगटिआ कउल निराला। तिनि जनु मिलिआ निरजन बाला
तीन गुनाँ ते रहते निआरे। नानक ते जन सागर तारे॥७०॥
निजत भवन नाना बिधि जानी। बाहरि हउमैं कहै कहानी॥
जग जीता 'पर' तिरीआ त्यागी। सगल कुटब तजि गए बैरागी॥
अंतरि मुक्त पछानी सारी। बाहरि माया लेप दिखारी॥
निजल भवन की इह मिति भाई। नानक गुर प्रसादी पाई ७१
निसन भवन सुनि सचि नीशानी। नींद भूख तजि रचिआ बानी॥

---

(१) अनुभव। (२) चौदह भवनों में से एक का नाम जिस में सुरत का तोट यानी धारा नहीं रहता। (३) जब शुन्य मंडिल में सुरति की तार पूरी २ बधती है तो कार्तिक शरदपून्याँ के चन्द्र से भी अधिक शीतल तथा शाततम (निहायतही शात) तेजो मडल से इस प्रकार अमृत की बूंदें वर्षती है जिस प्रकार हिमकर ऋतु में वर्षा पड़ने उप्रत निर्मल खिली हुई चादनी रात में ओस की धारा (बिन्दु) वर्षती हैं। जिसको अनुभव करके सुरति अमरु हो जाती है, इसी अमृत धारा के रस में सुरति पूर्ण मगन हुई आपाभाव से भी रहित हो जाती है। इसी अवस्था के अनुभव को मानसरोवर का स्नान सतों ने कथन किया है जो केवल स्वअनुभव गम्य है।

रूड़ा[1] कहऊॅ न कहिआ जाई । क्या गुन कथऊॅ न कथिआ जाई॥
सूख रजाई दुख वहु कीने । बूझै शब्दु उन सभि सुख चीने॥
जिस अंतरि सची सीख निहाल। नानक सो जन निकटि दयाल॥७२
निभवन भवन विशन नाहिँ जाना।शब्द चीन मन सचि पत्याना॥
अंतरि सची सीख निधानै । त्रिभवणु बूझै आपु पछानै॥
अनहद राता अनगत[2] धावै । अनडीठै रचिया कबहूॅ न आवै
शब्द वीचारि जब इहु मन मथिआ। नानक गुर प्रसादि ऐसा पदु कथिआ॥
निपति भवन पति जति न वीचारी। काया अगनि मनु कीआ अधारी
ज्ञान जनेऊ इस्नान सचु धोती । हरि नाम जपि कीरत मनि होती
ऐसा ब्रह्म वीचारहु पॉडे। पच मेल के कहीअहि भॉडे
तनु चीना तब भवन वीचारे। नानक गुरमति मेल पिआरे॥७
रचन भवन रचि रचना कीना। रचि मचि रहिआ नाथ न चीना
अपनै रचनि पाई यै रचु रचिआ। सभ वशि काल नहीं को बचिआ
से बंचे जो हरि पद राते। अंतरि शब्द दिढ़ाहिँ जन साचे
रचिरचि रचना सहजि बिगासै। नानक प्रान चीने ते शब्द प्रगासै७
गुर प्रसादि भवन वीचारे। आत्मा चीनि मथि कीए निरारे
आत्मा चीनि भवन मिति पाई । जब मन वच क्रम गुर साप सुनाई
चीनी देहु तत्त बिरोलिआ। नप शिप ते इहु एक टटोलिआ
बिन चीने कैसे मिति पाईयै। नानक देह चीनि सगल गति पाईयै७
चैादह भवन घट महि दिष्टाने। अहु ठाकुर महि सगल समाने
अगमु घटु बहुतु बिस्थार। कह्या न जाई उर वार न पार
खंड दीप भवन इस माहीं। सप्त समुंद्र मेरु सप्ताहीं
अतु न पायै आतमा दरीआउ ।। नानक चौदह भवन का कीआ ध्याउ॥७९

खंड ब्रह्मंड पताल दीप, सप्त समुद मझारि।
चैादह भवन इस महिँ, कीए अवर अठारह भार॥
चारि कुट इस महिँ धरी, पूर्व पच्छम सार।
उत्तर दक्षिण माहिँ इस, चहुँ दिशि का वृत्तंत॥

(१) सुन्दर। (२) अविगत यानी ईश्वर की ओर।

इहु विस्थार है प्रान का, क्या को करै मथत।
अठसठ हाट द्वार दश, नौ नारी पंच चोर॥
नानक प्रानी क्या मथै, विअंत देह अंध घोर॥७८॥
चारि ब्रह्म इस मनै माहिँ, हरि चारे रत्न अमोल।
चारि समाधी चारि पद, मिलि गुर लहै अगोल[2]॥
चारि ध्यान चारे धुनी, चारे रंग मामूर[3]।
जिस सतगुर किरपा करै, सो होवै चीनि ठरूर[4]॥
इह विस्थार इस देह का, बिन सतगुर लहिआ न जाय।
नानक जाँको गुर मिलै, सोई जन लहै सुभाय॥७९॥
बारह चौदह माहि इस, नौ छिअ चउ बीहि चारि।
अठ अठारह बीस तीस, इसही मॉहि बीचारि॥
पंद्रह दश इकीहि सत्त, मन मैँ धरै परोय।
नानक जिस कैा गुर मिलै, सो पिंड चीनि सिद्ध होय॥८०॥
बारह अठ अरु बीस सत्त, पद्रह नौ महिँ कीन।
चारि वेद षट शास्त्र, सध्या अरु गायीन[5]॥
कर्म दूने तेरस बने, दोय डिउढे गुनि रासि।
पैाणे दोय दूने मथै, तिसु जन होय बिगासु॥
सभ किछु साढ़े तीन महिँ, बिरला लहै बिचारि।
नानक जिस इह सुधि परी, तिस चीने दश द्वारि॥८१॥

॥ अध्याय सम्पूर्ण ३ ॥

---

(१) एक ब्रह्म त्रिकुटी में, एक शून्य मंडल में, एक सचखंड में और एक वोह जो सभ में है और फिर सभ से न्यारा उसका स्वरूप कथन चिंतन से अगोचर है। सच खंड पर्यंत के मालिक को कुछ न कुछ न्यारा रहि के सुरति अनुभव कर सकती और करती है परंतु सभ के अवधीभूत को तो उसमें अभेद हुए विना कोई कदाचित् अनुभव ही नहीं कर सकता और जो उसमें जल में जलवत मिला वोही होगया वोही, सच्चा ब्रह्मज्ञानी है। उपरोक्त चारों में नभमंडल के धनी निरंजन को भी यदि शामिल किया जावे तो ब्रह्म पांच हो जाते हैं परंतु गुरु साहब उसे ब्रह्मकोटी में अंगीकार नहीं करते। (२) चारों ओर से गोल अर्थात् व्यापक स्वरूप ब्रह्म। (३) भरपूर। (४) शीतल, शांत। (५) गायत्री।

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

॥ राग आसामहला १ ॥

॥ सुन्न महल की कथा, निरंकार का ध्यान, गुहजीवाणी, प्रान पिंड का मथंत, ध्याउ उन्मुनि का ॥

॥ श्लोक ॥

अगम निगम की कथा को मोहि सुनावै आय।
ज्यौं कीआ प्रगास सुन्न ते नाना रंग बनाय॥
अकल निरंजन कला करि, कीना धरनि गगन।
नानक रंग बनाइ कै, रहिया होय मगन ॥१॥

॥ पउड़ी ॥

उन्मुनि सुन्न सुन्न सभ कहीऐ। उन्मुनि हर्ष शोग नहिँ कहीऐ॥
उन्मुनि आस अँदेशा न ब्यापै। उन्मुनि बरन चिहनु नहीं जापै॥
उन्मुनि कथा कीरतनु नहीं बानी। उन्मुनि रहता सुन्नि ध्यानी॥
उन्मुनि अपना आपुन जानिआ। नानक उन्मुनि सिउँ मनु मानिआ॥१॥
उन्मुनि मात पिता नहीं कोई। उन्मुनि सुरति सुधि नहीं लोई॥
उन्मुनि माया ममता न होती। उन्मुनि सुन्न देहुरी होती॥
उन्मुनि ज्ञान ध्यान न बीचारै। उन्मुनि मुक्ति वैकुठ न तारै॥
उन्मुनि भाउ भगति नहीं काई। नानक उन्मुनि सिउँ बनि आई॥२॥
उन्मुनि सुन्नि नारायण रहिता। उन्मुनि बकन कहन नहीं कहता॥
उन्मुनि आपना आप न जाना। उन्मुनि महलि अगम समाना॥
उन्मुनि होत न मनसा माई। उन्मुनि सपा मीत नहिँ भाई॥
उन्मुनि एको एक इकेला। नानक उन्मुनि रहै सुहेला॥३॥
उन्मुनि अस्थावर नहीं जगम। उन्मुनि छाया महिलु बिहंगम॥
उन्मुनि रवि की जोति न धारी। उन्मुनि किरण न शशिहिँ स्वारी॥
उन्मुनि निश दिन ना उजयारा। उन्मुनि एकु न कीआ पसारा॥
उन्मुनि खाणी बाणी नहीं जाणै। नानक उन्मुनि रहत निरबाणै॥४

उन्मुनि पौन पाणी नहीं कीना । उन्मुनि ओप्त खप्त[1] न चीना ॥
उन्मुनि खंड पताल न सागर । उन्मुनि नीर न मच्छ बैरागर॥
उन्मुनि जीअ जंत नहिं कीने । उन्मुनि अपुने आपु न चीने ॥
उन्मुनि मुक्ति वैकुंठ न कीए । नानक उन्मुनि महलि समीए ॥५॥
उन्मुनि ब्रह्मु न विश्नु महेशु । उन्मुनि त्रैगुन नाहिं प्रवेशु ॥
उन्मुनि जाति जन्म नहीं कोई । उन्मुनि दूख न ममता होई ॥
उन्मुनि जती सती न वीचारी । उन्मुनि सुन्न महलि धुनि तारी॥
उन्मुनि घूरम[2] तारी लागी । नानक उन्मुनि मगन वैरागी ॥६॥
उन्मुनि सिद्ध साधिक[3] नहीं ज्ञानी । उन्मुनि जती सती नहीं ध्यानी
उन्मुनि जोगी जंगम नहीं वेता । उन्मुनि एक इकेला होता ॥
उन्मुनि नाथ न होता बीआ । उन्मुनि एकु इकेला थीआ ॥
उन्मुनि कथन सुनन नहीं साजे । नानक उन्मुनि सहजि विराजै ॥७॥
उन्मुनि शुचि सजम नहिं होती । चदन तुलसी माल न प्रीती ॥
गऊ गुआल[4] न गोपी काना । उन्मुनि बसु न नाद वजाना ॥
उन्मुनि पापडु प्रेमु न कीना । उन्मुनि एककार अलीना[5] ॥
उन्मुनि एकस सिउँ बनि आई । नानक उन्मुनि गति लपी न जाई॥८
उन्मुनि कोई न किसै ध्यावै । उन्मुनि जिनसि[6] न धरनि समावै॥
उन्मुनि वरनु भेष न गहीजै । उन्मुनि कहनि कथनि न भीजै॥
उन्मुनि देहुरा[7] देउ न कोई । उन्मुनि तट तीरथ नहिं लोई॥
उन्मुनि होम जग नहीं पूजा । नानक उन्मुनि एकु न दूजा ॥९॥
उन्मुनि शास्त बेद न कीने । उन्मुनि पच तत्त नहीं चीने ॥
उन्मुनि नौं बारह नहीं साधे । उन्मुनि बारह बीस न लाधे ॥
उन्मुनि दश अरु अठ न कीए । उन्मुनि बीस सत्त न मथीए ॥
उन्मुनि चौदह चारि न माने । नानक उन्मुनि सहजि समाने ॥१०॥
उन्मुनि जोग नहीं वैरागु । उन्मुनि सजम दृढ तन त्यागु ॥

---

(१) उत्पत्ति, और प्रलय। (२) नशे में मस्त, मपमूर। (३) सिद्धि की प्राप्ती का यत्न करने वाला, जग्यासू, साधना में प्रवृत्त। (४) ग्वाल, अहीर, बृजवासी, कृष्ण जी केसपा। (५) एकंकार में भी लीन नहीं होता क्योंकि उस अवस्था में उसके सिवाय दुतिया कुछ है ही नहीं लीन कौन होवे। (६) जिन्स, क़िस्म। (७) किसी देवता या महात्मा की समाधि, देवल।

उन्मुनि शब्द कुशब्द न कोई। उन्मुनि उश्न न शीतल होई॥
उन्मुनि राज तुग[1] न फकीरा। उन्मुनि महत्त न राज वजीरा॥
उन्मुनि ऊँच नीच न कहावै। नानक उन्मुनि महलु बुलावै॥११॥
उन्मुनि अनहद सिउं मनु लागा। उन्मुनि सुषमनि सोवनि न जागा।
उन्मुनि सूक्ष्म नहीं अस्थूला। उन्मुनि डाल शाप नहीं फूला॥
उन्मुनि फुल फल कछूअ नजाना। उन्मुनि दश अठ न प्रगटाना॥
उन्मुनि उणवजह[2] क्रोड़ि न बाँधी। नानक उन्मुनि राते कुछ सुधि न लाधी॥१२॥
उन्मुनि सोलह क्रोडि न कीने। उन्मुनि बारह क्रोड़ि न चीने॥
उन्मुनि नौ क्रोडि नहीं साजी। उन्मुनि करी न ओप्त[3] सिउँ बाजी॥
उन्मुनि आठ लाख नहिं कीने। उन्मुनि कुंट[4] चारि नहिं चीने॥
उन्मुनि पूरब पच्छम न धारे। नानक उत्तर दक्षिण नाहिं बीचारे॥१३
उन्मुनि ध्यान लागै निरंकार। तब अंडज जेरज न किछू पसार॥
उन्मुनि ध्यान न सेतज कीने। उन्मुनि ध्यान न उत्भुज चीने॥
उन्मुनि सहज[5] बाणि न बीचारी। उन्मुनि सजम खुली न तारी॥
सुपाउ बाणि उन्मुनि नहिं मथी। नानक अतीत बाणि उन्मुनि न कथी॥१४
उन्मुनि अगम निगम नहिं धारे। उन्मुनि सपा सिख्ख न स्वारे॥
उन्मुनि सजम शील न होता। उन्मुनि ध्यान अनाहद सोता॥
उन्मुनि अनहद बीनै राता। उन्मुनि अनहद शब्द पछाता॥
उन्मुनि ध्यान राता निरकारा। नानक उन्मुनि रहत निरारा॥१५॥
उन्मुनि बाई[6] तेज न हूआ। उन्मुनि एककार न दूआ॥
एको एकु रहतु निरबाण। सुन्न महलु का एही ध्यान॥
तब एक इकेला कोई आन न कहता। उन्मुनि ध्यान निराल मु रहता॥
अपने जीअ की आपे जानै। नानक रहता सुन्न ध्यानै॥१६॥

---

(१) ऊँचा आदमी, हाकिम, महान, धनाढ्य। (२) उणचास (४६)। (३) उत्पत्ति। (४) दिशा। (५) पिंड में नीचे के मंडलों में परा पश्यती मध्यमा बैखरी चार प्रकार की वाणी रहती हैं। ऊपरले मंडलों में भी चार प्रकार की वाणी स्थान भेद से रहती है। सुषमना का घाट जो सहज घाट है वहाँ पर सहज वाणी का निवास है। त्रिकुटी मंडल में सजम वाणी, सुपाउ वाणी सुन्न में और आगे अतीन वाणी सतलोक में रहती है। जिस प्रकार नीचे मंडलों में एक ही वाणी चार स्वरूप धारण करती है वैसे ही एक मात्र शब्द शब्दी से प्रगट होकर सहज आदि रूपों में प्रकाशित होता है। वास्तव में जो नीचे के चारों रूप भी उसी के ही हैं। (६) वाईस मुल्कों के धनीओं की ओर इशारा है।

सुन्न निरंतरि दीजै बधु । उडै न हसला पडै न कधु ॥
सुन्न गुफा घरि छावन[१] छाया । पड़ै न देहु जोनि नहिं आया॥
अजरावरु अमरापुरि वासा । सुन्न गुफा महिं भया मवासा ॥
उन्मुनि गठि न खूलै मन की । नानक उन्मुनि सुरति न तन की१७
उन्मुनि खूला छुटकी तारी । उन्मुनि खूला जोति पसारी ॥
उन्मुनि खोलि धारी जब धरना । उन्मुनि खोलि आकाश टिकाना॥
उन्मुनि खोलि रवि शशि प्रगटाने । उन्मुनि खोलि त्रै कीए समाने॥
उन्मुनि खोलि कीआ पसारा । नानक एकसते विस्थारा ॥१८॥
उन्मुनि खूला नेत उघारे । उन्मुनि सजम खोले प्रभ सारे ॥
उन्मुनि की जब छुटकी डोरी । तब चीना देहु मथी सभ खोरी॥
उन्मुनि खोलि बताई मनसा । तुम देखति मनु बिगसा सरसा॥
सुआमी पूछत मनसा माई । किछु कीजै आलसु मनु नानक बिगसाई॥१९॥
आपहु कीनी मनसा माई । आपहु त्रै गुण पूरि समाई ॥
आपहु पच तत्त ले कीआ । आपहु लोह कलम मथि लीआ ॥
आपहु पट छिअ चारि उपाए । आपहु बीस इकीस कराए ॥
आपहु सभ किछु कीआ बनाय । नानक उन गति लषी न जाय२०
ओंकार उतपति प्रभ कीनी । ओंकार रचना मथि लीनी ॥
ओंकार पसार पसारिआ । राजस तामस सातक माया ॥
ब्रह्मा बिश्नु महेश उपाए । तिन की रचना गनी न जाए ॥
अनेक भांति जल थल महिं जीआ । नानक ओंकार ते सभ किछु थीआ२१

अध्याय चौथा सम्पर्ण ॥४॥

---

(१) छन्न छाकर (घर बाध कर) बैठ ही जाने से भाव है, दृढ़ तर होकर ध्यान धरने से मतलब है।

॥ १ ॐ सतगुरु प्रसादि ॥

॥ ध्याउ परम तत्त का ॥

॥ राग गौड़ी महला १ ॥

॥ श्लोक ॥

जब मन तन प्रान न कछु कीए कीना नाहिँ अकारु ।
नानक उन्मुनि रवि रहिआ सुख सागरु निरकारु ॥

॥ पउड़ी ॥

तन महिँ मनूआ जो ठहिरावै । जम्मण मरण भिश्त अरु
दोजप ता के निकट न आवै ॥
तिस सूझत है पद निरबान । तजै आपु होय रहै समानु ॥
आत्म चीनि परमात्म चीनै, ज्ञान मथनु आतमा समझावै ।
नानक इह विधि घटु मटु[1] सोधै, तबही परम तत्त कौ पावै॥१॥
जैसे बिनु[2] पग पंख चलै उडि अडा । इह विधि इहु मनु चढै ब्रह्मंडा
गवन विहगम कबहूँ न जासी । भोजन बिना तृप्त अघासी ॥
जैसे मदर पैसि रवैं[3] बरु नारी । उदास रीति नानक यौं निआरी२
तहाँ पूजु जहाँ बिमल[4] दिवाला । मन मथि सोधि निरजनु वाला
तजि आत्म[5] परमात्म पछानै । चीनि लहै केवल निरबानै ॥
अहि निशि रीति जो जोग कमावै । नानक सुन्न महलि को सन्न[6] लगावै ३॥
सुन्न महल महिँ जाय समावै । रतन अमोलकु तहि ही पावै ॥
जहँ केवल निरबानु बसेरा । जोग रीति जनु पहुँचै तेरा ॥
होय अनभै जोगी भउ सभ डारै । नानक तत्तु लहै घरु सोधि बीचारै४

(१) घट रूपी मटका अथवा घट रूपी कोठा मन्दिर। (२) जैसे अलल पक्षी का अंडा बिना पाउँ और पखों के आसमान से गिरता २ मार्ग में ही पक फूट कर जैसे आया वैसे ही अपने माता पिता के निकट आकाश में जा पहुचता है ऐसे ही आदि निरजन के दर्बार से गिरा हुआ मन भी यदि उलट कर उधर ही को चढ़े तो इसका चलना अर्थात यत कभी निष्फल नहीं जाता। (३) जिस प्रकार मन्दिर में प्रविष्ट होकर कामनी अपने पती से रमण करती है और सिवाय उसके किसी ओर की अभिलाषा नहीं करती सर्वथा सभ से उदास रहती है ऐसे ही अभ्यासी की सुरति भी मालिक के ध्यान में मगन सभ की चिंता फिकर से रहित होनी चाहिए। एक चिंता बिना और सभ चिंता त्यागनाही गृह में उदास रहना है। (४) निर्मल देवस्थान नभपुर सहसदल कमल है जिसका समाचार गुर बाणी में यों दिया है —"नील अनील अगनि इक ठाँई। जल निरधि गुर बूझ बूझाई॥" और पता दिया है कि "तू देखहिं थापि उथापि दरि बीनाईंऐ"। (५) आपा भाव छोड़ करि। (६) सँध।

अठसठि तीरथ काया भीतरि, गगन गगा मुख काशी ।
गुर किरपा निरबान रहैगा, खोजि लहै सो उदासी ॥
नित्य अश्वमेध मुख ब्रह्म अहूतै, लिव लागै अविनाशी ।
पद पंकज जब प्रान रचैगा, मन तन माहिँ समाई ॥
कहु नानक पग परसि विलासै, मिले निरंजन राई ॥५॥
इहु मनु होय रहै जब शुहदा । अनदिनु जपै सदा पदु गुहजा ॥
मीना होय विमल जल सोधै । सतगुर ज्ञानि आत्म प्रबोधै ॥

करि मनु तरवरु मति पवन हिलाया ।
नानक इहु मनु ढाहि परम पदु पाया ॥६॥

अचल[1] समान दिढ़ै इस मनु कौ । तिस कालु सतावै निमप न तन कौ ॥
चंद सूर[2] का जो मतु लेई । गुर[3] कौ खाय मनु सहजि रवेई ॥
जिस ते उपजिआ फिर तिसहि समावै । नानक इह बिधि परम पदु पावै ॥७
अगम अगाध नाथ प्रभु जपने । महलि अमहलि[4] मिलै प्रभ अपने ॥
तिस सूझत है पद निरबाना । जो छाडि आपि होय रहै हैराना ॥
उर वार पार की सभ मिति पावै । नानक इह बिधि परम पदु पावै[5]८
जैसे मीन जला[6] तजि बिगसै, ऐसे इहु मनु रहता ।
मारगु छाडि पड़ै मगि बिखड़ै, तब घरु गुहजा लहता ॥

---

(१) पर्वत के समान मन को सावधान (स्थिर) करे । (२) उदय अस्त को प्राप्त होना यह सूरज चाद का मत है (३) सो ससारी पदार्थों व्यवहारों के साधक पिंडवर्ती यह दोनों नेत्र जब अपने पच्छमी स्थान सुरति कमल पर अस्त कर दिये जावें तो अहंकार रूप गुरू को मन खा जाता है और सहज रस को भोगता है । (४) अमहल रूप महल में अर्थात् सुरति चढ़ती २ धुर मुकाम में जिसे मुकाम नहीं कहा जा सक्ता वहां पर मालिक कुल (उस) अकाल पुरुष से मिल जाती है । (५) "नानक परम तत्तु तब पावै" ऐसा पाठ भी है । (६) उसके मिलाप अर्थात चढ़ाई का प्रकार दर्शाते हैं — जैसे मछली सरोवर निवास को त्यागि के बरपती हुई पानी की धार को पकड़ि आसमान में चढ़ती अधिक प्रसन्न होती है इसी प्रकार सुरति शब्द की धार के सहारे पिंडवर्ती आकाश में चढ़े तो गुह्य ठौर जो इसका निज घर है उसको प्राप्त हो जावे । पिंड को त्यागि ब्रह्मंड में चढ़ने का प्रकार कहते हैं—वर्तमान स्थानों में सुरति के ठहिरने से परा पश्यती मध्यमा तथा सहज वाणी प्रगटा करनी है उनकी धार के सहारे ऊपर लाना होता है । हठ योग का सहज योग अर्थात् सुरति शब्द योग में इतना उपयोग नहीं भी और है भी, है तो केवल इतना कि योग के साधन सर्व दशा में जज्ञासुओं में होने जरूरी हैं । उन यम नियम आदि साधनों म सपूर्ण शुभ साधन आ जाते हैं । प्राणायाम को सहज योग में समीचीन (प्रमाणित) नहीं रक्खा गया परन्तु इसी की सूरति सुख साध्य हालत में कोड़ी योग

गुहज महलि महिँ मनु मगनाना, तब उलटि कवलु बिगसावै।
नानक होय दासन को दासा, तब परम तत्त को पावै ॥९॥
पट दलि कवल निवासा होय। चहुँ को फेरि मिलावै सोय॥
चहुँ के बीचि समाधी रहै। तिस ते कालु त्रिभकि' डरि रहै॥
एकही रचै आन नहिँ धावै। नानक परम तत्त तब पावै ॥१०॥
अष्ट कवल दल भीतरि वसै। तहाँ श्रीरंगु सहजी बिगसै॥

की दशा में पलट ली गई है। चक्रों का ज्ञान मात्र केवल ब्रह्माड मडल में सुरति को ले जाने के लिए होता है ना कि कुछ उनमें धारणा ध्यानादि से प्रयोजन। सो 'वक नाड़ि रणक गुण गाउ' तथा राम नाम का साधारण उपदेश करते समय गुरू महाराज सुरति शब्द योग के योग्य जिस प्रकार का प्राणायाम होता है वर्णन कर चुके, अब धारणा का उपदेश करने अर्थ चक्र ज्ञान कराते हैं — जहा पर कोई चला जा रहा हो प्रथम उसे वहीं पर खड़ा होने को कहा जाया करता है, खड़ा करने उप्रत धीर्य से यथार्थ वात की जाती है। कलियुग के ससारी जीव विशेष करके लिंग प्रायण है इस कारन हठ योग की प्रक्रिया का ध्यान ना रख कर भी चक्र ज्ञान उपदेश में प्रथम पटदल कमल में निवास (धारणा) कहा है। यह पटदल कमल लिंग से ऊपरली मास गुद्दी को दबाने से जहा पर से पीछे को अधिक दबती है पेन उसके मुकाविले पर पिछली तरफ है। प्रथम उस जगह सुरति को ले जावे उसके छ पत्र ह अर्थात् छ कोणी मासमयी तेज रूपिणी पेशी है यह इद्री कमल है उस जगह से चारि दल कमल के गुदा चक्र में पलटे वहा योगियों के योग की आरम्भ भूमी है इसलिये समाधी का कारण है फिर नाभी के पिछवाड चक्र में सुरति को फेरे उसकी आठ पखड़ियाँ हे यह दायें वायें किंचित भेद से स्थित दो चक्र है दूसरे में दस दल हैं वहा सुरति के टिकने में दो प्रकार का प्रकाश होता है। चट्टा का स्थान धारणा से खुल जाने पर हृदय कमल में सुरति लावे जो कि द्वादश दल का कमल है—चक्रों का निवास पिंड में पिछवाड में ही है अगली ओर केवल उनकी पीठ होने से गढ़ा मात्र शरीर में दिखाई दिया करता है। हृदय में तीन चक्र है परतु गुरू महाराज ने (जान बूझ कर) स्पष्ट नहीं किये द्वादश दल के दाये वायें उनका स्थान है वहा से फिर कठ में सुरति को पलटे फिर त्रिवेणी घाट में जहा पर इड़ा पिंगला का मेल सुषमना के साथ होता है उसको भी छोड कर फिर सुरति आगे सुन्न में जा समाती है—सुन्न की निशानियाँ समझा कर ऊर्धगति वक नाडी द्वारा पिछवाड में का धुधूकार मडल सूचन कराते हुए भवर गुफा जोकि सच खड की दर्शनी डेवढ़ी है उसमें सुरति का समाना उपदेश किया है—सुन्न मडल में तत्त्व ज्ञान की प्राप्ती होती है परन्तु भवर गुफा में पहुँच कर इसे विज्ञान की उपलब्धि होती है—इतने सविस्तर पिंड ब्रह्मड भेद कथन से गुरू साहब ने अगली ओर (पर्व) से सुरति का पिछवाड (पश्चिम) की राह ऊपर चढ़ना निरूपण किया है—सुन्न प्रयत सभ चढ़ाई सीधी पश्चिमी चढ़ाई है। आगे थोडा सा ब्यग खाकर धुधूकार मडल की सैर (थोड़ी सी बाईं ओर पिछवाड में) करके फिर दक्षिण (दाईं ओर) घाट भवर गुफा का प्रवेश है यही प्रदक्षणा का क्रम चार-धाम की यात्रा तथा चौपड खेलना आदि कहा है—इन्हीं संकेतों से गुरू जी वारवार अभ्यास करावेंगे। पूर्ण अभ्यास पर निज घर सच खड की स्थिती वपशते ह जो आगे आवेगी। गुरू साहेब का उपदेश हठ योग का नहीं है, भूले हैं वह जो ऐसा समझ कर प्राण सगली के आशा की ओर नहीं झुकते जोकि कुंजी सभ गुर-वाणी की है। (१) सहम कर।

सतगुर मिलै गुहज घरु पाईअै। रत्न जन्म बिरथा न गुवाईअै ॥
गुर प्रसादि अगम घरि जावै । नानक परम तत्त तब पावै॥ ११॥
कवलि कुसमदलि[1] भीतरि जाता। दश अंगुलि कै बीचि समाता ॥
तहाँ द्वादशि रहै अभीचु[2] । इस मनु जन्मु न होवै मीचु ॥
खोजि अधात्म आगमि[3] धावै। नानक परम तत्त तब पावै ॥१२॥
षोड़श दल जब चेतै प्रानी । मिलि गये स्रीधर अगम पछानी॥
जरा मरन भउ[4] सगल मिटाना । ज्यौं जलु जलही माहिं समाना॥
पुनरपि जन्म बहुरि नहीं आवै। नानक परम तत्त तब पावै॥ १३॥
तिरबेनी मनु सहजि नहावै । सुरति हाथ करि मनु पतीआवै॥
बहुरि न फिर फिर मारगि धावै। सनकादिक सिउ गोष्टि पावै ॥
तिरबेनी[5] छूटै सुन्नि समावै । नानक परम तत्त तब पावै ॥१४॥
गगन गरजि मगु जोहि अनंता । तहँ बिजली चमकै घन बरषंता॥
तहँ भीजहिं संत अमृत की बानी। गगन नगर की जब मिति जानी॥
गगन गंभीर नगर दृष्टाया। नानक परम तत्त तब पाया॥ १५॥
बक नालि के अंतरि जाय । पश्चिम दिशि की सौझी पाय ॥
निझरु झरै जलु पीयै अघाय । तौ भउर गुफा के घाटि समाय॥
होय मकरंदु[6] कमल लपटाना । नानक परम तत्त तब जाना॥१६॥
सहज समाधि तबहि मनु जाई । जन्म मरन की चूकी धाई[7] ॥
जरा रोग सुपनै नहीं आवै । सहज सुभाय उपाधि[8] मिटावै ॥
उपजिआ प्रेम प्रभू पहिचाता । नानक ताँते परम पदु जाता १७
खेलै प्रगट होय निहशंका । जूझै सन्मुखि काटि कलंका ॥
दरशन परसै गुर के भाय । अखेड[9] खेडै भरमु सभ जाय ॥
नित्य उठि चालै बिषमी बाट। तब नानक तोड़ै अवघट घाट१८

(१) नाभिकमल गत दोनों चक्रों में से केले के फलवत चक्र में ठहिरै। (२) थोड़ा सा खिला हुआ। (३) तीन कमल हृदयगत में से आत्मा की ठौर जिस में है वोह गुरू से खोज कर अगम को चढ़े। (४) भ्रम भी पाठ है–"जरा मरनु भ्रमु भागि समान।" (५) "त्रिकुटी" पाठ भी है। (६) भौंरा। (७) दौड़। (८) ओरों की ओर से जो सुख दुख मई सतापक अवस्था आया करती है। (९) अभ्यास रूपी अखेड रूप खेल।

अवरनु[१] वरनै निहकरम कौ धावै । असाध साधै अवेध बेधावै॥
गगन[२] ताला गुर कृपा ते तोड़ै । निःभर भरै अजोड को जोडै ॥
होय वहै बिरधी ते वाला । नानक परम तत्त इह चाला ॥१९॥
गरभि न आवै भरम कौ खावै । चींटी होय के सागर सुखावै ॥
अकाल होय तत्त माहिँ बुडावै । नव खंड जोति पतिशाहु कहावै॥
उन्मुनि ध्यान अदल कौ दलै । नानक परम तत्त तव रलै ॥२०॥

उलटै कमल[३] छिद्र तल धारै, निहशब्द होय गलताना[४] ।
मनु[५] पवनै धावत ही जीतै, तउ मनु मनहि समाना ॥
अतरि गहै सुरति मुक्ताहल[६], हितु करि मिलै गुसाँई ।
त्रिकुटी संधि[७] नासिका तालक, सुष्मनि जाय समाई ॥
इगुल[८] पिगुल पश्चिम धावै, रवि शशि अस्तु विहाणा ।
नानक गुर किरपा ते जान्यॉ, इहु मनु सचि समाना[९] ॥२१॥

सरवर[१०] सुन्न वने सहँसदल, भवरगुफा मगनाने ।
अति[११] चित्र साल वनी निज महली, हरि जन तहँ उरझाने॥
लिसमिस[१२] दामिनी रिमझिम वरषै, हसि प्रभु मिलै निरारा ।
कहु नानक जव तत्त बीचारिआ, तव प्रगटिआ भानु उजारा॥२२॥

अगम अगोचर अलप अपारा, परे ते परे अनता ।
सर्व विश्व महिँ जाँ की लीला, रवि रहिआ भगवता ॥
सभ ते दूरि निकटि सभहूँ ते, सभ अतरि अलिप्त रहै ।
जहँ पदु निरवान वसै ताहिँ आपे, नानक विरला खोजि लहै ॥२३॥

---

(१) जिस का वर्णन नहीं किया जा सकता ऐसे अकह पद को भी शिष्यों सत्सगियो को उपदेश कर सकता है । (२) भ्रूचक्र में तीसरा तिल घट का जदरा (ताला) है । (३) ताला तोडने की रीति तथा ताला भेद (तीसरा तिल) । (४) मगन । (५) ताले का स्थान खोलने की जुगती राम नाम उपदेश में कह दी है। (६) मोती—खुलने की निशानी देकर फल कहा है। (७) नासा मूल त्रिकुटी की सधी का ताला है वहा पर से सुषमना घाट में समावै। (८) दृष्टि की धारें पिछवाड़ में जहा पर सूरज चाद (नेत्र) अस्त होते हैं पलटे तो सुन्न सरोवर तथा भवर गुफा में सहसदल कमल के बीच से होता जा मगन होता है। (९) "साचा परम तत्त पछाना" पाठ भी है। (१०) 'साधारण' उपदेश चढ़ाई का करके अब निर्सकोच गुप्त रहस्य को भी प्रगट करते हुए शिव नाभ को अभ्यास कराते हैं। (११) सुरत कमल सहस दल की निशानी दी है—(योगी हरिजनों का) सुरति का वही निज महल है। (१२) भलक मारने वाली'।

जाँकी चेरी मुक्ति सुरगु अगवानी, ऐसा जापु जपीजै ।
जाँकी माया दासी नवनिधि सेवाकारी, ऋद्धि सिद्धि चरन लगीजै
कहु नानक अमरा पद राते, चौथे पदहिं पतीजै ॥२४॥
एक घरि चद सूर्ज कौ आनै, अर्ध उर्ध मिति पावै ।
तसकर की गति सहजे खोवै, अतरि ब्रह्म टिकावै ॥
जर नाठी[1] माया पछुतानी, नानक सुन्न समावै ॥२५॥
दीपकु जारि धरै विनु तेलै, भउर देखि लपटाने ।
इह घट भीतरि जोति प्रगासी, देखि लेइ उरझाने ॥
नानक जोति रली सग जोती, ब्रह्म रूप प्रगटाने ॥२६॥
नौं दर मूँदि काया सम राखै, दशवैं शशि घरि सहजि वसै ।
कोट जन्म के अघ सभ काटै, सुष्मनि मदरि सहजि रसै ॥
कनक मदिर रत्न की सिहजा, नानक कँवल प्रगासि हसै[2] ॥२७॥
मनूआ अनत जान न देई । बीजु मतर चीनै मति लेई ॥
सभ इद्री की खोजि वीचारै । तसकर पच शब्दि सघारै ॥
सहसा जालि करै सभ छोई । नानक तब अनभै मति होई॥२८॥
शिव शाँति सरोवरि संत समाने[3]। फिरन टुरन के गवन मिटाने ॥
आवनु जानु बहुरि न होई । शिव संत सरोवरि न्हावे कोई ॥
शिव बिरचि तिसु दरशन आवहिं । नानक इह गति विरले पावहि २९
ब्रह्मा विश्नु महादेउ गोरक्ष, हारे खोजत बाटा ।
संतन बास कीआ है निज घरि, वजरक खुले कपाटा ॥
नौं दरि मूँद अनाहद रचिआ[4], लख चौराशी काटा ।
नानक हरि जनु हरि मिलि एको, जिउँ निमक मिलै विच आटा३०
जहाँ सर्व सुखा निधि अति विलास[5] है, अनंत थान सभ ठउरा ।
जो जन जाय रहै तहँ शिव होय, ज्योँ भ्रली अल[6] पर भउरा ॥
भया विदेह गति मति वदलानी, भई जाति कुल अउरा ।
नानक जन कौ गुर दिखलाई, पार ब्रह्म की ठउरा ॥३१॥

(१) भाग गई। (२) "लसै" पाठ भी है। (३) "सपाने" पाठ भी है। (४) सलग्न (रचिआ पाठ भी है अर्थ उचारिआ)। (५) कौतुकी रचना, कैफियत। (६) एक वृक्ष जाती है जब मौलता है तो उस पर भौंरा बड़े प्रेम से मगन होता है, भौरी भौरे का नाम भी है।

जिनि अंतरि जाय निरंतरि देखिआ, अति विलास निरंकारा।
एक रोम ते जाँके उपजै, सुर सिद्ध दश अवतारा ॥'
हरि निरखत बुद्धि चित्तु मगनाना, निरालंब गलताना।
नानक देह तजै ज्यों कुंजैं', मनु निरबान समाना ॥३२॥
हरष देखि मनु नहिं विगसावै, सोग नहीं मुरझावै।
ज्यौं सपै' त्यौं विपति पछानै, बेगम महिल' लडावै॥
कहु नानक जो परम पदि राता, तिहँ जमु निकटि न आवै ॥३३॥
जपु तपु' संगि नहीं जनु राचै, सत्त सील न कमावै।
अनहद राता भया विरागी, उस्तति निंद न भावै॥
अनडीठे' सिउँ सहजि पतीना, तब ते भया विदावैं'।
कहु नानक जो अमर पदि राता, अैस अभै पद पावै ॥३४॥
आत्म चीनि परात्म राता, भया विदेह निरारा।
भय को त्यागि अभय पद माता, अगम महलि पसारा॥
अगम निगम महिं सहजि पतीना, मिति की मति सभ जानी।
कहु नानक जब देहु बीचारिआ, उपजि रही हैरानी ॥३५॥

अध्याय सपूर्ण ॥ ५ ॥

---

(१) सर्प कुंजवत देह के वधनों से असग हो जाता है। (२) सपदा। (३) स[illegible] खड। (४) जप तप आदि जितने साधन हैं किसी के साथ प्रीति नहीं करता केवल अनहद शब्द (सत्य नाम) में ही जुड़ा रहता है। यहा पर हठ योग के यम नियम आदि सपूर्ण अगों में की प्रवृत्ति भी खडन कर दी है और एक मात्र अनहद में सलग्न होकर शरीर से नियारा वैरागी हो जाने की महिमा जता कर गोरख आदि ने हठ योग द्वारा चिरजीव हो जाने की जो सिद्धी प्राप्त की उसकी तुच्छता दिखलाई है। प्राणसगली को हठ योग प्रति पादिक कहने वाले किंचित ध्यान देवें कि किस प्रकार हठ योग खडन हो रहा है। (५) अदृष्ट वस्तु अलख सरूप। (६) अहता ममता का विषय जो कुछ शरीर तथा उससे विभिन्न स्थूल सूक्ष्म प्रपच है उक्त अलख सरूप में सहज भाव से परच करि अर्थात् मगन होकर बेदावा हो जाता है, भाव उस काल में समूल विस्मर्ण कर देता है।

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

॥ राग आसा महला १ ॥

(प्रानपिंड की मिहनत--कलबूत की मिहनत--प्रानपिंड की उत्पत्ति सुन्न ते हुई-निरंकार का पूछना चहुँ जुगती का भेद-ओंकार का ध्यान)

॥ श्लोक ॥

वरनु चिहनु नहीं बूझीऐ तीनि गुनाँ ते दूरि ।
नानक कित विधि पाईयै सर्व रहिआ भरपूरि ॥

॥ पउड़ी ॥

सुन्नो सुन्न कहै सभ कोय । सुन्नि ध्यान वैठा प्रभु सोय ॥
सुन्न ध्यान जब रहै इकेला । तब कवणु गुरू कवण कहीऐ चेला
आपि गुरू आपेही चेला । धुंधूकारि[१] प्रभु रहै अकेला ॥
एककारु एकु निरबाण । देखि कुदरति नानक हैराणु ॥१॥
नॉ तदि धरती नॉ आकाश । नॉ तदि चंद सूर परगास ॥
नॉ तदि दिवसु न कीनी राति । नॉ तदि ब्रह्म[२] न कीनी भ्रॉति॥
नॉ तदि शिव शक्ती कछु दूजा । नाँ तदि पाप पुन्न नहिँ पूजा ॥
एकंकार अकेला रहता । नानक तदहुँ न कोई सुनता न कोई कहता २
तेरी कुदरति देखि रहिआ हैरानु। तदहुँ तूँ किछु खाता कि रहता निरबाणु ॥

---

(१) जब जुगती पूर्वक सुरति अपने स्थान पर स्थिर होकर अनुरागवान हुई तथा बाह्य प्रपंच से वैराग्यवती सहसदल त्रिकुटी आदि की अंतरीय रचना (कौतुक) दर्शन से भी उपराम हो जाती है तो शून्य मंडल को उलंघ करि इस धुंधूकार-मई अवस्था का प्रकाश होता है यद्यपि इसका दृष्टांत पूर्ण तो हमारे पास नहीं है तथापि एंजिन गाडी में से भाफ (steam) निकालते समय जिस प्रकार का धूम्र निकलता है इस प्रकार की धूम्राकार मंद मंद अत्यंत सूक्ष्म हिलोर मात्र भान (अर्थात अंतरी दृष्टि गोचर) होती है। बस अपनी झलक सुरति को दिखलाकर फिर वोह सुरति को अपने में लपेट लिया करती है, इसी का नाम धुंधकार है। संपूर्ण स्थूल सूक्ष्म रचना का वास्तविक बीज यही है। (२) पिंड ब्रह्मांडवर्ती संपूर्ण ज्ञान के एकज्ञान मात्र में अभाव हो जाने से पिंड ब्रह्मांडवर्ती व्यापक ब्रह्म की भी उस समय समाई नहीं रहती, और जब संसार ज्ञान का ही समूल अभाव हो गया तो भ्रांती कहां रही वोह भी गई, भाव यह कि ज्ञान अज्ञान दोनों ही (उस अवस्था में) अभाव हो जाते हैं।

तदहु तूँ किछु पीता कि रहता तिहाया[1] । तूं आपिही उपजिआ कि किनहिं उपाया ॥
तव क्यौंकर बैठा क्योँकरि सोता । जव धरनि अकाश कछू नहिं होता
तब नौं खंड कीए न कीआ पसारा। नानक हरि प्रभु रहे निरारा ३
ओअंकार ते परे न ध्यान[2] । ओअंकार ते परे न ज्ञानं ॥
ओअंकार ते परे न सेवा । ओअकार ते परे न देवा ॥
ओअंकार ते परे न पूजा । ओअंकार ते परे न दूजा[3] ॥
ओअंकार ते परे न मन्त्र । ओअकार ते परे न तंत्र[4] ॥४॥
ओअकार ते परे न जापं । ओअंकार ते परे न तापं ॥
ओअंकार ते परे न दानं[5] । ओअंकार ते परे न इस्नानं[6] ॥
ओअंकार ते परे न भोग[7] । ओअंकार ते परे न जोगं ॥
ओअंकार ते परे न सुख । ओअंकार ते परे न दुखं[8] ॥५॥

(१) त्रिपातुर, पिआसा । (२) ध्यान तहा पर्यंत ही रहता है जहा तक ध्यान गोचर कोई पदार्थ रहे परतु यावत ध्यान गोचर वस्तु है सो सभ स्थूल हो चाहे सूक्ष्म ॐकार पद (त्रिकुटी) तक ही रहती है, जब उस मडल में ॐकार का साक्षात होता है तो आगे समाधि अर्थात् शुन्य की स्थिती आरभ हो जाती है, आगे ध्यान नहीं रहता । इसी कारण ॐकार से परे ध्यान का न होना कहा है । (३) इस का भाव भी यही है । (४) मत्र जत्र आदि साधनों के सिवाय ही मानसिक शक्ति से मोहन मारन उचाटन आदि करने का साधन तत्र कहलाता है परतु सपूर्ण तत्र शास्त्रोक्त बीजों का बीज केवल ॐकार ही है और बिना तत्र शास्त्रोक्त साधनों की साधना के ॐकार मात्र के साधक में समग्र शक्तिया स्वभाव भूत ही आन प्रगट होती हैं । इस कारण इस से अधिक और तत्र नहीं हैं । (५) किसी एक आध वस्तु के देने को दान कहते हैं, और तमाम प्रपच का मूल कारण ॐकार वेत्ता आचार्य ने यदि बिधिवत किसी अधिकारी को इसका उपदेश दान दिया उसने मानो सभ कुछ ही दान कर दिया । (६) प्राय बालकों तथा स्त्रियों अरु कमजोर दिल पुरुषों को अशुचताई आदि कारणों से स्वप्न में अथवा एकातादि स्थान में क्रूर व्यक्ती आदि दर्शन की भ्राति से भय हुआ करता है जो कि परमात्मा के नाम उच्चारण मात्र से निविर्त्त हो जाया करता है सो सभ नामों का मूल एक ॐकार ही है इस कारण इसके उच्चारण मात्र से पवित्रता की प्राप्ती भला फिर सभ नामों से अधिक तर क्यों ना होगी । ज्यों २ नाम जपा जाता है मलीन ससकार अत करण से भी निविर्त्त हो जाते है इस कारण भीतर बाह्य की शौचता का मुख्य कारण रूप स्नान एक ॐकार ही है । (७) भोग्य वस्तु रस प्राप्ती के वास्ते ही सभ कोई सेवन करता है, पदार्थ की अभिलाषा में मन विक्षिप्त हुआ दुख का कारण होता है और पदार्थ प्राप्ती पर किंचित्काल के लिये अभिलाषा निवृत्त होने से अपने अदर रस को अनुभव करता है और अज्ञानवश हुआ भोग में रस मानता है । ॐकार के आराधन में सहजही मन और सुरति सिमट जाते हैं और भारी रस प्राप्त होता है इस कारण ॐकार भोग है । अथवा सर्व भोग रूप ससार ॐकार से उत्पन्न है इस के साक्षात्कार में सर्व की प्राप्ती हो जाती है इस लिये परम भोग रूप है । (८) जगत की ओर से मुह काला किये बगैर ॐकार की प्राप्ती सहज नहीं होती इस कारण ससारी दृष्टि से यह दुख रूप है ।

ओअंकार ते परे न असाध[1] । ओअंकार ते परे न विपाधं[2] ॥
ओअंकार सभस का मूलं । ओअंकार सूक्ष्म अस्थूल ॥
ओअंकार ते सभ किछु भया । ओअंकार सर्व की दया ॥
जिस हृदय ओंकारं, तिस कृपा गुरु मंत्रवा ।
नानक ओअंकार परै अपरं पर, ओअंकार ते सर्व मया ॥६॥
ओअंकारु प्रभि आपि उपाया । ओअंकारु करि ब्रह्म कहाया ॥
ओअंकारु करि विश्न की कीना । ओअंकारु करि महेश जसु लीना
तीनौं मूरति एको देवा । तीनों भाँति तीन की सेवा ॥
तीनि गुणाँ करि रचनु रचाया । ब्रह्मा बिश्नु महेश उपाया ॥
एकस ते कीना विस्थारु । नानक एक अनेक बीचारु॥७॥
चतुर जोग[3] चतुर रूप[4], चतुर समाधि[5] चतुर पदह[6] ।
चतुर अस्थान[7] चतुर अस्थापन[8], सर्व मध्ये शिव शिवह॥८॥
चहुँ समाधि की जो मिति जानै । विचरि विचरि उह आखि बखानै॥
आपो अपने नाउँ[9] बतावै । चहुँ समाधि की तब मिति पावै
रक्त बिंदु ते क्योंकरि पाका । कोई महलु बतावै वा का ॥
चारि समाधी बीचि समाना । नानक देखि रहिआ हैराना ॥९॥
सुन्न मडल ते कीआ प्रगास । नवखंड करि कै कीआ अकाश ॥
आठ खंड करि रचन रचाया । नावाँ खंड शरीरु बनाया ॥
रवि शशि[10] अठवीं जोति सवारी । नावीं जोति प्रभि राखी निआरी
नावीं जोति महि ब्रह्मु समाना । नानक डिठा लाय ध्याना ॥१०॥
पहिला धरति कि पहिल आकाश । पहिला पुहप कि पहिला बास ॥

---

(१) जब तक जीते न मरे अर्थात पिंड से संबध न टूटे ॐकार प्राप्त नहीं हो सका इस कारण असाध्य है । (२) संसार संशयों की खान, शरीर दुखों की खान है सो सभ कुछ ॐकार से प्रगट हुआ है, सो फल बीज अनुसार ही प्रगट होता है, ताते विपाध भी यही है । (३) चार जुगती, (४) चार प्रकार का रूप गर्भ में (५) गर्भ से ले मरण पर्यंत चार समाधी (६) वारिया चार पद (७) महल चार स्थान (८) चार प्रकार की स्थिती—सभ गुरूजी कहेंगे । (९) नाम । (१०) पाच ज्योतिया पिंड गत पूर्वोक्त चक्रों की कंठ चक्र पर्यंत और दो ज्योतिया आखों की और अष्टम ज्योति दृष्टि का भंडार जिसको "उलटै कमल छिद्र तल धारै" इसकी व्याख्या में कहि आये हैं । नावीं ज्योति उससे ऊपर है जो कि सहसदल का स्थान है उसमें जो ज्योति है सो आदि निरंजन की पूर्ण छाया है, छाया छायावान से भिन्न नहीं होती छाया द्वारे छायावान शीघ्र जाना जाता है तभी उसे ब्रह्मरूप कहा है ।

पहिला राति कि पहिला दिन । पहिला पाप कि पहिला पुन्न ॥
पहिला चद कि पहिला सूर । पहिला सचु कि पहिला कूरु ॥
पहिला माई कि पहिला बापु । पहिला धरमु कि पहिला पापु ॥
पहिले वरु कि पहिले स्रापु ॥
पहिला गुरू कि पहिला सिख । कहि देवै कोई एहु विवेक ॥
एहु बिबेक जे को कहि देवै । उआ के चरन नानक जनु सेवै ११
पहिला धरती फुनि आकाश । पहिला पुहप त पीछे बास ॥
पहिला राति त पीछे दिन । पहिला पापु त पीछे पुन्न ॥
पहिला चदु त पीछे सूर । पहिला सचु त पीछे कूर ॥
पहिला माय त पीछे बाप । पहिला वरु त पीछे स्राप ॥
पहिला गुरू त पीछे सिख । नानक दास कहि एहु बिवेक १२
नहिँ कछु डाली नहिँ कछु मूल । नहिँ कछु सूक्ष्म नहिँ अस्थूल ॥
आछा लोहू आछा मसु[१] । आछा सरवर आछा हसु ॥
आछी भूमि करहि सकेत[२] । आछा बीजु पड़ै तिहँ खेत ॥
अगनी पड़ै अग्नि ही होय । माटी पड़ै त माटी सोइ ॥
जैसा पड़ै तैसा ही होय । कुसहजि[३] पड़ै न जनमै सोय १३
तिसु भूमहिँ देही बिदु जामु । तिस बिंदु कौ हाड नहिँ चामु ॥
कायाँ हाड करि दीआ चामु । करि दीना इसको बिसराम[४] ॥
कायाँ गढ़ महिँ रहिआ दश मास । अगनि प्रजारै पवन निवास ॥
माता की रक्त पिता की बिंदु । मानस देह रखी बिचि जिंदु ॥
अपनी कुदरति आपे जानै । नानक अचरजु आखि बखानै १४
साढ़े उणवजह क्रोडि उपाई । बारह क्रोड़ि बीच रलाई ॥
सोलह चौदह का कीआ पथीर । हिकमति साजि कीआ मामूर[५] ॥
चारि[६] धातु कलबूत बनाया । अठसठि हाट इस बीचि कराया ॥
बहत्तरि नारी नौं दरवाजे । नानक दशवेँ अनहद बाजे ॥१५॥
जब एककारु अकेला रहता । सास मास तब कछू न कहता ॥

(१) मास । (२) स्थापन । (३) ऊसर भूमि आदि अनजोती हुई धरती । (४) समाधान, निर्णय ।
(५) आबाद । (६) धरती, पाणी, अगनी, वायु ।

होती देह न होते प्राना । बोलनहारा कहाँ समाना ॥
बोलनहारु पवन की न्याई । निश दिनु बकै नहीं सुधि पाई ॥
क्या देखउ क्या करउ वीचारु । नानक साहिब अगम अपारु ॥१६

जब तूँ एकंकार अकेला । कीआ प्रगासु कवनु उह बेला ॥
कवनु बापु कवनु महतारी[1] । कवनु नामु क्या जाति तुमारी
सुन्न मंडल ते कीआ उजीआरु । आपु छपाय कीआ पसारु ॥
कीओ पसार होय अनत तरंग । नानक लपे न जाँही रंग ॥१७॥

जब प्रभु मन महिँ मनसा धरता । तब बोलु बचन मनसा सिउँ करता
बचन देत हथि[2] छालकु[3] परिआ । तीनि मूरति का आस्रम[4] करिआ॥
मनसा माई कीआ सपूता[5] । इकु ससारी[6] इकु अउधूता[7] ॥
इकु लाए दीवान दुआरे[8] । नानक आपे भन्नि सवारे ॥१८॥

ब्रह्मे कउ प्रभि आज्ञा दीनी । सात[9] चीज की हिकमत कीनी ॥
आब पाक आतिश लै गाडी । पवनु रलाई मनसा विचि आडी[10]॥
लोह कलम लै साजश कीनी । करि कहगल ब्रह्मे कौ दीनी ॥
घड़ि घड़ि भाँडे ब्रह्मा साजे । कला[11] बनाय विचि पवणु विराजे॥
ब्रह्मे कीना एहु पसारा । आज्ञा कीनी प्रभ निरंकारा ॥
प्रभ आज्ञा ते रचना होई । आब पाक आतिश लै गोई[12] ॥
अपने सूति सभ आपि परोई । नानक करनैहारु न कोई ॥१९॥

प्रथमे तउ समाधि सुनाई । जठर अग्नि की आवी चढ़ाई ॥
ताय ताय तन बहुतु पकाया । जब पाका तब ठनकि सुनाया ॥
आवी ते जब निकसिआ सारा । तबहि पसम लै हाटि उतारा ॥
वस्तु अचरज बीचि लै पाई । नानक प्रथम समाधि सुनाई ॥२०॥
दुतीआ परम समाधि करि राखी । परम नत्तु धरिआ विचि साखी॥

---

(१) माता । (२) हाथ से हाथ मिलाते हुए अथवा बचन करते ही । (३) छाला, विस्फोट, फलूआ, (अंडा से भाव है) । (४) निवास, स्थान । (५) पुत्रवती, जननी । (६) ससार रचनेहारा ब्रह्मा । (७) सघार करता अवधूत, शिव । (८) अपने दुआरे दरबार में दीवान लगाने वाला विष्णु सभ का पालक । (९) पाच तत्त्व, मनसा और जीव कला सुरति—इन सात चीजों से कारीगरी करी गई है । (१०) शामिल करी, प्रविष्ट करी । (११) कलबूत (मेशीन) । (१२) गूधी ।

पवन परत[1] प्रानन के माहिँ । पवन मारग हरि लपे न जाहिँ
परम समाधि की जो मिति जानै । परम तत्त को तवहि पछानै॥
परै ते परै पर मिति जव आवै । तव नानक परम समाधि ..

त्रितीए अपर अपार समाधि। आपु चीनि आप ते लाधि॥
अपर अपार परंपर पिआरे । अपना आप प्रभु आप सवारे॥
अपना आपु आपि पतीआरा । आपे भन्नि स्वारणहारा॥
अपर अपार समाधि सुनाई । नानक प्रान नगर सुधि पाई २२

चतुर्थ महाँ समाधि जव कीनो । वेअंत धनी मिति किनहुँ न चीनी
महिमा ऊँच कही नहिँ जाय । महाँ समाधि माहिँ रहिआ समाय॥
एक घाटु दरीआउ[2] हजार । दश दुआर अठसठि बाजार॥
नउँ नाड़ी वहत्तरि कोठड़ीआँ । नानक चहुँ समाधि की तब मिति प्रवीश्रा २३

प्रथम समाधि की क्या नीशानी । भिन्न भिन्न करि प्रगट वपानी॥
दाता भुगता नहिँ दूख दिखावै । अति उदार निहचउ नहिँ धावै॥
निशि वासर उह निहचउ करै। शब्द सोधि एकाकी फिरै॥
वाल अवस्था वेगम रहै । नानक प्रथम समाधि विसम होय रहै॥२४

दुतिया समाधि के लक्षण कौन । क्षमा शाँति शोभा सुख सउन ॥
दया धरमु धीर्ज सतोपु । नहिँ कछु पापु विघनु नहिँ दोपु॥
ज्ञान ध्यान मैँ रहै चितन्न । अजपा जपै सदा अनदिनु॥
सम दृष्टि अति धीर्जवत । वसै निरंतरि लै गुरमंतु॥
अठदश सिद्धि चरन लपटानी । नानक दुतिय समाधि वपानी॥२५॥

त्रिती समाधि का एहु वीचारु । महा विअंतु अतिहिँ विस्थारु॥
अति अवधूती महाँ अलेपु । तिस जाति न पाति वरनु नहिँ भेपु
माया न छाया दृष्टि न आवै । जिसको पकरि देवै तिस तृण ज्यों जलावै॥

(१) पवन को पलट प्राणों में, भाव पवन मन का जीव है, पवन के बिखरे रहने से मन बिखरा रहता है। और पवन का सार प्राण है इस कारण सारी पवन को प्राणों में पलट लो अर्थात् प्राणों की चाल सीधी करके उसमें नाम मिला दो तो उसके सहारे परे से परे जो पारब्रह्म है उसकी हद आन पहुँचेगी, इसके सिवाय पवन मार्ग से अर्थात् "बोले पवना", ज़बान से नाम स्मरण करने से हरि नहीं लपा जाता। (२) सुषमना का घाट उससे हज़ारों रस रक्त प्रवाही नाड़िया लगी हुई हैं जो दरिया हैं।

वसै द्रयावौं[1] मड़ीं मसाणीं। अति त्रिसुध[2] बोलै त्रिकल[3]बाणी॥
नासिका तालका त्रिकुटी ध्यानी। लंबिका[4] उलटि पीवै गगन पानी
सुन्न निरतरि जाय नाद बजावै। नौंसै नाड़ि बहत्तर कोठडीआँ
एक पल माहिं फिरि आवे॥
रोम रोम खंड खंड काया बीचारै। राज करै षट[5]चक्र षोडस[6]आधारै
आदि मध्य बूझै बंधानु। नानक त्रितीय समाधि वषानु २६
चतुर्थि समाधि वसै आपि आपि। तिस जाति वरनु नहिं माय न बापु

(१) नदियों के किनारे। (२) बिना सोचे समझे, पूरब अपर विचार रहित। (३) टूटी फूटी अर्थ ज्ञान रहित। (४) हठ योग रीति से रसना के नीचे की नाड़ी छेदन करके रसना पीछे उलट कर लंबिका के साथ जो कि कंठ में थोडा सा मांस लटक रहा है (उसके साथ) लगा दी जाती है उसके रास्ते से अमृत टपकता है (बिना पलटने के भी अमृत रस टपकता है, पलटने का नियम नहीं है)। (५) षट चक्र पीछे टिप्पण में कहे गये, आगे मूल में भी आवेंगे। (६) आधारों का भेद बहुत गुह्य है परन्तु इनके जाने बगैर योग का बोध होना असंभव माना गया है इस कारण इनको प्रगट कर देना जरूरी प्रतीत होता है—सो यह हैं—१-आधार-पाद अंगुष्ट है, इस पर एकाग्र दृष्टि करने से ज्योति चैतन्य होती है और दृष्टि स्थिर होती है। २-आधार-मूलाधार गुदाचक्र है, इसे पांव की एडी से प्रचेतन करने से अग्नि दीप्त होती है। ३-गुह्याधार है इसके संकोच विकाश के अभ्यास से अपान वायु फिरके, वज्र गर्भ-नाड़ी में प्रवेश कर बिंदू चक्र में जाता है, इससे शुक्र (वीर्य) स्तंभन की सामर्थ्य होती है (नं० ४ का आधार भी इसी में शामिल है) ५ पश्चिम तान आसन बांध के गुदा को संकोचन करे, इससे मल मूत्र कृमी का नाश होता है। ६-नाभी मंडल आधार है जिस में चैतन्य ज्योती का ध्यान करने तथा ओंकार का जप करने से नाद उत्पन्न होता है। ७-हृदयाधार है इस में प्राण वायु के रोध करने से हृदय कमल खिल आता है। ८-कंठाधार है, इस में हृदय पर ठोढ़ी दृढ़ता से लगा कर ध्यान करे तो इडा पिंगला से बहता हुआ वायु स्थिर होवे। ९-क्षुद्र घंटिकाधार—कंठ मूल है इस में जो दो लिंगाकार (मांस पेशी) लटकती है उन तक रसना को पहुँचावे तो ब्रह्मरंध्र में चंद्र मंडल से स्रवता हुआ रस मिलता है। १०-जिह्वा मूलाधार—इस में खेचरी मुद्रा के प्रकार से जिह्वाग्र के साथ मथन करे तो खेचरी सिद्धी होती है। ११-जिह्वा का अधो भागाधार—जिस में जिह्वाग्र से मथन करने से दिव्य कविता शक्ति होती है। १२-ऊर्ध्व दंत मूलाधार—जिस में जिह्वाग्र स्थापन के अभ्यास से रोग शान्ति होती है। १३-नासिकाग्र आधार—जिस में दृष्टि स्थिर करने से मन स्थिर होता है। १४-नासिका मूल आधार—जिस में दृष्टि स्थिर करने से छ: माह के निरंतर अभ्यास से ज्योति प्रत्यक्ष होती है। १५-भ्रूमध्याधार—जिस में दृष्टि अचल करने के अभ्यास से सूर्य किरणों के समान ज्योति प्रत्यक्ष होती है। इसी अभ्यास के दृढ़ होने से सूर्याकाश में मन का लै होना है। १६-नेत्राधार—जिनके मूल में उँगली से भींचने में वर्तुलाकार (गोल) बिंदु समान, इन्द्र धनुष के सदृश, ज्योति प्रगट हुआ करती है—इसके देखने के अभ्यास से (स्थानी) ज्योति का प्रत्यक्ष होता है। और भी दूसरा भेद इनका है परन्तु इन्हीं में आने से नाम भेद की परवाह नहीं की गई।

अति निरलंब अति निरंवकारी। महा निराश महा निराधारी॥
पवणु न शोपै अगनि न जलावै। पानी न डूबै गहिआ न जावै॥
चिदानंद रूप अनूप सरूपं। नित्य असोध करि सत्ति सत्ति धूप
पारब्रह्म जोती इत उत पोती, सर्व गुणीआ सर्व अतीत।
अधिक ध्यान होय आकाश जल पीतं॥
महा अकाशी सर्व निवासी। नानक पारब्रह्म जोति प्रगासी॥
जहाँ कर्म न धर्म न रूप न नामं। अहि निशि जागै त्रिकुटी ध्यान
तब पारब्रह्म की जोति प्रगासं। नानक निज घरि महलि निवास
जब जोति जगै तब शब्द उचार। जब जोति जगै तब निरखै निरकार
जब जोति जगै तब होय पसारा। जब जोति सुख सोवै तब होवै अँधारा॥
जब जोति जगै तब होय बिस्थारु। श्री पारब्रह्म जोति उरवारु न पारु
परमदेव परमात्मा परमिति पर अस्थापनं।
चतुर समाधी जो बसै नानक ते लक्षण परवानं॥२८॥
आपि उपाय मनसा प्रभु धारी। ख्याल पलूल[1] करि पलक सवारी॥
साढे उणवजह क्रोडीं पाक। मन महिं सोधि दृष्टि करि पाक॥
बहत्तरि क्रोडीं पवणु उपाया। सोलह क्रोडीं जल बिच उठाया॥
नौं क्रोड आतिश है कीनी। नानक कोटि मध्ये किनै बिरलै चीनी २९
नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया। रक्त बिंदु का देह उपाया॥
उर्ध[2] कमल महिं सिमरणु आधारु। हरि सिउँ राता अगति अचारु॥
इहँ कलि आय कछु अवरु दिखाया। हरि बिसरिआ तब लागी माया
बहत्तरि घर एको परधानु। नानक लागा सहज ध्यानु॥३०॥
लै माटी कलबूत बनाया। आब खाक आतिश गोवाया॥
बुत्त कीआ कलबूत सवारिआ। हाथ नाक मुख दंत सुधारिआ॥
होंठ बतीसी नासाँ कान। त्रिकुटी बीचि रचिआ मैदान॥
भउँहाँ सेली मस्तक कीआ। नानक करनैहारु न बीआ॥३१॥
नेत्र कीए विचि रंग बनाए। अचरज भाँति के दस्ते पाए॥

(१) सकल्प का उत्थान। (२) माता के गर्भ में शिर नीचे पाव ऊपर होने से बालक का ध्यान स्वाभाविक ही सुरति कमल में लगा रहता है और साथ ही महान दुख के कारण हरि भी याद रहता है।

स्याह सपैद अवरु सुरपाई। गिरद कटोरी आँखि बनाई॥
धीरी बीचि दृष्टि सभ राखी। रसना करी जपनि की साखी॥
घडी तले वक्रनालि बनाई। घट तले कछु स्वाद न पाई॥
इहु बिसथार गले ते ऊपरि। नानक जो सोधै तिसु जोति अनूपरि ३२
दुइ भुज दुइ कर दस नारी नाले[1]। नारि मरद करि एकु बहाले॥
नारि मरद की लीक लगाई। बीनी ऊपरि धरी कलाई॥
ऊपरि डउले काँधे मेरु। गाटे[2] तले बिअत अँधेर॥
मिटै अँधेर दीपकु[3] जब जालै। नानक ज्ञान बीचारै नामु समालै ३३
घट ते तले बहत्तरि नारी। बिचि सुष्मना इडा पिंगुलारी॥
जिस सुष्मनि होवै प्रगास। इडा पिंगुला सदा निवासु॥
नाभि कमल ते ऊपरि हाट। तिन के अठसठि दीए कपाट॥
पेट भँडारु कीआ असगाहु[4]। नानक गुहल नाडि प्रान सुख राहु ३४
नाभि तले इंद्री का बासा। तिसके भीतरि काम मवासा॥
इंद्री के तले नलाँ का डेरा। अचरज खेल कीआ प्रभु तेरा॥
सथ्थल गोडे पिंन्नी पैरॉ। दश नारि मरद का एक बसेरा॥
करि कलबूत सूति मुख धरिआ। नानक रक्त बिंदु ते अचरज करिआ ३५
कई जुग्ग कलबूत स्वारिआ। भनि भनि ढाहि ढाहि उसारिआ[5]॥
जीउ उपाय अंतरि बैठाया। भीतरि वडते[6] बहु डरपाया॥
प्रभु सुवचन कीआ फिरि आवउ। तौ इस गढ के बीचि समावउ॥
अंतरि जाय बहुत लोभाना। नानक कौल देन कौ पछोताना ३६
इस घट भीतरि अठसठ हाट। बिन कुंजी क्यों खुलहिं कपाट॥
कवन कुंजी जितु खूलहिं ताले। कवन पुरुष जो वस्तु समाले॥
अठसठि हाट का करै निबेरा। सोई आदि अंति जनु तेरा॥
सतगुर मिलहि त खुलहि कपाट। तौ नानक परगट होवहिं हाट ३७
अठसठ हाट का क्या क्या नाउँ। उह कवन हाट जितु रहै हिआउ[7]

(१) साथ ही। (२) गरदन गाटा नाम ठेठ पंजाबी में गले का है, अर्थात कंठ के नीचे हृदय से भाव है। (३) नाम सुमिरन तथा गुरू पदिष्ट ज्ञान में विचर कर जब इस जगह हृदय स्थान पर ज्योति प्रगट हो। (४) अथाह। (५) "ढाहि उसारिया" के बदले "साजि सारिआ" पाठ भी है। (६) प्रवेश करते। (७) हिरदा परन्तु यहा भाव जीव से है।

हीऐ का हाट कोई जनु जानै । जाँको दृष्टि पूर्ण भगवानै ॥
हीआ सोधि होय रहे हैरान । सो अठसठ हाट की देखि पतीआन
अठसठ हाट की जिस मिति आई । नानक जिस कौ आपि दिखाई३८

॥ अध्याय सम्पूर्ण ६ ॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

॥ राग आसा महला १ ॥

गोष्टि सिद्धाँ नालि, गोरख भरथरी साथ बोलणा होआ ॥

॥ श्लोक ॥

जोग जुगति कौ चीनते, तिनके लक्षण कौण ।
तजि निद्रा खुध्या तजहि, सुख' शोभा निशि सौण ॥
चहुँ का सगी चहुँ मिले, चारे राखे चीति ।
कदे न डोले नानका, जे चहुँ सँगि होवसु प्रीति ॥
दया धर्म सतोष सचु, जे इन सँगि रहै सुचेत ।
तिसु जमु जागाती नाँ लगै, नानक रखै चेत ॥१॥

---

(१) सुख सरूप शोभायमान रात्रि में वह सोए (मगन) रहते हैं—अर्थात जैसे रात्रि में दिन के सर्व कार्यों का अभाव होता है तैसेही असत् प्रपच के अभाव पूर्वक भाव रूपी सत्ता का उदय होता है। और शोभा नाम छवि (प्रकाश) का है सो प्रकाश छवि चेतन वस्तु की दमक है, तथा सुख आनद का नाम है, इस कारण आनद सरूपी चिन्मात्र सत्ता में ही नींद भूख को त्याग करि सोए रहते हैं अर्थात् सच्चिदानन्द परम धाम में वह मगन रहते हैं, जोकि जोग जुगति को चीनते हैं। भाव अर्थ इसका यह है कि परम असत्य प्रपच के अत्यत नाश रूप होने के वारवार के दृढ़ अभ्यास कारण जब ससार की प्रतीति मूल से ही होनी (भीतर) बद होजाती है, तब एक विशेष प्रकार की आत्मिक अवस्था का घट में साक्षात्कार होता है जिसको सत्ता अर्थात हस्ती कहते हैं। यही रात्रि रूप है क्योंकि रात्रि में भी सर्व कार्य बद हो जाते हैं और इसके साक्षात भए भी सर्व प्रपच का अभाव (नाश)। इस अवस्था का चूंकि कोई विशेष रूप नहीं होता परन्तु केवल निर्विशेष रूप से ही यह (भाव=हस्ती) मात्र स्थित होती है। इस वास्ते इसको सत्ता या सत्तामात्र नाम से ही कहा जा सकता है। जब कभी भी किसी को अकाल्हि अवस्था का साक्षात्कार होता है तो प्रथम इसी सत्ता रूप में ही अनुभव हुआ करता है, और अब

॥ पउड़ी ॥

सेतबंद रामेशर कौ चले । आगै गोरख भरथरि खले ॥
गोरख बोलै सुणि हे पुरुपा । साध दर्श की अम्रित वर्पा ॥
प्रभ सुप्रसन्न साध जब देखै । जन्मु सकार्थ सो दिन लेखै ॥
बोलहु गोरख सति प्रवेश । इस आवत पुरुप कौ करहु आदेश॥१॥
सुणि अवधू अरदास हमारी । हम कौ नदरि पवै ससारी ॥
भेपु न पाया ग्रहस्थी वेपु । तिस कौ क्योंकरि कहाँ आदेशु॥
तिसु खिथा मुद्रा पत्रु न झोली । सुनि अउधू निरतरि बोली ॥
तिसु सिङ्गी नादु विभूति न माथै। सुणि सतगुर सचि भरथरि भाखै २
सुणि भरथरि इक शिप्या लीजै। इसको गणत न काई कीजै ॥
सहजे आवै इच्छिआ जाय । धरती देखै सहजि सुभाय ॥
इसकी गति मिति किनी न जानी। अहि निशि जागै रहै ध्यानी ॥
बोलै गोरख सुणि पुरुप उदासी । इसकी गति जाणै अबिनाशी ३
आदेश हो पुरुप आदेश । आदेश का कवणु उपदेश ॥
उपदेश का कौन गुरू कौन चेला । कौन शब्दु अनाहदु मेला ॥
कउण सुआवै कउण सुजाय । कउण सु सवै रहिआ समाय ॥

इसी रूप सरूप भई सुरत किंचित काल एक रस स्थिर रहती है तो यही अवस्था परम छवि का भंडार रूप हुई दमकने लग जाती है । इस स्वय प्रकाश मई अनुभव सत्ता के सिवाय उस काल में और सभ का अभाव होता है इसी करकेइसको चिन्मात्र कहते हैं । पश्चात इस सत चिन्मात्रता में इसके भीतर ही भीतर एक और लपेट की झलक उछलती है और बस—उसी को परम आनन्द मात्र कहते हैं । यह तीनों हालतें सम काल ही सम रूप में प्रकाशित होती है, भिन्न २ नहीं किंतु एक सरूप हैं । इसी को सच्चिदानन्द परम धाम का साक्षात्कार कहते हैं । जो जोग जुगति को चीनते हैं नींद भूख को त्याग करि इसी जीवनमुक्त दशा में मगन रहते हैं "जॉ कउ आयो एक रसा । खान पान आन नहीं क्षुध्या तॉके चित्त न बसा ॥" इस श्री गुरु ग्रंथ वचन अनुसार—प्रथम पद के प्रश्न का उत्तर दुतीय पद में दिया है । (२) यह भरथरी नाथ का कथन है गोरख नाथ से-ऐसा ही आगे भी प्रश्न उत्तर में समझ लेना । गोरख ने गुरू साहेब को आते देखकर नमस्कार को कहा परन्तु भरथरी ने विलक्षन भेप गुरू जी का देख कर ऐसा उत्तर दिया है । (३) पात्र, यहां कमडलु से भाव है या खप्पर से । (४) गोरख भरथरी के नमस्कार कहते ही । (५) गोष्टी आरंभ करने अर्थ गुरू साहेब ने प्रश्न कर दिया है गुरू साहेब के आगमन से प्रथम ही गोरख भरथरी वहा मौजूद थे और जो बाहर से आवे प्रश्न का अधिकार उसका है सो इसी मर्यादा के पालन अर्थ गुरू साहेब ने प्रश्न कर दिया है । आदेश नाम योगियों की संप्रदाय में नमस्कार का है और उपदेश के अर्थ में भी कहीं इसे कहा जाता है ।

बोलै नानक अम्रितु गाथा । तू सुणि भरथरि गोरखनाथ॥४॥
आदेश हो पुरुप आदेश । आदेश का सचु उपदेश॥
उपदेश का निरंतरि गुरू रहत चेला । आपु खोय तब होवै मेला
बोलै गोरख अम्रितु बाणी । सुणिहो नानक इह जोग नीशाणी५
तुही ब्रह्मा कि' तुही ब्रह्म ज्ञानी। तुही तपसी तुही सुन्न ध्यानी॥
तुही अउधू कि तुही ब्रह्मचारी । तुही मोहनी कि तुही कलाधारी
तुही उदासी तुही ग्रिहस्त भोगी । तुही वैश्नो तुही आदि जोगी
बोलै भरथरि अकथ कहाणी । मैं मनि उपजि रही हैराणी॥६॥
सोई ब्रह्मा जो ब्रह्म पछाणै । सोई वैश्नो जो विश्नु मति जाणै
सो महेश जो मोनी थीआ । ओही जोगी जिन जगु सभु कीआ
ब्रह्मड खड जिसु सभु पासारा । ओही सभ सगि सभन ते निआरा
बोलै नानक त्रिभवण सारु । अकथ कथा का तत्तु वीचारु ७
कितु विधि पुरुपा तत्तु कौ लहै । कितु बिधि जाता अगहु गहै॥
कवनु भोजनु जित आवै शांति । कवनु शब्दु जित मिटै भ्रांति॥
कवनु रहतु जित उलटि सरु सधै। क्योंकरि पंच दुष्ट कौ बधै॥
पूछै गोरख देहु वीचारु । क्योंकरि दुत्तर उतरहुं पारु॥८॥
गुर प्रसादि तत्त कौ बूझै । ज्ञान रत्न तब अतरि सूझै॥
मन पवने का करे अहारु । तब ज्ञानी के ब्रह्म आचारु॥
उलटे कवलु पपाले काया । पंचे जीति सहजि घरि आया॥
बोलै नानक सुण हो नाथा । नामु जपत उधरे बहु साथा॥९॥
क्योंकरि पुरुपा नामु अराधै । क्योंकरि पच दुष्ट कौ साधै॥
क्योंकरि सतगुर की मति लेइ । क्योंकरि मनु साधू कौ देइ॥
कौण जुगति जोगी का चाला । कवन शब्द ते परचै वाला'॥
बोलै गोरख तत्त सरूप । अलप बचन जोग का रूप॥१०॥
कवन जुगति ते जोग कमावै । कवन जुगति भ्रमता वशि आवै
कवन जुगति तै त्यागै आसा । कवन जुगति ते मिटै पिआसा॥
कवन जुगति उपजै हैरानी । नानक कथीअले अकथ कहानी ११

(१) अथवा, शाकि। (२) मा।

जत्त जुगति ते जोगु कमावै । सत्ति जुगति भ्रमता वशि आवै ॥
शील जुगति ते त्यागै आसा । संजम रहै ताँ मिटै पिआसा ॥
बोलै गोरख ऐसा जोग । जुगति विहूणा जोगु न होगु १२
कवन ध्यान कवन जोगीसर । कवन सत्त राखहु घट भीतरि ॥
कवन खिथा कवन झोली । कवन शब्दु कवन बोली ॥
कवन सिङ्गी कवन नादु । बोलै नानक इहु विसमादु ॥१३॥
ध्यान जोग आपि जोगीसर । सचु वस्तु राखहु घट भीतरि ॥
अकाल[1] खिथा निराश झोली । शब्दु अनाहदु गुरमुखि बोली ॥
सुणि नानक इह जोग नीसाणी । सिङ्गी सुरति नाद गुर वाणी १४
कवन मेषला कवन विसटी[2] । कवन सेली कवनु किसती[3] ॥
कवन सूई कवन धागा । कवन पेवंद मेषले लागा ॥
कवन जगोटा[4] कवन अधारी । कवन जोगीसरु कवन ब्रह्मचारी
सुणिहो भरथरि नानक इउँ कहै । कवन जुगति जितु अस्थिरु रहै॥१५॥
गगन मेषला धरति विसटी । दया सेली हाथ किसती ॥
सुरति की सूई प्रेम का तागा । कवन[5] पेवंद मेषले लागा ॥
जापु जगोटा जतु अधारी । आदि जोगीसरु सो ब्रह्मचारी ॥
सुणि हो नानक भरथरि बाता । गुर प्रसादि अमरु घरु जाता १६
कवणु मूलु कवणु वेला[6] । कवणु गुरू कवनु चेला ॥
कवनु मुद्रा कवनु मिरगानी । कवणु फरूआ[7] कवनु पाणी ॥
कवणु डिबी कवणु भुगति । पूछै नानक कवणु जुगति ॥१७॥
पवनु मूलु सुन्न वेला । शब्दु गुरू सुरति चेला ॥
धर्म कीआ मुंद्रा शील मिरगानी । अकाल फरूआ गगन सर पानी॥

---

(१) अविनाशी वस्तु, सर्व परपच की आधारभूत सत्ता । (२) विष्टि नाम नर्क में जबरदस्ती ढकेलने का है परन्तु जिस प्रकार दुराचारी नर्क में ढकेले जाने से दडित किये जाते है इसी प्रकार किंचित मात्र काम के सस्कार से जाग उठने वाली शिश्न इद्री को जबरदस्ती ढकेल रखने वाली कोपीन है अथवा तांबे या पीतल का वह चक्र जिससे कितने साधू (नागे) अपनी इद्री को बॉध कर काम की चेष्टा को रोक रखते हैं उसका नाम विष्टी है। (३) कोई साधू फकीर काठ का पात्र किशती (बेड़ी) के आकार का रखते हैं और कोई खप्पर हाथमें रखते हैं। (४) कोपीन । (५) असल तो ग्रथ में पाठ यही है परन्तु "पवन" पाठ शुद्ध जान पड़ता है। (६) मर्यादा, हद्द । (७) फावड़ा ।

ध्यान डिबी संतोष भुगति । बोलै गोरख नानक इहु जुगति १८
अठ अठारह बारह बीस । बंकनाल रस त्यागै तीस ॥
तिसु ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म की मया । बकनाल ते बाहर भया ॥
सुणि हो भरथरि नानक बोलै । आतमु चीनै तत्तु विरोलै ॥१९॥
क्योंकरि खोजी क्योंकरि वादी । क्योंकरि दुबिधा दुर्मति त्यागी
क्योंकरि दुनीआँ दुत्तरि तरीअै । क्योंकरि बाले जीवत मरीअै ॥
तेरा कवनु गुरू जिसु दीक्षा दीनी । भरथरि प्रणवै तत्तु परवीनी २०
गुरमुखि खोजत राहु बताया । सहज मिले जगजीवनु पाया ॥
दुबिधा दुर्मति त्यागि समाया । सचि नामि ताड़ी चितु लाया ॥
गुरमुखि सोग व्योग प्रजालै । गुरमुखि रत्ता[1] पति गति नालै ॥
गुरमुखि रत्ता दुत्तरु तरीअै । शब्दि मूए ताँ बहुड़ि न मरीअै ॥
सुरति शब्द की अकथ कहाणी । सुणि भरथरि नानक इह वाणी २१
नउसर शुभर[2] दशवैं चढिआ । गगन मंडल महि वर्षा करिआ ॥
तीन मेट चउथै चउबारै । पंच सफा[3] जिणि मनकौ मारै ॥
पारस[4] परसै त्रिभवण थान । गुरमुखि जपीअै अंतरि नामु ॥
पुरीआ सप्त ऊपरि कउलास । तहाँ जोगी बसै निरंजन दास ॥
नानक गोरख भरथरि मेला । गुर प्रसादी जन्मु सुहेला[5] ॥२२॥
कवण रहत ते चेला जापै[6] । कवण शब्दु ते गुरू पछापै[7] ॥
कवण जुगति लै आसणु लाइ । कवण जुगति लै मनु समझाइ ॥
कवण शब्दु ते कवल परगासा । कवण शब्दु लै बधै आसा ॥
बोलै नानक सुणि हो पुरुषा । कवण शब्दु अम्रित की वर्षा २३
गुर सेवा ते चेला जापै । सचु शब्दु ते गुरू पछापै ॥
जुगति पछाणै आसण बहै । सतगुर बचनी अस्थिर रहै ॥

---

(१) रत्ता अर्थात् संलग्न गुरमुख प्रतिष्ठा वाली गति के साथ (निर्वाणिक अनुभवीय स्थिती में) स्थित हो जाता है । (२) शुभर नाम गढ़े का है सो नौसर जो नौं दरवाजे सदैव सरते रहते हैं उनको गढ़ों के समान खाली करके अर्थात उनसे सुरत को खैंच कर विषयों की ओर से उनकी ससरना को निरोध करके । (३) पांच काम क्रोध आदि की सफा (मजलिस) जीत कर । (४) त्रिकुटी के स्थान पर ब्रह्म सरूप पारस को स्पर्श करे । (५) सुख पूर्वक व्यतीत होने वाला, आसान । (६) जाना जावे । (७) पछाना जावे ।

नानक गोरख भरथरि मेला । ऐसी जुगति पछाणै चेला ॥
सुणि हो नानक बोलै भरथरि । गुर किरपा ते चेला अस्थिर॥२४॥
कवण अंचला कवण टोपी । कवण आडबद[1] कवण लँगोटी॥
कवण धुई कवण बैसतर[2] । कवण वस्तु ले राखहु अंतरि ॥
कवण सुमूआ कवण सुअस्थिर । बोलै नानक सुणिहो भरथरि २५
सचु अंचला हरि सिमरणु टोपी । जतु आडबद शील लँगोटी ॥
क्रोध मूआ हरि सिमरणु अस्थिरु । सुणिहो नानक बोलै भरथरि २६
नानक बोले सुणि पुरुष अबिनाशी। पिंड पड़ै मिलीऐ अबिनाशी ॥
पिंड पड़ै अस्थिरु मनु आवै । पिंड पडै भरमतु ठहिरावै ॥
पिंड पड़ै तब होत सुहेला । पिंड पड़ै विछुरत होइ मेला॥
पिंड पवै तब मिटै पिआसा । बहुत जीवण की भरथरि आसा
बोलै नानक त्रिभवण सारु । पिंड पवै तब मुक्ति दुआरु २७

कवण रूप का गुरू कथीअले, कवन रहत का चेला ॥
कवण शब्दु लै आसणु बैसे, कवण जुगति का मेला ॥
कवण मंत्र उपदेश दृढावहु, कवन तिलकु कवन माला ॥
पूछै गोरख तू सुणि नानक, कितु बिधि परचै वाला ॥२८॥
पवण का रूप गुरू कथीअले, चेला कथीअले पाणी ।
सचु शब्दु लै आसणि वैठे, जोती जोति समाणी ॥
जिसु अंतरि जाय निरंतरि देखिआ, प्रगटी अचरज गाथा[3] ॥
एतु जुगति गुर चेला परचै, तू सुणि गोरखनाथा ॥२९॥ ॥
पूछै गोरख तू सुणि नानक, कितु बिधि निद्रा त्यागै ।
काम शब्द वशि कितु बिधि आवै, क्योंकरि दुविधा भागै॥
क्रोध बली कौ क्योंकरि जीतै, क्योंकरि तजै अहंकारा ।
सुणि नानक सचु गोरख प्रणवै, किँह विधि तत्तु वीचारा ३०

(१) आड़ नाम नाली का है जिस में से पानी बहता हो सो ऐसी नाली शरीर में लिंग इन्द्री है—जिस पीतल या तांबे के चक्र से इस आड़ को जोगी लोग बंद लगाते हैं उसे आड़बन्द कहते हैं, पीछे इसी को ही बिसटी कहा था । (२) अग्नि । (३) गीत, कथा—अचरज गीत या कथा, भाव अंतरीय शब्द अनहद से है ।

सुणि गोरख सचु नानक प्रणवै, एहु सिद्ध का मेला ॥
साध दया ते क्षुध्या त्यागै, जागतु रहै सुहेला[१] ॥
कामु सबलु वशि सहजे आवै, इतु विधि दुविधा त्यागै ॥
सुणि हो गोरख सचु नानक प्रणवै, सत शरणि मनु लागै ३१

कवन नगरी कवन राजा । कवन गढ कोट कवन दरवाजा
कवन लोक ऊहाँ करहिं बसेरा । कवन गुरू कवन कहीअै चेरा
कवन काजी तहाँ कवन महता[२]। सुणिहो नानक गोरख इउँ कहता ३२

अमरापुर नगरी तहाँ ब्रह्म राजा । सुन्न गढ कोट मेरु दरवाजा ॥
साधू लोक तहाँ करहिं बासेरा । शब्दु गुरू सुरति है चेरा ॥
सचु महता आपि काजी थीआ । नानक धरम तपावस कीआ ३३

क्योंकरि अउधू तत्त कौ बूझै । क्योंकरि ज्ञान पदारथु सूझै ॥
क्योंकरि आसा मनसा त्यागै । क्योंकरि दुविधा दुर्मति भागै
क्योंकरि सतगुर की मति लेइ । नानक सेवक सहजि मिलेइ ३४

हुकम बूझि कै तत्तु पछानै । गुर किरपा ते सदा सुख मानै ॥
सतिगुर की आज्ञा शिर पर सहै । आस अँदेसे[३] ते निआरा रहै ॥
तिसकौ सोग व्योग न व्यापै कोइ । बोलै गोरख जे सेवक होइ ॥३५॥

सुणिहो गोरख अकथ कहाणी । क्योंकरि मिटै सु आवण जाणी
क्योंकरि भ्रमते कौ ठहिरावै । बाहरि जाता क्योंकरि ग्रहि ल्यावै
क्योंकरि गुर चरणी चितु धरै । सुणि गोरख क्यों अजर जरै ॥
बोलै नानक अगम बीचार । क्योंकरि सेवक पावै पारु ॥३६॥

सुणि नानक सेवक की चाला । मनि हुकम होय रहै निराला ॥
सतगुर चरणी लावै पिआर । आवा गउन मिटसि इक बार ॥
उह गर्भ कुट महिं बहुड़ि न लेटै । कोटि जोजन जमु कबहुं न तेटै[४]॥

---

(१) सुखी। (२) प्रधान। (३) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के संकल्प की तार का नाम आशा है और प्राप्त वस्तु की सभाल का फिकर या उसके नाश का संशय अंदेशा कहलाता है, वास्तव में यही दोनों परम पुरुष के दर्शनों में पटल (कपाट) हैं। (४) ताड़ी लगाकर या घूर कर देखना, टकटकी बाधना। भाव क्रोड़ों योजन से भी यम उसकी ओर आख भरकर नहीं देख सका।

उह एक वार[1] मरि जनमै नाहीं। जो गुर सेवक अकि समाहीं ॥
बोलै भरथरि सेवक की रहता। गुर का हुकमु जो सेवक कहता३७
कितु परचे ते पड़ै न कंधु। कितु परचे ते धावत बंधु ॥
कितु परचे उपजै हैरानो। कितु परचे जोग मिति जानी ॥
कवन शब्दु ते मिटै पिआसा[2]। कवण शब्दु ते पूरन आसा ॥
बोलै नानक सुणिहो भरथरि। कवण शब्दु ते होवै अस्थिर ॥३८
खडित निद्रा पड़ै न कधु। अलप अहारी लै धावतु बधु ॥
सतगुर परचै उपजै हैरानो। ज्ञान परचै जोग मिति जानी ॥
सतगुर परचै मिटै पिआसा। संजम रहै त पूरण आसा ॥
बोलै भरथर सुणि नानक साधा। गुरप्रसादि अमर पदु लाधा ॥३९
कवन नगरी कवन सुलतान। तहॅ कवन लोक वसहिं परधान॥
कवन आसनु कवन घरि डेरा। उह कवनु ध्यानु जित बहुड़ि[3] न फेरा
कवन जुगति जितु जोग कमावै। कवन सजम जितु सहजि घरि आवै
बोलै नानक अगमु अपारु। एस कथा का अगमु वीचारु ॥४०
कार्या नगरी ब्रह्म सुलतान[4]। तीन गुणाॅ का तहँ विस्राम ॥
सुन्न घरि आसनु सहजि समावै। बाहरि जाते कौ गुरमुखि घरि लिआवै
बोलै गोरख ब्रह्म ज्ञानु। अलप पुरुष का सुन्न ध्यानु ॥४१॥
सुणि अउधू इउँ जोगहिं पाईऐ। बिनु मनु मूॅडे मूॅड मुडाईऐ ॥
केश अजाईं जाहिं अभागै। जब लग अंतरि ब्रह्म न जागै ॥
किआ सिङ्गी सु बिभूति लगाई। काहे कौ शिरि छाई[5] पाई ॥

(१) युक्ति अभ्यास की कमाई से जिसकी जीव कला जीते जीही शरीर से न्यारी होकर परम पिता अकाल पुरुष की गोद में समा जाती है भाव सभ के आदि कारण में अभेद होजाती है तो एक वार ऐसी मरणी मरकर फिर नहीं जन्मता तात्पर्य यह कि फिर स्वप्न में भी उससे भिन्न नहीं होसक्ता। अथवा ज्ञानी अज्ञानी सभ का शरीर प्रारब्ध रचित होता है यावत शरीर रहे सुख दुख का भोग सभ के लिये एक सा रख्खा है, भिन्न भेद केवल इतना है कि जो गुर सेवक उस सच्चे मालिक की गोद में समा जाता है प्रारब्ध फल भोग समाप्ती रूप मृत्यु से एक वार मरकर फिर और किसी कर्म फल भोग रूप जन्म को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि गुरमुख (ज्ञानी) के कर्म समूल नाश होजाते हैं। (२) पदार्थों की प्राप्ती से अधिक लालसा रूप त्रिश्ना। (३) फिर, आगे को। (४) व्यर्थ, भंग के भाड़े। (५) क्षार, राख।

पत्रु[1] लीआ मंगण कौ भिक्षा । अजहु न आई गुरु की शिक्षा॥
सुणि भरथर नानक इउं बोलै । जोगी जुगति लीए इउं खेलै ॥४२

जुगति कमावै सो जोगी होवै । जुगति रहै सो जनमि न रोवै ॥
जुगति बिना जम ककरु मारै । जुगति बिना नित कालु सँघारै ॥
जोग जुगति की जिसु मिति जानी । जोग दृढ़ै सो ब्रह्म ज्ञानी॥
जोग जुगति की ऊँची रहता । सुणि नानक इउं गोरख कहता ॥४३

कवण रूप कवण आचार । कवण अरंभ कवण आधार ॥
कहाँ ते आवै कवण घरि जाय । कवण सुसवैं रहिआ समाय ॥
कवनु गुरू कवनु है चेला । कवनु शब्दु रहरासी मेला ॥
तहँ कवनु जुगति कवनु तहँ रहता।सुणि गोरख सचु नानक कहता४४

सचुसरूप[2] ब्रह्म आचारु । पवनु अरंभ ज्ञान अधारु ॥
नाभ ते उपजै हिरदे महिँ जाइ । सुषमना कै घरि रहै समाय ॥
इडा पिंगला सुषमना बूझी । तौ इनि उलटि कला मनि सूझी ॥
बोलै गोरख ब्रह्म ज्ञानु । सुणि नानक इह जोग ध्यानु॥४५॥

क्यौंकरि चंद्रमा शीतल संगि । क्यौंकरि भानु तप्त नित अगि ॥
क्यौंकरि आसा मनसा तयागै । क्यौंकरि सुन्न शब्दि धुनि लागै॥
क्यौंकरि अउधू तत्त को बूझै । क्यौंकरि ज्ञान पदार्थ सूझै ॥
चंद सूरज दुइ इकतु घरि आणै । क्यौंकरि सुन्न चँदोआ ताणै ॥
बोलै नानक सुणि अउधूता । कवन वस्त्र कवन विभूता ॥४६॥

---

(१) पात्र, परतु इस जगह झोली से भाव है। (२) सचु सरूप विपयक ब्रह्म भाव मई आचार को धारण करता हुआ गुर शब्द के आधार (सहारे) पर पवन से आरभ करे इस प्रकार कि शब्द के आश्रित पवन नाभि से उत्पन्न होकर हिरदे में से उलयन करती हुई सुषमना के स्थान पर जाय स्थिर होवे इस भाति शब्द अभ्यास करते २ त्रिवेणी घाट का ललाट हो आता है। यहा परयत कीटी मार्ग रूप शब्दाभ्यास की पूरणता के अनतर मन में उलटी कला नटनाजी रूप विहगम शब्दाभ्यास की सुरत (ज्ञान) आन स्फुरती है यही जोग ध्यान ब्रह्म ज्ञान सरूप है। तात्पर्य यह कि शब्दाभ्यास मात्र से ही यथार्थ ब्रह्म ज्ञान होकर पूर्ण ब्रह्म की प्राप्ती इसे हो जाती है। शब्दाभ्यास का मार्ग यद्यपि अनत बार गुर साहब ने स्पष्ट करके भी कहा है तथापि इसकी चाबी केवल भेदी पूर्ण गुरु के ही हाथ दी हुई है।

चंद्रमा[1] शीतल साधू सगि । तामस रूपी भानु तेजि अगि ॥
गुरप्रसादि तत्त कौ जाणै । चारि पदार्थ तब मनु मानै ॥
सुणि नानक इउँ गोरख बोलै । जोगी जुगति लीए इउँ खेलै ॥४७॥

कवन वरन कवन वेष । कवन मंत्र कवन उपदेश ॥
कवन गुरु जिसकी इह शिक्षा । अति होइ[2] भारु न खइऐ भिक्षा ॥
बोलै भरथर सुणि नानक बाता । कवन वरन ते अंतरि जाता ॥४८

असख वरन निरंतर वेस । आदि मत्र शब्द उपदेश ॥
ज्ञान वचन अंम्रित की बाणी । कामधेनु लै भिक्षा खाणी ॥
सतगुर[3] का वरन लए आहारु । सुणि भरथर इह ब्रह्म अचारु ॥४९

---

(१) मन का अधिष्ठाता चद्रमा है। चंद्रमा की शक्ति ही मन में कार्य करने वाली वस्तु है इस वास्ते इस जगह चद्र नाम से ही मन को निरूपण किया है। मन में एक तो मनन रूप कार्य की शक्ति है दुसरी अहकार करने की शक्ति है, सो जिस प्रकार शीतल अश इस में चद्रमा का है उसी प्रकार तामसी (तैजस) अग इसमें सुर्य का है। एक ही मन में इन दोनो शक्तियों के सर्वदा काल स्फुर्ण होते हुए भी इनमें धरती आकाश का भिन्न भेद रहता है जिससे सर्व जीव दुखी रहते हैं क्योंकि ना केवल शीतलता से कार्य सरता है ना केवल तेज से, दोनो ही इकट्ठे हों तो कृत्यकार्यता पूर्ण हो सक्ती है परन्तु इनका समकाल इकट्ठे होना आग पानी के एक रूप होने वत अत्यत अशक्य है सो किस प्रकार इस दुविधा के एक रूप निज भाव में मन आवे तो इस जीव का कार्य सुधरे। इस प्रश्न के उत्तर में साधू सग में प्रविष्ट मन में शीतलता का साक्षात्कार होता है और तेज अग में अर्थात् तेज के स्थान में स्थित मन में तामस रूपी जो तेजोमई (प्रकाश रूप) अश है उसका भान (साक्षात्कार) होता है। तात्पर्य यह कि तेज के स्थान रूप शिव नेत्र में सत्सग के आश्रे स्थिर हुए मन में ऐसी शाती की प्रगटता होती है जो शीतल है पर उस में जडता का लेश नहीं—ऐसा तेज प्रकाशित होता है कि उस में उष्णता का नाम नहीं। इसी शातमई प्रकाश की उपलब्धी का नाम इस जगह चाद सूर्य की इकग्रता रूप मन का निज भाव में स्थिर होना कृत्कार्यता की कुजी है। सतसग से यहा भीतरी सतसग भावित है—क्योंकि ऐसी स्थिती में बाह्य सतसग सम काल नहीं किया जा सकता और सतगुर सरूप का ध्यान या सत शब्द का अनुसधान—भीतरीय सतसग है (साध नाम भले का है—भला सग सतसग ही है, और सभ सग नाश होने वाले होने से भले सग नहीं, सतगुर रूप शब्द ही सत है इसलिये उसी का सग भला सग—सतसग है) सार अर्थ यह शब्द अनुसधान पूर्वक शिवनेत्र में स्थित होना ही गुरुओं की कृपा से तत्त्व ज्ञान की कुजी है। शब्द अनुसधान की रीति पृष्ठ ८४ के टिप्पण न० २ में निरूपण की गई है। (२) अन्यति भारू होय भिक्षा न खय्यै—ऐसा इस पद का अन्वय है। अर्थ यह कि दूसरे पर भारू होकर भिक्षा ना खाय, भाव क्या कि किसी दूसरे पुरुष तथा पदार्थ आदि के सिर पर अपने जीवन का निरभार ना समझे। किंतु एक अकाल पुरुष वाहगुरू की ओट को सम्हारे रक्खे, यही सर्व कामनाओं की पूर्णता को धारने वाला कामधेनु सरूप है। (३) सतनाम रूप गुरु मत्र।

सुणि नानक इउँ गोरख कहै । कितु विधि आवागवण ते रहै॥
क्यों अमरापुरि पावै वासा । कितु विधि चूकै जम की त्रासा॥
क्योंकरि सहजि कला¹ मनु आणै । कयोंकरि सुन्न चँदोआ ताणै॥
सुनि नानक इउँ गोरख कहता । कितु विधि सुन्न जाय इह रहता॥५०॥

जत्त रहै ताँ जोग कमावै । गुर वचनी ममता वशि आवै॥
खंडित निंद्रा अल्प अहारी । झाती² पावै अनभै वारी॥
नऊँ दर सोधै ताँ पावै भवँणु³ । इह विधि मिटै सु आवागवणु॥
आस अँदेशा त्यागि समावै । जम दुख मिटै अनभउ पदु पावै
बोलै नानक सुणहो गोरखा । इतु विधि मिटै सु जम की विर्था⁴॥५१॥

कै सै⁵ नाडी कै सै सधी । तहँ कवण पुरुप वसै निज बंधी॥
कवन मडल कवन है वारी । केते पुरुप केती हैँ नारी॥
एक⁶ नारि बत्तीस हैँ मरदा । उआ नारी महिँ भेदु न परदा॥
पिड ब्रह्मंड का देहु बीचार । बोलै गोरख तत्तु अपारु॥५२॥

नौ सै नाडी सोलह सै सधी । तहाँ पवणु पुरुप वसै निज बधी
चारि महल चारि हैँ वारी । बत्तीस पुरुप एक है नारी॥
नानक कहै सुणहु तुम ज्ञानी । परम तत्त की कथा बखानी॥५३॥

शब्द⁷ के धारे सगले खड ।-शब्द के धारे कोटि ब्रह्मड॥
शब्द के धारे पाणी पउण । शब्द के धारे त्रिभवण भउण॥
शब्द के धारे सूरज चद । शब्द के धारे रत्न समुंद॥
शब्द के धारे धरती आकाश । नानक शब्द रत्न की राशि॥५४॥

---

(१) कला नाम विद्या का भी-है सो यहां सहज विद्या से भाव सहज योग युक्ति है जिसका निरूपण पृष्ठ ८४ के टिप्पण २ व पृष्ठ ८५ के टिप्पण १ में हो चुका है। (२) दृष्टि डालना, ध्यान देना। (३) ठिकाना, घर। (४) वेदन, पीड़ा। (५) कितने सौ। (६) एक नारि रसना और बत्तीस पुरुष दांत हैं। (७) संसार भर में चाहे सर्व पदार्थ सन्मुख भी धरे पड़े हों—किसी भी कार्य की सिद्धि उनसे नहीं हो सकती जब तक उनके नाम की जानकारी न होवे—जैसा कि देखने को हमारे सन्मुख दमकता हुआ हीरा पड़ा है परन्तु हम उससे परिचित नहीं हैं वह किंचित भी हमारे दरिद्र को निवारण नहीं कर सकता, हां यों ही कि हमें उसका नाम कोई बतला देवे तत्काल उससे धनी बन जावेंगे—ऐसा ही सर्व संसार में कार्य साधकता नाम के ही अधीन सिद्ध है, सो नाम ही शब्द है, इस कारण शब्द के ही आसरे खंड ब्रह्मंड का स्थित रहना गुरू साहेब कथन करते हैं।

आस अँदेशे ते शब्दु निआरा। तीन लोक शब्दु पासारा ॥
शब्दु अदिष्ट मुष्ट नहीं आवै। सप्त दीप शब्द धुनि गावै ॥
शब्दु अनाहदु निरंजन का वेपु। आदि मंत्र शब्द उपदेशु ॥
चउदह ब्रह्मंड शब्द की धर्मशाला¹। नानक सोहं शब्द दइआला ॥५५॥
सोहं शब्दु सदा धुनि गाजै। जागतु² सोवै नित शब्दु बिराजै॥
तीन³ अवस्था के सँगि रहै। जागत सोवत सोहं कहै ॥
शब्द महरम नहीं किसे सिजाता⁴। नाॅ किसे देखिआ नाॅ किसे पछाता॥
बोलै नानक अकथ कहाणी। मन महिं उपजि रही हैराणी॥५६॥
बाल अवस्था दूध सँगि प्रीति। रुदन करै बिन दूध सुचीति ॥
ले माता सुत कंठ लगावै। दूध हेति बालकु बिललावै ॥
माँगै दूध अवरु नहीं जानै। अहारु होइ रँग रलीआ मानै ॥
सवा वर्ष दूध है आदि⁵। नानक लगा अन्न कै सुआदि॥५७॥
जोबन अवस्था है फिरि माता। सुत कुटंब मन महिं हित राता ॥
माया के संगि रहित बिरागी। जोबन माते बाजी हारी ॥
पर ग्रिह जाय न राखै शील। काम क्रोध सँगि सदा कुचील ॥
जोबन सँगि फिरै अहंकारी। नानक जोबन बाजी हारी ॥५८॥
बिर्ध अवस्था काम चित धारै। रत्न जन्मु कौडी⁶ पै हारै ॥

---

(१) सभ को धारण करने वाली अर्थात् आसरा देने वाली जगह का नाम धर्मशाला है—सो सर्व के साधारण निवास योग्य धर्मशालावत चौदह लोक ही शब्द की निवास भूमी है। टिप्पण ७ पृष्ठ ८६ में सर्व प्रपच की सत्ता शब्द के अधीन दर्शाई अरु अन सर्व प्रपच में नाम को पूर्ण दिखलाया है, जिस प्रकार आकाश के आसरे घट और घट के आसरे घट (अंतरवर्ती) आकाश की स्थिति अथवा जल में तरंग तरंगों में जल की स्थिति होती है इसी प्रकार शब्द में सभ की और सभ में शब्द की ओत प्रोतता दोनों बचनों में निश्चय कराई है। (२) श्वास प्रश्वास में हंस मंत्र रूप अजपा जाप का रात्रि दिन में होता रहना पीछे यथावत दिखलाया जा चुका है। जागते सोते उसकी धुनि नहीं टूटती एक तार बंधी रहती है। (३) जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती
५ इन तीनों अवस्थाओं में एक संग अर्थात् एक सार यह शब्द होता रहता है, इन तीन अवस्था रूप जगत की ओर ते सोते हुए अर्थात् तुरिया तुरियातीत के मंडलों में भी सोहं शब्द गाजता रहता है। भेद केवल इतना होता है कि तीन अवस्था में श्वास के अधीन रहता है और वायु मंडल को नीचे छोड़ने वाली अमन अवस्था में सहज रूप से इसकी धुनि का अनुभव होता है। (४) पहचाना। (५) भोजन, अहार। (६) कौड़ी के समान कीमत वाले तुच्छ विषय भोगों के बदले।

काम सुआद बहु जोनी भवै[1]। गर्धप श्वान काग ज्यों लवै[2]।
पर त्रिय सँगि लगावै प्रीति । जमपुर जाय दूख की रीति।
कहु नानक इहु बिर्थ सुभाउ । मरि मरि जनमै जोनी पाउ ॥५६॥
तीन अवस्था के गुन लागे । बालक लोभ दूध नहीं त्यागे॥
जोबन ते जो कामु नहीं साधिआ। बिर्धि क्रोध नहीं नामु अराधिआ॥
तीन गुनाँ के लक्षण फीके। अंतकाल वैरी है जी के॥
सुणि गोरख सचु नानक आखै । इस टोली[3] ते सतगुरु राखै ॥६०॥
काम कौ जीतै सो बलवतु । क्रोध साधै सो अनभउ सतु॥
लोभ कौ त्यागै रहत का शूरा । मोह बशि करै सोई जनु पूरा॥
पंच दुष्ट कौ बशि करि बाँधै। उलटि बान गगन कौ साधै॥
धूप छाँव[4] सभ सम करि सहै । सुणि नानक इउँ गोरख कहै॥६१॥
सुणि पुरुपा पूछउँ इक बाता । किंह मुखि आवत किंह मुखि जाता
कवन अस्थानु जितु करै बसेरा। कवन हाटु जितु सहजे फेरा॥
तिसका बरनु कवन सगि हेतु । सुरप सब्जु क्या कहीअै सेत॥
पूछै भरथरि आदि सरूप । इस पुरुप का बरनु किसु रूप॥६२॥
उत्तर[5] मुखि आय दक्षण मुखि गवणु। नाभ कवल ग्रिहु साधै भवणु॥
त्रैसत[6] अगुल अदरि नैसानु । बाहरि द्वादश रची चौगानु॥

(१) भ्रमता या घूमता रहता है। (२) मडलाता रहे, एक से दूसरी दूसरी से तीसरी आदि योनियों में ही भटकता फिरे जैसे काग एक दीवार से दूसरी पर। (३) काम आदि का यूथ, गरोह, जमाअत। (४) सेत श्याम (सहस दल कमल से भाव है)। यहा धूप छाव के सहने से बाहरी धूप छाव को सभ प्रकार से सहने का भाव तितिक्षा पर कदापि नहीं और न सुख दुख रूप धूप छाव से यहा कुछ मतलब है क्योंकि तितिक्षा का तो यहा कोई प्रसग ही नहीं है किंतु इसके पूर्व की दोनों पक्तियों के साथ स्थानिक भेद की आवश्यकता थी जो इस पक्ति में पूरी की गई है "नील अनील अगनि इकठाई। जल निवरी गुर बूझ बुझाई।" इस गुरू ग्रथ साहब के गुरु वचन अनुसार सहसदल की स्थिति का ही सूचन कराना प्रमाणित है। (५) शरीर में जीव के प्रवेश विपयक प्रश्न के उत्तर में कहते है कि उत्तर अर्थात उपरले मुख (दशम द्वार मार्ग) से जीव शरीर में आता है और दक्षिण नाम नीचे की ओर नदी के प्रवाहवत् जाता है—नाभि कमल को अपना घर मदर बनाता है। (६) दश अगुल पवन को अदर खेंचने और बारह अगुल (पवन को) बाहर फेंकने में चौगान का खेल खेलता रहता है, इसी को अपना घोड़ा बना कर कभी ऊपर ब्रह्मड में जा टिकता है और कभी नीचले पट चक्र रूप खंडों में आन डेरा करता है—ऐसे सदैव भ्रमण करता रहता है—जब पूर्व उक्त रीति से हस शब्द को पहचान लेवे तो ससार सागर तर जाता है।

ब्रह्मंड खंड महिं डेरा करै। शब्दि पछाणि लै भउजलु तरै॥
सप्त दीप पलक महिं जाय। कहु नानक ताकी बूझ न पाय६३
चारि पदार्थ जिसु हथि आए। साधू चरनी जो चितु लाए॥
उह कौन ठौर जुगति किंतु राखै। जिसनो आपि बिखालै[1] सो जनु लाखै
नाम पदार्थ जिह्वा लीना। काम रत्न इन्द्री कौ दीना॥
अर्थ पदार्थु जग की रासि। मुक्ति पदार्थ साधू पासि॥६४॥
काम जीतै सो जनु परवाणु। क्रोध त्यागै सो पुरुष प्रधानु॥
जिह्वा बधि रत्न[2] बशि करै। गुर प्रसादी अजरु जरै॥
काम रत्न जब माथे आवै। तब माथे महिं चमक दिखावै॥
नानक कहै सुणहु जन ज्ञानी। नाम रत्न की जिसु मिति जानी ६५
आँवें[3] अग पुरुष के दीनी। इन मूढ़े अपनी करि लीनी॥
चले न संगि पाछे ही रहै। अनिक जत्न करि अपनी करै॥
कोटि उपाव करि पाछे छोड़े। चलती बारी हाथ पछोड़े[4]॥
कहु नानक इहु रत्नु निआरा। जो सत थापहि करहि हमारा ६६
चार पदार्थ भये इकत्र। मोक्ष पदार्थ चहुँ का छत्र॥
चार पदार्थ साध कौ दीने। चारि रत्न साधू बशि कीने॥
नामु मुक्ति लै काम कौ त्यागै। अर्थ रत्न पर साधा आगै॥
कहु नानक चहुँ का वरतंतु। कोटि मधे कोई बूझै सतु॥६७॥

नामु रत्न जिसु जन हथि चढिआ। उह गर्भ कुट महिं बहुड़ि न पडिआ
नाम की महिमा सुनहु जन भाई। नाम की शोभा वेद सुनाई॥
नाम का महरम सत को होवै। उह पडै न जोनी बहुड़ि न रोवै॥
नानक कहै सुनहु रे मीता। नाम का महरमु कोई हरिजन कीता६८

---

(१) दिखलावे। (२) जिसकी रसना नाना प्रकार के रस स्वाद आदि भोग पदार्थों में चलायमान रहती है वह अवश्य विषय भोगों का शिकार होता है, इस कारण जो काम रत्न को वश में करना चाहता है उसके लिये आवश्यक है कि जिह्वा को बाध देवे, भाव यह कि प्राण रक्षा मात्र तथा आश्रम अनुसारी प्रवाह पतित कार्यों के निर्वाह मात्र के वास्तेही आहार्य पदार्थों का सेवन करे नाँकि स्वाद आदि की चाट में। (३) स्त्री अथवा माया, दौलत। (४) पश्चात्ताप के समयवत् हाथ मारना, इधर उधर हैरानी से हाथ को हिलाना झुलाना।

सुणि नानक इउँ गोरख पूछै कवन रूप की वाणी।
कवन जुगति का शब्दु कथीअलै अंतरि सुन्न ध्यानी॥
कवन मंत्र उपदेशु कवन है कवन पुरुष का ध्यानी।
बोलै गोरख तू सुणि नानक कवन जुगति का ज्ञानी॥६९

सुणि हो गोरख नानक बोलै कवन पुरुष की बानी।
इआ रूप ते शब्दु उपन्ना अंतरि सुन्न ध्यानी॥
आदि मंत्र उपदेशु शब्दु है सुनि सुनि धरहि ध्यानं।
बोलै नानक सुणिहो अउधू सतगुर वचन ज्ञान॥७०॥

कोटि बिश्न कीने अवतार। कोटि ब्रह्मे करहि जैकार॥
कोटि महेश नित बंदन करहि। कोटि इंद्र छत्र शिर धरहि॥
कोटि देवते धरहि ध्यानु। कोटि जोगी जंगम भगवानु॥
कोटि ऋषीशर शब्द को ध्यावहि। तउ नानक शब्द का भेदु न पावहि॥७१॥

क्यौंकरि सरु[1] अकाश को सधै। क्यौंकरि पंच दुष्ट को बधै॥
क्योंकरि नीरु[2] चढै फिरि ऊचै। क्योंकरि मनूआ महलि[3] पहूँचै॥
क्योंकरि पुरुषा अजरु जरै। चंचल मिरग क्यौंकरि वशि करै
क्यौंकरि निज घरि पावै बासु। सुणि नानक क्यों कवल विगासु॥७२

गुर का शब्दु बान हथि गहै। मिरगी मिरगु[4] साध घरि बहै॥
पच दुष्ट जीतै गुर ज्ञान। तहँ शब्दु अनाहदु सुन्न ध्यानु
चचल मनु को अस्थिरु राखै। गुरमुखि सचु रसायणु चाखै॥
पूछै नानक सहज सुभाय। गुरमुखि मारग देहु बताय॥७३॥

चहुँ[5] का संगी चहुँ संगि हेतु। चारे राखै अस्थिरु खेतु॥

(१) बाण-सुरत रूप कानी के साथ शब्दरूपी फल जोडे हुए से भाव है। (२) प्राणअपान रूपी पवन जो जल प्रवाहवत् सदैव चलायमान रहता है (शरीर में) पाणी कहा जाता है जैसा कि "पाणी प्राण पवन पति बाधे" इस श्री गुरु ग्रंथ साहब गत गुर प्रमाण से सिद्ध है। नीर नाम नेत्र ज्योति का भी है जैसा कि पीछे युक्ति तथा गुर प्रमाण से दर्शाया जा चुका है। इस जगह नेत्र ज्योति से ही भाव है। (३) महल नाम मुकाम का है परन्तु यहा मन के पास अपने मुकाम में पहुँचने के विषय में प्रश्न है सो मन का मुकाम सहस्र दल है। पहिले पद से सबध भी इसी का है। (४) इन्द्रिया तथा मन। (५) चारों का नाम आगे मूल में है।

मिरगु[1] अंगूरी देइ न खाणि । चारे पुरुप अमर जरि जाणि ॥
बोलै गोरख देहु बीचार । कहु नानक से कवण हैं चारि ॥७४॥
दया धर्म धीर्य सतोप । सचु सँगि प्रीति न लागै दोष ॥
दया करै अरु धर्म कमावै । सतु सतोपु आत्मे लिआवै ॥
अपना अंगु चारि नहीं त्यागहि । जे मनु दे चउहाँ कौ लागहि ॥
बोलै नानक चहुँ की रीति । जेकरि मनि आवै परतीति ॥७५॥
मूसा[2] मंजारी कौ बधै । क्योंकरि बाणु गगन कौ सधै ॥
क्योंकरि नगरी[3] फिरै ढंढोरा । क्यों बशि आवहिं नगर के चोरा ॥
सुणि पुरपा क्यौं अजरु जरै । असुरा सिध क्यौं उलटी तरै ॥
बोलै गोरख तत्तु ज्ञानु । क्यौंकरि दशवैं धरै ध्यानु ॥७६॥
सुन्न का महरमु को विरला होवै । सुपमन जागै सहजे सोवै ॥
साध संगति मिल अजरु जरै । गुर प्रसादी उलटी तरै ॥
गुरमुखि नगरी फिरै ढंढोरा । ताँ बशि आवहिं नगर के चोरा ॥
बोलै नानक सुणि गोरख साखी । इउँ मूसे मंजारी बशि राखी ॥७७
क्योंकरि पुरुपा शशीअर[4] सुर फूटै । क्यौंकरि आवागवन ते छूटै ॥
क्योंकरि दुबिधा दुर्मति तोड़ै । क्योंकरि सहजि[5] कला मन जोड़ै ॥
क्योंकरि चलते कौ ग्रिह राखै । क्योंकरि सचु रसायणु चाखै ॥
बोलै गोरख अंम्रित गाथा । क्योंकरि पार उतारहु साथा[6] ॥७८॥
शब्दि परचि शशीअर सुर फूटै । ज्ञान परचि आवागवन ते छूटै ॥

---

(१) दया धर्म धीर्य सत्त सतोप प्रीति आदि आत्मिक गुण रूप अगूरी को ना खाने देवे। भाव इन गुणों के सहज सुभाव भीतर प्रगट हो आने पर मन इन्द्रियों से चौकस रहे। बदर वहरियों के सहज सुभाव कदाचित नहीं पलट सकते, चाहे वह जगल बासी हों चाहे वह हमारे अपने पाले हुए हमारे अधीन वरतने वाले। चुकसाई सदैव आवश्यक है। (२) मूसना नाम चोराने या ठगने का है सो जिसने माया मोह में अपने आपको ठगाया हुआ है ऐसा मूसा हुआ मूसा यहा जीव है। सो जीव नित्य मिआऊ मिआऊ (मैं-मैं) करते रहने वाली हउमै रूप मोहनहारी माया को किस प्रकार बांधे? (३) इस पिंड रूप नगरी में किस प्रकार सत्य नाम की दुहाई फिरे भाव किस प्रकार घट के भीतर अनहद शब्द खुले। (४) सहसदल कमल का विकाश कैसे हो, सेत श्याम पद का कैसे साक्षात्कार हो, इड़ा पिंगला की सधि कैसे फूट कर आगे का मार्ग मिले यह रहस्य है। (५) सहज जोग युक्ति, सहज बाणी से भी भाव है क्योंकि सहज विद्या सहज बाणी ही है। (६) शिप्य सम्प्रदाय रूप अपने सगी अथवा मन इन्द्रिया आदि जो जीव के साथ ही पूर्ण ज्ञान प्राप्ती परयत रहते हैं।

गुर ते दुविधा दुर्मति तोडै । एक निमिप चित हरि सिउँ जोडै ॥
बोलै नानक अंम्रित वाणी । जोग जुगति की इह नीशाणी ॥७९
षट दर्शन की रहत बषाणी । बैरागी जोगी जगम ज्ञानी ॥
तपसी जैनी अरु ब्रह्मचारी । मोनी उदासी डंडाधारी ॥
बेद बषाणी[1] मिस्र[2] पाँधे । सचु न पावहि विनु मनु साधे ॥
संन्यासी मनि त्यागै आसा । प्रणवत नानक दासनदासा ॥८०॥
सदा हजूरी सतगुर[3] चरणी । सत टहल सतगुर की शरणी ॥
मनकी दुविधा दूर त्यागी । शब्दु बीचारहिं से बड़भागी ॥
अठसठ मजनु अंतरि धारै । नानक से बैरागी जगत ते निआरे ॥८१॥
जोगी जुगति करे बधेजु । राजस सातक त्यागे तेजु ॥
चौथे पद महिँ जाय समावै । से जोगी क्योंकरि घर पावै ॥
घर दर महली होय सुहेला । गगन सुन्न का परसै मेला ॥
पजे[4] सत्ते[5] करे अहारु । नानक जोगी त्रिभवन सारु ॥८२॥

---

(१) वेदपाठी। (२) ब्राह्मण बश में उत्पन्न होकर भी जो ब्रह्माचार से शून्य नाम धारिक ब्राह्मण होते है उन्हें मिश्र कहते है और जो ब्रह्मज्ञान से तो शून्य होते है परतु बाह्य ब्राह्मणिक आचार सयुक्त होते हुए तीज त्योहारादि के अनुसारी लोक तथा कुलाचार के प्रवर्तक होते हैं पाधे कहलाते हैं। (३) सहस्रदल में सुरत को स्थिर रखने वाला सदैव काल मालिक का हजूरी सेवक होता है—यही भीतरीय (सच्ची) सत सेवा और यही सतगुर की सच्ची शरण का धारण है। (४-५) पाच धुनें शब्द की हैं —१ काकली=सूक्ष्म शब्द ध्वनि, २ कला=मीठी और अस्फुट ध्वनि, ३ मन्द्र=गभीर शब्द ध्वनि, ४ तार=अति उच्च शब्द ध्वनि, ५ एक ताल=बाजे गाने आदि के एक सग ताल स्वर की ध्वनि। यह पच शब्द ध्वनि हैं। सात स्वर यह हैं —१ निपाद, २ ऋषभ, ३ गान्धार, ४ षडज, ५ मध्यम, ६ धैवत, ७ पचम। १ मोर के शब्द में षड्ज स्वर बोलती है, २ बैल ऋषभ शब्द को बोलता है, ३ भेड़ बकरी गान्धार स्वर में बोलते हैं, ४ क्रौंच पक्षी मध्यम स्वर को बोलता है, ५ घोड़ा धैवत स्वर को बोलता है, ६ कोयल बसत ऋतु में पचम स्वर में बोलती है, ७ हस्ती निपाद स्वर को बोलता है। यह सातों स्वर और पाच धुनें जो बाह्य गायन आदि में गायक लोग गाते हैं वास्तव में बाहर प्रतिबिंब मात्रही इनका प्रचार है वास्तविक सुर ताल जो बाह्य प्रतिबिंब का बिंब रूप मूलभूत है वह सब के भीतर घट में गुप्त रूप से सदैव होते रहते हैं और सुरत की एकतार अतर मुखता में उनका स्पष्ट भान होता है। अतर घट में उनके भिन्न २ दरजे हैं, उनके अनुसार न्यारी २ ध्वनी श्रवण में आया करती है। द्रिष्टात में समझो —सुषमना नाड़ी तबूरे का साज़ है जैसे तबूरा के पेट पर हाथीदांत का बना हुआ सूक्ष्म तारों को उभारे रखने वाला एक अड्डा होता है ऐसेही नाभि के नीचे श्वेत बरन वाली तेजोमई कुडलनी शक्ति है (वा सर्व नाड़ियों का आधार भूत धरणी कला उक्त अड्डा है)—मूलाधार से सयुक्त सूक्ष्म नाड़िया सुषमना के साथ गुथी हुई ब्रह्म रध्र परयत पहुँची हुई हैं ब्रह्म रध्र इस आध्यात्मिक तबूरे का ऊपरला सिरा है। इस ऊपरले

जंगम जग्य करै मन माहीं। जाय विहंगम विनशै नाहीं ॥
जुग जुग जीवै अस्थिरु रहै । सतगुर की आज्ञा शिर पर सहै ॥
जतु सतु संजम सुरति का चेता । गगन मंडल में राखै चेता ॥
सदा सुचेत चढ़ै अकाश । नानक जगम पूर्ण आस ॥८३॥
तपसी तामस[६] त्यागि समावै । सुन्न महलि चढि ताड़ी लावै ॥
गुर प्रसादी जुग जुग जीवै । अमरु होय तब अस्थिरु थीवै ॥
खेचर[७] डीठ उलटि सरु बंधे । पंच दुष्ट कौ बशि करि बधे ॥
सतगुर मिलिअै तमकि[८] मिटि जाई । नानक तपसी कौ मिली बडाई ॥८४
जैनी जीअ दया मन माहीं । तीरथ मजनु करणि न जाई ॥
संजम जुगति सदा इउं रहते । नहीं सुहेल[९] सदा दुख सहते ॥
कर्म धर्म ते रहत निआरे । नानक जैनी फिरहि बेचारे ॥८५॥
ब्रह्मचारी सो ब्रह्म पछानै । इत उत सुखीआ रलीआ मानै ॥
ब्रह्म कौ समझै सो बसै सुमेर। उह बहुड़ि न आवै भउजल फेरि ॥
सगल ब्रह्म समझै मन माहीं । ब्रह्म बिना दूसर किछु नाहीं ॥
सगल घटा महिं ब्रह्म पछानु। नानक जुग जुग परम निधान ॥८६॥
मोनी मन का मारै मानु । त्रिकुटी[१०] घाट करै इसनानु ॥

सिरे के उत्तर दक्षिण भागों में ब्रह्मांडी चक्र रूप खूंटियां लगी हैं जिनका संबंध नीचे के पिंडी मंडल गत चक्र रूप (अड्डे के) घरों के साथ है। जिस २ घर की तार सुरति के हाथ से हिलाई जाती है वही २ स्वर ताल भीतर गूंजने लग जाता है। बाह्य राग में मन को खैंच करि एकाग्र करने की शक्ति सभ के अनुभव सिद्ध है। अब जो भीतरीय शब्द की महिमा से अज्ञात इसे निंदित समझते हैं, किंचित अनुमान करके देखें कि यह किस प्रकार का मोहनी राग घट में होता होगा जिसका कि अहार करना श्रीगुरू महाराज आज्ञा देरहे हैं। यही असली अहार यही सच्चा भोजन है जोकि जीवन का आधार है। बिना उस्ताद (पूरे गुरू) के यह तंबूरा नहीं वज सकता बल्कि कोई यत्न (अपने आप) करे भी तो तारें टूट जाने का भय होता है। भेद बजाने का प्रगट कर दिया जाता है फिर भी भेदी से पूछ कर ही कीलिआ खोडनी चाहियें —"नउ दर थांदि दसवाँ दर खुलै अनहद शब्द वजावनिआ"—"अनहद बाणी थान निराला। तां की धुनि मोहे गोपाला" ॥ यह श्रीगुरू ग्रंथ साहब के सच्चित वचन हैं भेद शब्द खोलने, शब्द का स्थान तथा महात्म इन में सभ कुछ है। ससकारी के लिये बहुत कुछ है, असंसकारी को खोज करनी उचित है। (६) हंकार, क्रोध। (७) आसमान में विचरने वाली दृष्टी, दिव्य चक्षु, शिव नेत्र। (८) वृत्तिका क्रोधाकारा परिणाम, क्रोध से नीचली हालत होती है, (क्षोभरूपा)। (९) सुखी। (१०) त्रिवेणी घाट "तीन नदी तहि त्रिकुटी माहि। अहिनिश कशमल धोवै नाहि"—इस श्रीगुरू वचन अनुसार।

अठसठ मजनु हिरदै धारै। सो मोनी जगत ते निआरे॥
सगल जुगति लै मन महिँ राखै। गुर मिलि सचु रसायण चाखै॥
मन ते चचल चाल मिटावै। दूजा त्यागि एक घरि आवै॥
मोनी के घरि सदा अनंदु। नानक चीनै परमानंदु॥८७॥
सो उदासी जो उद्यान[1] महिँ रहता। दुख सुख समसरि शिर पर सहता
हर्ष सोग ते रहै निरारा। उदास कर्म का बड़ा पसारा॥
दे परदक्षणा चढै अकाशि। सोलह[2] बारह एकै रासि॥
सो अमरु भया तिस शिर नहीं काल। नानक उदासी चीन दयाल॥८८
पडित पाठ पढै अहंकारी। सुशब्दु न चीनै हउँ मनि धारी॥
दुबिधा सुणहिँ न करहिँ ज्ञानी। शब्दि छोडि लागे अभिमानी॥
बादु बिबादु मन माहिँ बसाना। नटूए की गति देखि भुलाना॥
कहु नानक किछु समझै नाहीं। पाठ पढै पढ़ि भूले जाहीं॥८९॥
सो संन्यासी जो सुन्न महिँ बासा। तामस त्रिश्ना लोभ ग्रासा॥
हउमैँ निदा भरमि भुलाना। करि भगवे बसतरि अंत पछुताना॥
रहिआ पास भरवंत[3] निआरा। पच न सोधे लदिआ[4] हकारा॥
नानक इह मति किसे न पाई। आपु छोडि हरि की शरनाई॥९०॥
सुणि हो अउधू शब्द का भेदु। सदा अनद नाहीं किछु खेदु॥
शब्दु पढहु सिमरहु घर चीतु। शब्दु पढे सुख रसन पवीत॥
सुणि करि शब्दु देखहु बीचारि। नानक शब्दु लँघाए पारि॥९१॥
गोरख भरथरी होए हरपवत। मिले भगत भेटे गुर मंत॥
धन्य पुरुष जिन दीक्षा दीनी। धन्य मत्ति बुद्धि परबीनी॥
धन्य अस्थानु जितु करहि बसेरा। धन्य गुरू धन्य तूँ चेरा॥
धन्य गुरू जिस क़ा तुझै उपदेशु। सुणि नानक सिद्ध कहि चले अदेशु॥९२

(१) जगल, बियाबान। (२) इड़ा पिंगला। (३) "भगवत" पाठ भी है=भगवत तो पास ही है परतु अज्ञात वश्य ते यह अपने आपको न्यारा ही समझ कर भ्रमता रहता है अथवा भाव यह किं ससारी लोगों तथा पदार्थों की चिन्ता करते चित्त से तो वह सभ के पास ही (सभ में फँसा हुआ) रहता है परतु बाहर से वह अलग होकर भ्रमण करता रहता है। (४) और काम आदि पच को साधा नहीं अथवा सत्त पद के हेतु पच शब्द को सोधा (खोजा) नहीं परतु वृथा हकार से लादा गया है—तात्पर्य क्या कि केवल भेष मात्र के धारण मात्र से ही अपने आपको कृतकृत्य मानकर फूल बैठा है।

सुणहु सिद्धहु सचु नानक प्रणवै उपज रही हैरानी ।
उह अगम अगोचर अलख अपारे ताकी गति किनै न जानी ॥
उह अपर[1] अपरंपर परे ते परे तिसु दर्शन किसे न देखिआ ।
उह पूरन पूरि रहिआ सभ अंतरि तिस कौ रूपु न रेखिआ ॥
सभ मैं लोच रहो मन माहीं उह परगट किनै न देखिआ ।
सुणि अउधू नानक इउं बोलै हमरै इही अधारो ॥
हम जिस कौ मिलते तिस कौ कहते सचु नामु करतारो ॥९३॥

॥ १ ओ॰ सतगुर प्रसादि ॥

जद बाबे सिद्धा नाल गोष्ट कीती दिल दा गुमर (जोश) कढके श्री बाबेजी को उस्तत कीतीओने, आदेश २ करके सभे उडारिया लैके चले गए । तां बाबा ते मरदाना दोवै जगत दे जीआदा उधार करदे होए रामेश्वर दा दर्शन करन चले । ता बाबा देखे जो शिवरात्रि दूजी आई है महादेव का मेला भर रहिआसी तितसमें श्री बाबाजी श्री महादेव का दर्शन करके बाहर एकात बैठे । तिथेही श्री गोरखनाथ ते भरथरी दोवै आय निकले । आन आदेश २ कीती ने तां बाबे आखिआ आदि पुरुष को आदेश आईए नाथजी बैठो बडी किरपा कीतीजे । ता नाथजी बोले—तपाजी ! सभे सिद्ध जिधर तिधर रम गए ते साडे चित विच फेर एहा आही जो तपाजी का फेर दर्शन करिए सो तुसाडा दर्शन होया । तपाजी तुसी परम पुरुष हो, सानू ता निश्चा है, होर सिद्धा का सुभाव आप

---

(१) शरीर इंद्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि, बुद्धि से परे आत्मा, आत्मा से परे परमात्मा, परमात्मा से परे कुछ नहीं अवाच पद है । जाग्रत अवस्था में शरीर इंद्रिया प्रधान होती हैं स्वप्न में वह सभही नहीं, मनही प्रधान है । सुषुप्ति में अपनी रचना समेत मन का अभाव और अव्यक्त सरूपा बुद्धि प्रधान होती है । जब अन्तर मुखता के अभ्यास में सूक्ष्म इकार रूपा बुद्धि भी छूटकर सर्प कुंजवत न्यारी होकर चेतन सत्ता भासने लग जाती है तब सभ से परे यही आत्मा है, वह भी सतगुरुपदिष्ट युक्ति से अपने आप में उलट कर मगन होकर आप मात्र रह जाता है—वह परम आत्मा है । उस आपाभाव से रहित आप मात्रपना से भी जो और गाढ़ घन अनानद मात्र भाव है वह अवाच पद धुरधाम है जिसके परे बस और कुछ नहीं । इसी को ही अपना आधार श्रीगुरू महाराज ने बतलाया है, और सभ को इसी सत्य नाम के प्रचार का अपना सुभाव कहा है—हमने (परे ते परे, ते परे, ते परे उनके परे कुछ नहीं अपर वस्तु है) इन नीचे से ऊपर की सभ कोटियों की व्याख्या अल्प अधिकारता के कारण जान बूझ कर नहीं की । सर्व समत संक्षिप्त शब्दों में ससकारी बुद्धिमानों के लिये बहुत कुछ है । इतर अधिकारी "जो खोजे सो पावे" ।

जाणदे ही हो । किसे का सतगुणी है । कोई रजोगुणी है ते तुसीं गुर परमेशर हो । सानू ता एह निश्चा होया है जो तुसी हमारे गुरू नाथजी हो, तुसाडे वचन मोहणी हैं, सभ सिद्धादा मन मोहिआ गया है । ते साडे चित चाहना वधदी जादी है । जो श्री तपाजी दे वचन होर भी सुणीए ते होर इथे बचन अम्रित पीजीए । जैसे अम्रित पीदे बस नही होदी त्यो तुसाडे बचन सुनदे चाहना सुनणे दी वधदी जादी है तित महल बाबे बिसमाद दे घर सिद्ध गोष्ट कीती ।

॥ राग रामकली महला १ ॥

जोग मारग-सिद्ध गोष्टि[1] ।

सुण हो जोगी जोग की चाला ।
गुरमुखि जोगु कमावहु जोगी, ज्यौं जल भीतरि कवल निराला ॥९४

॥ रहाउ ॥

आसणु सोधि निरालमु वहे । पंच तत्तु काया महिं दहे ॥
अरचे[2] के घरि परचे जाय । त्रिकुटी फूटी, सुन्नि समाय ॥
ससीअरु[3] फूटा कवल विगासु । त्रिकुटी फूटी निज घरि वासु ॥

---

(१) सिद्धों और गुरू साहब की गोष्टि कई बार हुई है । तुलसी साहब ने कहीं बाहर गोरखजी की गोष्टि होना इस बात पर खंडन किया है कि उनका परस्पर सम्वत नहीं मिलता, यह एक साधारण बात है—सिद्ध, योग बल से चिरजीविता को प्राप्त है, कल्प परयंत उनकी आयू बढ़ सकती है इससे अधिक युगों की चौकडी परयंत भी योगीजन अपनी आयू बढ़ा सकते हैं। और योग में यह भी शक्ति है कि इच्छा पूर्वक शरीर धारण कर सकता है जैसा कि सिद्ध तीर्थों के परबों आदि के समय शरीर धार कर अपने आपको पहुँचाया करते थे—उनको योग शक्ति तथा चिरजीविता का अभिमान और मान वड़ाई की कामना थी । जहां २ पर वह इस अपनी इच्छा पूर्ण करने को पहुँचते थे गुरू साहब भी (परमयोगी) 'जिनका विशेष उद्देश केवल गरब गंजन करने तथा जीवों को सीधे रास्ते पर लाने का था' वहां पर पहुँच कर उनके साथ चरचा करते और (उनको) परास्त किया करते थे जब तक उनका मद पूर्णत निवर्ति नहीं हो लिया और वोह एक करतार के सच्चे उपासक नहीं होगये तब तक उन्होंने उनका पीछा नहीं छोड़ा ।(सिद्ध अब भी हैं और कदाचित किसी को सिद्धि का चमत्कार दिखलाकर तिरोधान होजाते हैं) उन गोष्टियों में से एक यह भी है जिसका समाचार इसी अध्याय की १४६-१५० नम्बर की पौड़ी में आवेगा ।(२ ३) अरचा सोला प्रकार की होती है और चन्द्रमा की सोला कला होती हैं सो अरचा का घर चन्द्रमा के घर से भावित है । दूसरे अरचा अपने घर में तब आती है अर्थात् तब इसकी पूर्ण सिद्धि होती है जबकि इष्ट वस्तु आखों में बस जाये—सो अरचा का घर दृष्टि का भंडार है जिससे गुरू साहब का अभिप्राय सहसदल कमल को कहने का है इस मंडिल में चंद्र का साक्षातकार भी हुआ करता है इस कारण इसे शून्य मंडिलवत् चन्द्र का घर भी

नाभ कवलु पवनु अरभु। मूल पवनु नाभ असथंभु ॥
पचि तत्तु करि कीए विडाणु¹ । जोति जगाइ पति मति गति दानु॥
घट मट पाए देह सवारी । सची जोति त्रिभवण प्रभि धारी ॥९५
गुर के शब्दि प्रतीति मनु रचे । त्रिगुण चचलु त्यागे चरचे² ॥
चोरी चंचलु करे त्यागु । कर्मु मणी सचु मस्तकि भागु ॥
असा जोगु जुगति पछाणु । पच मारि होवहिं परवाणु ॥
बक नाडि रसु भेदु न पाय । भणति नानक जे निज घरि जाय ॥९६
इडा पिगुला सुष्मना तन बुधि। तीन³ तपे सहसा की सुधि ॥
त्रिगुणा त्यागि चौथा पदु जाणे । नौं घरि ढूँढि दशवें घरि आणे ॥
असा जोगी जुगति निराला । दयावतु पूर्ण क्रिरपाला ॥
रहै विहंगम कतहूँ न जाय । सुणि अवधू सचु जोगु कमाय ॥
ओऊ उनमो अपर अपारे । आदि पुरुष अपरपर धारे ॥९७
अकथ कथा का क्या वीचारु । आपे जाणै अपर अपारु ॥
गुर के शब्दि रते मन माहीं । सचु जोगी सारु निज घरु जाहीं९८
गुर प्रसादि परम पदु पावै । नानक जाँको आप मिलावै ॥
लालु गुलालु शब्दि गुर गूडा । गुर की भगति करे जन रूडा ॥
रूडी बाणी मन को ठहरावै । गुर का शब्दु प्रापति अघावै ॥
ऊँची¹ पवड़ी चढ़ै निरारा । गुरमुखि जोगी पावै पदु सारा ॥
ओपति परलो निमप मझारि । नानक जपीए शब्दि पिआरि ९९

गुरू महाराज अक्सर कहा करते हैं (और यहां तो गुरू महाराज ने सचाई को गुप्त रखने अर्थ चद्र का घर भी नहीं कहा क्योंकि सिद्ध बड़े चालाक थे और जब तक श्रद्धा आस्तिक भावना किसी को न हो उसके आगे भेद का प्रगट करना भी दोष रूप है इसलिये गुप्त रीति काव्य के अलकार की यहां ग्रहण करली है। भरथरी को तो गुरू साहब के चरणों में श्रद्धा भी थी इसलिये उपदेश के ढग को भी साथ २ वर्ता है) इस उक्त अरचे के घर में जब जाकर परचा सुरति का होजावे तो त्रिकुटी के मडल में प्रवेश होजाता है और जब वहां के परचे से उसी प्रकार त्रिकुटी भेदन होजाती है तो सुन्न मडल में जाकर प्रवेश होता है। जब चाद फूटा सहसदल के मडल को सुरत ने वेधन किया त्रिकुटी में जापहुँची। त्रिकुटी के फूटने पर निज घर (सुन्न मडल में) समाती है। (५) आश्चर्य कौतुक। (६) वादविवाद के झगड़े। (७) तीनों को सहसदल की सुध लेकर तप अर्थात साधे, या सहसदल में ध्यान की धुनी तपावे। (८) इस प्रकार इसी ऊंची पौड़ी पर शरीर से न्यारा हो चढ़े तो सार पद परम पद को प्राप्त होजाता है।

निरंजन जोति शब्द सिरि शोरु । एकोही आपि दूजा नहीं होरु ॥
ता का न अंतु, न पारावारु । अगम अगाधि विअंतु अपारु ॥
गुरमुखि जोगी जोगु कमाउ । सिफती रत्ता आतम राउ ॥
दर्शनु आपि सहजि घरि पाइ । निर्मलु बाणी नादु वजाइ ॥१००
सुणि भरथर नानक एह बाणि । जित पावहिं पदु सो निरबाणि ॥
सचु निरंतरि रहे समाइ । कालु न ग्रसे पिड न पाइ ॥
गुर मिल जोती जोति समाइ ॥

नानक भरथरि गोष्टि होई । मनु मानिआ नानक सचु सोई१०१
रत्न पदार्थ ब्रह्म ज्ञानु । ज्ञान ध्यानु गुर शब्दु पछानु ॥
गुर के शब्दि रत्ता जनु तेरा । उरवारु पारु सभ उसही केरा ॥
ततु मतु पखंडु न छाया । आदि पुरुष गुर पुरुष मिलाया ॥१०२॥
कंचन[1] कोट रीसाल अनूप । आपे दीपक आपे धूप ॥
सचकोट कंचनु रीसाल[2] । हीरा रत्न माणकु विचि लाल ॥
हीरा लाल ज्वेहर सुभरु । माणक मोती भरिआ सतसरु[3] ॥
गुरशब्दी अचरजु डिठा सोइ । नानक कीमति कहणु न होइ ॥१०३॥
कचन कोट सचे रीसाले । दर्शनु पाया लाल गुलाले ॥
लालु गुलालु सच गहर गंभीरे । सचु ठकुराई सचे मीरे[4] ॥
अमरापुरि[5] नगरी सचु अस्थान । तहँ जरा न मरन न आवन जानु ॥
तहँ नानक जुग जुग परम निधानु ॥१०४॥

अगम अपार अंतु कछु नाहीं । एह वेअंत न कीमति पाही ॥
अंतु न पाईऐ सदा विअंतु । ता का अंतु न जाणै जंतु ॥
अगम अगाध विअंत अतोला । नानक मुलि न पाईऐ गुणी अमोला १०५
असंख ब्रह्मे तिस केरी सेवा । विश्न महेश न पावैं भेवा ॥

(१) सहसदल की कैफियत दिखलाते हैं—स्वर्ण का सुंदर कोट है, उपमा से रहित। (२) सुंदर। (३) सहस्रदल को गुरूजी सतसर तथा नाम कमल भी कहा करते हैं क्योंकि नभ मंडल में है। (४) पातिशाह। (५) स्वर्गपुरी (अमरापुर से वास्तव में तो सच खंड भावित होता है परन्तु सचखंड निवासी आदि निरंजन की छाया ही यह निरंजनी जोति और उसका स्थान है इस कारण इसे भी अमरापुरी अर्थात देवलोक गुरूजी अक्सर कह दिया करते हैं। (१०३वीं पैड़ी से १०८वीं पर्यंत हम इसी अमरापुरी का वृत्तांत सुना रहे हैं)।

सनकादिक जनकादिक देवा । जक्ष किन्नर अरु पिशाच परेवा ॥
लता वली अरु सुर नर गंध्रिप ।नानक अतु न पावहि संम्रिथ' १०६
एह तत्तु बीचार सत जन बोले । घरि दरि' सोत्री नाहीं डोले ॥
अकथ कथा की अकथ कहानी। अगम पुरुप अगम है बानी ॥
अम्रित मथि मथि काढिआ ततु'। बोले नानक अगमु बिअंतु॥१०७
नाभ कवल' तहँ सतगुरु समुदु । धरहर तिप्रे बरपे इंदु' ॥

धरहर बरपे सर भरे, सहजि उपजे कउलु ।
गगन द्वारै घरि चढै, बिगसै ऊधौ कउल ॥

दे प्रदक्षिणा चढे गगनतरि । अम्रितु पीवै सहजि निरंतरि ॥
दर्शनु परसे गुरु प्रसादि । अस्थिरु जोगी आदि जुगादि ॥१०८
त्रैसत' उंगलि वाई खेलु । मनि सचु अहार करि(तासैं)मेलु ॥
बोले खेले अस्थिर जाणु । तत्त सरूप निरजन प्राण ।
आत्म राम सगल परवाणु ॥
सहजे सिवरण साच सरूपु । आदि अनील' अनाहदि धूपु ॥
ऐसा जोगी जुगति पतीणा । निज महली अपने घरि लीणा ॥१०९
पूरवि चढ़े फिरि देखे दक्षणु । पच्छमि आवै गुरु का लक्षणु ॥
पच्छमि ते फिरि चढ़ें सुमेरि । आवै परदक्षण के फेरि ॥
दह दिशि खोजि ढूँढि फिर आवै। नानक सुन्न समाधि समावै ॥
ऐसा जोगु कमायै जोगी । वहुडि न जन्मु न होयै रोगी ॥११०
जपतप संजमु सुरति बिचक्षणु । जोग मारगु का एहो लक्षणु ॥
विपम' जोग अगम को पाए । सतगुरु भेटे नामु ध्याए ॥

---

(१) समरथ—चड़े २ शक्ति वाले भी उस कर्तार का अंत नहीं पा सकते । (२) इस घर के दरवाजा त्रितीय तिल से सुरती न डोले तो इस अकथ कथा का मरम पाजावेगा । (३) अमृत को मथि २ कर हमने यह तत्त माक्खन निकाला है । (४) नाभ कमल में सतसर नामक समुद्र है उसमें से यदि चद्रमा प्रगट होकर वर्षा करे तो (५) धरती (सुरति) तृप्त हो जाती है । अब उस औंधे कमल को विकासित कर, अमृत वर्षा के लिए ऊपर प्रदक्षिणा क्रम से चढ़ने अर्थ फिर भरथरी को भी पूर्वोक्तसाधन ही बतलाते हैं । (६) नाभी से जो श्वास हृदय परयत उठता है ३+७=१० उंगल में उस पौण का खेल है, उस के साथ मिल कर मन सचु का अहार करे (नाम जपे) । (७) नीलिमा से रहित निर्मल जोति सरुप । (८) श्वास के साथ इस प्रकार चढ़ कर अगम सरूप को प्राप्त होना विषम योग मारग है ।

अगमु निगमु जो जाणे वाचि। गुर प्रसादि काल को वाचि[1] ॥
माया मोह न व्यापे सोगु। नानक प्रणवै अैसा जोगु ॥१११॥
क्यौंकरि खोजी क्यौंकरि बादी। क्यौंकरि दुवधा दुर्मति त्यागी ॥
क्यौंकरि दुभधा दुत्तरु तरिआ। क्यौंकरि बाले जीवतु मरिआ ॥
कवन गुरू जिसु दीखिआ[2] दीनि। भरथरि प्रणवै तत्तु प्रबीन ॥११२॥
गुरमुखि खोजत राहु दसाया[3]। सहज मिले जग जीवनु पाया।
दुविधा दुर्मति त्यागि समाया ॥
गुरमुख सोग बिजोग प्रजाले। गुरमुख गति पति पाई नाले ॥
गुरमुखि दुनीआ दुत्तर तरिआ। शब्दि मूए फिरि वहुडि न मरिआ ॥११३
शब्द गुरू सचु दीनी दीक्षा। सतगुर पूरे सचु प्रीक्षा ॥
गुरमुखि खोजी सचु पछाणे। मनमुखि बादी तत्तु न जाणे ॥
चीने तत्तु गुर शब्दी मेला। शब्द गुरू सुरति धुनि चेला ॥
अंतरि रत्नु ज्ञान प्रचंडु। अंतरि नामु निधानु अखडु ॥
सुणिहो भरथरि नानक बोले। सचु निरंतरि तत्तु विरोले ॥११४॥
नउंसर[4] सुभर दशवे चढिआ। गगन मंडल महिँ वर्षा भरिआ ॥
तीनि[5] मेटि चउथे चउबारे। पंच सफा[6] जिणि मनु को मारे ॥
गगन मडल महिँ धरे ध्यानु। पारसु परसै त्रिभवणि[7] थानु ॥
पुरीआं[8] सप्त उपरि कवलासु। तहँ जोगी बैसे निरंजन दासु ११५
आठ अठारह बारह बीसा। वकि नाडि त्यागी है तीसा ॥
वक नाड़ि ते बाहरि भइया। सो ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म की मइया ॥
सुणिहो भरथरि नानक बोले। आतम चीने तत्तु विरोले ॥

---

(१) जो नियम योग द्वारे अगम के निगम अर्थात वेद (सत्य नाम) को पढ़ जाये, गुरों की कृपा से काल कोन है जो उसको वच (छल) सके। अथवा गुरुओं की कृपा से काल को वाचीओं (जबाड़ों) में लेकर पीस डाले। (२) दीक्षा। (३) दर्शाया, समझाया। (४) नौंसर सुभर अर्थात नौं दरवाजे गाढ़िओंवत् छूछे कर के अर्थात् इन में से सुरत को खैंच कर दशवें द्वार में चढ़े। (५) तीसरा तिल, सहसदल, त्रिकुटी इन तीनों को मेट कर अर्थात् इन से सुरत को खैंच करि चौथा चौबारा सुन्न मडल है वहां पर जा पहुचे। (६) पांचों काम आदि की सफा (पचायत) को जीत करि मन को मारे। (७) त्रिकुटी। (८) छः चक्र पिंड के, सप्तम त्रिकुटी का स्थान यह सप्त पुरिआं हैं इनके ऊपरि कवलासु (कैलास) जिसका स्थान सुन्न मडल है तहां पर स्थिति करे।

ऊरम[1] धूरम लागी ताड़ी । नानक जोगी जुगति बिचारी ११६
आसा पासा[2] मनसा खाय । पर दर्बा[3] न हेरे न पर घरि जाय ॥
चोरी चंचल चित्तु न रावै[4] । गुर प्रसादी सहजि समावै ॥
ऐसा जोगी जोगु पछाता । सचै शब्दि अनाहद राता ॥
सहजे रहे निमाणी[5] सूता[6] । नानक कहै सोई अवधूता ॥११७॥
जती सती सतवता साडा । पंचि इंद्री मारि निवाडा[7] ॥
नामु दानु गुरमुखि इसनानी । ब्रह्म का वेता ब्रह्म ज्ञानी ॥
बोले साचु न राई मिथ्या । सतगुर की इह आदि प्रीक्षा ।
इह आदि पुरुष सतगुर की शिष्या ॥
जोग के लच्छन सुणिअहु पूता। नानक कहै सोई अवधूता ॥११८॥
चचल चाय न पासे[8] खेले । कामनि दामनि गैइआ गुरु मेले ॥
चंचल नारि[9] न जाय अपाड़े। गगनतरि धनुष सहजि मंहि हाडे ॥
रहै इकंत शब्दु निरवाण । दरगहि पैझै पति परवाण ॥
ऐसे संजम रहे गुर पूता । नानक कहै सोई अवधूता ॥११९॥
कनक कामनी सिउँ नाहीं गातु[10]। पर दरबु न हिरे न पर त्रिया रातु ॥
जिह्वा मुखहुँ न बोले असत्तु । हिरदै[11] नामु अनाहद मत्तु ॥
मनु माणकु मन ते पतीआना।मन ते मनु मानिआ गुरमति समाना[12]
घर की पवरि सचि शब्दि सिजाती । अविचल नगरी सचु जोग पछाती ॥
जोग मारग की ऐसी चाला । प्रणवति नानक सुणि हो बाला १२०
सिभू की नगरीआ अपरपर थाऊँ। सुन्न ते उपजी अचरजु बिसमाऊ

(१) ऊरम धूरम आकाश पृथ्वी का नाम है इन के मध्य संधि में ताड़ी लागी, वा ऊरम नाम प्रकाश धूरम नाम अन्धकार सो प्रकाश अंधकार से भाव श्याम सेत का है अरु श्याम सेत सहसदल का नाम है वहा ताड़ी लागी बस यही योग की युक्ति है। (२) आसा पासा (फाँसी) है और मनसा खाने वाली । (३) पराया धन । (४) करै। (५) मान से रहित हुआ जीव जैसे दीन हुआ गिरा रहता है इसी प्रकार दीन अधीन भई (६) सुरति सहज घाट में पड़ीही रहे । (७) निवारे । (८) चचल नाम लक्ष्मी का है सो उस की उमग ना धारे और पासे शतरंज चौपड़ ना खेले । (९) चचल नारि (वेश्या) के अखाड़े (तमाशे) में ना जावै (यद्यपि सिद्ध गोष्टी का प्रसग है तथापि शिवनाभ को मुख्य रक्खा हुआ है) इस कारणही राजनीति के (धर्मिक) ढग पर भी उपदेश चल पड़ते हें । (१०) अग ना लगावे । (११) हिरदे से भाव शून्य मडल का है—शिर सच खड, हिरदा सुन्न मडल और चरण सहसदल कवल पीछे कह आये हैं। (१२) गुरमति के सम आया अर्थात गुरमति अनुसार वरतिया ।

निरभउ जोगी नगरी महिँ बसै । सचु भोजन तिप्ते अंम्रित रसै ॥
सुणि हो भरथरि ऐसा जोगु । मूँड मुँडाए जोगु न होगु ॥१२१॥
नानक बोले सची बाणी । सुणि हो भरथरि अकथ कहाणी ॥
कहा भया जे पिंडु न पडिआ¹ । जे जुग चारे भरमतु² फिरिआ ॥
जे अवर दसूणी³ अवधि लिखाई । अति कालि पिंड पडेगा भाई १२२

(गोरख वाच)

कवनु रूप कवनु विस्थारु । कवनु अरभु कवनु अकारु ॥
कितु घरि बसै कवन अचारु ॥
कवन सु राजा कवन सु महता । कवन पुरुप पुरुप पति होता ॥
कवन सु बोले कवन सु पेपै । कवन सु जोति निरंजन देपै ॥
कहाँ ते आवै कहाँ ते जाय । पिंड पड़े जीउ कहाँ समाय ॥
एस कथा का देहु बीचारु । बोले गोरख ततु बीचारु ॥१२३॥

(गुरू नानक वाच)

सचु रूपु पवनु विस्थारु । पवनु अरंभु शब्दु आकारु ॥
गुरमति सची सचु आचार ॥
गुरमुखि निज घरि महली बैसै । अमरु भया फिरि कालु न ग्रासै ॥
मनु राजा पवना होय महता । निरंजन पुरुप पुरुष पति होता ॥
बोले पवन अगनि भउवाउ । सचु पेखे जोति निरंजन राउ ॥
हुकमे आवै हुकमे जाय । पडे पिंडु जीउ सचि समाय ॥
अगम कथा एह कथी न जाय । सतगुर पूरे दीई बुझाय ॥
नानक बोले सची गाथा । सुणि हो भरथरि गोरख नाथा ॥१२४॥

जतु पाहारा धीर्य सुनिआर । अहरनु मत्ति वेद हथ्यार ॥
गुरमुखि सचु सची धर्मशाल । सचु कारीगरु सचु भउसाल ॥
भाँडे भाउ अंमृत तितु ढालि । घड़ीऐ शब्दि सची टँकसालि ॥
अम्रित दृष्टि सदा निहाल । नानक नदरी नदरि निहालु ॥१२५॥

(१) चिरजीवी होगया । (२) चोकड़ी परयत भी जो भरमता फिरा । (३) भला इससे भी और दशगुना (दश चोकड़ी युग) आयू बढ़ा लेवे तो क्या होगा आखिरकार तो एक दिन अवश्य शरीर छूटनाही है ।

घरही रत्न ज्वेहर लाला। दर्शनु पेखति भये निहाला॥
आदि पुरुष केवल गुरज्ञान। अगम अतीतु निरंजन प्रान॥१२६॥
नवनिधि नामु अंम्रित भरपूरि। सतगुर पूरे भेटिआ सूरि॥
सुणि हो भरथरि नानक बोले। सहज सुभाय¹ (सु) तत्त विरोले १२७
सचु जोग मनि बसिआ आइ। रूडी बाणी आतम रीझाइ॥
जोगी मरे न आवै जाय॥
दर्शनु पाया गुर प्रसादि। अस्थिरु जोगी आदि जुगादि॥
नानक बोले तत्तु बीचारु। जोग जुगति सचि करणी सारु॥१२८॥
सुन्न समाधि अनाहद राते। सतगुर पूरे चरन पराते²॥
निधि गुण गाइ वेख हुजूरि। नानक गुरमति सचु सपूरि॥१२९॥
आठ पहिर हरि रंग चलूला। गुर के शब्दि अभूल न भूला॥
सूर्य क्रिणि ज्यौं जोति उजाला। हरि सिमरणु हरिजन की माला॥
आठ पहरि हरि नालि ध्यानु। ब्रह्म ज्ञानी का ब्रह्म ज्ञानु॥१३०॥
अंम्रित दृष्टि समसरि सभ देखे। सभ ते नीचु, न किस ही लेखे॥
सगल की रेनु सगल की धूरि। सगल का प्रीतम नाँ किसहूँ ते दूरि॥
सगल भवन का सपा सहाई। नानक राम नाम लिउ लाई॥१३१॥
पचि तीनि नउँ चारि समावै। धरनि गगन कल धारि रहावै॥
जलि आकाशी सुन्न समावै॥
जोगी शब्दु बजाए बीणा। गुर कै शब्दि अनाहद लीणा॥
नानक साचे साचि पतीणा॥१३२॥
अकथ कथा अगमु बीचारु। त्रिकुटी फूटी मुक्ति द्वार॥
अंम्रित पीवै निर्मल धार। गुरमुखि देखै दशवाँ द्वार॥
सहज सुभाय हरि हरि गुण गावै। नाभ कवल सतसर घरि समावै१३३
शब्दु सुरति की साखी बूझै। मरमु दशाँ पचाँ का सूझै॥
दशवैं द्वारे चोवै³ भाठी। तीरथ परसै त्रै सै साठी॥
गगनंतरि गगन गवनि करि फिरे। जाय त्रिवेणी मजनु करे॥
सहजि निरंतरि धरे ध्यानु। नानक ऐसा ब्रह्म ज्ञानु॥१३४॥

---

(१) "निरतरि" पाठ भी है। (२) पछाते। (३) चुवै, टपकै।

उलटे कवल[1] जोति प्रगासु । हरि गुण गावै सहजि विगासु ॥
सहजे सिफती धनुप चढ़ाए । गुर के शब्दि अनाहदु वाए ॥
शब्दु सुरति की साखी पड़िआ। नानक गरभि कुंडि नहीं गलिआ१३५
अगमु निगमु कौ गुरमुखि बूझै । गुरमुख जाणे सभ कछु सूझै ॥
गुरमुखि रणु आतम गढु जीते । पंच मारि सुखि सहजि समीपे ॥
गुरमुखि पावै दरगह मनी । उर वार पार का होवै धनी ॥
ऊँचा गढु निज महिल[2] विज[3] मंदरि।नानकगुरमुखि पावै अदरि१३६
गुरमुखि साचु महलों वासु । गुरमुखि साचु शब्दु गुण तासु ॥
गुरमुखि अंभे अंभि[3] मिलाय । गुरमुखि मन्ने हुकम रजाय ॥
गुरमुखि घरि दरि पति परवाणु । गुरमुखि साचु शब्दु नीशानु ॥
गुरमुखि कंचन कायाँ सूची । गुरमुखि पौडी ऊँचो ऊँची ॥
गुरमुखि सचु शब्दु निस्तारा । नानक गुरमुखि पार उतारा ॥१३७॥
जपु तपु संजमु सुरति विचक्षणु। सतगुर साधि भला एह लक्षण ॥
अम्रित दृष्टि वर्षै तहँ वर्षा । पूरी (गति) मति पूरा पुरुषा ॥
जोग मारग का एहो लक्षण । नानक जोगी जुगति विचक्षण१३८
अगमु निगमु आगमु बीचारे । त्रिकुटी फूटी विमल[4] मझारे ॥
मिले प्रीतम राम पिआरे । लशकरीआँ घर सँमलि सारे ॥
सरवरि खोजि पाय नामु मणीआ[5]। ताँ की किसे न कीमति गणीआ
वखरु[6] साचु करे वापारु । नानक पाए मुक्ति द्वारु ॥१३९॥
कर्त्ता भुगता करने जोगु । करन करावनुहारु सभु होगु ॥
आदि निरंजनु त्रिभवणु धनी । ता की उपमा केतक गणी ॥
निर्गुण सर्गुण त्रिहुगुण ते दूरि। नानक अलिप्तु रहिआ भरपूरि १४०

---

(१) सुरति को अपने कमल की ओर उलटे तो जोति का प्रकाश होता है। (२) दृढ़, सुंदर। (३) जल में जलवत् अर्थात परम जोति में सुरत रूपी जोति या शब्द की धार में सुरत की धार को मिलावै। (४) मलीनता से रहित सुन्न सरोवर—सहसदल कमल और त्रिकुटी में माया मल होती है परन्तु सुन्न में माया का बल क्षीण हो जाता है इस कारण उसे विमल कहा है। (५) माणिक, रत्न,। (६) सच्ची पूंजी, रास, पदार्थ।

घरहर वुठा[1], सरवर भरे, सरभरि कवलु उपन्न।
भउर जि आवै आस करि, तिस विचि हंस इवन्नु[2] ॥
विनु शब्दे भरमाये, भउर निरासा जाय।
विप की वाडी वेधिआ, जमपुरि चोटाँ खाय ॥
भउर भवंता भालीए, भरमि भुला उद्यान।
विपु रसु चाखी भवरडे[3], मन मुखि अधि अज्ञान ॥१४१॥
घरहरि वसे सरु भरे, हंस निरालमु लाल।
माणक मोती विकणे[4], गुरमुखि खोजि निहाल ॥
सो हंसला न होय, सरवर हस न तालु।
चढिआ नजर सराफ की, मोती मनु है सालु[5] ॥
सरवरि हस पछाणिआ, चुणि मुक्ताहलु खाय।
हुकमी बंदा दरि खड़ा, मन्ने हुकम रजाय ॥१४२॥
उडरि हंसा गवनु कर, गुरमुखि पंख सवारि।
घरु दरु संमल[6] हसु ले, जाय मिलीए राम मुरारि ॥
देशि पराये हंसुला, भया उडीणा आथि।
हस उडारी समली, जाय मिलीए सँग साथि ॥
हस सु मानसरोवरी, छपडि आया वासु।
संगति काग कुपंखि की, किउँ छूटे तिन पासु ॥
हस उडारी समली, गुरमुखि मनूवा वारि।
सचु खटोली[7] प्रेम की, अति अनूप अपार ॥
उडे से पुरुप निरजनी, नानक जन्मु स्वारि ॥१४३॥
भारा भरिआ डूबसी, पउसी पारि सहूलु[8]।
घरहरि वसे सर भरे, सहजि निपजै कउलु ॥

---

(१) जब सुरति सहसदल कमल में उलटती है तो कभी पूरे टिकाउ में मेघ वर्पता जान पड़ता है उसी अवस्था की ओर ध्यान करके गुरू साहब इशारा करते ह—घरहर मेघ का नाम है जो धरती को हरा कर देवे। (२) सरीखे—उसमें पहुच कर इस प्रकार हो जाते हे जैसे हस, भाव यह कि जो जीव रूपी भवरे अभ्यास श्रम से अतरमुख उलटते हैं उनकी हस गति हो जाती है अर्थात विवेकी दशा को प्राप्त हो जाते हैं। (३) जीव रूपी भँवरे ने। (४) खराव हो रहे हैं, त्यागे जारहे हैं—भाव उनकी नाकदरी हो रही है। श्रे गुरमुखि उनकी खोज कर और देख। (५) सार। (६) सभाल कर—घर के दरवाजे की होश कर। (७) छोटी सी पलगड़ी। (८) हलके पार पड़ेंगे।

उन्मनि की बरषा करे, सहजि मनाए सउण।
पचे मारे मनु जिणे, सगली सिष्टि का भउण॥
अमर अजूनी थिरु धनी, काल कर्म सिरि नाहि।
नानक अजरा वरु अमरु है, ना आवै ना जाय ॥१४४॥
गुरमुखि कवलु विगासीए, सहजि करे प्रगासु।
गुर के शब्दु रहसीए, चूके मोह पिआसु॥
चउपड़ बाजी जिणि चले, घरि आय पतिवत।
अमरु अजाची प्रभु मिले, साचे शब्दि सुहंत॥
गढ दोही पातिशाह की, वजहु[१] होया बपशीश।
गुरमुखि प्रीतमु गलि मिले, नानक वीस इकीस ॥१४५॥

गुरमुखि सचु करे वापारु। गुरमुखि पाए महलि द्वारु॥
गुरमुखि दाना गुरमुखि वीना। गुरमुखि शब्दे शब्दि है भीना॥
अगमु निगमु सभ गुरमुखि जाणा। नानक शब्दु सचु नीशाण॥१४६
गुरमुखि परखे पारखु हीरा। गुर का शब्दु सुने मनु धीरा॥
गुरमुखि मनु माणक परखाये। गुरमुखि कहीं न आवै जाये॥
गुरमुखि असथिरु कदे न मरै। नानक गुरमुखि गुरू गुरु करै १४७
गुरमुखि पवित्र परम पदु पाय। गुरमुखि पति सेती घरि पैधा जाय॥
गुरमुखि जाय वसे निज महली। रचे अनाहदि सचि सिफति सुहेली
सची गोष्टि सुणिहो भरथरि। बोले नानक अंत निरतरि ॥१४८॥
एह सची गोष्टि गुरमुखि होई। गुरमुखि विरला चीनै कोई॥
सच खड की बाणी अखड। गुरमुखि जपहि खंड ब्रह्मड॥
सेतिबधि रामेशर होई। प्रणवत नानक तारे सोई ॥१४९॥
सेत बंधि रामेशर मेला। गोरख भरथरि इकु गुर[२] इकु चेला॥
गोरख बोले सहजि सुभाय। हम भूले तू राहु दसाय ॥१५०॥
नानक बोले सची वाणी। सुणिहो गोरख निरंजन प्राणी॥
गुरमुखि सचा जोगु कमाउ। निज घरि महली पावहिं थाउं॥

(१) दरमाहा, तनख़ाह। (२) एक गुरू साहब थे और दूसरा उनके साथ एक चेला मरदाना नामी था।

सतगुर पूरे की दीक्षा लेहि। अमरापुरि नगरी बसहि घर थेहि १५१
तीन चार चउपड चउ महिले। पंज सत्त गुण ज्ञान अमुले॥
नव घर ढूंढे दशवैं द्वारि। तहिं अम्रित पीवहि शब्दि अधार॥
तहं अनहद बाजे धुनि आकारा। नानक जोती जोति पिआरा १५२
सतगुर पूरा बेपरवाहु। दह दिशि मेटि दसाए राहु॥
सच विभूति दर्श घरि आउ। ऐसा जोगी जोगु कमाउ॥
पूरे भागि गुर सुणि उपदेश। सतगुर सेवि मिटे सभ भेप॥
नानक बोले ब्रह्म बीचारु। ऐसा जोग जुगति सचु सारु॥१५३॥
वेद कतेबा सोधि कुराणु। पडित पोथी पूछा पुराणु॥
नउँ खंड धरती सगली फिरहि। जोग न पावहि भरमि भ्रमि मरहि॥
सतगुर पूरे शरनी आउ। लख चौराशीह जूनि न पाउ॥
साध संगति महिं बासा पाय। आठ पहर हरि नामु ध्याय॥
सचु जोग अटलु ध्याय अस्थानु। नानक प्रणवै सद कुरवानु १५४
सुणि रे भरथरि गोरखनाथा। नाम बिना डूबे बहु साथा॥
साधिक सिद्ध गुरू बहु चेले। गुर शब्दु बिना दुखीए दुहेले[1]॥
अम्रित बाणी नानक बोले। सहजि निरंतरि तत्तु विरोले॥१५५॥
कहाँ सु गगन दया का भउणु। कहाँ सु निज घरि जहाँ सुखि सउणु[2]॥
गुरमुखि खोजि करे बीचारु। ऐसा ज्ञान निरंजनु सारु॥
पारस परसै दशवैं द्वारा। अम्रितु पीवै निझर धारा॥
सतिसरि न्हावणु पूरा होय। दुर्मति मैलु न लागै कोय॥१५६॥
गुर के शब्दि गगनतरि वासु। नामु जपे निज महली वासु॥
भय ते निर्भउ होय समाय। भय मानीए निर्भउ मेरी माय॥
भय ते निर्भउ पति परवाणु। भय ते निर्भउ दरि नीशाण॥१५७॥
त्रिकुटी संधि त्रिबीणी रहै। नाभ कवल सतिसरि घरि बहै॥
अदलु करे राजा पचाइण। परचे गुरमुखि परम पराइण॥
आप बीचारे परखे हीरा। ऐसा पूरुप गुणी गहीरा॥
ऐसा शाहु सराफु सुभाय। सची दरगहि महलि बुलाय॥१५८॥

(१) अकेले, तंग। (२) सोवना।

आठ पहर हरि रंग गुलालु । सहज ध्यानी सदा निहालु ॥
रहे निमाणा सभ की रेणा[१] । रहे अलेप ज्यों जल कौलेणा[२] ॥
दर्शन तिस का अपर अपारु । नानक साधू आपि निरंकारु ॥१५९
ससार सागर ते रहे निराला । ज्यौं जल भीतरि कवलु निराला ॥
सूर्ज किरण ज्यौं जोति उजाला ॥
मन वच करम मति का दृढ साचा । अंतरि प्रीति राम रसि माता ॥
अंम्रित दृष्टि सचा दैयाला । दैयावंतु सचा किरपाला ॥
हरि गुण गावै सदा बिगासा । नानक[३] इह विधि कवल प्रगासा॥१६०
अकलु पुरुप केवल गुरज्ञान । गुरमुखि वाणी परम निधानु ॥
अनंद रूप को सदा जैकारु । आदि अत त्रिभवणु सचु सारु ॥
सत्ति सरूप अघाय भोगु । नानक आदि जुगादि जुगु जुगु होगु १६१
प्रथमे[४] मानसरिवरि करे इस्नानु । दुतीये दक्षिण धरे ध्यानु ॥
दक्षिण ते जा पछम चढ़ै । तउ हाट पटण की सोझी पड़ै ॥
परदक्षण ते चढ़े गगनंतरि । तहँ नानक बैसै तपति निरतरि १६२
नाभ कवल पवन प्रकार । मन बुद्धि इंद्री मुक्ति द्वार ॥
ब्रह्म कमंडलु अंम्रितसर पूरा । गगन अकाशि वजाए तूरा ॥
इंदु बिंदु सुफने नहीं देखि । ताँ नानक पाया अलप अलेख ॥१६३
अरचे परचे रहे गुर ज्ञानी । अगम निगम की सो विधि जानी ॥
मनसा इकतु परोवै सूति । वशिगति कीते पचे दूत ॥
ऊपरि चढे गगनि आकाश । गगनतरि वैसे तपति निवासि १६४

(१) रेनु, धूल । (२) कमल । (३) "नानक सिफति रत्ता गुण तासा" भी पाठ है । (४) हठ अभ्यासी योगी हद्द त्रिकुटी तक समाधि करते ह । गोरख की यहा तक पहुच थी इस कारण गुरू साहब उसे सुन्न सरोवर का उपदेश प्रथमही करते हैं । सहसदल कमल से बाईं ओर सरकाते हुए सुन्न परयत चढ़ाई सीधी होती है परंतु आगे मारग विपम हो जाता है, जिसका प्रकार सूचन कराते ह । सुन्न सरोवर (मान सरोवर) में स्थिती रूप स्नान से परम निर्मल तथा सूक्ष्म हुआ योगी फिर दाईं ओर सुन्न के, सुरत को मोड़े और वहा पर की स्थिती की परिपक्वता (पुख्तगी) मे अनतर उसे दाईं ओर की पिछवाड़ में लौटावे, इतने चक्र मे योगी की सुरति सुन्न सरोवर के दाईं ओर दक्षिण पश्चिम की मध्य भावी दिशा गत भँवर गुफा में आन पहुचती है, जहा पर से फिर सीधी ऊपर को चढ़ानी होती है जो इस तरह चढ़ती २ वहा जा पहुंचती है कि जहा पर इसको अपने शहर (सच खड) के हाट की सोझी पड़ जाती है ।

तपत निवासी संत सँगि भाउ। आतम जीते निज घरि जाउ॥
आदि जुगादी सचि पसाउ। नर निहकेवलु निर्भय भाउ॥
सचु जोगु निज महली थाउ॥
अमरु अतीत अलेख परवाणु। नानक नामु सचु नीशाणु॥१६५॥
अनहद चीने पदु निरवाणु। अगम निगम जो जाणे जाणु॥
ऐसी जुगति जोगु पछाणु॥
सतिसरि न्हावण पूरा होय। दुर्मति मैल काटे सभ धोय॥
ऐसी जुगति जोगु कमाया। गुर परसादी मनु उलटाया॥१६६॥
चीने आपु शब्दु निरवानु। गगनतरि तपति लाय दीबाणु[1]॥
काया अगनि करे निभराति। अस्थिरु कधु अजरावरु ताकु॥
मानसरोवरि करे इस्नानु। नानक ऐसा अगम ज्ञानु॥१६७॥
अगम निगम जाणे जो वाचि। पचे दूत रहाय ठाकि॥
तिहँ का मारि मिलावै मानु। नानक सचु शब्दु प्रधानु॥
पचे साधि जना गुरभाई। पचे जीते घरि नवनिधि पाई॥१६८॥
काया नगर महिँ नामु निधान पाया। अस्थिर जोगी फिरि जोनि न आया॥
सचु जोगु केवल गुर ध्यान। मस्तकि लिखिया नामु निधानु॥
सच जोगु ज्ञान रत्न पाया। नानक धन्य जोगी जोगु सचु पाया॥१६९
निरबाणु शब्दु अनाहदु वाजा। गगन तपति बैठा सचु राजा॥
नाभ कवलु सचु सहजु निधाना। शब्दु अनाहदु सुनि मगिनाना॥
सुन्न गुफा महिँ लागी तारी। नानक जोग जुगति इह सारी॥१७०
जोगु बैरागु सहज घरि आसणु। आसा भीतरि रहे निरासणु॥
मुंद्रा सतोष शर्म पति झोली। गुरमुखि जोगी तत्तु विरोली॥
इन बिधि पाया जोगी सचु जोगु। नानक जोगी जुगु जुगु होगु १७१
अस्थिर पिंड फिरि पवे न सोया[2]। अस्थिर जोगी जुगु जुगु होया॥
लक्ष चौरासी गरभि न लेटे। कंटक काल फिरि कदे न त्रेटे[3]॥
नॉ तिसु खिथा नॉ तिसु वस्तरु। नानक जोगी होया अस्थिरु १७२
खिंथा क्षमा शब्दु मनि मुंद्रा। नानक भुगति ज्ञान अउधू जोगिंद्रा॥

(१) दीवान, कचहरी। (२) "मोया" पाठ भी है। (३) ताड़े, चोट मारे, त्रासे।

नाभ कवल जी (अ) अस्थंमु । पवने सहिज करे अरंभु ॥
मन पवनै की सुध लहे, ससीअर[1] सूर कौ खाय ।
नानक जोगी धन्य है, ऐसा जोग कमाय ॥१७३॥
आसण शुद्ध मन सचु सुचीत । गुर के शब्दि सचि रहे अतीत ॥
धर्म धीर्ज करि आसणि बहै । गुर की आज्ञा[2] मन महिं सहै ॥
आए हर्षु न गए सोगु । नानक पाईअै सचु ऐसा जोगु ॥१७४॥
नाम रतु सचु जोगु पाया । अनहदि राता महलि बुलाया ॥
अनहद शब्दु गगनतरि बाजा । बैठा तपति अदली[3] सचु राजा ॥
सचु जोग[4] प्रान पति पाई । जोग के प्रान अवरीक[5] रखाई १७५
अनहदु नादु गुर शब्दु बजाए । दशवैं द्वारे रहे समाए ॥
शब्दि अनाहदि राता आदि । अस्थिरु जोगी आदि जुगादि ॥
अनहदि राता गुणी गहीरु । नानक जोगी गहर गँभीरु ॥१७६॥
त्रयदल[6] साधे मटुकी छूटे । अनहदि राते त्रिकुटी फूटे ॥
तंतु मंतु पाषंड न कोई । अजनु[7] नामु मनु मानिआ सोई ॥
त्रयदल साधि बजाए तूरा । तहँ कार्ज सीधा गुरमुखि पूरा ॥
अस्थिरु पिंडु सचु जोगु अखडु । निर्भउ जोगी नहीं जमु डडु १७७
त्रेटकु[8] भेष न चेटकु कोई । खिथा चक्र बिभूत न होई ॥
गुरमुखि आदि दीआ उपदेशु । सतगुर मिलिअै उलटिआ वेष ॥
सचै शब्द अनाहद लीणा । नानक जोगी सहजि पतीणा ॥१७८॥

---

(१) चाद सूर्य को खेंच के सुरति अपने घाट पर ले जावे—यह भाव है। (२) अभ्यास में दीर्घ काल, निरंतर और सतकार पूर्वक प्रवृत्त रहने की शिक्षा रूप गुरू की आज्ञा को मन में धार कर बरते। भाव अर्थ यह कि जब जज्ञासु को गुरू दीक्षित करते हैं तो उपदेश के अनंतर ऐसी आज्ञा मिलती है कि इस उपदेश का अभ्यास नित्य प्रति प्रेम (अनुराग) सहित चिरकाल परयत (कम से कम पहर भर) आसन बाध कर करते रहना—अतएव इसी शिक्षा रूप गुरू की आज्ञा को मन में धार कर बरतता रहे। (३) न्याय करता सत्पुरुष, सच खंड का धनी। (४) सच योग से स्थिती रूपी प्रतिष्ठा को प्राप्त किया (प्राण नाम पराक्रम, बल, शक्ति, स्थाम का है—अमर कोष में)। (५) योग के बल से अविवाहिता जो माया है वह खायली (अवरी—जो विवाही ना हो) अथवा नाभी के तले ६ उंगल परिमाण एक अवरीक नामा काम की नली है उस को ऐसा अभ्यासी योग बल से अपने वश में रखता है। (६) त्रैदल से भाव तीसरे तिल का है—नेत्रों की शोभा कमलदल (पखड़ी) की है सो दो यह हुए तीसरा इनकी पिछवाड़ में—ऐसे त्रैदल से तीनों का ग्रहण हो जाता है। (७) वही तीसरा तिल। (८) त्राटक मुद्रा दृष्टि साधन की, इसके आगे क्या है भाव यह कि कुछ भी नहीं है (तुच्छ सी है)।

कन्न पडाय न मूंड मुंडाया । घरि २ फिरत न भूकणु[1] वाया ॥
मनु असथिरु गुरु शब्दि सुहेला। पंचि मारि ततु लहे इकेला ॥
तत्तु त्रिवीणी खूलै दुआरु । निझर झरे अनहदु धुनिकारि ॥
आदि पुरुष को मिलिआ जाणु । नानक जोगी निरजन[2] प्राण ॥१७९
असिथरु पिंडु अजरावर भया । जन्मु मरन दुखु तहाँ सभु गया ॥
मिटे कलेशु उतरे संताप । फल कोट प्राप्त गुर प्रताप ॥
सचु जोगु मुंद्रा मन माहीं । नानक अस्थिरु सत संग समाहीं १८०
निराहार[3] सचु जोगु कमाई । जन्म मरन की चूकी धाई ॥
भुगत ज्ञान जोगी कौ आई । जोगी गुरमुखि तिप्ति अघाई ॥
आत्म रामु चीनि पाया जोगु । नानक जोगी जुगु २ होगु ॥१८१
सतगुर ते जोगी जोगु पाया । अस्थिर जोगी फिरि जूनि न आया ॥
सुन्नि निरंतरि रहिआ समाई । अस्थिरु जोगु न आवै जाई ॥
अजपा जापु जपे जपु जापु । उन्मनी काल को मारे चापि ॥१८२
सूर[4] ससी ससि के घरि वहै । नाभ[5] कवल ठहराय मनु रहै ॥
बक नाड़ि की त्यागे रीति । गुरमुखि लागी सची प्रीति ॥
त्रयदल साधि वहे सिंघासनि । नानक तपति निवासी आसनि १८३
गुर का भगतु सदा इक रंगा । उसुरा[6] तरिआ उलटी गंगा ॥
नउसर[7] सुभर दशवैं पूरे । अनहद सुन्नि वजावै तूरे ॥
पतालहुं नीर चढै गगनापुरि । निजघर महलि चढ़े अमरापुरि १८४
चचल चाय न पर घर लाये । मनूआ अस्थिर गुर शब्दि टिकाये ॥
मानसरोवर हंस उजाला । सिफती रत्ता लाल गुलाला ॥
परगृह जाय न देखे चचलि । गुरमुखि त्यागे माया पटलि[8] ॥

(१) कुत्ते की न्याईं भौंकता हुआ नहीं फिरता । (२) निरजन । (३) सच्चे जोग की कमाई से जीव अभोगी हो जाता है और जन्म मरण की दौड़ उसकी छूट जाती है । (४) दृष्टि की धारों को चन्द्र के गृह में स्थित करे । (५) सहसदल कमल । (६) अप्रकाश रूप प्रवाह सुरति का असुरा नदी कहाता है जो गुर का भगत है वोह इससे तर गया है उसने निर्मल सुरति रूपी गंगा का उलटा प्रवाह चला दिया है तात्पर्य क्याकि —(७) नौं सर नौं दरवाजे, सुरति उनसे खैंच कर, खाली कर दिये हैं और दशवें को सुरति से पूर्ण कर दिया है जिस सें सुन सहज में पहुंच कर अनहद वाजे को वोह भगत बजाता है । (८) 'अचल' पाठांतर ।

नानक पूरे गुर के अंचलि[1] ॥१८५
त्रिकुटी संधि त्रिबेणी रहता । नाभ कवल पवनि घरि सहता॥
अस्थिर पवन नाभ पर रहै । सुॅन्न समावै मन महिँ मनु गहै॥
वंकनाडि त्रिविधि (सेॉ) त्यागे । नानक आदि जुगादी जागे ॥१८६
ऐसा जोगि जुगति परवाणु । सची दरगह सचु नीशाणु॥
सची दरगहि महलि बुलाया । सिरि खुरि[2] पैधा प्रभि पैनाया॥
अस्थिरु जोगु न आवै जाई । नानक जोगी सचि समाई ॥१८७॥
सुन्नि समाधि अनाहदि बाणी । सचा राजु रूप अकथ कहाणी॥
आदि अनील जुगादि अनाहदु । आदि जुगादि जुगोजुग शाहदु॥
कीमति किनै न पाईआ ता की। कोट ब्रह्मंड रचना जिनि राची॥
ता का अंतु न पारावार । आपे जाणै सिरजनिहारु ॥१८८॥
अपणी गति मिति आपे जाणै। अपणे रंगु शब्दि निरबाणे॥
आपे एक अनेक अपारा । आपे बहु बिधि करे बिस्थारा॥
अगम अगाधि बिअंत अतोले। कुदरति कादरु[3] करते मउले ॥१८९
नानक जपेदरि[4] बेनंती । एह अकथ कथा सचु सति सोहती॥
अकलु निरजनु लाल गुलाल । आदि निरंजनु दीनदयाल॥
अकल पति[5] बिरप पूरा भगवानु । अमर अजूनी परम निधान॥
अमर अतीतु केवल गुरु ज्ञान । नानक जुग जुग परम निधान१९०

जा बाबे नाल श्री गोरखनाथ ते भरथरी गोष्ट कीती ता समुद्र की न्याईं उछले गद्गद होए ते आखन लगे अज साडा जन्म सफल होया है जो श्री बाबे जी का दर्शन होया । जन्म जन्म के ससे दूर भये हैं, ता चरन बदना करिकै, सिद्ध गोरखनाथजी तथा भरथरी जी उठे ता बाबा जी ओथेही प्रसन्न बदन बैठ रहे। फेर (कुछ काल पश्चात) बाबे आखिआ मरदानिआ चलु असीं भी चलीए। ता ओथों[6] चले सेत बध के परे जिथे बडा समुद्र हैसी तिथे तिसदे किनारे उत्ते जाय खडे होए। ता कीह[7] वेखन जो चौरासी सिद्ध मडली लगाइ बैठे हन। ते बिच

---

(१) पल्ला, अचला पकड करि। (२) शिर से पाव के नाखुनों परयत भगवत ने उसे अपने प्रेम की दात रूप पोशाक से ढक दिया है। (३) समर्थ करतार की कुदरत ही सर्व ओर मौल रही है अर्थात खिल रही है। (४) जपै है, भाव करै है दरि दरगाह में। (५) कल्पना फुरने से रहित। (६) उस जगह से। (७) क्या देखते हैं कि।

श्री गोरखनाथ जी बैठे हैनि। ता बाबे सिद्धा जीगु आदेसु आदेसु कीता। ते श्री गोरखनाथजी अपने पास बैठाया—ता सिद्ध गोष्ट लगे करन। सिद्ध बोले:—

॥ पउड़ी ॥

ज्ञान एक नगर दस दुआर। कहु सतगुर सत्त सत्त वीचार।
ज्ञान करी हड़ हड भी हसै। पीछै उज्जड़ अगै बसै ॥१॥ १९१

॥ श्री गुरू वाच ॥

एक नगर तिस दस दुआर। सुणो सिद्धो सत्त सत्त वीचार॥
आगे उज्जल पीछै बसै ॥१९२॥

ता सिद्धा आखिआ बालिआ तू कोई गुरू कर। ता बाबे आखिआ मेरे गुरू का बडा प्रताप सभना दे सिर उत्ते[1] है। पर तुसा जो अपणे गुरू पासो बुद्धि सिक्खी है, तिस अनुसार बचन करो। ता सिद्धा कह्या—पयाला ता पीउ। ता बाबे कह्या इह कैसा पाणी है। ता सिद्धा कह्या—इह अम्रित है इस पीते लिव लगती है। ता बाबे कह्या इस की उत्पति क्यों करि है? ता भ्रगरनाथ बोलिआ—

॥ रागु आसा ॥

भाठी जालो लाहणि मॉडो[2] कस[3] को बीच समावै।
निर्मल धार नली होय चलती तब यहि अंम्रित पावै ॥१॥
सुण नानक तब जोगी होवै।
द्रिष्ट खुले बंधन सभ काटे सगली दुर्मति खोवै ॥

॥ १ रहाउ ॥

हो मत्वाले मद के माते मगन होय लिव लागी।
सुरति बंद न चलती कबहूँ दरबार खड़ा वैरागी ॥२॥
ऐसे सहज फिरै मत्वाला दुख सुख दोय निवारे।
जहाँ देखै तहँ एको सुआमी हिरदे अंतरि धारे ॥३॥
लाहा पूँजी साथ निबाहो पाली खेप[4] न जावै।
भ्रगरनाथ कहै सुण नानक बाबे तब तूँ दर्शन पावै ॥४॥ १९३

॥ श्रीगुरु वाच—रागु आसा महला १ ॥

ज्ञान ध्यान की लाहणि मॉटी करणी की कस पाई।
भाउ भाठी प्रेम समाणा ब्रह्म की अगनि जलाई ॥१॥

---

(१) सिर पर। (२) पमीर उठाना, मद (शीघ्र) बनाना। (३) छिलका बबूल आदि का। (४) जिन्स, माल।

सिद्धो हम मद के माते नाहीं ।
जो मतवाले मद के माते किन मतवालिओं माँहीं ॥
॥ १ रहाउ ॥
सुरति नली भाउ वासन कीआ अंतर धार चुआई ।
दया सुराही सहज पिआला गुरमति पीओ भाई ॥२॥
गुरमुख नाम फिरे मतवाला एक रंग महिँ खेले ।
जहँ देखां तहँ एक सरूपी मार्ग पाया चेले ॥३॥
निबही खेप हमारी सिद्धो आठ पहर लिव लागी ।
नानक दास तहाँ मतवाला जहँ एकंकार वैरागी ॥४॥ १९४

ता बाबा बोलिआ सिद्धो आपने गुरू का शब्द सुनाओ जिस उत्ते मेरी प्रतीत आवैगी तिस को भी गुरू करागा । ता परबत सिद्ध बोलिआ —

॥ राग राम कली ॥

धन जोबन की करै न आसा । पर त्रिया अंग न लावैं पासा ॥
नाद बिंद[2] लै घट भीतर करै । तिस की सेवा परबत करै ॥
बोलै परबत सत्त सरूप । परम तत्त्व महिँ रेख न रूप ॥१॥ १९५

॥ सिद्ध ईश्वरनाथो वाच ॥

सो गिरही जो निग्रह[3] करै । जप तप संजम भिक्षा करै ॥
पुन्न दान का करै शरीर । सो गिरही गंगा का नीर ॥
बोले ईश्वर सत्त सरूप । परम तत्त महिँ रेख न रूप ॥२॥ १९६

॥ श्री गोरखनाथो वाच ॥

सो अवधूती जो धूपै[4] आप । भोजन भिक्षा करै संताप ॥
अउहाट पटण महिँ भिक्षा करै । सो अवधूती शिव[5] पर चढै ॥

(१) सर्व संबंध शून्य, असंगात्मा । (२) नाद की ध्वनि—एक शब्द होता है, एक उसकी ध्वनि होती है । शब्द का सार नाद और नाद का सार बिंद होता है, इसी का नाम तुरिय आत्मा है, इस में सुरत स्थिर हो जावे तो ब्रह्म पद का साक्षात्कार होता है । यही अपना मत परबत सिद्ध बतलाता है कि शब्द को नाद में और नाद को बिंदु में अर्थात तुरिया आत्मा में घट के भीतर लय करे । जो ऐसे अभ्यास करता है उसी की सेवा मैं करता हूँ भाव उसको ही मैं पूर्ण पुरुष आत्मवेत्ता मानता हूँ । इस का विशेष निरूपण पहले हो चुका है । (३) संजम । (४) धूप की न्याईं जो आपाभाव को धुखाय २ भसम कर डाले । ब्रह्म विचार रूप दिया सलाई से ब्रह्म अग्नि को प्रजारित करके देह अध्यास रूप धूप का धुखाना हुआ करता है । (५) सुन मंडल के धनी शिव के ऊपर सचखंड में चढ़ जाता है ।

बोले गोरख सत्त सरूप । परम तत्त महिं रेप न रूप ॥३॥ १९७

॥ चरपटनाथो वाच ॥

सो पखंडी जो काया पखाले । कायाँ की अगनि ब्रह्म परजाले॥
सुपने बिंद न देई झरना । तिस पाखंडी का जरा न मरना॥
बोले चरपट सत्त सरूप । परम तत्त महिं रेख न रूप ॥४॥ १९८

॥ गोपीचंदो वाच ॥

सो उदासी जो पाले उदासु । अर्द्ध उर्द्ध[1] करे निरंजन वासु ॥
चँद सूर्ज[2] की पाए गंठि । तिस उदासी का पड़े न कंध ॥
बोले गोपीचंद सत्त सरूप । परम तत्त महिं रेख न रूप ॥५॥१९९

॥ भरथरीनाथो वाच ॥

सो वैरागी जो उलटै[3] ब्रह्म । गगन मँडल महिं रोपै[4] थंम ॥
अहि निशि अंतरि रहै ध्यान । ते वैरागी सत्त समान ॥
बोले भरथरि सत्त सरूप । परम तत्त महिं रेप न रूप ॥६॥ २००

॥ श्री गुरो वाच ॥

क्यों मरै[5] मदा क्यों जीवै जुगति । कंन्न पड़ाय क्या खाजै[6] भुगति ॥
आस्ति[7] नास्ति एको नाउँ । कवण सु अखरु जितु रहै हिआउ[8]॥
धूप छाउँ[9] जो सम करि सहै । तउ नानक आखै गुर को कहै ॥
छिअ[10] वरतारे वरते पूता । नाँ ससारी नाँ अवधूता ॥
निरंकार जो रहै समाय । काहे भिक्षा मंगन जाय ॥
बोलै नानक सत्त सरूप । परम तत्तु महिं रेप न रूप ॥७॥ २०१

---

(१) पिंड ब्रह्मंड की संधि का स्थान। (२) इड़ा पिंगला का एकी करण रूप गांठ पावे। (३-४) त्रिकुटी के मंडल पर जो चैतन्य पुंज विराजत है उसे उलट कर, क्या? कि ऊर्द्ध को सुरत तान कर थंभवत अचल स्थित कर देवे। (५) मद आचर्ण में प्रवृत मन। (६) क्या भोजन खावो हो—यह तरकना करि के गुरू साहब कहते हैं। (७) जो कुछ सत असत (प्रगट गुप्त) है उस सभ की सत्ता एक ही प्रसिद्ध वस्तु है—इन वार्ता का निर्णय आगे किया गया है। (८) हिरदा, मन, अंत करण। (९) स्वेत श्याम से भाव है, कोई बाहरली धूप छांव का ग्रहण नहीं है क्योंकि तितिक्षा का कोई प्रसंग नहीं, शब्द अभ्यास पर साक्षात प्रति वर्धी तरकना करके गुरू साहब ने स्वयं ही उसका निरूपण किया है। (१०) पिंडी षट चक्रों का अथवा षट कर्म का हठ योग रूप जो वरतारा है या छे दर्शनों के वरतारे में जो वरते।

॥ चरपटनाथो वाच ॥

काम त्यागलो लोभ त्यागलो मोहं ।
अहंकार त्यागलो चरपट वचन अपारं ॥ २०२

॥ श्री गुरो वाच ॥

नाँ त्यागलो[1] कामं नाँ त्यागलो क्रोधं नॉ त्यागलो लोभं मोहं।
गुर प्रसादि सभ रोग ना नानक वचन अपारं ॥८॥ २०३

॥ चरपटनाथो वाच ॥

शिव पकड़[2] लो, शक्ति गवाय लो। मनसा ठहराय लो त्रिश्ना हिर लो[3]
मन को प्रबोध लो दर्शन पाय लो। विभूत[4] लगाय लो ते बड़भाग लो
चरपट वचन सत्तालले[5]। सुण नानक तपा ते संसार समुद्र पाइलो ९
२०४

श्री गुरो वाच

शिव नॉ[6] पकरिलो शक्त न गवायलो।
मनसा[7] न ठहरायलो त्रिश्ना[8] न गवायलो ॥
मन को नॉ परबोधलो दर्श न पायलो ।
तो बड़ भाग हम आपलो ।
सुण चरपटनाथ ससार हम पार पायलो ॥
एकोकार गुर करवो दूसर नॉ धरवो ।
पंच पचीस हम आगे कार करिवो ॥

---

(१) जिसमें काम आदि हों वह त्याग लेवे परन्तु जब गुरू के प्रसादि से हमारे में यह सभ रोग ह ही नहीं तो हम इन को क्या त्यागें—यह भाव है। (२) शक्ति का धनी शिव परमात्मा। (३) त्याग लेवो। (४) राख, भस्म। (५) सच सच। (६) शक्ति नाम आत्म वस्तु का है और शिव नाम परमात्मा का—जब आत्मा (शक्ति) परमात्मा (शिव) में लीन हो जाती है तो आत्मा की अपेक्षा से कहा जानेवाला परमात्मा ऐसा नाम कहा नहीं जा सकता। इसी बात को मन में धार कर इस सापेक्षक शब्दवाले शिव परमात्मा को हम नहीं अंगीकार करते किंतु जिस में किसी प्रकार से भी नाम की समाई नहीं ऐसे अनामी स्वरूप को हमने आलंबन किया है। इसी कारण हम को शक्ति के गवाने की भी आवश्यका नहीं क्योंकि वोह तो प्रथम से ही समुद्र के तरंगवत अगाध स्वरूप समुद्र को आश्रे किये बैठी है। यह श्री गुरू महाराज का अभिप्राय है। (७) उन्मन दशा को प्राप्त हमारे में मनसा है ही नहीं तो ठहरावें किस को यह भाव है। (८) सर्व द्वैत परपंच के अत्यंत अभाव दृढ़ बोध के प्रभाव से अर्थात जैसे सुषुप्ति अवस्था में संपूर्ण परपंच का विस्मृत्ति रूप नाश हुआ करता है ऐसे ही प्रलय तथा योग समाधि में नाश हो जाने वाले ससार के बारंबार नाशी होने के चिंतन अभ्यास से इसके वास्तव में नाश रूप होने के (तुरिया, तुरियातीतगत) यथार्थ निश्चय के प्रभाव से जब हम को असत् सरूप किसी वस्तु का स्फुरन ही नहीं स्फुरता तो त्रिश्ना कहा उपजे जिसको त्यागें।

तीन चार बिन रसना उचरबो ।
नौ सत्तह[1] मे बॅंधबो, चउदहि इकीस हम आगे खड़िबो[2] ॥
पचास पंछत्तरह णा भागबो ।
नानक तपा ऐसे वड़ भागबो ।
सुण हो चरपटनाथ बो ॥ ११ ॥ २०५

ताँ फेर घुघूनाथ नूँ गुरू जी बोलाया—छेडिओसु—

॥ श्री गुरो वाच ॥

घुघूनाथ चुप्प करि रहिया । क्या जापै[3] उह कैसा भाया ॥
बिन बोले क्या करै बीचारु । घुघूनाथ बोलणुहारु ॥
सेवा पूजा रहत न पाईए । घुघूनाथ बोलिआ चाहीए ॥
दर्शन आछा मर्म न जापै । क्या जानौ कैसा परतापै ॥
कहि नानक सुण घुघूनाथा
हमरी अरदास । एक पछाणो तउ बोलो बात ॥ १२ ॥ २०६

॥ घुघूनाथो वाच ॥

घुघू नाथ पायबो, जती न सदायबो ।
सिद्धो न नाथबो, बोलबो पकड़ाइबो ॥
सिंडी न बायबो, नाउँ न कहायबो ।
सुरति[4] न ठहरायबो ॥
जद अनहद[5] भरम सुनायबो ।
सम एकंकार खेलबो । शिव शक्ती न मेलबो ॥
ध्यान न धरायबो । ऊँच नीच कहायबो ।
हिरदे प्रगासबो । एक बातबो[6] ॥
घुघू कहे सुण नानक साधबो ।
सत्ति परमेश्वर तुम लाधबो[7] ॥ १३ ॥ २०७

---

(१) नौ और सात=सोलह कला से संयुक्त हो । (२) चौदह लोक, और इकीस पुरी की अधिष्ठाता शक्तियाँ हमारे आगे खड़ी हैं अर्थात हमारी दासी हैं । (३) क्या जाणीए । (४) चितकला भटकती ही नहीं इस कारण ठहराता नहीं हू भाव योगाभ्यास नहीं करता हू । (५) अनहद शब्द भी शब्दी से उत्पन्न होने वाला है जब शब्दी जिसमें शब्द की गम नहीं, ऐसे (शब्द वाले) में हम समाय गए तो शब्द फिर कहां रहेगा । फल प्राप्ती में साधन की जरूरत नहीं रहती और उत्पत्ती नाशवान वस्तु भरम मात्र होती है । इस वास्ते अनहद शब्द भी हम भरम समझते हैं । (६) "दुतीयो नास्ति इक रह्यो समाय" बस । (७) तुम ठीक सत्य परमेश्वर ही प्राप्त हुए हो ।

ताँ गुरू नानक घुघूनाथ के चरणाँ नूँ दौड़िया ।
ते घुघूनाथ कह्या क्यौं तपाजी! यहि क्या, दूसरा जाणिया ?
ताँ गुरू नानक जी कह्या, नाथ जी एक जाणिआ
तो तुम पछानिआ; दूसरा अवर न कोई ।
नानक दास समझिआ है आगे[1] घुघूनाथ मैं ओही ॥
ताँ दोहाँ आप विच चरन वंदना कीती पर राजी रहे ।
ताँ फेर चबा नाथ बोले नाहीं मगन होय रह्या ॥१४॥ २०८

॥ श्री गुरो वाच ॥

भाई बाला अते मरदाना जाह ! चंबानाथ बोलता नाहीं ।
ताँ मरदाना उतावला[2] होइ कर बोलिआ—
अजी गुरू जी बुलाये ! ताँ गुरू नानकजी बचन कीता ।
बोलहु चबानाथ बोलते क्योँ नाहीं ?
कवन तुमारा मता मसूरत[3] चहो कवन ग्रिह माहीं ।
देखी तुमारी मूरति आछी बिन बोले समझ न काई ॥
बुध सिद्धनाथ सब बोले जती भी बोलनहारे ॥
नानक कहै सुण चंबा भाई तैं क्यों बोल बिसारे ॥१५॥ २०९

॥ चबानाथो वाच ॥

बोलनहार बोलबो । तोलनहार तोलबो ।
खेलनहार खेलबो । अटकनहार अटकबो ॥
भटकनहार भटकबो । झटकनहार[4] झटकबो ।
गावनहार गायबो । सुननहार सुणायबो ॥
चंबानाथ कहायबो । एको एक ध्यायबो ।
एकंकार घर महिं ध्यान लायबो ॥१६॥ २१०

॥ श्री गुरो वाच ॥

जननी सोधनवो, रहिनी सोधनवो ।
चलनी[5] सोधंनवो गुरू सोधंनवो ।
उपदेश सोधंनवो जेते लच्छण सोधंनवो, एकंकार कृपा करवो१७ २११

(१) सामने जो घुघूनाथ (तुम) हो और आप हम सभ एक रोही एकसार हैं। (२) जल्दबाज़, तेज़ । (३) मसूरा । (४) झड़ने वाला । (५) चाल चलन ।

॥ चबानाथो वाच ॥

न चंबा[1] न नानको न गोरखो न सॉम[2] को न दसर्थो न राम को ।
न वसिष्ठो न व्यासवो न सुखदेव न पराशरो ॥
सभ आप आपे खेलता दूजा मेल न मेलता ।
प्रणवत चंबा सुण नानक बाला । एकएक सुख पावत दूजा जजाला ॥१८॥ २१२

चबे ते गुरू नानक दोनो आपस में चरन बदना करीं । बहुत सुप्रसन्न रहे । ग्रुघूनाथ अते चबानाथ अते मगल नाथ अते गोपीचद एह त्रै चारे बहुत खुशी होए लगे । आखण जी हम निहाल हूए । आज हम को अलेप पुरुष का दर्शन हूआ है । ता गुरु नानक जी बोलिआ—नाथ जी तुसाडे दर्शन नू बहुत हर्षदे आहे । पर भला होया जो देह विच दर्शन होया । असा सत्त प्रतीत आई जो असानू कर्त्तार निरकार दा दर्शन होया । जा इतने नाथ खुशी होए ता सुरति सिद्ध अते निरत सिद्ध अते कनक सिद्ध (आदिक) कितने सिद्ध तमके, गुस्से होए । ता मगलनाथ कह्या सुणो भाई गोपीचंद बाले एहु सिद्ध कैसा अहकार करते हैं । ता गोपीचद कह्या गुरू नानक जी का तुम देखते हो तमाशा । नानक तपा तौ किछु कमी नाही इन पासते । एह तो तुमारे आगे निवा[3] है शिव के जोर । तुम मौन हो जावो बोलो नाहीँ । तुम तमाशा देखोगे कि कैसे शरमिन्दे होवहिंगे ता उना सिद्धा करामाता लाईआ । क्या कीता, चिगानी उडायलो । सिंगी बजायलो । फरवा दौडायलो, जितने सिद्ध तमक रूपी होय आए, सभना आपने साज उडाये ते गुरु नानक बोले नाहीं, ताँ फगरनाथ कह्या अरे नानक अब तुझ को क्या हुआ है ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

ताँ गुरू नानक बोलिआ —

उडहो कौस[4] हमारी, हम देखें शक्ति तुमारी ।
जब नानक मुख ते बोला, तब कौस ने घुंघट[5] खोला ॥

---

(१) जब अतरमुख हुई सुरति धुर पद में समा जाती हे तो यावत दृश्यजात (द्वैतपरपच) जो है उसके साहित सुरति आपा भाव से रहित हो जाती है । इस निर्विकल्पक (अफुर) दशा के निरतर अभ्यास से, उत्थान अवस्था में भी, सुषुप्ती (घनी निद्रा) से तत्काल उठे हुए पुरुष की दृष्टि में सर्व दृश्य (ससार) के अदृश्य भाववत अर्थात अदर्शन सरूप सरीखा सर्व प्रपच का ही अभाव भान हुआ करता है जिस स्वसंवेद्य रूप विज्ञानक अनुभव को चबानाथ जी ने प्रसिद्ध २ नाम लेकर प्रगट किया है कि कुछ नहीं सर्व एक मात्र ही है । (२) श्याम=कृष्ण (३) नम्र हुआ है । (४) जूती (खड़ाउ) । (५) अपनी गुप्त शक्ति प्रगट दर्शाई ।

जब कौंस चढी असमाने, तब सिद्ध भये हैराने ।
जब कौंस म्रिगानी मारी, तब सिडी रोय पुकारी ॥
जब कौंस होई अस्वारी[1], तब मुंद्रा फरूआ मारी ।
सभ भागी सिद्धां की मलतन[2], कौंस नानक की जलतन[3] ॥
जब सिद्ध शरमिंदे पोले[4], तब नानक हँसि हँसि बोले ॥
तब मगलनाथ न रहि सींघे[5] ॥
लगा कहन क्यौं गुरू गोरखनाथ जी देखिया नानक तपा ॥
ताँ गोरखनाथ बोलिया हाँ मंगलनाथजी देखिया नानक तपा ॥

॥ श्री गोरखनाथो वाच ॥

कै अगुल का गगन मॅडल है कै अकाश मैं तारे ।
कै हैं पत्र वनास्पती के इंद्र वर्पै कै धारे ॥
कै सेरा का[6] सुमेर पर्वत जग मैं रत्ती केती ।
केते कलि मैं देवा ॥
प्रणवै गोरख सुनहो नानक तुम आए कै बेरा ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

चार अंगुल का गगन मंडल है दो आकाश मैं तारे[7] ।
दो पत्र[8] वनास्पती के इंद्र वर्पै नऊँ[9] धारे ॥
स्वा सेर का सुमेर पर्वत है जग मैं रत्ती एका ।
एको कलि महिँ देवा ॥
प्रणवै नानक सुण हो गोरख हम आए एकै वेरा ॥

ता फेर खिचड़ा सिद्ध बोलिआ—सिद्ध खिचड़ा नाथो वाच ॥

कवन गुरू कवन चेला । कवन मूल कवन मेला ।
कवन वस्तु ले रहे अकेला ॥
काया कहि काहे की पंड । तिस ऊपर किस पुरुप की अंड[10] ।
कथी जो बोलै कथि कथि खाय।कहि शब्द हो नानक अमरापुर जाय

(१) सभ पर प्रबल भाई, आरूढ़ हुई । (२) मल्लतन=पहलवानी बहादुरी, शक्ति समूह । (३) जल्द २ कार्रवाई करने वाली । (४) हलके, लज्जित । (५) न रहि सका । (६) कितने सेर तोल में । (७) सुरत निरत । (८) दोदल कमल, भ्रुवचक्र को अलंकार के ढग से दर्शाया है । (९) नौं नाड़ी रस प्रवाहनी जिनकी योग में उपयोगता है । जिनका वरनन प्रथम हो चुका है । (१०) भाड़, हद (सीमा) से भाव है ।

॥ श्री गुरो वाच ॥

शब्द गुरू सुरति चेला । मन मूल पवन है मेला ।
तत्त वस्तु ले रहे अकेला ॥
काया पवन पानी की पड । तिस ऊपरि सत्त पुरुष की अंड ।
सचु कथिओ कथिया खाय । एह शब्द हो खिंथड़ा अमरापुर जाय॥

॥ खिथड नाथो वाच ॥

कवन सु नगरी कवन सुलतान । कवन सु लोक कवन परधान ॥
कवन सु राजा कवन सु महता[1] । देहु नानकजी नगर कीआँ बाताँ ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

कायाँ नगरी नाऊ[2] सुलतान । पच लोक बसैं परधान ॥
मनूआ राजा पवन है महता । लेहु खिंथडा नगरी कीआँ बाताँ ॥

॥ सिद्ध खिथडनाथो वाच ॥

कहाँ बसे मनूआ कहाँ बसै पवन । कवन ओटि[3] घटि ताल बजावै॥
पचाँ का गुरू कवन कवन भे गे अहारु । देहु नानक शब्द का वीचारु

॥ श्री गुरो वाच ॥

हिरदे वसै मनूआ नाभ वसै पवना। पवन की ओट घटि ताल बजावै
पचाँ का गुरू तत्तु,अगनि भोगे अहारु। लेहु खिंथड़ शब्द का वीचारु॥

॥ सिद्ध खिथडनाथो वाच ॥

कित मुख आए हो, कित मुख जाओगे ।
कै सै नाडी कै से सधि, काया शोपी करे पवन ॥
कवन मड़ी कवन अहारु, देहु नानक शब्द का वीचारु ।

॥ श्री गुरो वाच ॥

उत्तर[4] मुख आए हो दखण[5] मुख जाँहगे ।
नऊँ सै नाड़ी सोलाँ सै सधि निज शोपी[6] करे पवना ॥
असभू[7] मडी अचित दुआर । लेह खिंथड़ा शब्द का वीचारु ।

---

(१) मामला एकत्र करने वाला सरकारी आदमी जिसे वर्तमान में पटवारी कहते हैं यहां वजीर से भाव है । (२) चेतन पुरुष, बोलता पुरुष । (३) किसके सहारे । (४) ऊपर की ओर से सीमत चक्र भेदन द्वारा जीव का प्रवेश शरीर में हुआ है । (५) और सीमत चक्र की अपेक्षा सहसदल रूप दक्षण मुख से निज देश में जाना होगा । (६) तेजी—(आमो आई की) चालाकी कर है भाव श्वास प्रश्वास रूप मे पवन चले है । (७) सभू नाम स्वयभू = स्वत प्रकाश का नाम है उससे उलटी असभू पर प्रकाश्य रूप जड़ मड़ी यह शरीर रूप पिंड है इसमें अचित द्वार सहज घाट है ।

॥ सिद्ध खियड़नाथो वाच ॥

कित परचै[1] लागै बंध । कित परचै पड़ै नाहीं कॅध ।
कित परचै शशीअर फूटै । कित परचै माया मोह तूटै ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

मन परचै तौ लागै बंध । पवन परचै ताँ पड़ै न कध ॥
ज्ञान परचै तौ शशीअर फूटै । सतगुर परचै ताँ माया मोह तूटै ॥

॥ सिद्ध खियड़ो वाच ॥

अदेस तो किस कौ अदेसु, अदेस का कवन उपदेश ।
मन का कवन वेप, ज्ञान का गुरू कथीअले अवधूता ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

आदेस ताँ पूरे सतगुर कौ आदेस । पूरे सतगुरु का सच्चा उपदेश ।
मन का निरतर वेप । ज्ञान का गुरू सतोप ॥
सतगुर की चरनी लागीए पूता, तो इस बिध पावै मोप ॥

ता कर्म धूर्म आया पर भारी गुस्से नाल –

॥ धूर्मनाथो वाच ॥

अगनि जलावौं जल मैं डोवौं चिलकै[2] सार कुसाई ।
ऐसे दुख लगावौं हो तुम धर्ती बीच गडाई ॥
एक तमाचा मारौं ऐसा अंबर साथ रुलाई ।
ऐसा देखो जोर हमारा सगले पायें लगाई ॥
जो तूँ कह्या हमारा मानै नाहीं अबी करौं तुम छाई[3] ।
जेता जोर धरैं हम अपना तुझ को मालम नाहीं ॥
धूर्मनाथ कहै सुण नानक हमरी मान रजाई ।

॥ श्री गुरो वाच ॥

पहिरा[4] अगनि हिवै घरि बाँधा भोजन सार कराई ।
सगले दूख पानी करि पीवाँ धर्ती हाँकि चलाई ॥

(१) किस साधन से, किसके विगास भये । (२) अगनी में जला दूंगा, जल में डोर दूंगा और चमकती फ़ुलादी लोहे की (तलवार) से कोह (मार) डालूंगा । (३) भस्म । (४) रूठे घट वाले धूर्मनाथ ने (टिप्पण न० २-३ में) कैसे अयोग्य शब्दों में गुरु साहब को सख्त सुस्त कहा है अब गुरू साहब गम्भीर शाति से अपना निरभय (अनभउ) ज्ञान निरूपण करते हैं—हे धूर्म ! जिस अगनि का डर देता है यह तो मेरे हृदय मदिर (गगन

धर ताराजी अंबरि तोली पिछे टक चढाई ।
एवड[1] वडा मावाँ नाहीं सभ से नथ चलाई ॥
एता ताण होवै मनि अंदरि करीभि आखि कराई ।
जेवड साहिब तेवड दाती दे दे करे रजाई ॥
नानक नदरि करे जिस ऊपर सचनाम वडिआई ॥

॥ ऊरमी वाच ॥

ऊर्म बोले तत्त विरोलै सुण हो नानक मोदी[2] ।
क्यौंकरि वस्तु प्राप्त होई किन पाई तुम गोदी ॥
आख बखानै भेद न जानै गुर विन बूझ न होई ।
सिद्ध मिले विन बुद्धि न उपजै जन्म अकार्थ खोई ॥
ऊर्म कहे सुण नानक मूढे सतगुरु सिर पर थापो ।
गुर गोरख की चरणी लागो तउ तीन लोक महिं जापो ॥

मडल) में मेरा पहरा हर दम देती रहती है भाव अगनी तत्व का भी बीज रूप परम तत्व आदि निरजन रूप ज्योति मेरी सदा रखवाली है वहीं पर मेरी स्थिती है वहां अग्नि की गम ही नहीं। जिस फुलाद से मुझे काटने कहते हो मने तो उसका भक्षण ही कर रखा है भाव सुषमना नाड़ी जो सार की न्याई प्रदीप्तिमान है उसमें स्थित होकर मैंने नाम रस का पान कर लिया है—सार तो मेरी त्रिप्ती का कारन है उस से मुझको भय नहीं। प्राणों का तत्व रूप जो सूत्रात्मा अव्यक्त पद है उस में दृढ़ स्थिति करके मे सर्व अध्यात्म आदि दुखों को पानीवत पी जाता हू भाव दुख का सामना होते मे अव्यक्त पद में समाय जाता हू मुझ को किसी दुख का सपर्श ही नहीं होने पाता। धरती में गाड़ने का जो भय देते हो सो धरती की पिंड रूप देह तो मे जैसे हाक (भीतर से आवाज) मारता अर्थात प्रेरता हू वैसे ही चलती है, मेरी आज्ञा अनुसारिणी धरती भला मुझे कैसे अपने में लोप कर सकी है, और अगर आकाश को भी मैंने सुरत की तकड़ी पर शब्द का वट्टा डालकर तोल रखा है भाव आकाश को भी मैंने सुरत कमल में स्थित होकर उलघन कर रखा है आकाश में मेरा तुम क्या रला सक्के हो। (५) मैं इतना वड़ा हुआ हू भाव ऐसे पारावार रहित पद को प्राप्त हू कि किसी बडी से बड़ी महा आकाश आदि उपाधि में भी मे नहीं समा सका। बहुत क्या कहू कि सभ के नाथने वाले जगन्नाथ से मेरी अभेदता होने से मुझ में ऐसी सामर्थ्य है कि अपनी नाथ में सभ को नथ कर चला सकता हू। इतनी ताकत मेरे अन्दर है। करी भी (इसकी वर्तन=अनभउ मैंने किया भी है) और कहि कर कराया भी है, भाव मे (हे धूर्म) व्यर्थ डींग तेरे समान नहीं मारता किंतु अनुभविन वात (यथार्थ) ही मैंने कही है। इतना बल भी मेरे में है तथापि मे जानता हू कि जितना वड़ा वह साहिब है उतने वित्त की ही उसकी दात है। जिस पर नजर करता है वह अपनी रजा (भाणे) का मालिक उसे दान देता है, पर है यह सभ वड़ाई सच्चे नाम की ही। भाव सत्य नाम के प्रभाव से यह कृपालु पिता ऐसी दात करता है, यह तो सभ उसकी वस्तु है अभिमान क्या करू। (६) भडारी।

॥ सिद्ध सिधहनाथो वाच ॥

कित परचै[1] लागै वंध । कित परचै पड़ै नाहीं कंध ।
कित परचै शशीअर फूटै । कित परचै माया मोह तूटै ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

मन परचै तौ लागै वंध । पवन परचै ताँ पडै न कध ॥
ज्ञान परचै तौ शशीअर फूटै । सतगुर परचै ताँ माया मोह तूटै ॥

॥ सिद्ध सिधडो वाच ॥

अदेस तो किस कौ अदेसु, अदेस का कवन उपदेश ।
मन का कवन वेप, ज्ञान का गुरू कथीअले अवधूता ॥

॥ श्री गुरो वाच ॥

आदेस ताँ पूरे सतगुर कौ आदेस । पूरे सतगुरु का सच्चा उपदेश ।
मन का निरंतर वेप । ज्ञान का गुरू सतोप ॥
सतगुर की चरनी लागीए पूता, तो इस विध पायै मोप ॥

ता कर्म धूर्म आया पर भारी गुस्से नाल –

॥ धूर्मनाथो वाच ॥

अगनि जलावौं जल मैं डोबौं चिलकें सार कुसाई ।
ऐसे दुख लगावौं हो तुम धर्ती बीच गडाई ॥
एक तमाचा मारौं ऐसा अंबर साथ रुलाई ।
ऐसा देखो जोर हमारा सगले पायँ लगाई ॥
जो तूँ कह्या हमारा मानै नाहीं अवी करौं तुम छाई[3] ।
जेता जोर धरैं हम अपना तुझ को मालम नाहीं ॥
धूर्मनाथ कहै सुण नानक हमरी मान रजाई ।

॥ श्री गुरो वाच ॥

पहिरा[4] अगनि हिवै घरि बाँधा भोजन सार कराई ।
सगले दूख पानी करि पीवाँ धर्ती हाँकि चलाई ॥

(१) किस साधन से, किसके विगास भये । (२) अगनी में जला दूगा, जल में डोब दूगा और चमकती फुलादी लोहे की (तलवार) से कोह (मार) डालूगा । (३) भस्म । (४) रूखे घट वाले धूर्मनाथ ने (टिप्पण न० २-३ में) कैसे अयोग्य शब्दों में गुरु साहब को सप्त सुस्त कहा है और गुरू साहब गंभीर शांति से अपना निरभय (अनभउ) ज्ञान निरूपण करते हैं—हे धूर्म ! जिस अगनि का डर देता है वह तो मेरे हृदय मंदिर (गगन

घर ताराजी अंबरि तोली पिछे टक चढ़ाई ।
एवड' वट्टा मावाँ नाहीं सभ से नथ चलाई ॥
एता ताण होवै मनि अंदरि करीभि आखि कराई ।
जेवड साहिब तेवड दाती दे दे करे रजाई ॥
नानक नदरि करे जिस ऊपर सचनाम वडाई ॥

॥ ऊरमो वाच ॥

ऊर्म बोले तत्त विरोलै सुण हो नानक मोदी' ।
क्यौंकरि वस्तु प्राप्त होई किन पाई तुम गोदी ॥
आख वखानै भेद न जानै गुर बिन बूझ न होई ।
सिद्ध मिले बिन बुद्धि न उपजै जन्म अकार्थ खोई ॥
ऊर्म कहे सुण नानक मूढे सतगुरु सिर पर थापो ।
गुर गोरख की चरणी लागो तउ तीन लोक महिं जापो ॥

मडल) में मेरा पहरा हर दम देती रहती है भाव अगनी तत्व का भी बीज रूप परम तत्व आदि निरजन रूप ज्योति मेरी सदा रखवाली है वहीं पर मेरी स्थिती है वहां अग्नि की गम ही नहीं। जिस फुलाद से मुझे काटने कहते हो मने तो उसका भक्षण ही कर रखा है भाव सुषमना नाड़ी जो सार की न्याई प्रदीप्तिमान है उसमें स्थित होकर मैंने नाम रस का पान कर लिया है—सार तो मेरी त्रिप्ती का कारन है उस से मुझको भय नहीं। प्राणों का तत्व रूप जो सूत्रात्मा अव्यक्त पद है उस में दृढ़ स्थिति करके म सर्व अध्यात्म आदि दुखों को पानीवत पी जाता हू भाव दुख का सामना होते मे अ यक्त पद में समाय जाता हू मुझ को किसी दुख का सपर्श ही नहीं होने पाता। धरती में गाड़ने का जो भय देते हो सो धरती की पिंड रूप देह तो मे जैसे हाक (भीतर से आवाज) मारता अर्थात् प्रेरता हू वैसे ही चलती है मेरी आज्ञा अनुसारिणी धरती भला मुझे कैसे अपने में लोप कर सक्ती है, और अगर आकाश को भी मैंने सुरत की तकड़ी पर शब्द का वट्टा डालकर तोल रखा है भाव आकाश को भी मने सुरत कमल में स्थित होकर उलघन कर रखा है आकाश में मेरा तुम क्या रला सक्ते हो। (५) म इतना वड़ा हुआ हू भाव ऐसे पारावार रहित पद को प्राप्त हू कि किसी वड़ी से वड़ी महा आकाश आदि उपाधि में भी मै नहीं समा सक्ता। बहुत क्या कहू कि सभ के नाथने वाले जगनाथ से मेरी अभेदता होने से मुझ में ऐसी सामर्थ्य है कि अपनी नाथ में सभ को नथ कर चला सकता हू। इतनी ताकत मेरे अन्दर है। करी भी (इसकी वर्तन=अनभउ मैंने किया भी है) और कहि कर कराया भी है, भाव मैं (हे धूर्म) व्यर्थ डींग तेरे समान नहीं मारता किंतु अनुभविन बात (यथार्थ) ही मैंने कही है। इतना बल भी मेरे में है तथापि मैं जानता हू कि जितना वड़ा वह साहिब है उतने वित्त की ही उसकी दात है। जिस पर नजर करता है वह अपनी रजा (भाणे) का मालिक उसे दान देता है, पर है यह सभ वड़ाई सच्चे नाम की ही। भाव सत्य नाम के प्रभाव से वह कृपालू बिना ऐसी दात करता है, यह तो सभ उसकी वस्तु है अभिमान क्या करू। (६) भडारी।

॥ श्री गुरोवाच ॥

मोदी कहीए एकंकारा तीन लोक को पाले।
लख चौरासी जोनि उपाई जीअ जंत के नाले॥
तिसकी कृपाते वस्तु प्राप्ति गुर पूरे मिल पाई।
गुरु प्रसादी परम पछानिआ मैल न रहिआ काई॥
निर्मल बुद्धि सिद्धि सभ हाजर जन्म सकार्थ आया।
रज जननी की बूँद पिता मिल कर्ते थाट[1] वणाया॥
कहि नानक सुणि ऊर्म मूढे तैं विर्था जन्मु गवाया।
एकंकार गुरू नहीं जानिआ सुण गोरख भरमाया॥

॥ धगर नाथोवाच ॥

कवन महितारी कवन पिता। कवन गुरू कवन तू होता।
कवन देश कवन भेप, जगम कै जोगी, भोगी कै रोगी, हर्षी कै सोगी॥
प्रणवत गुर सुन रे बाले। कवन प्रगास किंह मिटै जंजाले[2] ॥७॥

॥ श्री गुरोवाच ॥

क्षमा महितारी सतोप पिता। सच गुरू कर्तार का होता॥
बेगमपुर देश सगले भेष, जगम न जोगी, भोगी न रोगी।
प्रणवत नानक सुणहो धंगर बाले।
ओअंकार प्रगास्या तब मिटे जंजाले॥

॥ गोरखनाथो वाच ॥

॥ रागु आसा ॥

मुद्रा पहिरो झोली लेहो, मस्तकि धूरि लगावउ।
सदा अजीती काया रहती, खिंथा अग हढावउ॥
हाथि फहोड़ी डंडा राखउ, तउ सिद्धा परतीता।
मेल मिलावउ संगि जमाती, इऊँ सगला जग जीता॥
आदेस कहो आदेसु, सभ सिद्धों कौ करहु आदेसु॥१॥

(१) बनावट, ठाठ। (२) कलीप, बखेड़े, धंधे।

॥ रहाउ ॥

भुगत लेहु भंडारा भुंचो मुख ते नाद बजावो।
नाऊँ नाथ होय बैठो जुगि जुगि रिद्धि सिद्धि बहुत लगावो।
सगल सिद्ध तुम आज्ञाकारी जोग सजोगी पावो॥
एक माउँ के पूता होवहु जुगति जोग के चेले।
संसार के भंडारी कहीओ तुम दीवान सगले॥
तुम सिर ऊपर अवरु न कोई होय रहो परधाना।
हुकुम तुमारा सभ ते ऊँचा इऊँ चलै फुरमाना॥
खड खंड महिं आसण वैसहु लेइ लेइ भंडारा।
लख चौरासी वचन मैं बाँधे रसना एक उजारा॥
कर कर वेखो अपना कीआ आपहि रिदै वीचारी।
प्रणवत गोरख सुण हो नानक ऐसी कार तुमारी॥

॥ श्रीगुरोवाच–रागु आसा महला १ ॥

मुन्द्रा सतोष शर्म पति झोली, ध्यान की करहि बिभूत।
खिथा काल कुआरी काया, जुगति डंडा परतीति।
आई पंथी सगल जमाती, मन जीते जगजीत॥
आदेस तिसै आदेस।
आदि अनील अनाद अनाहति जुगु जुगु एको वेस॥१॥

॥ रहाउ ॥

भुगति ज्ञान दया भंडारणि घटि घटि वाजहि नादि।
आप नाथ नाथी सभ जाकी रिद्धि सिद्धि अवरा सादि।
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भागु॥
एका माई जुगति व्याई तिन चेले परवाण।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीवाण।
ज्यों तिस भावे तिवैं चलावे ज्यों होवै फुरमाणु।
ओहु वेखै ओनाँ नदरि न आवै बहुता एह विडाणु[1]॥
आसण लोइ लोइ भंडार। जो किछु पाया सु एका वार॥
करि करि वेखै सिरजनहार। नानक सचे की साची कार॥

(१) आश्चर्य।

॥ श्री गोरखनाथो वाच ॥

अरे नानक बाला तूँ ईहाँ क्यों आया । तेरा कवन मनोर्थ
था । तूँ आपना मनोर्थ कहु । तेरा मनोर्थ पूरा करे हॉ?

॥ श्रीगुरो वाच ॥

एक मनोर्थ कीआ पूरा। जब हम कौ सतगुर मिलिआ सूरा॥
अवरु मनोर्थ रह्यो न कोई । सिद्ध बुद्ध भरमे सभ लोई॥
सुण गोरख तुझ दीक्षा देवऊँ। प्रणवत नानक साच समेवऊँ॥

ताँ गोरखनाथ भी चुप कर रह्या, ताँ मगलनाथ कह्या—गुरू गोरखनाथजी नानक तपे को उपदेश दीआ ? ताँ गोरखनाथ कह्या—हाँ मगलनाथजी हम कौंह को देखते थे । देखा पूर्ण पिंड है के काचा है । ताँ मगलनाथ कह्या—गुरू गोरख नाथजी जैसा देखीऐ तैसा बखानीऐ । फकीर का बिरद ऐसा है । ताँ गोरख नाथ कह्या—हाँ मगलनाथजी तुम सत्त वचन कहते हो । जाँ इतनीआँ गल्लाँ होंदीआँ ही सन कि प्राननाथ आसन तों उठकरि आया ।

॥ प्राननाथो वाच ॥

कतच[1] जुगता कतच भुगता, कतंच रहिबो अरोग ।
कतच लच्छन कतच पाइओ जोगं ।
प्रणहों तपा पूछत है प्रान पता, देह ज्वाब शुद्ध ॥

॥ श्रीगुरो वाच ॥

नाम भगता सत्त जुगता, द्रिढ़ता रहितो अरोगं ।
प्रीति लच्छण उपदेश अच्छण[2], प्रेम पायओ जोग ।
सुणो प्रान पता प्रणवै नानक तपा, लेहु उत्राब शुद्ध ॥

॥ प्राननाथो वाच ॥

धन्न हो तपा प्राणवे पता । धन्न हो सतगुरू सुधरता ॥

ताँ फेर प्राननाथ गुरू नानक जी दे चरणाँनू दौड़िआ । दुहाँ आप विच मत्थे टेके बहुत प्रसन्न होए । प्राननाथ वचन बोलिआ ॥

नानक तपाजी अब हम कौ निरंजन पुरुष का सवाधान दर्शन हूआ है तपाजी इस बचन मैं भिन्न भेद किछु नाहीं । ताँ गुरू नानकजी बचन बोले—प्राननाथजी तुम अरु निरंजन मैं भेद किछु नाही । हम तो इऊँही जाँचते हैं

---

(१) किस प्रकार की, कौन, कथच । (२) अच्छा, भला, दृढ़ ।

जो तुम निरजन की मूरति हो। सत्त प्रतीत करि जाणते हैं। ताँ प्राननाथ कह्या हाँ तपाजी तुम ऊपरि निरजन की औसेही कृपा है।

ताँ मगलनाथ कह्या–क्यो प्राननाथजी नानक तपा देखिआ। प्राननाथ कह्या हाँ मगलनाथजी! जैसा तुम कहिते थे तैसाही देखिआ। हम तो इउँही जानते हैं जो निरजन का दर्शन पाया। आगे तुमरी तुम जानो। ताँ मगलनाथ कह्या नाथजी जो निरजन (ने) साध कीए हैं, तिनो और निरजनो[1] मैं भेद किछु नाहीं। हाँ गुरू मगलनाथजी तुम पूर्न वचन कहते हो। प्राननाथ आपने आसन जाय बैठा। ताँ सिद्ध बोले–बालिआ असाँ कहा तै समझिआ है। पर तेरा कह्या असाडी समझ विच नहीं आवदाँ। ताँ बाबा बोलिआ–सिद्धो तुसानू छे २ ग्रह इक इकस[2] नो लगे होए हैं। ते भरथरी नू नव ग्रह हैनि। जाँ इतनी गल्ल आखी भरथरी की बिंद झर पई। ते बहु रोवन लागा। ताँ मछिंद्रनाथ म्रिगानी मारी ते आखिओ सु क्यो रोवता है। सानू भी ताँ छे २ ग्रह आखदा है। सानू ताँ पुछण देह। सिद्ध बोले–तपाजी! कौन २ ग्रह, बोलीए? ताँ बाबा बोलिया —

विषया अम्रित सम कर जाणु। ताँका बोलिआ दरगह परवाणु॥

ए सिद्धो! तुसी स्वादी हो, सुकृती नाही। प्रिथमे अहार को धावते हो अहार पाय कै कृत्कृत्य मानते हो॥ १॥ दुतिये त्रिषा सतावती है तौ पाणी को धावते हो॥ २॥ त्रितिया धूप व्यापती है ताँ छाया को धावते हो॥ ३॥ चौथे निद्रा व्यापती है ताँ सोवणे को धावते हो॥ ४॥ पजवे शीत व्यापती है ताँ गरमी को चाहते हो॥ ५॥ छठे काम ग्रह है–बिंद गिरती है ताँ रोवते हो॥ ६॥ ताँ सिद्ध बोले–भरथरी के नौं ग्रह कौन हैं? ताँ बावे कह्या छे ग्रह तुसाडे वाले, ते रात को सारी[3] खेलीती है। दिन को किंगुरी ग्रह लगा होया है। चितवनी विर्था धावती है। जोग जुडता नही। नाथ निरजन निरारा रहता है॥ ता इहवाक सुण करि तर्क खाय कै म्रिगानी के रथा पर बैठ करि समुन्द्र के पार कौ उड गये। ताँ बाबा ते बाला कढे उते खडे रहे॥ ता सिद्धा कहा नानक तपा पार रहा। ताँ इक म्रिगानी श्री गोरखनाथजी ने भेजी जो इस पर चढि कै आवहु॥ तद बावे कह्या असी म्रिगानी के भरोसे नही–असी कर्तार के भरोसे हाँ। ताँ म्रिगानी उड गई॥ बावे कह्या बालिआ चलु असी भी चलीए। ताँ बाले कह्या गुरूजी इह समुद्र खारा है॥ तद बाबा बाले नू नाल लैकर सेक पेक सीढ़ाँ सभे पढी खडावी समुन्द्र उत्तै चले॥ जाय सिद्धा विच पहुते। बावे को देखकर सिद्ध हैरान होए। सगल सिद्धाँ अगो बावे जोग अदेस २ आ कीती। आखिओ ने आईए जी जगत

(१) अदव के वास्ते बहुवचन दिया है। (२) प्रयेक, हरएकको। (३) नरदों की बाजी, चोपड़।

गुरू। ताँ बाबा बैठ गए। तित समें सभे सिद्ध अहार लगे करन। ते भरथरं आखिआ बालिआ जल लैआओ। ताँ भरथरी बकडोल लैकर चलिआ। मण पक्के का डोल चौसठ डोल पवनि। सुपारी सिर पर धरै उस पर ब रख कै ले आवते थे तिस दिन श्री बाबेजी कहा चल भरथरी अज स्पर्शों ते चलदे हा। ताँ बाबा ते भरथरी पाणी को गए। बाबा भरे विचो डोल कि डोल विच पावदा जावे। भरथरी बक डोल थम रखे। जाँ भर गया ताँ भी पावताही जावै ते पानी गिरता जावै। ताँ भरथरी कह्या गुरूजी पाणी विर्थो जाँ ता बावे कह्या तुम क्यो दिलगीर होता है। बक डोल तौ भरिआ है। ता समझिआ। ता बाबा बक डोल इक हथ पर ले चले। आगे मार्ग मैं कुर डार जाती थी। इक मिरगणी पर चढा हूआ काम कलोल करता जाता है भरथरी कहा रे मिरग! क्यो कलोल बिषे रचिआ है नरक का अधिकारी है। ता मिरग कहा मेरी ताँ स्त्री है, मु झको दोष कोई नही, पर तू नरक विषै प परै तउ ससै नाहीं। क्यो जु कमलापति राजे की बेटी साथ दो बारी तेरा होया है। ते इक वार अज होणा है। जे अज ना होवेगा ता तू नरकगामी है इह नेत है। ता भरथरी कह्या हे म्रिग ओह अस्थान केते कोह है म्रिग वख्या छिआनवें क्रोड कोह है। ता भरथरी अति चितावान है जा सिद्धा विच जल दित्ता ते भरथरी आखिआ हे भाई सिद्धो नाथो ज जो कोई मेरा गुरू गुसाईं होवै अब मेरी रखिआ करै ताँ यह बात सुणक सिद्ध दिलगीर होए। जो भाई अज ता कोई पहुच नाही सका ता भरथर दिलगीर डिठा बहुत, श्री बाबा जी दयाल पुरुष करुणा कर बोलते भए भरथरी दिन बहुत है तू मत दिलगीर होहु। हम तुमारे साथ चलते हैं ता रथ कथा आसा[२] का—कलदरी बाना। भरथरी रथ कीआ डडे का। सिद्ध आदेश करकै रथा पर बैठ के उडे। एक जोजन सूरज ते उड गए जहा चपाहना राजे कै नगर जाय उतरे। ता बाबा ते बाला इस्नान की सिध भरथरी की स्पाज्ञा करी कि तुम बाग मे जाओ। ते उह गया (भरथरी)। विच कूपा है जहा कवलापति इस्नान करन आवती है तुम भी जाओ। भ के पग महिं पदम देख कै कमलापति स्पचला गहि ठाँढी भई। कहन लागी जी तुम हमारे भरता हो। तुम कहा आते हो। आज की निशा (रात्रि) ह तुमारा सजोग है। कवलापति की चेरीआ जाय खबर पहुचाई, कवला की

---

(१) भरथरी को वीर्य गिरने पर रोते जानकर गुरू साहब उसे शिक्षा कर रहे हैं प्रदाने (प्रमाण) से यदि भर कर वीर्य उछल गया तो हो क्या गया जिससे रोते हो। (२) मैं या ठोड़ी के तले टेक देकर बैठने या खड़े होने की बैरागन लकड़ी का नाम आसा है।

ही को, कि एक अतीत आया है उसके सग तुमारी बेटी जाती है। रूप सैन कवलापति का भाई था, मन महिं क्रोध करके खड़ा लेकर भरथरी को मारने को चलिआ। जाय करि भरथरी का मुंह काट डारिआ पर बहुडि मुह आय जुडिआ आधा काठ तले दीआ आधा ऊपर दीआ, देकर अगनि जलाय दीनी। भरथरी उठके कवलापति के धवल[1] ऊपर जाय बैठा। इक दूती ने कहा जी इहु जोगी चेटकी[2] है। इस को सगल डाल कै सूली देहु। ता बाबे, बाले को कहा भरथरी की खबर लेहु। ता बाले कह्या बाबा मिहरबान जी ! अब भरथरी मारीता है। ता बाबे कह्या चल बाले असीं भी चलहिं, भरथरी पास। जा बाबा बाग विच वडिआ, सूली पर द्रिष्ट पड़ी, सूली हरी होई। तां जूना राजे पूछना करी बाले जोग-जु एह पुरुष कवन है ? ता बाले कह्या कलदरी रूप श्री बाबा नानक है। एह भरथरी है। ता बाला बोलिआ तुमारी बेटी दुइ बारी आगे भरथरी सग व्याही है, तीसरी बारी अब आए हैं। तब राजे चरन बदना करी। जी कुछ जग[3] का समान करीऐ। तब बाबा बोलिआ भला राजा जी। ते बाबे निरकार कै आगे चरन बदना करी—जी मिहरबान जी ! इह छिआनवैं क्रोडी मेघ माला है तुमारी-एहु हमारे को चाहीती है, क्रपा करके भेजहु जी। निरकार दे भेजी—बाबे को। अब तो इन के अहार का किछु ता समान करीए। तब राजे बाबे को चरन बदना करी जी मुझ महिं चूक परी है। तब बाबे भरथरी को कह्या एहु बटूआ खोलहु। बटूए बीच सिऊ एक जऊ निकसिआ। ता बाबा निरकार की अराध कै आकाश को उलटिया। कई सहस्र मण पुज हो आए। सबे जीआ अहार कीआ। ता कवलापति का विवाहु होया। ता बाले कह्या कवलापति को — सिधारहिगे, एह जावते हैं। अक भेटी लेहि (नहीं तौ पछुताहिगी। तद बाबा नानक अते भरथरी सिधारने लगे तां कवलापति रोवने लागी। ते बाबे आगे अरदास करी मिहरबान जी हमको कौण आज्ञा है हमको तुम छोडि चले हो मैं भी तुम सग सिधारती हौ। ता बाबे कह्या सोलह हजार बर्खां तपस्या करहिं ता हमारे सग समावहि। ता बाबे नानक अते भरथरी ने कह्या। अभी तुमारा पिछ कच्चा है। तब कवला बाले[4] को भोछण[5] दीआ। जी हमारी निशानी ले जाहु। तब बाले भोछण लीआ तब रथ चले नाहीं। तब बाबे बाले को पूछणा करी। ता बाले कह्या जी एक भोछण ले आयो हौ, ता बाबे कह्या बहुडि दे आ ! ओह। ता बाले कह्या मैं इत मुह आदा है। फिर क्यो कर ले जाओ, उह। ता बाबे बाले

(१) महल। (२) मदारी, इन्द्रजाली। (३) जनवासा। (४) एक पुरातन जन्म साखी में इस जगह मरदाने का नाम है, और आगे से जवाब देने का स्वभाव भी उसी का ही था। (५) स्त्रियों के ऊपर लेने का दोपटा, अचला, चूनरी।

के मुह हाथ लगाया तब दाढी चिट्टी हो गई। ता बाला दे आया; रथ चलिआ। सिद्धाँ पास जाय पहुचे। ते सिद्धा अदेश करिआ। बावे उपदेश कीआ। तित महल श्री मछिंद्र नाथ बैठे आए हैसनि। ता श्री मछिंद्र नाथ कह्या तपा जी! ससार केहा डिठो। कित विधि भवसागर तरिआ हई। ता बावे शब्द बोलिआ-

॥ रागु रामकली महला १ ॥

जित दरि वसहि कौन दर कहीए दराँ भीतर दर कौन लहै।
जिस दर कारण फिरहि उदासी सो दर कोई आन कहै ॥१॥
किन विधि सागर तरीए। जीवदिआँही मरीए॥ १ रहाउ॥
दुख दरवाजा रोह[1] रखवाली आस अंदेसा दुइ पाट चढे।
माया जल खाई पाणी घरि बाधिया सत के आसण पुरुष रहै॥
केते नाम तेरे अंत न पाया तुम सर नाहीं अवर हरे।
ऊचा नहीं कहणा मन महिं रहणा आपे जाणै आप करे ॥३॥
जब लग आस अँदेसा तबही किँव करि एक कहै।
आसा भीतर रहै निरासा तउ नानक एक मिलै ॥४॥
इत विधि सागर तरीए। जीवतिआं इऊं मरीए ॥ १ रहाउ॥

ता मछिंद्र नाथ कह्या तपा जी जोगीशर बहुत कहते हैंनि जु तपा जी भेष नाही रखदे ते जोगीशरादे महा जोगी हैं। सो तुम सिड़ी रखा करो। ते गोरख जागै इह बोली बोलिआ करो। झोली पत्र जोगीशरादी रहरास है। ता बावे तित महल शब्द बोलिया—

॥ रामकली महला १ ॥

सुरति शब्द साखी मेरी सिडी बाजे लोक सुणे।
पत झोली मंगण कै ताँई भिक्षा नामु पड़ै ॥
बाबा गोरख जागै।
गोरख सो जिन गोय उठाली करते बार न लागै ॥१॥

॥ रहाउ ॥

पाणी पउण प्राण बंधि राखे चद सूर्ज मुख दीवे।
मरण जीवण कै धरती दीनी एते गुन विसरे ॥२॥

---

(१) रोस, क्रोध।

सिद्ध साधिक अरु जोगी जंगम पीर पुरुष बहुतेरे ।
जे नाम मिले ताकी गति आखाँ ताँ मन सेव करे॥३॥
कागद लूण रहै घ्रित सगे जैसे पाणी कवल रहै ।
ऐसे भगत मिलहि जन नानक तिन जम कक्कर कहा करै ॥४॥

तब मछंद्र बोलिआ । आखिओस नानक[1] जोग तै, जो डोलने ते रहे । तदहु गुरू शब्द बोलिआ –

॥ रागु रामकली महला १ ॥

सुण माछंद्रा नानक बोलै, वसगति पंच करै नाहीं डोलै ॥
ऐसी जुगति जोग कउ पाले, आप तरे सगले कुल तारे ॥
सो अवधू ऐसी मति पाए । अहि निश सुद्ध समाधि लगाए॥१

॥ रहाउ ॥

भिक्षा भाउ भगति भाइ चलै । होवै त्रिप्त सतोष अमुलै ॥
ध्यान रूप होय आसण पाए । साच नाम ताडी चित लाए ॥२॥
नानक बोलै अम्रित बाणी । सुण माछद्र अवधू नीशाणी ॥
आसा माहि निरास वलाए । ताँ निहचउ करते की पाए ॥३॥
प्रणवत नानक अगम सुणाए । दीक्षा भोजन दारू खाए ॥
छिअ दर्शन की सोझी पाए ॥४॥

तदहु गोरखनाथ बेनती कीती आखिओस,[1] जीउ ! गुर पीरी तुसीं भी रहरास है आदि जुगादि चली आई है । तब बाबे आखिआ कवन गुरु करहि, गोरख नाथ ! तब गोरखनाथ आखिआ जी ओह ऐसा कवण है जो तुमारे मथे हथ धरै पर उह भी जो तुमारे अंग[2] ते पैदा होवेगा । तब आखिआ भला होवै । तदहु बाबा रमता रह्या । बाणी पैदो घेहेर जट लिखी । बोलहु "वाहगुरू" ।

इति श्री प्राणसंगली श्री गुरू ग्रंथे मार्ग वृत्तांत प्रकाश
सिद्ध गोष्टि वर्णन सप्तमोध्याउ समाप्त ॥७॥

(१) और कहा । (२) इसी ते ही लहणा जी को अगद रूप में अपने अंगों ते प्रगट करके गुरता की पदवी बखशी । और उस निज सिक्ख को अपनी गुरू गादी पर बिठला कर स्वयं नमस्कार किया ।

त्रुटि पूर्त्ति और शुद्धि

दूसरे अध्याय में नीचे लिखी पौडियाँ जो प्रथम भाग के छपने पर एक प्रमाणिक लिपि में मिलीं शामिल होनी चाहियें –

१ (क) पृष्ठ १४ पर प्रथम की दो पौडियों के पहिले यह दो पौडियाँ आनी चाहियें और १ से ४९ नम्बर तक की पौडियों का नम्बर बदल कर ३ से ५१ तक होना चाहिये–

नउँ नाड़ी की रहत वताई । कवन कवन वाके नाउँ सुनाई ॥
वाके नाउँ वतावे सोई सूरा । प्राण पिंड सोधे सो पूरा ॥
सो सूरा वलवत ज्ञानी । प्राण पिंड की जिन मिति जानी ॥
अगम पिंड जिन सहजि बीचारिआ । सो जन जलाबिब ते तारिआ ॥१॥
सहजि विचारिआ अगमा थेहु । नानक सो जन पूरा जिनि चीनिआ देहु ॥
नउँ नाडी सव कोई कहै । सोधि विचारि कोई विरला लहै ॥
जो लहै तिस कौ मिति आवै । नउँ नाडी को मिति सोई पावै ॥
कवन मियादा कवन वधेजु । कवन शीत कवन राखै तेज ॥
कवन सूखम कवन अस्थूला । कवन सु अस्थिर कवन डूला ॥
कवन पेती कवन है वाई । नउँ नाडी की किन मिति पाई ॥
जिन मिति पाई सोई पूरे । नानक उनकी वाँछै धूरे ॥२॥

---

१ (ख) पृष्ठ २७ पर छपे नम्बर ४९ की पौडी के आगे यह पौडियाँ आनी चाहियें जिससे इनके आगे की पौडी का छपा हुआ नम्बर ५० वदल कर ५५ हो जायगा –

आगे ध्यान चले

चौनी ध्यान जब इहु मन जाई । तन महि चौनी कर्म कमाई॥
चौनी संजम जब मनु जाता । ध्यान धार सभ ब्रह्म पछाता ॥
चौनी ध्यान सभ जोत पछानी । चौनी ध्यान धरै जन ध्यानी॥
चौनी महि सभ जोत दिखाई । तउ नानक चौनी सिउँ धुनि लाई॥५२

त्रिकुटा ध्यान तीन गुन त्यागै। चौथे पद कौ जन वैरागै ॥
तीन रहन की रहत त्यागी। जब त्रिकुटा ध्यान धरया
राजस तामस सातक तजै। हरि जन शब्द अनाहद भजै ॥
अनहद रचिआ अवरु नहीं जानहि। जब त्रिकुटा माहि पदोआ तानहि।
उन्मन ध्यानु जन उन संगि राता। नानक उन बिन जन मनि न कहता
ब्रह्म ध्यान जन महि जी राता। सभ महि एको ब्रह्म पछाता।
आन न जानै एका गही। तब ब्रह्म ध्यान मन होया सही ॥
ब्रह्म होय ब्रह्म रलि जाय। ब्रह्म ध्यान की तब मित पाय ॥
ब्रह्म पछान ब्रह्म को आवै। तउ नानक ब्रह्म ध्यान लगावै ॥५१

---

१ (ग) पृष्ठ ३१ पर छपे नम्बर ६८ की पौडी के आगे यह पौडी आनी चाहिये और आगे के छपे नम्बर ६९ आदि बदल कर ७५ इत्यादि हो जाने चाहियें-

इड़ा पिगला नाड़ी कीआ। सुषमन के घर जाय समीआ ॥
षट दल सोधै चहुँ के माँझ। दुहँ त्रिहँ मिल कीनी इक साँझ॥
दल ऊगल ते भया निरारा। दुइ दस मैं लै कीआ पसारा ॥
तज पसार मनु दसवैं जाई। नानक ता कउ कालु न खाई ॥७४॥

पाठक महाशयों की सेवा में प्रार्थना है कि इस पुस्तक-माला के जो दोष उनकी दृष्टि में आवें उन्हें हमको कृपा करके लिख भेजें जिस में वह दूसरे छापे में दूर कर दिये जावें और जो दुर्लभ ग्रंथ सतबानी के उन को मिलें उन्हें भेज कर इस परोपकार के काम में सहायता करें।

यद्यपि ऊपर लिखे हुए कारनों से इन पुस्तकों के छापने में बहुत खर्च होता है तौ भी सर्वसाधारन के उपकार हेतु दाम प्रायः आध आना फ़ी आठ पृष्ठ रायल से अधिक किसी का नहीं रक्खा गया है। जो लोग सबसक्रैबर अर्थात पक्के गाहक होकर कुछ पेशगी जमा कर देंगे जिस की तादाद दो रुपये से कम न हो उन्हें एक चौथाई कम दाम पर जो पुस्तकें आगे छपेंगी बिना माँगे भेज दी जायेंगी यानी रुपये में चार आना छोड़ दिया जायगा परन्तु डाक महसूल उनके जिम्मे होगा और पेशगी दाम न देने की हालत में वी० पी० कमिशन भी उन्हें देना पड़ेगा। जो पुस्तकें अब तक छप गई हैं (जिनके नाम आगे लिखे हैं) सब एक साथ लेने से भी पक्के गाहकों के लिये दाम में एक चौथाई की कमी कर दी जायगी पर डाक महसूल और वी० पी० कमिशन लिया जायगा।

अब गुरू नानक साहेब की प्राणसंगली का दूसरा भाग हाथ में लिया गया है और सिलसिलेवार शेष भाग भी छापे जायेंगे जब तक वह ग्रंथ पूरा न हो जाय। उसी के साथ एक और ग्रंथ नीचे लिखे हुए क्रम से छापा जायगा—दादू दयाल की बाणी, कबीर शब्दावली भाग ३ और ४, बिहार वाले दरिया साहेब के चुने हुए शब्द और साखियाँ, दूलम-दास जी के थोड़े से पद।

प्रोप्राइटर, बेलवेडियर छापाखाना,

सितम्बर, १९१२ ई० —इलाहाबाद।

फ़ेहरिस्त संतबानी पुस्तक-माला की

तुलसी साहेब (हाथरस वाले) की शब्दावली और जीवन-चरित्र — २)
तुलसी साहेब (हाथरस वाले) का रत्नसागर मय जीवन-चरित्र — |||≈)
तुलसी साहेब (हाथरस वाले) की घट रामायन दो भागों में, मय जीवन-चरित्र के, पहिला भाग — १)
तुलसी साहेब (हाथरस वाले) की घट रामायन, दूसरा भाग — १)
गुरू नानक साहेब की प्राण-संगली सटिप्पण (प्रथम भाग) मय जीवन-चरित्र के — १)
गरीबदासजी (जिला रोहतक, पंजाब) की बानी और जीवन-चरित्र — ||≈)
कबीर साहेब का साखी-संग्रह (८४ अंग और २१५२ साखियाँ) — |||)||
कबीर साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र, भाग १ दूसरा एडि० — ||)
कबीर साहेब की शब्दावली भाग २ — ||≈)
" " ज्ञान-गुदड़ी व रेख़ते — ≈)
" " अखरावती — -)
धनी धरमदास जी की शब्दावली और जीवन-चरित्र — |≈)
पलटू साहेब की शब्दावली (कुंडलिया इत्यादि) और जीवन-चरित्र, भाग १ — ||)
पलटू साहेब की शब्दावली, भाग २ — |-)||
चरनदासजी की बानी और जीवन-चरित्र, भाग १ — ||)||
चरनदासजी की बानी, भाग २
रैदासजी की बानी और जीवन-चरित्र
जगजीवन साहेब की शब्दावली और जीवन चरित्र, भाग १
जगजीवन सा० की शब्दावली, भाग २
दरिया साहेब (बिहार वाले) का दरिया सागर और जीवन-चरित्र
दरिया साहेब (मारवाड़ वाले) की बानी और जीवन-चरित्र
भीखा साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र
गुलाल साहेब (भीखा साहेब के गुरु) की बानी और जीवन-चरित्र
मीरा बाई की शब्दावली और जीवन-चरित्र
सहजो बाई की बानी और जीवन-चरित्र
दया बाई की बानी और जीवन-चरित्र
गुसाँई तुलसीदासजी की बारहमासी
यारी साहेब की रत्नावली और जीवन चरित्र
बुल्ला साहेब का शब्दसार और जीवन चरित्र
केशवदासजी की अमीघूँट और जीवन चरित्र
धरनीदासजी की बानी और जीवन चरित्र
अहिल्याबाई का जीवन-चरित्र अँग्रेजी पद्य में — =)

मूल्य में डाक महसूल वेल्यु पेएबल-कमिशन शामिल नहीं है।

पुस्तक मिलने का ठिकाना—

मेनेजर, बेल्वेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स्

इलाहाबाद।

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

श्री

प्राण-संगली सटिप्पण

(द्वितीय भाग)

श्री गुरू नानक साहब विरचित प्राणो का अपूर्व कवच

जो

सुरत शब्द-योग साधन प्रसिद्ध अमोघ तारों
से रचा हुआ काल कर्म माया कृत
विघ्नों से गुरमुखों का सुरक्षक
तथा हितकर है

जिसको

गुरुमुखी अक्षरों से भाषा अक्षरों में टिप्पण
सहित तय्यार करके गुरु साहब के संक्षिप्त
जीवन-चरित्र समेत संत सम्पूरण सिंह
ने प्रेम प्रसाद रूप से
अर्पण किया

जिसे मालिक बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद ने अपने खर्च से
अपने यन्त्रालय में प्रकाशित किया।

Allahabad

PRINTED AT THE BELVEDERE STEAM PRINTING WORKS,
BY E. HALL

1913

प्रथम बार १०००] [दाम ?]

फ़ेहरिस्त संतबानी पुस्तक-माला की

तुलसी साहेब (हाथरस वाले) की शब्दावली और जीवन-चरित्र ॥)
तुलसी साहेब (हाथरस वाले) का रत्नसागर मय जीवन-चरित्र ॥।≈)
तुलसी साहेब (हाथरस वाले) की घट रामायन दो भागों में, मय जीवन-चरित्र के, पहिला भाग १)
तुलसी साहेब (हाथरस वाले) की घट रामायन, दूसरा भाग १)
गुरू नानक साहेब की प्राण सगली सटिप्पण (प्रथम भाग) मय जीवन-चरित्र के १)
गरीबदासजी (जिला रोहतक, पंजाब) की बानी और जीवन-चरित्र ॥।≈)
कबीर साहेब का साखी-संग्रह (८४ अंग और २१५२ साखियाँ) ॥।)॥
कबीर साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र, भाग १ दूसरा एडि० ॥।)
कबीर साहेब की शब्दावली भाग २ ॥≈)
" " ज्ञान-गुदड़ी व रेखते ≡)
" " अखरावती -)
धनी धरमदास जी की शब्दावली और जीवन-चरित्र ।≈)
पलटू साहेब की शब्दावली (कुंडलिया इत्यादि) और जीवन-चरित्र, भाग १ ॥)
पलटू साहेब की शब्दावली, भाग २ ।-)॥
चरनदासजी की बानी और जीवन-चरित्र, भाग १ ॥)॥
चरनदासजी की बानी, भाग २
रैदासजी की बानी और जीवन-चरित्र
जगजीवन साहेब की शब्दावली और जीवन चरित्र, भाग १
जगजीवन सा० की शब्दावली, भाग २
दरिया साहेब (बिहार वाले) का दरिया सागर और जीवन-चरित्र
दरिया साहेब (मारवाड़ वाले) की बानी और जीवन-चरित्र
भीखा साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र
गुलाल साहेब (भीखा साहेब के गुरु) की बानी और जीवन-चरित्र
मीरा बाई की शब्दावली और जीवन-चरित्र
सहजो बाई की बानी और जीवन-चरित्र
दया बाई की बानी और जीवन-चरित्र
गुसाँई तुलसीदासजी की बारहमासी
यारी साहेब की रत्नावली और जीवन-चरित्र
बुल्ला साहेब का शब्दसार और जीवन-चरित्र
केशवदासजी की अमीघूट और जीवन चरित्र
धरनीदासजी की बानी और जीवन चरित्र
अहिल्याबाई का जीवन-चरित्र अँग्रेजी पद्य में

मूल्य में डाक महसूल वेल्यु पेअबल कमिशन शामिल नहीं है।

पुस्तक मिलने का ठिकाना—

मैनेजर, बेल्वेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स्

इलाहाबाद।

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

सूचीपत्र

श्री प्राण-सगली दूसरा भाग

निवेदन

संतबानी पुस्तक-माला के छापने का अभिप्राय जक्त-प्रसिद्ध महात्माओं की बानी व उपदेश को जिन का लोप होता जाता है बचा लेने का है। अब तक जितनी बानियाँ हम ने छापी हैं उन में से विशेष तो पहिले छपी ही नहीं थीं और कोई २ जो छपी थीं तो ऐसे छिन्न भिन्न और बेजोड़ रूप में या छेपक त्रुटि या ग़लती से भरी हुई कि उन से पूरा लाभ नहीं उठ सकता था।

हमने देश देशान्तर से बड़े परिश्रम और व्यय के साथ ऐसे हस्तलिखित दुर्लभ ग्रंथ या फुटकर शब्द जहाँ तक मिल सके असल या नकल कराके मँगवाये हैं और यह कार्रवाई बराबर जारी है। भर सक तो पूरे ग्रंथ मँगा कर छापे जाते हैं और फुटकर शब्दों की हालत में सर्व साधारण के उपकारक पद चुन लिये जाते हैं। कोई पुस्तक बिना कई लिपियों का मुकाबला किये और ठीक रीति से शोधे नहीं छापी जाती, ऐसा नहीं होता कि औरों के छापे हुए ग्रन्थों की भाँति बेसमझे और बेजाँचे छाप दी जाय। लिपि के शोधने में प्रायः उन्हीं ग्रंथकार महात्मा के पंथ के जानकार अनुयायी से सहायता ली जाती है और शब्दों के चुनने में यह भी ध्यान रक्खा जाता है कि वह सर्व साधारन की रुचि के अनुसार और ऐसे मनोहर और हृदय-बेधक हों जिन से आँख हटाने को जी न चाहे और अंत:करन शुद्ध हो।

कई बरस से यह पुस्तक-माला छप रही है और जो जो कसरें जान पड़ती हैं वह आगे के लिये दूर की जाती हैं। कठिन और अनूठे शब्दों के अर्थ और संकेत नोट में दे दिये जाते हैं। जिन महात्मा की बानी है उन का जीवन-चरित्र भी साथ ही छापा जाता है और जिन भक्तों और महापुरुषों के नाम किसी बानी में आये हैं उन के संक्षेप वृत्तांत और कौतुक फुट-नोट में लिख दिये जाते हैं।

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

सूचीपत्र

श्री प्राण-सगली दूसरा भाग

उत्थानिका प्राप्त.नाँ हुई होगी, या मिलने पर भी वर्तमान काल की कुतार्किक बुद्धियों को अनुमान करके, उन्हौंने इसका उपयोगी सारांश ले लिया होगा। सो हम अपनी निर्संशयता प्राप्ती के विचार को यहाँ निवेदित करके आशा करते हैं कि द्विविध उत्थानिका मैं संशयापन्न पाठक भी अब संशय से रहित हो जावेगे।

कई एक गुरमुखों को यिह पूछने का भी अवसर मिला है कि इतने बड़े परिश्रम के साथ इस परम पवित्र ग्रंथ को मँगाकर भी फिर श्री गुरू अर्जुनदेव जी ने इसे श्री गुरू ग्रंथ साहब की बीड़ मैं क्यों नाँ गुथन किया? जिसका उत्तर हमारी तुच्छ बुद्धि मैं यिह स्फुरता है कि यावत् परमार्थी विद्या है सो दो प्रकार की है:-- एक शास्त्रीय अर्थात् किताबी और दूसरी हारदिक अर्थात् जिसका संबंध हृदय ही के साथ रहता है, भाव क्या कि एक सर्वत्र अधिकारी मात्र के कृतार्थ कर्ता उपदेश होते हैं, दूसरे किसी विशेष अधिकारी के नमित्त उच्चारे गए वचन। सो श्री गुरू ग्रंथ साहब के परम गंभीर तथा अत्युच्च विशाल अनुभव वान अमृत मई वचन बहुत करके सर्व देश, सर्व काल तथा सर्व अवस्था मैं सर्व प्रकार के अधिकारियों की शिष्यक कोटी के हैं, प्रतु स्वसंवेद्यात्मक तथा पिंड ब्रह्मांड और इनके पार पारावार रहित भेद दर्शायक श्री प्राणसंगली की अमोलक वाणी व्यर्थ टेकों मैं फँसे हुए, कर्म धर्म आदि आचार को ही कल्याण मूलक मानकर (उन मैं) प्रवृत्त तथा आदि पुरुष से भ्रांत, अपने रत्न जन्म को वृथा गँवाते पडे राजा शिवनाभ जी जैसे, पूर्णतः तन मन धन को सतिगुरों के नाम पर वार देने वाले अनन्य अधिकारियों के नमित्त ही विशेष करके उच्चारण हुई है। इस कारण श्री गुरू ग्रंथ साहब के साथ श्री गुरु पंचम साहब ने इसे सहवासित नहीं ठहिराया॥ इसमैं दूसरा हेतु यिह भी

जान पड़ता है कि इस ग्रंथ मैं कहीं २ बीच २ ऋद्धि सिद्धि आदि प्राप्ति के विशेप २ उपाव निरूपित हैं, जिन से कि कलियुगी लोगौं के प्रवृत्ति मार्ग मैं ही वारवार गिरते रहने की सभावना हो सक्ती थी; जिस करके कि केवल भगवत प्रायण करने मैं ही उद्यत गुरवाणी की बीड के योग्य इसे नॉ समझा गया।

तीसरा कारण और भी है:-श्री गुरू ग्रंथ साहब विवेक वैराग्य, भक्ति योग तथा ज्ञान आदि गुह्य रत्नौं का भंडार है, जिस पर मुदावनी की मोहर छाप का ताला गुरू साहब ने लगा दिया है, सो जिस प्रकार एक चाबी तो ,पजानची के पास होती है और एक पास सरकारी चाबी 'प्रवधक पंजानों अथवा स्वयं कलकटर के पास' इसी प्रकार इस गुरमत गुह्य भडार की चाबी एक तो पजानची सरूप भाई गुरदास जी के पास उनकी ही बाणी है और दूसरी सरकारी चाबी श्री प्राण[१] सगली है। चाबी ताले के साथ हर समय भला कब लग सक्ती है। सो जो कारण भाई गुरदास जी की बाणी को बीड में नॉ गुथन करने का है, वही कारण प्राणसगली को उससे प्रथक रखने का समझना चाहिये।

चौथा कारण और भी प्रकट करना कुछ आवश्यक प्रतीत होता है.-जिस प्रकार राजधानी के अनेक प्रकार के कार्यौं का पसारा होने से प्राय: कोई न कोई बखेडा पडा ही रहता है, जिनके शांत करने के वास्ते वहुत करके कमिश्नें वैठा करती हैं, इसो प्रकार ससार भगवत की राजधानी है-जिसमैं काल और काल की सेना द्वारा अनेक प्रकार के अध्यात्मक आधिदैविक आदि बखेडे खड़े किये जाया करते रहते हैं जिनसे

(१) जोकि "सतन हथि राखी कूजी' इस गुर प्रमाण पूर्वक उस कर्त्तार के चरणाऽनुरागी सच्चे भक्तों के हाथ दीगई है-जिसका समाचार ग्रथ की समाप्ती पर जाकर विदित होगा।

अपनी प्रजा को पीड़ित पाकर (ऐसे अवसरों पर) नित्य, नमित्त अवतार भेजकर भगवत भी अपनी नेत मर्यादा की द्रिढ स्थिरता का प्रबंध करता रहता है। प्रतु कभी ऐसी भयकर दशा में जीव ग्रस्त हो जाते हैं कि सर्वत्र भूमि आकाश पाप रूपी मेघ से आछादित हो जाने करके धर्म का सूर्य महान अश्रद्धा मई स्याम घटा टोप में ऐसा लोप हो जाता है कि कथन चितन तक को भी अविकाश नही रहता। उस काल समय पर अकाल पुरुप अपने दिव्य तेजोमई विशेप अश को सत सरूप प्रगट करके भेजता है; जैसा कि अपने से परम तेजोमई अपूर्व निजरूप दिव्य अश को परम सत स्वरूप प्रगटा कर (भाई गुरदास साहव के वचन अनुसार "गुर नानक जग माहि पठाया" अवतार सम काल ही गुरु रूप में गुरू नानक साहव को भेजा। जिन्हों ने कि वाईसराय के सपैश्ल इजलास वत् शिवनाभ से आदि लेकर गुप्त प्रगट सिद्धों के साथ सपैश्ल कौंसल करते हुए प्राण सगली रूप गुप्त प्रमार्थी कोड निरमाण की। जो कि इत्तर पद्धति ग्रथो-वत उस समय में गुरमत की गुप्त पद्धति रूप आद ग्रथ था सो जिस प्रकार Law Codes (ला कोडज) अर्थात् कानूनी पद्धतियाँ या जिस भाँत मतों के पद्धति ग्रथ सदैव काल से गुप्त ही रखे जाते हैं, इसी प्रकार उस काल में इस ग्रथ का भी गुप्त रहना ही गुरू साहव ने उचित समझा। क्योंकि विशेप काल पाकर राजधानियों के बखेड़े शांत हो जाने पर वुह गुप्त कानून भी प्रगट हो जाया करते हैं, इस वास्ते (तव) गुरमत का इतना विशेप प्रचार नाँ होने तथा साधारण लोगों के इसका गूढ आशय समझने में असमर्थ होने आदि कारणों से इतना काल प्रयत जिसका गुप्त रहना ही आवश्यक था, अव जीवों की वुद्धियों को गुरमत का पूरा महत्त समझते तथा इसमें प्रवृत्त देखकर गुरू साहव की अतरीव आज्ञा से ही (गुरमुखी अक्षरों

से देवनागरी में हो कर) इसको प्रकाशित होने का अवसर मिल रहा है ता कि गुरमुख जन गुरू साहब के गुप्त भेदों से भी अनवगत अर्थात् अनजान नॉ रहैं। आशा है कि प्रेमी जन अवश्य करके ही इससे अपने परम प्रयोजन को सिद्ध करेगे ।

वहुत से सज्जन यिह पूछते हैं कि प्राणसगली रचना काल में 'प्रथम' किन अक्षरों मैं थी इसके उत्तर मैं यिह निवेदन है कि श्री गुरू ग्रथ साहब की बीड तीन भॉत की है:– एक पंचम पातिशाही श्री गुरू अर्जनदेव जी की (कर्तारपुर वाली बीड) दूसरी दशम पातिशाह श्रीगुरू गुरू गोविद सिह साहब जी की (दमदमे साहब वाली बीड़), और तीसरी भाई बन्नो साहब की (मॉगट वाली बीड़)। इस तीसरी बीड़ में उक्त भाई साहब ने प्रथम बीड़ पर से उतार कराते समय पचम पातिशाह जी की आज्ञा के विनाँ ही, दो तीन अध्याय प्राणसगली के शामिल कर दिये थे। प्रतु अपने अनन्य सेवक की प्रेममई परोपकारी प्रवृत्ति पर उस बीड़ की प्रवानगी की मोहर लगाते हुए श्री गुरू महाराज ने उसको खारी बीड के नाम से संबोधन कर दिया था। जिस करके आज प्रयंत सर्वत्र गुर सिक्खों में उसकी प्रवृति नहीं होने पाई। उसी बीड़ मैं प्राणसगली के आरंभ मैं यिह नोट (Note) लिखा हुआ है कि यिह प्राणसगली तोरकी अक्षरों से लिखी गई; (किसी एक प्रति पर लिखारी से यिह नोट छूटा हूआ भी द्रिष्ट आया है) जिससे अनुमान होता है कि प्रथम यिह ग्रंथ तोरकी अक्षरों मैं ही लिखा गया होगा। स्वय श्रीगुरू नानक देव जी का वचन भी इस बात का सूचक प्रतीत होता है, जो कि उपदेश समाप्ति पर उन्होंने आज्ञा रूप मैं राजा शिवनाभ से कहा था "जब पजाब से हमारा कोई सिक्ख यिह ग्रंथ लेने आवे तो इसे लिखवा देना"। जैसा कि श्रीगुरू अंगद साहब दूसरे पातिशाह के समय का प्रसिद्ध (आद)

लिखारी भाई पैडा ही सगला दीप मेँ भेजा गया था जो कि ग्रंथ को लाया। संभव है कि वोह तोरकी अक्षरोँ से ही गुरमुखी मेँ लिखकर लाया होवे। यिह कारण उस काल मेँ गुरमुखी अक्षरोँ की अप्रगटता से; पश्चात गुरमुखी अक्षरोँ मेँ आने का है।

कई एक पाठकोँ को यिह भी संशय है कि सगला दीप की यिह बोली ही नहीँ थी, सभव है कि गुरू महाराज जी ने स्वात्म संवेद्य शक्ति से प्रथम उसी बोली मेँ ही वार्तिक उपदेश किया होवे और पश्चात् अपनी देशी बोली की कविता मेँ इसे ग्रथ के रूप मेँ गुंथन कर लिया हो। यदि यिह निश्चय हो भी जावे कि इसी रूप मेँ ही प्राणसगली की रचना हुई, भला विदेशी लोग विदेशी वाक्य रचना मई उपदेशोँ को समझ कैसे जाते थे; जब कि देशी लोग भी देशी बोली की कविता मई शिष्याओँ को समझने वाले बहुत विरले होते हैँ।

इतिहास के यत्किंचित जानकार को भी तो ऐसी बातेँ बहुत बड़ी नहीँ द्रिष्ट आतीं, प्रतु प्रश्न कर्त्ताओँ को उत्तर देना आवश्यक है:-

जिस २ देश मेँ श्रीगुरू साहब गए हैँ, गोष्टियेँ उसी उसी देश की बोलियोँ मेँ ही उन्होँने की हैँ प्रच जब उपदेश मेँ प्रवृत होते थे तब सर्व साधारण (अपनी) बोली की कविता मेँ ही उपदेश उच्चारण किया करते थे। और प्रायः गुरू साहब का उपदेश व्यवहार होता ही कविता मेँ था। साखी मक्का मदीना और शेष शर्फ की गोष्टि इस मेँ प्रमाण है-क्योंकि इन मेँ अरबी तथा फारसी बोली मेँ तो गोष्टि रही है, प्रतु जहाँ २ पर उक्त गोष्टियोँ मेँ शब्द उच्चारण उपयोगी प्रतीत हुआ वहाँ पर श्री गुरू ग्रथ साहब वाली बाणी मेँ ही शब्द उच्चारण किये गये हैँ। हाँ! देश काल के अनुसार विदेशानुसारी शब्द

कई एक शब्दोँ मैँ अवश्य आजाते रहे हैँ। और कहीं पर विदेशी बोली मैँ ही शब्द उच्चारण करके अतिम सिद्धांत की पक्तियोँ को अपनी बोली मैँ कथन किया है।

आज कल्ह के लोगोँ को यद्यपि सहज सुभाव किसी का कविता बोलते जाना एक आश्चर्य कारी बात जान पडती है किंतु इतिहास वेत्ताओँ की द्रिष्टि मैँ यिह एक साधारण (अभ्यास की) बात है क्योंकि उस समय मैँ तो सरकारी दफ्तरोँ तक की काररवाई तथा चिठी पत्री आदि का व्यवहार भी प्राया: कविता मैँ ही हुआ करता था। पिछले समयोँ का प्रभाव आज प्रयत भी भारत वर्ष मैँ देखने मैँ आता है कि नगरोँ तथा ग्रामोँ के बच्चे भी गलीओँ कूचोँ तथा खेतोँ मैँ स्वरचित गीत गाते फिरते द्रिष्ट आया करते हैँ। जब भारतवर्ष के बच्चोँ तक मैँ अब प्रयत असा विद्या के बीज ससकारोँ का प्रभाव द्रिष्ट आता है तो पूर्ण योगीराजोँ तथा पूर्ण कवियोँ के आगे यिह कौन सा दुर्घट कार्य हो सक्ता है जिसमैँ कि पाठकोँ को सशय का अवसर मिले। अत्येव इस बात का प्रमाण कि प्राणसंगली इसी प्रकार से उपदेश की गई और साथ साथ ही लिखी जाती रही, आपही (स्वयं) यिह ग्रथ है।

और यद्यपि भाई मन्मुख जी (जिनका वृत्तांत प्रथम भाग मैँ आ चुका है) संगलादीप मैँ बहुत काल रहे; और शिवनाभ आदि लोगोँ का उनके साथ सत्सगादि व्यवहार का परचा रहा। जिन से राजा शिवनाभ ने (उनके वहाँ होते ही) बहुत सी गुरबाणी कठ भी कर ली थी; जिससे गुरबाणी का आशय समझने तथा पजाबी बोली को समझ सकने का 'उसके' उचित अभ्यास का अनुमान किया जा सक्ता है; तथापि जहाँ गुरू महाराज के तेज प्रताप तथा कृपा कटाक्ष सयुक्त सत्य सकल्प से उनमत्तोँ, गूँगोँ तथा श्वान आदिकोँ

को शास्त्र अर्थ करने की शक्ति प्राप्त होती रही है और ऐसे शास्त्रार्थों में बडे २ पंडितों तथा विद्वानों को भी हारना पडा तो राजा शिवनाभ जैसे परम प्रेमी तथा तन मन धन वारने वाले अनन्य सेवकों को फिर उनके अपनी बोली में बोले हुए शब्द समझने की शक्ति भला कैसे नाँ हो सक्ती।

कुछ भी हो—जो कुछ असली भेद है कर्त्तार जाने या श्री गुरू नानक देव जी आप। हम को जैसा इतिहास से पता मिला और जिस प्रकार हमारे अपने वीचार मेँ तुला, प्रिय पाठकों के आगे निवेदन कर दिया है। जिनको तसल्ली नाँ होवे उनकी बुद्धि की मौज। गुरबाणी के आशय के साथ ज्यों की त्यों मिलती हुई और कहीं २ साँगो पाँग (किसी) "दक्षणी ओअंकार" आदि बाणी की प्रदर्शक होती हुई यिह अमोलक रत्न रूपी पुस्तक पाकर चाहे अपने नर जन्म को इससे सफल करें चाहे नाँ। सेवक को सेवा से प्रयोजन है। आगे सब की अपनी मौज।

"सेवक को सेवा बनि आई। हुकम बूझि परम पद पाई॥
इसते ऊपर नहीं वीचार। नानक गुरमुख नामु जपीअै इकतार॥"

प्राणसगली के विषय में पूर्व उक्त प्रश्नों से सिवाय हमारे साईन्स वेत्ता पाठकों की यिह भी प्रेरणा हुई कि इस गूढतम ग्रथ के आशय को साईन्स के नियमों अनुसार फुटनोट (टिप्पण) चढा कर स्फुट करणा बहुत ही लाभदायक होगा और साथ ही इसके सिद्धांत को परिपाटीवार दिखलाने का यत्न करना चाहिये जिससे कि बहुत ही बडा लाभ प्राप्त होने की आशा हो सक्ती है।

निर्संशय यिह बात सत्य है कि यदि ऐसा यत्न किया जावे तो आधुनिक विद्वान तृप्ति को प्राप्त हो सकेंगे, प्रतु इसमें यिह विचार करके हमें साहस नहीं पडता कि ऐसे ढग पर प्रकाशित होकर यिह ग्रंथ फिर गुरमुख जनों के वास्ते इतना

गुणकार नहीं रहि सकेगा, केवल साइन्सवेता ही इससे सलाभ हो सकेगे। क्योंकि साइन्स के नियमों अनुसार कही हुई कोई बातें उतना काल प्रयंत साधारण श्रोताओं की समझ में ही नहीं आ सक्ती जब तक कि एक लम्बा व्याख्यान देकर अथवा किसी बिजली आदि की कल या विशेष द्रव्यों की सहायता लेकर उसको प्रत्यक्ष करके (Practically) नाँ दिखलाया जावे। तिस पर भी साइन्स विद्या उस विद्या को नाम है जिसकी सहायता से सांसारिक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात दृश्यवर्ग (Visible World) के ज्ञान में कारण विद्या का नाम साइन्स है। और प्राणसगली का सिद्धांत तो दृश्य से सिवाय अदृश्य तथा अदृश्य से पारपद को निरूपण करताहै; इस वास्ते साइन्स इसके प्रतिपादन करने में हम असमर्थ समझते हैं। परिशेषते इसके सिद्धांत का परिपाटीवार करना भी हारदिक विद्या के नियमों से विरुद्ध है; क्योंकि यिह विद्या करणी की है नाँ कि कथनी की "जो खोजे से पावे।" जो खोज करेगा उसको स्वयं बीच में से 'परिपाटी' हाथ लग जावेगी। इस कारण हम मजबूर होकर गुरू महाराज जी वाले व्यवहार को ही द्रिष्टीगोचर रखे रहिना अधिक लाभदायक समझते हैं। क्योंकि वेद शास्त्रादि प्रतिपादित रहस्य के संस्कृत भाषा में निबद्ध होने के कारण ही गुरू साहब तथा कबीर साहब आदि आचार्यों ने अपनी देशी भाषाओं में परमार्थ तत्त्व को निरूपण किया था जिस करके कि हर एक अधिकारी, परमार्थी धन से माला माल हो सके। और यही कारण था कि उन्होंने पुरातन प्रमाणों (Authorities) को भी यथा शक्ति अंगीकार नाँ करके लौकिक प्रमाण अथवा लोकाचार प्रवृत्त शब्दों को ही मुख्य रखकर आत्मिक गूढ़ रहस्य को, लोगों के हृदयों में आरूढ कराया था।

अपने आपको तारकिकोँ से अविद्यावान आदि सबो धनों से पुकारे जाना तो उन्होंने स्वीकार किया प्रंतु अपनी स्वात्म सिवेद्य शक्ति से परसवेद्यादि भावों से अगोचर परम उच्च सिद्धान्तों को निरूपण करते हुए (अतर्यामिनी दैवी शक्ति से सस्कृत आदि उच्चारण मेँ सर्व भांत समर्थ होकर भी) उन्होंने वह असाधारण बोली नहीं बोली; वरन सर्व साधारण बोली में ही उपदेश किया है। यिह भी एक कारण था कि प्राण-सगली की रचना संगलादीपी बोली में न की। अत्येव हम भी उनके मार्ग पर चलते हुए साधारण ढग पर उनके आशय को प्रगट करने के उद्देश्य पर आशावान हैं कि इत्तर प्रमाणों की अपेक्षा को उपेक्षित करके, सर्व समत हाडबीती बातों पर निरभर टिप्पणियों से गुरू महाराज के आशय को स्फुट करके आत्म विद्या के खोजियों को अहिलाद प्राप्त करें। सो आशा है कि शब्द योग अनुसारी हारदिक आत्म विद्या के गूढ आशय जानने के अभिलापि सपूर्ण पाठक जन सहज योग की गुप्त तम विद्या को प्राप्त होकर Practical knowledge (करणी ज्ञान) द्वारा अपनी उत्तम जज्ञासा को अवश्य पूर्ण करेंगे।

॥ वाह गुरू सहाय ॥

गुरमुखजनो का हिताऽभिलापि,
सपूर्ण सिह
भाषा टिप्पणकार,
तरन तारन—(पजाब)

नोट—प्रथम भाग गत (श्रीगुरू महाराज जी के) जीवन चरित्र सफा ३२ पर श्रीगुरू हरिगोविंद साहब जी छठम पतिशाह के साहबजादे का नाम भूल से "बाबा बूढा जी" छपा रहि गया है। कृपा करके उसे बदल कर "बाबा गुरदित्ता साहिब जी" कर लीजियेगा।

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

श्री प्राण संगली

भाग दूसरा[1]

॥ अध्याय ८ ॥

॥ श्लोक ॥

कलका पद दुनिया पढै सता नाही छेद ।
नानक सत विहगमी जिन सतिगुर दित्ता भेद ॥१॥

॥ राग गौडी महला १ ॥

॥ रंगमाला जोगनिधि ॥

आगासी[2] सरु भरिआ नीर । तामहिँ कवलु वहुत[2] विस्थीरु॥
भौरा लुभधा तॉ की गंध । नानक वोलै बिपमी[2] सध ॥१॥
वारह[3] सोलह समकरि गहै । आसणु सहजि निरालमु वहै ॥
चेतंन्नि डोरी गुडी लावै । नानक कहै जोग इॐ पावै ॥२॥
मेरु डड सूधा करि राखै । गुर प्रसादि अंम्रित रसु चाखै ॥
दोने शराइ[4] इकठी धरै । नानक वोलै जीवत मरै ॥३॥
उलटै पौण[5] पलटै काया । शव्दि अनाहद शव्दु वजाया ॥
धुनि अतरि मनु राखै[6] थीरु । नानक वोलै अऊलि[7] फकीरु ॥४॥

(१) गुरू साहव ने इस ग्रथ को भिन्न २ भागो में नही वाटा । यह वाट पाठको की सुगमता के वास्ते हम ने की है। (२) आकाश में एक सरोवर है जल से भरा हुआ उसमें एक कमल हे वडे भारे निस्तार वाला—उसकी सुगध में मन भोरा लुभायमान हो रहा है। गुरू साहव कहते हे कि दूर नहीं वस विपमी सधि=सुपमना घाट में यह सभ कुछ कहा है॥ नेत्रों में पानी भरा हुआ हे उसका भडार (इनके पीछे) आकाश सरोवर है—उस तीसरे नेत्र में प्रवेश करे तो विस्तारवान सहस्रदल कमल प्राप्त हो जाता है उस में मगन रहे। (३) वारह राशि का सूय हाता है सालह कलह सपूर्ण चद्रमा की होती हें सो इन दोनों को एक घर निज भडार में स्थित कर देवे। अर्थात् (४) इगला पिगला रूप दृष्टिगत दोनों नाडियों को वाम दक्षिण ओर से एक ठोर मिला देवे। (५) पूर्वोक्त रीति से नाम सहित पवन को उलटता पलटता रहे तो इस शव्द के प्रभाव से अनाहद शव्द प्रगट होगा। (६) उसकी धुनि के वीच मन स्थिर रक्खे। (७) गुरू साहव—ओलिया सत—कहते है। भाव (हम) यथार्थ कह रहे हें॥

बधिआ[1] अवंधु उछलै नीरु । वणु तृणु हरीआवलु[2] मन थीरु ॥
नानक बोलै ब्रह्मज्ञानि । कोई ज्ञानी होय सो लए पछानि ॥५॥
अउघट[3] घाटि निरालम जोति। दीपक विन उजीआरा होति ॥
खिसै[4] न वाटी घटै न तेलु । नानक बोलै इहु पूरा खेलु ॥६॥
आसणु[5] धरती धुणि अकाश। उर्ध[6] कमल मुखि कीआ बिगासु ॥
जिनि चाखिया तिसु आया स्वादु । नानक बोलै इहु विसमादु ॥७॥
उलटा बानु गगन को लाइआ । चचल मिरगु मारि घरि आया ॥
रंगि महलि बैठा सिकदारी[7] । नानक बोलै लागी तारी ॥८॥
गुर का शब्द गहै हथि वानु । चंचल मिरगु न देई जानि ॥
मिरगा[8] मिरगी दोनो वंधि । नानक बोलै विपमी[9] संधि ॥९॥
पाताली[10] रसु गगन चढ़ाया । तातैं सहजि पलटी काया ॥
गगन गाय दुहि पीता क्षीर । नानक बोलै चंचल थीरु ॥१०॥
उन्मनि कला धरै नित जोति । विनु दीपक उज्यारा होतु ॥
देखै बिगसै आपन आपु । नानक बोलै इऊँ मिटै सतापु ॥११॥
इकतु[11] घरि आवै चंद अरु सूरु। पंचाॅ मरदे रहै हजूर ॥
दूजै अगि न लाए चीता । नानक बोलै इहु गढु जीता ॥१२॥
आसा मनसा सगली परहरै । ऊचै[11] घरि ले मनूआ धरै ॥
निर्मल जोति सर्व कल्याण । नानक बोलै इहु पदु निरवाणु ॥१३॥
लिव लागी मनूआ ठहराय । पछम वाटि नगरि सुधिपाय ॥
नगरी वैसि त्रिवेणी न्हाया । नानक बोलै रुन्नी[12] माया ॥१४॥

(१) ऊपरोक्त खुला हुआ जल जब बद किया जाता है तो उछलता है (वज्र किवाड भेदन होते हैं)। (२) सहसदल स्थान की निशानी दी है। (३) ऊपरले घट की (इस) घाटी में अथवा इस दुर्गम घाटी में निरालव जोति प्रकाशित है। (४) छिजती नहीं, क्षीण नहीं होती। (५) नासिका का मालिक पृथ्वी तत्त्व का देवता है सो नासका मूल पृथ्वी (तिल-तीसरे) पर अपना आसन स्थित रक्खे। और अपनी धुनि का ध्यान आकाश (ऊपर) को रक्खे तो। (६) नभ कमल विकाशिता को प्राप्त हो जाता है। (७) शिरदारी (मालकी) को प्राप्त होकर। (८) मन, इद्री (९) सुष्मना घाट में (१०) शरीर का सार जो अपने स्थान से पतित होता हुआ इद्री द्वारा व्यर्थ जाता था, जब गुरू उपदिष्ट युक्ति अभ्यास से ऊपर चढ़ा लेता है अर्थात् गिरने नहीं देता। (११) तीसरे तिल तथा सहसदल से भाव है ।(१२) ऐसा अभ्यास आरभ करतेही माया रो पडती है।

शब्दु असरूप[१] रूप बहु कीये । जिनि सुणिआ ते जीवति मूए ॥
अहि निशि डोरी ऊचै खडि । कहु नानक गूंगे ज्यौं खंडु ॥१५॥
किह[२] बिधि चदु भवनि आवै इहु भानु। किंह बिधि मरदह मनको मान
किंह विधि पद[३] महिं पिडु समाय । कहु नानकतब मनु पतीआय॥१६
पूर्व[४] फिरि पच्छम कौ तानै । अजपा जाप जपै मनु मानै ॥
अनहत सुरति रहै लिवलाय । कहु नानक पद पिड समाय ॥१७॥
ज्यौं सुगधि पुहप महि आही । इऊं करि रामु रमै जग मॉही ॥
जे को ठौर वासु की पावै । कहु नानक समझै समझावै ॥१८॥
द्वादशि[५] उलटै पीवै नीति । गुर साषी सुनि राखै चीति ॥
निरभऊ[६] नगरि करै जाय वासा। नानक मिटीहै सगल पिआसा॥१९॥
मनु पवना दुइ सदा अजीत । इन कऊ जीतै तऊ परतीति ॥
महरम महलि न ठाका पाय । नानक तॉ कौ मिलै कवाय[७] ॥२०॥
पिंड मॉहि[८] ब्रह्मंड समाना । जिनि जाना तिनि गुरमुखि जाना ॥
गुर की साषी राखै चीति । नानक गुर मिलि सदा अतीत ॥२१॥
चोर करै नित नगरी चोरी । अहि निशि मूसहि[९] भेदु न होरी[१०] ॥
गुर शब्दी फेरै ढढोरा[११] । नानक इहि बिधि समझहि चोरा ॥२२
अहिनिशि जूझै कबहूँ न भागै । नौघरि ताला दशवैं जागै ॥
काल[१२] बसेरा होय उदासु । नानक पावै तौ घरि वासु ॥२३॥

---

(१) सत्य सरूप शब्द ने स्थान (मडल) भेद से अपने बहुत रूप प्रगट किये हैं। (२) किस युक्ति से इहु भानु (सूर्ज), चदु भवनि (सुरत कमल में) आवे। (३) चरण=सहस-दल कमल, पीछे कह दिया है। (४) प्रश्न का उत्तर गुरू साहब देते हैं—यह अर्थ तो पीछे कर दिये हैं। (५) नेत्रों का मालिक सूर्य है और द्वादश शब्द से यही सूचित है। (६) अनभउ नगर, त्रिकुटी में भी अनुभव खुलता है। (७) पोशाक, पिलअत, प्रेम पटोला। (८) गुरू, भेदी मिलें तो ब्रह्मन्ड का सपूर्ण भेद अदर दृष्टि आजाता है। (९) चोरी करते हैं। (१०) गुरमुख बिना और किसी को पता भी नहीं लगता। (११) मिनादी, दुहाई। (१२) पिड ब्रह्मन्ड में काल का निवास है। पिड से सुरति को निकाल कर ब्रह्मन्ड में ले जावे और वहा की रचना में ना फस जावे क्योंकि यहा प्रयत काल का ही राज है जब तक एक राजा की हद में रह उसका कर (हाला) सभ कुछ देना पडता है जब और राज में चले जाय तो प्रथम राजा का कुछ वशनही चलता। सो जीव प्रदेशी है काल की राजधानी में आय बसा और दुख पारहा है परदेश त्यागे तो निज घर में निरभय वास पावे। तभी ही गुरूजी ने कहा है कि "त्रिकुटी फुटी निज घरि वास" सो त्रिकुटी ब्रह्मन्ड हैं नीचे सहस्रदल कमल तक पिड है दोनों काल मडल हैं।

निर्मल[1] नीरु अडोलु अथाहु । गुर पूरे मिलि पाया राहु ॥
इह सरि न्हाय निर्मल जनु होय । नानक मैलु उतारै धोय ॥२४॥
पानी[2] पवनु अगनि घरु पावै । इनकौ साधै तब साधु कहावै ॥
इनकौ साधि करै मनु रास[3] । नानक ऊचै घरि ताँका वासु ॥२५॥
अवधू ता के सुणि लै लक्षण । खिंथा झोली पंच विचक्षण[4] ॥
गुर सीती आपे पहिराई । नानक राखै सो गुरहाई[5] ॥२६॥
दिष्टि न दीसै अरु मुष्टि न आवै । रहीश्रै संगि मरीश्रै निन्त हावै[6] ॥
जे गुर मिलै ताँ अलपु लपावै । नानक फिरि कै चोट न खावै ॥२७
सोहं हंसा[7] जाँ का जापु । इहु जपु जपै वढ़ै परतापु ॥
अंभि[8] न डूबै अगनि न जरै । नानक तिंह घरि वासा करै ॥२८॥
निरभउ मिलै भउ सगला जाय । उलटा मनु मनसा कौ खाय ॥
धरती[9] उलटि चढी असमानि । नानक गुरमिलि सभुसचु जानि २९
कुंचर[10] चीटी कै पगि बाँधा । गहि[11] गडीर उलटि सरु साँधा ॥
मूसै मिजारी[12] वशि कीनी । नानक गुर मिलि उलटी चीनी ॥३०
गुर का शब्दु जाँकै मनि वसिआ । रोमि रोमि अम्रित रसु रसिआ ॥
अहिनिशि कबहूँ न खूलै तारी । नानक माता[13] सदा पुमारी ॥३१॥
अहिनिशि शब्द अनाहदि राता । रसीश्रै रसु पीआ रसुमाता ॥
ऊचै खडि रहै लिवलागी । नानक कहीश्रै से वैरागी ॥३२॥

(१) ज्योती का घाट सुरत सरोवर (सहसदल कमल) । (२) इडा अगनि, पिंगला पानी और सुषमना पवन है इन का घर त्रिवेणी अर्थात् सहज सुन्न का घाट है उस को प्राप्त होवे। (३) निर्विकार । (४) सयाना, पंडित, बुद्धिमान । (५) गुरभाई । (६) हमारे साथ भी सर्व का नाथ रहता है परंतु नित्य प्रति अज्ञात वश हुए हम सिसक २ कर मर रहे हैं। (७) पीछे निरणा कर दिया है, अब गुरू साहब शिवनाभ राजा को हंस मंत्र उपदेश कर रहे हैं। (८) जल । (९) सुरति जो शरीर रूप मित का संघात (धरती) से अभेद हो रही थी । (१०) सुरति कीडी के पीछे २ मन हस्ती भी उसी के पाव (चाल) चलाया जारहा है । (११) धनुष दृष्टि का । (१२) मनरूपी मूसे ने मैं २ करने वाली हउँमै बिल्ली, यही माया है। (१३) मस्त, मगन ।

चहुँ[1] का संग चहूँ का मीतु । जाँमे चारि हंढावै नीतु ॥
नाँ मलु लगै न होय पुराणे । नानक दरगह पैहन सिधाणे[2] ॥३३॥
मूलु[3] चापि राखे वैरागी । गगन सुन्नि अनहदि लिवलागी ॥
पचां[4] थाँमि करै असवारी । नानक सहजे मिलै मुरारी ॥३४॥
गरजि गरजि वरषै नित्त गगना । पच्छिम पवन उलटि मनु मगना ॥
सुन्न सरोवरि सुरति समानी । नानक चूकी आवन जानी ॥३५॥
सूक्ष्म महि अस्थूल समाना । पिंड छोड़ पद कौ उरझाना ॥
अर्ध[5] उर्ध दोऊ समकरि राखै । नानक खंडु खाय गुगा किआ भाखै ३६
जोग जुगति चीनहु अवधूता । दूदर बाँधहु गुरकै सूता[6] ॥
नागनि[7] निर्विष क्यों करि होवै । नानक मनु गुर शब्दि परोवै[8] ।३७
सोहं हंसा जपु बिन माला । तहि रचिआ जहिं केवल वाला ॥
गुर मिलि नीरहिं नीर समाना । तबनानक मनूआ गगनि समाना३८
क्यौं करि उर्ध कवल मुख खोलै । क्यौं करि बिन जिह्वा गुन बोलै ॥
क्यौं करि शब्दै शब्दु समावै । नानक जाणै जानि बुझावै ॥३९॥
लिव लागी तव कउल मुख खोलै । गुरुमुखु बिन जिह्वा गुन बोलै ॥
उलटै मनु जबि सुन्नि समावै । नानक शब्दै शब्दि मिलावै ॥४०॥
क्यौं करि मनु चंचल ठहरावै । क्यौं करि ठौर बास की पावै ॥
क्यौं करि भोजन बिना अघाना । नानक नीच कहै देवाना ॥४१॥
सगल खंड कायाँ महि जानहु । उलटि मारग[9] पछम को तानहु ॥
नप शिप फिरि सोधै सभ थान । नानक पाया गुरमुखि दानु ॥४२॥
बिनु पवनै मजन क्यौं होवै । बिन पानी कैसे मलु धोवै ॥
बिनु अगनी क्यौं पचै अहारा । नानक पूछै इहु करहु बिचारा ४३
बिनु बूझै कैसे को भाखै । क्यौं करि मनूआ तन महि राखै ॥
क्यौं करि नीरु चढै फिरि ऊचा । नानक जाणै जो होय पहूचा ४४

(१) श्वास मन शब्द दृष्टि इन चार को इकत्र करके [illegible] । अथ मन [illegible] दया धर्म यह चार गल में जामें पहिरे । (२) [illegible] । (३) [illegible] कमल जो सबसे प्रथम कमल सहसदल है उसमें धनुषचढावे । (४) [illegible] । (५) पिंड [illegible] ऊपर की दो ठोर हैं इन के बीच जो [illegible] है [illegible] स्थिर रहे । (६) [illegible] के धालके (अब शिर नाभ को [illegible] है) । (७) [illegible] । (८) [illegible]
(९) उलटा मारग जिधर से सुरति [illegible] है उसी [illegible]

क्यौं करि मन्सा मनु छडि जाय। क्यौं करि मनु को मनु फिरि खाय॥
क्यौं करि निर्विष होय भुयंगा। नानक क्यौं करि मिटै तरंगा॥४५॥
ऊचे खंड की ऊची वात। जो जाणै सोई निगरात[1]॥
सर्वा मनीआ एको सूतु। नानक चीनै सो अवधूत॥४६॥
ज्ञान पदार्थ जिहँ करि आया। ताँ कौ फिरि लागै नहीं माया॥
ज्येॉं करि कंउल रहै जल माही। नानक ऐसे सहजि समाही॥४७॥
ज्येॉं करि सूर्ज तपै अकासि। जो देखै ताहूँ के पासि॥
सर्वनिरंतरि इऊँ करि जानहु। नानक शब्दे[2] शब्दु पछानहु॥४८॥
नाना विधि भोजनु विस्थारा। सर्व भीतरि एको[3] पासारा॥
ज्ञान अंजनि जिहिं नेत्री आवै। नानक फिर कै चोट न खावै॥४९॥
गुर[4] सूती ताना अरु वाना। गुर सूती मनु सुन्नि समाना॥
गुर सूती चढ़ि रहै अकाशि। नानक इऊँ करि कउल बिगास॥५०॥
अनहद[5] तारी वाजी मनु मानिआ। सर्वी भीतरि एकु पछानिआ॥
तब चूकी दुंद[6] भया निर्दुंद। नानक राता भैार सुगंधि॥५१॥
सुन्नि शब्द धुनि सुणि झुणकारा। बसै कहाॅं क्या करै अहारा॥
कौन रूप धरि कीआ पसारा। नानक पूछै इहु करहु बीचारा॥५२॥
पउनु अजाति रंग ते रहता। घटि घटि सहजि निरालमु बहता॥
सगल खंड महिं कीआ पसारा। नानक बूझै को बूझणहारा॥५३॥
अगनि[7] जलै लागै घटि बन्धु। बिनु अगनी काया निरबन्धु[8]॥
बिनु अगनी व्यापै बहु रोगु। नानक ज्ञानु सपूर्ण जोगु॥५४॥
क्येॉं करि कला घटै अरु बाढै। आपस ते क्येॉं आपा काढै॥
क्येॉं करि थामै नीरु बहता। नानक गुर मिलीअै भगवंता॥५५॥

---

(१) "निभरात" पाठ भी हे निगरात पाठ में द्दष्टा, अनुभव कर्ता अर्थ होंगे और निभ्रात के, भ्राती रहित। (२) हस रूप अजपा शब्द द्वारा जब ऊपरला शब्द खुले तो प्रीक्षा आवे। (३) एकही रस मात्र का। (४) गुर शिक्षित, गुरों करके साधित, दीक्षित। (५) जब खुशी में पुरुष आता हे तो ताली बजाने लगता है–ऐसेही जब शब्द अभ्यास से परम पुरुष प्रसन्न होता हे तो अनहद की ताली वज पडती हे जिसे श्रवन करतेही मन वशवर्ती हो जाता हे। (६) राग द्वेश हर्ष शोक आदि द्वैती झगडा। (७) ज्योति का साक्षात्कार होवे। (८) निश्चे करके बधायमान।

कला[1] पछानि कला[2] नित बाढै । मेटै त्रैगुण आपा काढै ॥
मूलु बॅधि थाँमै नीरु बहंता । नानक गुरु मिलीश्रै भगवता ॥५६॥
कौन शब्द ते रहै अडोलु । कौन शब्द ते पूरा तोलु ॥
कौन शब्द ते त्यागै आसा । शब्दै नानक कउल बिगासा ॥५७॥
सत्य शब्द ते रहै अडोलु । शब्द कै परचै पूरा बोलु ॥
गुरका शब्द ले त्यागै आसा । नानक पौन अरभे कउल बिगासा ५८
शब्दु तत्तु बीर्ज[3] संसार । शब्दु निरालमु अपर अपार ॥
शब्दु बिचारि तरे बहु भेपा । नानक भेदु न शब्द अलेपा ॥५९॥
शब्दु अदिष्ट मुष्टि नहिँ आवे। ताँ कौ जगु सगला भरमावे ॥
दिष्टि मुष्टि ते रहै निरारा । नानक बिरला को खोजणहारा ६०
शब्दै सुरति भया प्रगासा । सभ को करै शब्द की आसा ॥
पथी पंखी[4] सिऊँ नित राता। नानक शब्दै शब्दु पछाता ॥६१॥
गुरमुखि शब्दु होया वषशीशु। गुरमति पावहिँ ते जगदीश ॥
बिनु शब्दै क्योँ उतरसि पारा। नानक शब्दु लंघावनिहारा ॥६१॥
हाट बाट शब्द का खेलु । बिनु शब्दै क्योँ होवै मेलु ॥
सारी स्रिष्टि शब्द कै पाछै । नानक शब्दु घटै घटि आछै[5] ॥६३॥
शब्दै धरती शब्दु अकाशु । शब्दै शब्दु होआ प्रगासु ॥
शब्दु कमावै ते वड़ भागी । नानक शब्दु सदा वैरागी ॥६४॥
शब्दु अतीत शब्द घरबारी। शब्दु बिचारि तरे ससारी ॥
बिनु शब्दै मारग नहीँ पावे। नानक शब्द बिना कैसे ठहिरावै ॥६५
जहिँ देखउ तहँ शब्दि निवासा। शब्दि बीचारि खंडित सभआसा॥
शब्दि रत्ता सो शब्द की जाति। नानक बिनु शब्दै क्योँ मिटै भ्रांति ६६
बिनु शब्दै नाहीँ सुध कायाँ । बिनु शब्दै नहीँ छूटै माया ॥
बिनु शब्दै क्योँ होय उद्धारु। नानक शब्द बिना नहीँ मोछद्वारु ६७
शब्दु रहै सगल जगि माहीँ । जगु बिनशै ते कहाँ सिधाही।।
भिन्न भिन्न इहु करहु वीचारा । नानक ऊचा खेलु अपारा ॥६८॥

(१) उलटने की बाजी, नटकला, जुगती अभ्यास। (२) शक्ति। (३) बीज, कारण। (४) शब्द रूपी पखी साथ रचा हुआ जज्ञासू। अथवा "पथे" पाठ भी है अर्थ—मुसाफर वत् उतरती हुई शब्द की धार से सलग्न जज्ञासू। (५) प्रकाशित विराजित।

जो देखउ सो सगल बिनाशु । शब्दु अमरु होरु सगले नाशु॥
जगु बिनशै शब्दु रहै निआरा । नानक आया फिरि तहाँ सिधारा६९
चारि बरन[१] शब्द ते हूए । जिनि चीनिआ ते जीवति मूए॥
शब्द के बरन लखै जे कोई । नानक ताँ कौ सभ सुघ होई ॥७०॥
शब्दै शब्दु होआ आकाशु । शब्दै शब्दि कला परगासु ॥
उलटा शब्दु गगनि घरु छाया। नानक शब्दै शब्दु समाया ॥७१॥
शब्दु निरालमु जोति सरूप । आदहिँ शब्दु अंति बैभूतु[२] ॥
सोई शब्दु बसै सभ माहीँ । नानक चीनहिँ ते दूरि न जाहीँ ॥७२॥
शब्दि की जोति[३] पछाणै कोई । ताँ कौ मिलते बिलम न होई ॥
शब्दै शब्दि मिलावा हूआ । शब्दु पछाणि नानक जनु मूआ[४]॥७३
बिनु शब्दै नाहीँ पारगिरामी[५] । बिनु शब्दे नाहीँ अंतरिजामी ॥
बिनु शब्दै नाहीँ पति[६] परतीति । नानक शब्दु की ऊची रीति॥७४॥
गुर कै शब्दि भेटै भगवानु[७] । गुर कै शब्दि सिद्ध कार्ज जानु ॥
गुर कै शब्दि मारगि सुख पावै। नानक गुरु शब्दी बिरला मनु लावै७५
गुर कै शब्दि अजरु सभ जरै। गुरु कै शब्दि जीवत ही मरै ॥
गुर कै शब्दि दुत्तरु सुखि तरै । नानकजेशब्दुगुरूकामनमहिधरै७६
शब्दि गुरू कै नौनिधि दरि चेरी। शब्दि गुरू कै भौजलि नहीँ फेरी॥
शब्दि गुरू कै बिनु लोचन[८] सूझै। नानकशब्दि गुरूकै अज्ञानीबूझै७७
शब्दि गुरू कै दरगहि परवाणु। शब्दि गुरू कै लागै ध्यानु ॥
शब्दि गुरू कै पंचि बशि कीए । नानक शब्दि गुरू कै जीवतही मूए॥७८
शब्दि गुरू कै सगली बिष[९] त्यागै । शब्दि गुरू कै दुरमति भागै ॥
शब्दि गुरू कै मनु ठहिराय । नानक शब्दि गुरू कै सोझी पाय ७९
शब्दि गुरू कै अगमु अगमु[१०] करि जानै । शब्दि गुरू कै उलटी तानै॥
शब्दि गुरू कै जनमु स्वारै । नानक शब्दि गुरू कै मूलु न हारै ॥८०॥

[१](१) अक्षर, ह सा सोहं अगला दरजा अभी कहा नहीं जो वा ह गु रू है पीछे ॐकार में भा अ उ म और अर्द्ध बिंदु रूप अक्षर चारही ह । (२) अंत में भी यही रहता है। (३) मडल मडल का शब्द न्यारा और उसका सरूप भी भिन्न २ हे । (४) विदेह हो गया । (५) पार के वासी । (६) प्रतिष्ठा । (७) भगवान से विश्नु का ही भाव नहीं किंतु सच खड का पातिशाह जो तीसरे तिल प्रयत की छ ज्योती रूप एश्वय का मालिक है । (८) नेत्र । (९) विषय वासना । (१०) जो सभ किसीकी मन बुद्धि आदि की गम का विषय नहीं भी; शब्द के प्रभाव से उसे ज्यों का त्यो अगम सरूप निश्चे करके अनुभव कर लेता है ॥

शब्दि गुरू कै सदा सुखु होवै । शब्दि गुरू कै जनमु न खोवै ॥
शब्दि गुरू कै आपु पछानै । नानक शब्दु मिलै ताँहू[1] मनु मानै॥८१॥
शब्दि गुरू कै मनु निर्मल करि मीता । शब्दि गुरू कै अजरु जरि लीता
शब्दि गुरू कै चाली ठहरानी । नानक ढुलि मिलिआ पानी कउ पानी ॥८२॥
शब्दि गुरू कै सुनते सुख पाया । शब्दि गुरू कै जनमु वटाया[2] ॥
शब्दि गुरू कै होया उजयाला । नानक शब्दु गुरू का नित्य रखवाला८३
शब्दि गुरू कै मोख द्वार मुक्ती । शब्दि गुरू कै जोग अरु जुगती ॥
शब्दि गुरू कै चूकी आवनु जानी । नानक शब्दि रत्ते तरे प्रानी ॥८४॥
शब्दि गुरू कै दिश चारि का राजा । शब्दि गुरू कै पूर्ण काजा ॥
शब्दि गुरू कै इंद्रादिक नित्त द्वारै । नानक शब्द गुरू कै तरै अरु तारै ॥८५॥
शब्दि गुरू कै छुटहि बिकारा । शब्दि गुरू कै जगि निस्तारा ॥
शब्दि गुरू कै अंम्रित मुखवानी । नानक शब्दि गुरू कै मति ठहरानी ॥८६॥
शब्दि गुरू कै तीन[3] ते रहता । शब्दि गुरू कै अचलु भया वहता ॥
शब्दि गुरू कै वरनु वटाया । नानक शब्दि गुरू कै दास माया ॥८७॥
शब्दि गुरू कै किरपा भगवानु । शब्दि गुरू कै पद निरबानु ॥
शब्दि गुरू कै सिह[4] अरु स्याला । नानक मिले अंकि दयाला ॥८८॥
शब्दि गुरू कै मजनु सदा त्रिवेणी । शब्दिगुरू सुष्मनि सुख दैणी॥
शब्दि गुरू कै दूरि ध्यानी[5] । नानक शब्दि गुरू कै अठसठि इस्नानी८९
शब्दि गुरू कै वैरी सभि मीता । शब्द गुरू कै इहु मनु जीता ॥
शब्दि गुरू कै दूरि न जाणि । नानक शब्दि गुरू कै पदि पिंडु समाणि ॥९०॥
शब्दि गुरू कै जन्मु स्वारिआ । शब्दि गुरू कै जउरा[6] मारिआ ॥
शब्दि गुरू कै आई परतीति । नानक शब्दि गुरू कै सदा अतीतु॥९१

---

(१) तबोंही । (२) बदल दिया, ओर से और कर दिया । (३) तीन ताप=अध्यात्मक, अधिभूतिक, अधिदैविक । (४) सिह, काल (ब्रह्म) अरु गीदड जीव । यिह दोनों ही जीव ब्रह्म भाव त्याग कर जब गुरु शब्द के प्रभाव से एक रूप हो जावें तो दयाल पुरुष (भगवत) की गोदी में समा जाते हैं । ("काल पाय ब्रह्मा वपु धरा । काल पाय शिवजी अवतरा । काल पाय कर विशनु प्रकाशा । सकल काल का कीआ तमाशा") । इन दसम गुरू साहब के वचन अनुसार सर्व स्रिष्टी का कर्त्ता माया सवल ब्रह्म ही सिह रूप काल है । (५) प्रथम ही किसी प्रविरती निविरती में हानि लाभ के विचार करने वाले तथा परम दूर अगम परम ब्रह्म परम धाम के ध्यान करने वाले हो जाते हैं । (६) दौडने वाला (मन) ।

शब्दि गुरू कै नीर अगनि जलाई[१] । शब्दि गुरू कै काटी काई ॥
शब्दि गुरू कै निर्मलु मलु धोवै । नानक शब्दहुँ घुथा[२] सो रोवै ॥९२॥
शब्दि गुरू कै गैर महल्ली[३] । शब्दि गुरू कै सुनीअै टल्ली[४] ॥
शब्दि गुरू कै दर्शन भगवाना[५] । शब्दि गुरू कै नानक परधाना ॥९३॥
शब्दि गुरू कै मानस[६] देवा । शब्दि गुरू कै जगु करै सेवा ॥
शब्दि गुरू कै सगलिआ महि जाता । शब्दि गुरू कै अतरिगति न्हाता ॥९४॥
शब्दि गुरू कै अदिष्ट[७] दिष्टानी । शब्दि गुरू कै तरे प्रानी ॥
शब्दि गुरू कै चौथे पदि राता । नानक शब्दि गुरू ते जाता ॥९५॥
शब्दि गुरू कै सिद्ध अरु साधिक । शब्दि गुरू कै छुटहें व्याधिक[८] ॥
शब्दि गुरू कै सगलिआॅ का हेती[९] । नानक शब्द गुरू कै राखै खेती ॥९६॥
शब्दि गुरू कै वांछित फलु पावै । शब्दि गुरू कै धनु टोटि[१०] न आवै ॥
शब्दि गुरू कै कार्य सिद्ध होवहिं । नानक शब्दहुं घुथे रोवहिं ॥९७॥
शब्दि गुरू कै बिनु अखीं सूझै । शब्दि गुरू कै बिनु बोलै बूझै ॥
शब्दि गुरू कै जो मनु लावै । नानक सो जनु परम पदु पावै ॥९८॥

॥ अध्याय ८ समाप्त ॥

॥ १ ॐ सतगुर प्रसादि ॥

॥ अध्याय ९ ॥

॥ राग सूही महला १ ॥

॥ ध्याय हाट का ॥

पहले हाट का नाऊं अनंता । जित बसै हीआ जपै गुर मता ॥
प्रभ के मति रहै निरवान । जहँ नहिंपीवनु नहीं किछु खानु ॥
खाण पीअण ते रहै निरारा । अनंत महल महिं कीआ पसारा ॥
अनंत महल महि हीआ ठहिराना । नानक बिरले किनै पछाना ॥१॥

(१) सहसदल में ज्योती साक्षात की । (२) भूला हुआ शब्द से । (३) जिस ठौर कभी ताकना नहीं मिलता था उस सच खंड का वासी शब्द गुरू के प्रताप से होता है । (४) टल्ली-घंटी का शब्द (गुर शब्द) के प्रभाव से सुनता है, प्रथम शब्द की निशानी ही अभी शिवनाभ को देते हैं । (५) सचीद्रगाह के मालिक भगवत के । (६) मनुष्य । (७) अदृष्ट तत्त्व, परम तत्त्व—उसका साक्षात्कार हो जाता है । (८) व्याधियों के कर्ता रोग रूप भोग, क्योंकि शारीरिक दुखों का कारण भोग ही है । (९) हित करने वाला, हितकारी, सनेही । (१०) घाटा ।

नाभि कमल हाट है दूजा । कुदरति धार वणाया कूजा[1] ॥
नाभि कमल ते निकसै सास । नाभि कमल ते नामु[2] प्रगास ॥
नाभि कमल उद्यम अभ्यास । नाभि कमल होए का वास ॥
नाभि कमल महि सास का डेरा। कोई खोजि लहै जनु तेरा ॥
नाभि ते निकसि जिह्वा आय वकै । नानक अचरज रूप कोई लपि सकै २
तीजे हाट का नाऊँ भंडारु । जितु वसै ऊष्मा मँगै अहारु ॥
पूर्ण होय ताँ आवै शांति । विनु अहार तरफै दिनु राति ॥
अहार विना कछु अवरु न सूझै । होय ममूर[3] तब प्रभ कउ वूझै॥
प्रभु वूझै ताँ होय अहारु । नानक तीजा हाट भंडारु ॥३॥
नाभि निकट इक हाट वनाया। तहँ उद्यम आछा घरु छाया ॥
नाऊँ हाट का उद्यमु उदंता । तहिँ उद्यम सुखि सहजि वसंता॥
उद्यम करै त सभ किछु जानै। उद्यम करै त तत्तु पछानै ॥

---

(१) सिकोरा, घडा, भाव घट से है। (२) उसकी आश्चर्य कारीगरी और भी देखो कि नाभी कमल ते श्वास निकलता है परतु उस श्वास के प्रभाव से नाभी से नाम की ही प्रगटता होती रहती है, तात्पर्य यह कि सहज सुभाव नाम की तार हर एक के अदर लगी रहती है। जब श्वास नाभी से उठता है तो नासका मूल प्रयत ऊपर चढ़ता है और वहां से वाहर निकलता है (नासिका द्वारा) और फिर वाहर से उसी प्रकार नासिका द्वारा लौट कर अदर नाभी पर ही पहुच जाता है। यह श्वास की रात्रि दिन की स्वाभाविक चाल है। अब अतरयामी ने एक कारीगरी इस में रखी है कि जब श्वास नाभी से जोर (वेग) के साथ उठता है तो 'ह'-बीज अक्षर की धुनी करता हुआ ऊपर उठता है और जब नासा मूल पर पहुच कर टक्कर खाता है तो 'ह -की वदल वहा से 'स ' ऐसी बीज अक्षर की धुनी करता वाहर निकल आता है। इसी प्रकार जब अतरयामिनी शक्ति इसे फिर अदर की ओर खेंचती है तो उस भीतरीय खैंच से 'स ' का 'सो' उलटि करि हो जाता है, औरइसी धुनी के साथ जब फिर नासा मूल पर अदर आकर पूर्व वतही टक्कर खाता है तो स्थान के प्रभाव से 'सो' फिर 'ह के स्वरूप में पलट कर नाभी पर जा पहुचता हे-और उसी प्रकार 'ह' की धुनी सहित नासा मूल तक पहुच करि वहा से पूर्व वतही 'स ' के आकार पर वाहर निकल जाता है। और 'सो रूप हुआ अदर पलट कर नासा मूल पर 'ह' धुनी द्वारे नाभी पर पहुच जाता है। इस प्रकार दिन रात्रि में जीव इक्कीस सहस्र छ सौ श्वास सर्व प्रकार की क्रिया के करते सते भी "हंस सोह ' रूप नाम ही जपता रहिता है। परतु पुरुष अचेत है कि इसकी सहज सुभाव की गति से अपना जन्म सफल नहीं करता। क्षण भर भी यदि इसकी ओर ध्यान दिया जावे तो अनेक पापों से निर्मुक्त हो जावे। गुरू साहब ज् २ अधिकार शिव नाम का देखते ह त् २ नाम भी पलटते चले जा रहे ह जैसा कि प्रथम राम नाम का मत्र उपदेश किया फिर ॐकार का और अब हस रूप अजपा जाप का मत्र उपदेश किया है इसके प्रभाव से उसे पिड के बधन से निकालने का अभिप्राय गरू महाराज को अभीष्ठ है। (३) पूर्ण।

उद्यम करै त सभ किछु करै । उद्यम करै पंच सिउँ लरै ॥
उद्यम करै त भगति कमाय । उद्यम करै त तीरथ न्हाय ॥
उद्यम कीने कछु सुकृत होय । उद्यम करि अघडारै धोय ॥
चौथे हाट का नाम उदंता । नानक ता महिँ उद्यम बसता ॥४॥
बक नालि हाट मैँ बसने हारा । आवत जात हरि नामु चितारा ॥
पजवाँ हाट रखिया बॅकनाले । निश दिन जपै हरि नामु सम्हाले ॥
बॅकनाल आय बकता जीउ । आठ पहर करता पीउ पीउ ॥
पीउ पीउ जपै जब खुलहिँ कपाटु । नानक बॅकनालि बकते का हाटु॥५
शहरग हाट शहर है नीका । जितु सहजु बसै सुखु होवै जी का॥
शांति होय जब शहरग चलै । शहरग हाट गले ते तलै ॥
सासु सुखी शहरग महि आवै । शहरग रहै तेजु मिटि जावै ॥
तेजु मिटै न निकसै बाउ । नानक छेवाँ हाट शहरग है नाउँ ६
घंट हाटि जब ताला मिलै । कवन विधि बकै कवन विधि चलै ॥
बकन चलन ते इहु ठहराय । जब घट हाटि ताला मिलि जाय ॥
दर खूले इहु होय सुहेला । आनंद नगरी[१] बसै अकेला ॥
सभ किछु सुखी जब खुलहि कपाट । नानक घंटु सप्तमाँ हाट ॥७॥
प्रेम हाट जब इहु मनु जाय । प्रभु सिउँ रचै हरि के गुन गाय ॥
प्रेम भगति जब मनूआ लागै । प्रेम प्रीति ते सोया जागै ॥
प्रेम महलि जब इहु ठहिराना । आनि त्यागि एक लपटाना ॥
प्रेम हाट अष्टवाँ कहीयै । तउ नानक प्रभु सेती रचि रहीयै ॥८॥
आन[२] प्रेम जब जाय समाना । झूठा रूप देखि हैराना ॥
झूठ रते की झूठी करनी । झूठ रते क्यों राचहिँ चरनी ॥
आन प्रीति जो मनूआँ राता । साच प्रीति नहिँ कबहुँ कमाता॥
आन प्रीति के स्वाद लुभाया । आन प्रीति रचि जन्मु गँवाया॥
प्रीति प्रीति दुहं विधि के नाउँ । नानक आन प्रीति ते मनु समुझाउ ९
फिरि घिरि आय बसै जितु हाटि । तहँ मनु सहजि बिछाई खाट॥

(१) "जय करै अनद हाय रहै इकेला'। —पाठान्तर। (२) दूसरा प्रेम, भाव-मोह (संसारी इश्क़) से है।

आठ पहर जितु हाट वसेरा । सहजि सुभाय कीआ मनु डेरा॥
फरकि[1] फरकि जब पुशीआँ मानै । कोटि मध्ये कोई विरला जानै॥
नावाँ हाट रखिआ करि फुरना । नानक जिनि वशि कीआ
तिसु जरा न मरना ॥१०॥
रस्ना हाट सभ स्वाद बनाए । गुर मिलिआ तिस ठाकि रहाए ॥
स्वाद तजे रस्ना जब बाँधी । एक नाम पर रस्ना साधी ॥
रस्ना साधी सभ रस मेटे । जब ते पूरे सतिगुर भेटे ॥
दशवाँ हाट रस्ना करि धरिआ । नानक हरि सिमरन ते तरिआ ११
विद हाट जब इहु मन जावै । बुरा भला बहि तहीं कमावै ॥
सुकृत कबहूँ करै न कोय । नामु जपत मनि आलस होय ॥
इतु आलसि मनु मिलै सजाय । अति सँगल जम का गलि पाय॥
विद हाट महिं सब बुरिआईयाँ । करि किरपा गुर ठाकि रहाईयाँ॥
यारवाँ हाट है विद व्याधी । नानक गुर किरपा ते तिहँ गति लाधी॥१२
गंत हाटि जब इहु मनु वरै । अठसठ मजनु सुकृत करै ॥
अहि निशि पुन्न दान कउ धावै । करै भगति मनूआ ठहरावै ॥
हरि जसु सुणै प्रीति करि भाउ । सत्संगति देखि मनि उपजै चाउ[2]॥
रेनु[3] बाँछै अमृत करि पीवै । गत हाटि जब इहु मन थीवै[4] ॥
गत हाटु किरपा ते डीठा । नानक बारवाँ हाटु अनत सुख ईठा[5] १३
अनगति हाटु अज्ञान समाया । इन अज्ञान इहु मनु भरमाया॥
भरमि भूला कहूँ रहनु न पाई । अनगत हाट मैं रहिआ समाई ॥
किव गति होवै जब अनगति जाय । अनगति हाटु अकर्म कमाय[6]॥
जैसा घरु तैसा प्रगास । जैसा उद्यम तैसा अभ्यास ॥
अनगत हाटि जाय नामु बिसारै । बाणी कहै नानक बीचारै ॥१४॥
तामस तिसना जब मनि आई । तब इस मनि कउ लागी काई[7] ॥
तेज तरग अंतर महि आए । तब इन मनि मीठे करि भाए ॥
शीत न होय रहै सद ताता । तिसना हाट जब इहु मनु जाता॥

(१) फडक २, उछल २ । (२) उमग । (३) धूली । (४) होवै । (५) इष्ट, प्यारा । (६) "जित हाट बसै साकार कमाय"—पाठांतर । (७) मैल ।

तेज तरंग तामस के हाट । ताँके मुहकम[1] मारि कपाट ॥
तेरवैँ हाट के ताक अडाए । नानक त्रिस्णा हाटि न जाय ॥१५॥
उद्यम[2] हाट जब इहु मनु जाय । करि उद्यम अनत सुख पाय ॥
मन मैँ उद्यम करै पतिशाही । उद्यम भीति[3] भरम की ढाही ॥
उद्यम होय त सभ कछु करै । बिन उद्यम जम के बशि परै ॥
करि उद्यम जम दूरि बिडारै । उद्यम ते कई कोटि उधारै ॥
चौधवा हाटि उद्यम है कीना । करि उद्यम नानक हरि प्रभु लीना ॥१६॥
उक्त हाटि जब इहु मनु जाता । उक्ति सिआणप बहुत कमाता ॥
उक्ति सिआणप करि मन सोधै । उक्ति सिआणप जगु परबोधै ॥
उक्ति सिआणप पच निवारै । उक्ति करै प्रभु अतरि धारै ॥
बिनु उक्ति सिआणप जमु लैणे आवै । बिनु उक्ति सिआणप काल सतावै ॥
पंद्रहूँ हाट का नाऊँ है उक्ता । नानक उक्ति सिआणप मुक्ता ॥१७॥
निंद हाटि जब इहु मनु जाई । निंद चिंद बहि करै पराई ॥
निंद चिद करि दोजकि पाय । जब मनु निंद हाट महि जाय ॥
बिनु डीठे[4] आदिष्ट कमावे । नरक घोर का राहु बतावै ॥
लहै सजाय मुहे मुहि खाई । अदिष्ट निंद बहि करै पराई ॥
निंद चिंद की प्रीति करि रसै । नानक सोलवाँ हाटि जबै मनु बसै ॥१८॥
क्रोध हाटि जब इहु मनु चलै । करै क्रोध अगनी ज्यों जलै ॥
आपे ही जलि बलि होवै सुआहु[5] । जब क्रोध हाट का पकडै राहु ॥
दे दे लहरि जलै मन माँही । क्रोध जले की गति कहूँ नाँही ॥
करै क्रोध हरि नामु न मानै । साध बचन हिरदै नहि आनै ॥
क्रोध जलै शीतल नहिँ होई । जे अठसठि सर[6] न्हावै कोई ॥
सतारहूाँ हाट क्रोध का बाधा । नानक जो पडिआ सो दाधा[7] ॥१९॥
सहज हाटि मन कीआ निवासु । सहज सुभाय मनि कीआ प्रगासु ॥
सहज सुभाय करे जै कारा । सहज नाथु हरि लागै पिआरा ॥

(१) दृढता के साथ । (२) पीछे उद्त हाट कहा है उस में मन गया हुआ अकेला अपने वास्ते ही उद्यम करता है परंतु इस हाट में दूसरे जनों के पर उपकार में भी प्रवृत्त रहता है । (३) फसील । (४) पीठ पीछे किसी की निंदा करनी । (५) राख, भसम । (६) अठसठ प्रधान तीर्थ जो पृथ्वी मंडल में माने जाते हैं । (७) दग्ध हो गया ।

जो कछु करै सो सहज सुभाय । सहज सहज हरिके गुन गाय॥
सहज सुभाय का इही विचारु । सहज सुभाय मन होय उद्धारु॥
सहज सुभाय गुर की दीक्षा लेइ । सहज सुभाय मनु जनु कउ देइ ॥
अठारहूँ हाट महिं जब मनु आवै । तउ नानक सहज सुभाउ कमावै ॥२०॥
सिव हाट जब इहु मन आवै । होय नीच[1] हरि भगति कमावै ॥
शिव जाने ते शक्ति गवाई । शिव के आगे शक्ति निवाई ॥
शिव आगे सभ करै सलामु । तब मनु होय रहै प्रधानु ॥
नव छिअ पटु[2] शिव आगे चेरे । सो सिव[3] रीति दिढहिं जनु तेरे ॥
शिव का महलु गुहज अति कीआ । इन मनु तहीं निवासा लीआ॥
उनीहूँ हाट का नाऊँ है सेवा । नानक तहँ मनु हूआ देवा ॥२१॥
शक्ति हाट मैं हउमैं कीनी । आपि भुलाय इस तन कउ दीनी ॥
हउमैं करिकै किसै न जानै । हउमैं करिकै प्रभु न पछानै ॥
हउमैं कीने भगति न होई । भगति करै जिनि हउमैं खोई ॥
मनि द्रिढ़िया हउमैं का हाटु । तिसका मुहकमु जड़िया कपाटु ॥
इनि हउमैं इहु जीउ भुलाया । शक्ति हाट मैं जाय समाया ॥
वीहूँ हाट का नाऊँ है शक्ति । नानक उत्परि नाँही भगति ॥२२॥
क्षमा हाटि जब इहु मनु जाइ । करै क्षमा हरि सिऊँ लिव लाइ॥
क्षमा गही तब सचि समाया । क्षमा गही तब मनु ठहिराया ॥
क्षमा गहै तब भरम गढ़ तोड़ै । क्षमा गहै मनु हरि सिऊँ जोड़ै ॥
क्षमा गही तब मनु शीतलाना । क्षमा गही भ्रमता घरि आना ॥
क्षमा गही तब कूड़ गवाया । क्षमा गही तउ सच्चि समाया ॥
क्षमा शांति जब इत मनि आई । करि सम द्रष्टी जोति दिखाई ॥
इकीहूँ हाट क्षमा का कीना। नानक गुर परसादी चीना ॥२३॥
संतोष हाट मैं जब मनु आया । सत्संजम वहि तहीं कमाया ॥
सत् संजम का घर कीआ संतोष । मन तहिँ वसै लगै नहि दोष ॥
सत् संजमु करि हाट बनाए । तहाँ सत्त सत्त के शाह वसाए ॥

(१) दीन अधीन। (२) नौ नाथ, बारह पथ। (३) सिव रीति-सेवा गुरू सतों तथा साधुओं की।

सत संजम का सौदा नीका । सतोप हाटि सुख होवै जी का ॥
बाईहूँ हाट का नाऊँ संतोप । नानक जो चीनै तिसु नाही दोष ॥२४॥
बाउ हाट इक भाँति बनाया । कहता बकता तहीं बसाया ॥
कहता बकता करै अवाय । जब मनु बाउ हाट मैं जाय ॥
बाइ पइआ मनु मुख ते बोलै । बाइ पइआ चहु कुडीं डोलै ॥
बाइ पइआ दह दिशि कौ धावै । बाइ पइआ घरि कदे न आवै ॥
बाइ पइआ पाकु सिरि छानै । तत्त वस्तु की सार न जानै ॥
तेईहूँ हाट का नाऊँ है बाउ । नानक उत्घरि विसरै नाऊँ ॥२५॥
भरम हाटि जब इहु मन जाय । अकाश बघूले ज्यौँ भरमाय ॥
भ्रमता कबहुँ न आवै ठौर । काष्ट बीचि बसै ज्यौं भौर ॥
ज्यौं काष्ट छोडि भउर उडि जाय । त्यौँ मनु भ्रमै भउर के भाय ॥
भरम हाट का इहु बीचारु । करै निंद सिर छानै छारु ॥
हाट चौबीस्वें नाऊँ भरमाउ । नानक हरि प्रभ कीआ बनाउ ॥२६॥
काम हाटि जब इहु मनु बसै । अति सुंद्र त्रिय देखि बिगसै ॥
करै उपाव काम रस ताँई । जन्मु पदार्थ जात अजाँई[1] ॥
नरक बाँछै सो कामु कमावै । काम सुआदि जूनी भरमावै ॥
पचीस्वें हाट काम का डेरा । जो तहँ बसै सोई जमि घेरा ॥
उस हाट की जो टहल कमावै । नानक मरि जनमै जूनी भरमावै ॥२७॥
दो विधि कामु कोई बीचारै । दोनो विधि के राह सवारै ॥
काम रत्त जिस जन दिष्टाया । आन काम तिनि गलत गवाया ॥
आन काम ते तन विनशाया । रत्त काम ते ब्रह्मि समाया ॥
काम गहै तिस रत्त दिखाईऐ । जिस छूटै सो जोनि भ्रमाईऐ ॥
रत्त हाट काम का कीआ । परमार्थ खोजि किनै जनि लीआ ॥
जिनि चीनिआ तिनही मिति जानी । जिनि काम रत्त की जोति पछानी ।
रत्त जोत्ति माथे प्रगटानी । जिनि टारिआ तिस जोति बुझानी ॥
काम सचि जनु भए ममूर । नानक जिन राखिआ ते सदा ठरूरु ॥२८॥
अहिनिहाट जब इह मनु जाई । अदिष्ट वस्तु हिरि लेत पराई ॥

(१) व्यर्थ ।

चोरी रस इहु मनु लपटाना। अहनि हाट जब जाय समाना ॥
छाडि कृत्त तब चोरी धावै। अहनि हाट जब जाय समावै ॥
हिरि हिरि लिआवत वस्तु पराई। मरना बाँधि लीआ शिरि[1] भाई ॥
हाट छबीस्वाँ अहनि है नाऊँ। नानक ताँके कुलफ चढाऊ ॥२९॥
जत्त हाटि जब इहु मनु जावै। जुगति जत्त की तब मिति पावै ॥
जाता देह जत्त करि राखै। जत्त जुगति कोई जनु लाखै ॥
जीता जन्मु जबै जतु गहिआ। इहु मनु जाता अस्थिरु रहिआ ॥
जो जतु राखै[2] तिसु पिंडु न पाई। जतु साधे की इह मिति भाई ॥
बीसाँ परि सतवैँ जो रचिआ। नानक जतु दृढ कालहुँ बचिआ ॥३०॥
जब इहु मन जाय ब्रह्म समावै। एक दृष्टि कछु नाहि दुरावै[3] ॥
एको एकु सभन मैँ जानै। सोई ब्रह्मदरि[4] पवै पजानै ॥
पवै पजानै बहुरि न फेरु। प्रगटिआ ब्रह्म मिटिआ अंधेर ॥
गया अंधेर भया उज्यारा। जब अंतरि कीआ ब्रह्म पसारा ॥
अठाईहूँ हाट का नाउँ है ब्रह्म। नानक उत्घर बिनशै भरमु ॥३१॥
करम हाटि वहि करम बीचारै। करम किरत कउ अंतरि धारै ॥
वेद पढै शुचि संजमु करै[5]। वेद पढ़ै जनमै फिरि मरै ॥
ब्रह्म इंद्र शिवपुर मैँ जाय। नहि ठहिरावै जूनी पाय ॥
करम हाट के गुन कहे भाई। करै करम जब उतघरि जाई ॥
बीस ऊपरि नौँ हाट बनाए। नानक ऊहाँ वहि करम कमाए ॥३२॥
अकर्म हाट वहि करै अकर्म। ग्रिह कुटुंब की त्यागी शरम ॥
वेस्वा खाने जूए जाय। जब मन अकर्म हाट महि पाय ॥

(१) मरन मिटी उठा लेना, लालच मद में अंधा हो फिरना। (२) "दृढै"। (३) छिपावे। (४) पारब्रह्म की दरगाह विषे। (५) रोचक, भयानक यथार्थ रूप वाक्य वेदो में सविस्तर गाथा पूर्वक निरूपित हैं, और यह जीवों की स्वाभाविकी चाल है कि भयानक वाक से शीघ्र भयभीत हो जाना और रोचक में प्रवृत्त हो जाना। सो वेदों की विस्तार भरी गाथायें अपने जाल में ऐसा जकडती हैं कि जीव यथार्थ उपदेश में सुगमता से प्रवृत्त ही नहीं हो सकना और कर्म काड आदि की रोचिक कथायें अपनी ओर से निवृत्त होने का अवसर ही नहीं देतीं और जैसे शुभाशुभ कर्म करेगा वेसी ही वासना के अनुसार जन्म मरन की गति होगी जिस का कारण केवल वेद ही है। क्योंकि ना माना तो पाप और माना तो पुन्न। पाप से नरक, पुन्न से स्वर्ग, अन्त को फिर वहा से इत्तर योनियों में (कर्मा अनुसार) धक्का। इस प्रकार बारबार जन्मता मरता ही रहता है।

फाहा पाइ करै चटपारी[१]। अकर्म हाट महि मारी तारी॥
निंद चिंद[२] आदिष्टी करै। जब अकर्म हाट में परै॥
करै अकर्म कर्म नहि जानै। नानक अकरम हाट समानै॥३३॥
तप्त हाट महि जब मन जाय। तनु ताता कछु पीग्रै न खाय॥
कपन लागे सगला देह। तप्त हाट के लक्षण एह॥
अहारु न लेवै पीअै न खाय। पानी पानी करत विहाय॥
शीतल पानी ते बाढ़ै रोगु। उश्न पीए ते शीतल होगु॥
तप्त हाट के यिह गुन भाई। होय निबलु जब उत-घरि जाई॥
तीसवॉ हाट तप्त का कीआ। नानक ता महिं सूख न थीआ[३]॥
शृतहि हाट जब इहु मनु जाय। तप्त मिटै उपजै शिर वाय॥३४॥
शिर कउ बाँधै ऑखि न खोलै। ऊठि न साकै मुखहुं न बोलै॥
आलस उपजै सगली देह। श्रितहि हाट के लक्षण एह॥
तप्त शृत का एको मंतु। जिसु आवै सो निर्बल जतु॥
इकतीस्वॉ हाट छाडि अवर-घर जाय। तब नानक मन कउ सूखि बिहाय॥३५॥
विसूचि हाट जब इह मनु जाय। खोलि कपाट तहाँ ठहिराय॥
तहिं ठहराय जुगति सभ खोई। डाकी छूटी विकल तन होई॥
प्रान पिंड की करै न सारा। बिसूचि हाट वहि कीआ पासारा॥
विसूचित तन नही सकै समारि। पीपल मूल ज्वाइनि सारि॥
लौंग हफीम वरच मुखि पाई। तब इस जीअ को शांती है आई॥
कहु नानक बत्तीस्वॉ हाट। तॉका मुहकम देहु कपाट॥३६॥
बीले हाट जब इहु मनु जाय। होय कुरकरि क्या औपधि खाय॥
वरच घीउ पूदना मुखि पावै। पीठि सेकि मनु कउ सुख आवै॥
धुन्नी[४] की नाड़ि जोर करि खिंचै। तब मन कुरक पीड ते बँचै॥
छाछि खटाई निकटि न आवै। तब मनु बीले हाट महि पावै॥
काची देह रोगु सभ होय। तैंतीस्वें-हाट मनु-कउ दुख होय॥
कहु नानक मन के हैं हाट। तॉके अठसठ देहु कपाट॥३७॥
सुस्त हाट जब इहु मनु रसै। आलस सुस्ती अतरि बसै॥

(१) दाद मारी। (२) चुगली। (३) "ताप समीआ" पाठांतर। (४) नाभी की नाड़ी।

होय उबासी अरु हडवारी[१] । सुस्त हाट मनि मारी तारी ॥
हाड मास तन सुस्ती होय । सुस्त हाट मनु रहिआ सोय ॥
अठसठ हाट, बहत्तरि नारी । नौं दरवाजे चारे बारी ॥
होवहिं सुस्त सभै ही बंदा । चौतीहूँ हाट की एही निअदाँ ॥
नानक कहै सुनहु रे भाई । हाट हाट की साख सुनाई ॥३८॥
तमक हाट जब इहु मन धरता । शांति न आवै तिष्णा जरता ॥
तमक तिपा महि सद ही ताता । तमक हाट जब इहु मनु जाता ॥
सद ताता शीतलु नहि होय । ताँ के कुशल न कबहूँ कोय ॥
ताँ के तामस कबहुँ न जाई । तमक हाट महि जब ठहिराई ॥
पर[२] की ताति करै सद ताता । तामस जलिआ भसम होय जाता ॥
पैतीस्वाँ हाट तमक का कीना । नानक तमक बसेरा लीना ॥३९॥
शांति हाट जब इहु मनु जावै । क्रोध हरै शीतल घरु छावै ॥
शांति पई तमक सब त्यागी । शीतल हाटि गया वैरागी ॥
शीतल हाट शांति का बासा । शांति भई मनि भया प्रगासा ॥
शांति भई मन उपजिआ चाउ । कामक्रोध गया तप ताउ ॥
ज्ञान रतन्नु शांति ते आया । नानक छत्तीसवाँ हाटु सतिगुरु ते पाया ॥४०
दया हाट जब इहु मनु वसै । जीअ दया सभ ही महि रसै ॥
जीअ जीअ की महिमा जानै । सम दृष्टी होय एकु पछानै ॥
दया दानु दे दरदहिं जानै । दूजा त्यागि इकतु घरि आनै ॥
दामोदरु जाँ के मनि वसै । दुदर[३] बाँधे सुदरु[४] लसै ॥
सुदर की तब जोति पछानै । दया हाटि जब इहु मनु आनै ॥
सैंतीहूँ हाटि महिं दया बनाई । नानक विरले किनै ही पाई ॥४१॥
भाउ हाट में जब मनु जाता । भाउ भगति सभ संग कमाता ॥
भाउ कीए ते भरमु सभु जाय । भाउ भगति सभ संगि कमाय ॥
भाउ भगति की ऊची महिमा । भाउ दृढै सो होवै ब्रह्मा ॥

---

(१) हाड फुटनी, आलस्य में हाड सुस्त हो कर टूटते प्रतीत हुआ करते हैं । (२) दूसरों की चिंता से संताप करने करि, दूसरो की धन विद्या मान देख करि मन में संतप्त रहिना। (३) दो दो दरवाजे, नासा कान नेत्र इनको बंद करा देवे तो । (४) सुन्न द्वार का साक्षात्कार हो आना है ।

भाउ भगति जाके मनि आवै । भाउ हाट मैं जब मनु जावै ॥
अठतीहूँहाटु भाउ का करिआ । नानक उत घर इन मन भाउ करिआ ॥४२॥
बिरह हाट जब इहु मनु वसै । अंतरि बिरह बिरह सँगि रसै ॥
बिरह करै तउ ब्रह्मु पछानै । बिरह करै तब रहै ध्यानै ॥
बिरह करै ताँ एको बूझै । बिरह करै ताँ सभ किछु सूझै ॥
बिरह हाट बिरहे का डेरा । बिरह हाट कब करै बसेरा ॥
कबहूँ फिरता फिरता आवै । बिरह हाट बहि बिरहु कमवै ॥
जित घरि बसै से लच्छनु करै । उस नगरी की सोझी परै ॥
उनतालीहूँ हाटु बिरह बिचि बसै । नानक बिरहु लाइ मनु सहजे बिगसै ॥४३॥
दोय हाट बिरह के कीए । दोय बिवेक बिरह कउ दीऐ ॥
साचे बिरह मिलै प्रभु साचा । साच बिरह अंमृत रस राचा ॥
साच बिरह प्रभु की मिति आवै । साच बिरह मैं साचि समावै ॥
साच बिरह सभ साचु पछानै । साच बिरह भ्रमता घरि आनै ॥
साच बिरह का जब घरु जापै । साच बिरह सभ सच्च पछापै[1] ॥
चालीहूँ हाटु सचु जितु पाया । नानक साचि रत्ते सचु भाया ॥४४॥
इकतालीहूँ हाटि जब जावै । झूठ बिरह मनु भरम भुलावै ॥
पर त्रिया सेती बिरहु लगावै । उत बिरह तनु ताय जरावै ॥
उत बिरह होय इत उत[2] झूठा । ज्यौं डऊँ[3] लागे काठु झलूठा[4] ॥
झूठे बिरह जलै किऊँ जीवै । दाधा बिरहि न शीतलु थीवै ॥
काम बिरह की भाठी दाधा । बिरह अगिन की थम्मी[5] बाधा ॥
झूठ बिरह के हाट समाया । नानक ताँ कौ ठौर न ठाया ॥४५॥
बतालीहूँ हाटु प्रीति का कीना । कोटि मध्ये किनै विरले चीना ॥
प्रीति प्रेम तिसु खुलहि कपाट । प्रीति प्रेम का एको हाटु ॥
प्रीति होय तौ प्रेमु पछानै । प्रीत चीनि अंतरि प्रभु जानै ॥
अंतरि खुला प्रीति जब पाई । प्रीति हाट प्रभु प्रीति बनाई ॥
बतालीहूँ हाट जिस महि सचु प्रीति । नानक जो चीनै तिसु निर्मल रीति॥४६
झूठ प्रीति प्रभु कबहुँ न भीजै । झूठ प्रीति तनु खपि खपि[6] छीजै ॥

(१) प्रत्यक्ष भासे, प्रतीत होने लग जावे, । (२) लोक परलोक में । (३) दावा अगनि । (४) झुलसा जाना, अधजला । (५) थम्बी, शहतीर । (६) क्षीण हो हो करि ।

झूठ प्रीति का हाटु उजारै । महाँ अग्नि महि इहु तनु जारै ॥
जरि बूझै तब होवै सुआहा । झूठी प्रीति न इस को लाहा[1] ॥
लाहा मूलु सभु झूठु गवावै । झूठ प्रीति सभ रासि[2] वञावै[3] ॥
झूठ प्रीति कुल दोनो खोवै । हाथ पछाडि मूढ मनु रोवै ॥
साच झूठ की दो बिधि प्रीति । जितु को रचै तैसी तिसु रीति ॥
तैंतालीहूँ हाटु आन प्रीति का कीआ । नानक उत घरि मुक्त न थीआ॥४७
स्रवन हाट जब इहु मनु बरता । भाउ प्रीति करि हरि जसु सुनता ॥
स्रवनी सुनि सुनि चित्त बसावै । स्रवनी सुनि सुनि प्रेमु बढावै॥
अन सुनिआ कछु कहिआ न जाई । जिनि सुनिआ तिनही लिव लाई
सुनि सुनि सालक[4] सादक[5] हूए । अनसुनिआ पहु[6] कछू न थीए॥
चौतालीहूँ हाटु कान प्रभ कीआ । नानक सुनि सुनि सहजि पतीआ॥४८
बहर हाट[7] होय रहता बहरा । मिति नही आवै आगम[8] शहरा ॥
जसु अपजसु कछु सुनीए नाँही । बहरा बिसमु भया मन माँही ॥
स्रवनीं सुनत बहर जब रोवै । जाँकी बूझ धरम[9] पहि होवै ॥
धरमराय जब कागदु काढै । तब क्या बहरा लेखा साढै[10] ॥
होत स्रवण बहरा होय जाय । जब मन बहर हाट महि पाय ॥
पैंतालीहूँ हाटु बहरा करि राखिआ । नानक होत स्रवन सुनीऐ नहि भाखिआ[11]॥४९
दृष्टि हाट जब इहु मनु देखै । आन न पेखै ब्रह्म विशेपै ॥
एक दृष्टि देखै-सभ रचना । आदि अंति तिनि कालहुँ बचना ॥
एक दृष्टि सभ बधन खोलै । चारि पदारथ लीए अमोलै ॥
नामु दान इसनानु अरु कामं । तिस मिलै पदारथ जिस लिखिआ करम[12]॥
एक दृष्टि ते सभ किछु पाया । इहु मनु एक दृष्टि महि आया ॥
दृष्टि हाट के बंधन खोले । नानक छतालीहूँ हाट बिनशे सभ ओले[13]॥५०॥
आन दृष्टि जब इहु मनु धावै । आन दृष्टि अप्राध कमावै ॥
पर त्रिय पर माया कउ हेरै । जब मन जाय आन के डेरै ॥

---

(१) लाभ । (२) पूंजी । (३) व्यर्थ गँवा देना ।(४) जग्यासूजन । (५) निश्चेवान, श्रधालू ।
(६) अनसुनिआ के पास से कुछ नहीं हो सकता । (७) बधिरापन, बहरापन का घाट ।
(८) अगम लोक । (९) धरमराय । (१०) बनावे, गाठ गाठेगा, भार क्या उत्तर देगा ।
(११) बचन, बोली, उपदेश । (१२) मस्तक के लेख । (१३) परदे ।

आन दृष्टि जब इहु मनु जाय । तब इस कउ नाहि टिकन की जाय
नानक कहै सुनहु जनु ज्ञानी । सैतालीहूँ हाट वसहि अन ध्यानी॥५१
पाप हाट जब इहु मनु वरे । पाप कमावै धरमु न करै ॥
धरम पुन्न की सूझ न पाई । तब मनु पाप जाय ठहराई ॥
पापि रत्ता मनु धरम न जानै । अंत बार जमु दुख दे डानै ।
पाप हाट के लक्षण फीके । पाप अंत वैरी है जीके ॥
अठतालीहूँ हाट पापु कमाया । नानक पाप कीए ताँ दोजकि पाया ॥५
धरम हाटि जब इहु मनु जाय । सुकृत्त करै आतम लिवलाय॥
पुन्न दान की महिमाँ जानै । पाप दृष्टि सुप्ने नहि आनै ॥
धरम धीर्य की जिस मनि दृढता । हरि जसु सुनत कवल ज्यौं खिडत
धरमु कमावै पापु न करता । जिस ते धरमराय है डरता ॥
ऊनंजहूँ हाट धरमु कमाया । नानक धरम हाटि मनु जाय समाया ॥५३॥
रत्न हाट जब इहु मनु जानै । रत्न की जोति कउ तबहिं पछानै॥
चहु रत्नाँ की जिस मिति आवै । सोई रत्न हाट कउ पावै ॥
चहुँ रत्नाँ की जानै जाति । तिस जनु की सभ तूटै भ्राँति ॥
चारि पदारथ तब ही लेइ । जब मन अरपि साध कउ देइ ॥
साध कृपा ते लहै पदारथ । साध सेव बिनु जात निरारथ ॥
चहुँ रत्नाँ की जो मिति देवै । ताँके चरन नानक जनु सेवै ॥५४॥
प्रथम रत्न की सो मिति पावै । अभय हाट जब जाय समावै ॥
प्रथमे नामु पदार्थ पाया । साध चरन जब इहु मनु लाया ॥
नाम रत्न की जोति प्रगासी । जब ते मिले साध अविनासी ॥
नामु रत्न लै कठ परोवै । ताँ को जन्मु बहुरि नहि होवै ॥
एक बार बिनु बहुरि न जरमै । रत्न पदार्थ बिनु फिरि भरमै ॥
अभय हाट जब इहु मनु आइआ । नानक ताँ कउ रत्न दिखाइआ ॥५५॥
साध कृपा ते मनु ठहराना । मुक्ति पदार्थु तबहि पछाना ॥
साध सेव ते मुक्ति पछानै । साध सीख जब अतरि जानै ॥
मन वच क्रम सुप्रसन्न भये साधा । मुक्ति पदार्थ तिन ते लाधा ॥

(१) दड ।

मुक्ति पदार्थ जिन प्रगासिआ। अनद हाटि जब इहु मनु वासिआ॥
साध कृपा ते नामु ध्याया। तउ नानक मुक्ति पदार्थ पाया॥५६॥
अठसठि माहि अपूर्ब[१] हाट। गुर किरपा ते खुलहिं कपाट॥
अपूर्ब हाट मनु रहै समाय। जन्म पदार्थ लहै सुभाय॥
जन्म पदार्थ तब ही पाया। संत टहल जब इहु मनु लाया॥
जन्म पदार्थ तिसहि दिखाया। जब ते हरि जस सुनत अघाया॥
जन्म पदार्थ की मिति जानै। साध सेव जब रिदे पछानै॥
जन्म पदार्थ गुर ते जानिआ। नानक सो जनु बहुरि न आनिआ॥५७
काम रत्न की जब मिति आवै। तबै कामु अतर ठहरावै॥
जब साधै तब शब्दु अराधै। काम रत्न आय प्रगटै माथै॥
वा की जोति माथे प्रगटानी। काम रत्न की जोति पछानी॥
जब छुटकै तब चाँदनु हिरै। काम रत्न को बिरला जरै॥
गुहज हाट की जब मिति जानी। नानक काम रत्न को बूझै ज्ञानी॥५८॥
अमर हाट जब इहु मनु आय। होवै अमर पिंड नहि पाय॥
कवन शब्द ते पिंड न पाय। जीवतु मरै बहुरि नहि आय॥
साचि मूआ तउ बहुरि न मरना। अकाल भया क्या कालहुं डरना॥
अमर हाट जब जाय समावै। नानक चारि पदार्थ बीचारि सुनावै॥५९॥
बिधन हाट महि सब विधि राखी। बिधि जानी तिस जोति पराखी॥
बिधि बिधि करिकै सभ बिधि बाधै। पंचतत्त कउ विधि सों साधै
बिधि त्रिधि करि सभ तन बीचारै। विधि विधि करिकै आपु निवारै
बँद बँद की सभ बिधि जानी। बिधि जानै सो अनभै ज्ञानी॥
बिधिन हाट की बारी खोली। अगम नगरी विधि सिऊँ टोली॥
रोम रोम की जब सुधि पाई। नाडि नाडि की कथा सुनाई॥
हाट हाट का कीआ मथतु। ताँ ते सतिगुर दीआ मततु॥
बिअत देह प्रभि सहजि सवारी। नानक गुर किरपा ते सगल बीचारी॥६०॥
चितवनि हाट जब इहु मनु जाइ। अनदिनु चितवनि करत विहाय॥
चित चितवनि को सरै न काजा। कबहुँ नीच कबहूँ होय राजा॥

(१) जिसके प्रथम यैसा कोई ना होवे।

कबहूँ होवै ब्रह्म-ज्ञानी । कबहूँ होवै अनिक ध्यानी ॥
कबहूँ होवै ज्ञान बिचारी । कबहूँ होय वहै अहकारी ॥
कबहूँ होय वहै गुरु पीरु । कबहूँ फिरता होय फकीरु ॥
चितवनि हाट जब इहु मनु जाय । नानक चितवनि माँहि बिहाय ॥६१॥
अकल हाट वहि करता अकल । जिंह प्रसादि उधरे जन सकल ॥
अकल[१] निरंजन कउ जब जानै । अकलि करै जब रहै ध्यानै ॥
बिना अकलि कैसे कछु पायै । अकल बिहूना भरमि भुलायै ॥
होय बिस्राकलु अकल बिहूना । ज्यौं बिनु लोन स्वादु अलूना ॥
अकलि हाटु किरपा ते डीठा । नानक सतिगुर भये बसीठा[२] ॥६२॥
बिअकल हाट मनु जाय समाना । करै अयान[३] ज्यौं बाल अयाना ॥
होय बिअकल अकलि नहि काई । होय वेअकलि हाट शिरि छाई ॥
बिना अकलि फिरता भरमाया । जब मनु बेअकल हाट नहि आया ॥
होय वेअकलि तन की सुधि जाई । औझड़[४] भरमै राहि न पाई ॥
बिकल बिसुध फिरै बौराना । नानक बिकल हाट जब जाय समाना ॥६३॥
चंचल हाटि करत चतुराई । कथनी बदनी[५] तब मनि आई ॥
कथता बकता कै होय ज्ञानी । चचल हाट की जोति पछानी ॥
करि चंचलाई चतुर कहावै । चचल हाटि जब जाय समावै ॥
चतुराई करि कथनी करता । चंचल हाटि जब इहु मनु बरता ॥
साच शब्द की सार न जानै । नानक करि चतुराई कथा बखानै ॥६४॥
प्रेत हाटि जय इहु मनु रचै । करि बिपरीति जंत ज्यौं पचै ॥
अवराँ निदै आपि न जपना । होय प्रेतु तनु खोवै अपना ॥
अप तनु खोइआ करि बिप्रीति । प्रेत हाट की ऐसी रीति ॥
होय प्रेतु तनु नाहि समारै । जन्म रत्न कौडी लउ[६] हारै ॥
प्रेत हाट का इही गुनाऊँ[७] । नानक उतघरि बिसरै नाऊँ ॥६५॥
इड़ा हाट जब इहु मनु आवै । इत उत की सभ सोझी पावै ॥
आवन जान ते रहे निरारा । इडा हाट जब कीआ पसारा ॥

(१) माया अविद्या रूप कला से रहित । (२) वकील, बिचोले । (३) अयानप, मूरखता ।
(४) उजाड, घना जगल । (५) कथनी=कथा करनी, व्याख्यान देना । बदनी=कविता कहिनी ।
(६) कौडी अर्थ । (७) वीचार ।

इड़ा विचडा कउ करै मैदानु । अनहद सुन्नि लगावै ध्यान ॥
आन न जानै एकहि राता । इडा हाट जब इहु मन जाता ॥
अउघट घाट मन के सभ तोड़ै। नानक इड़ा हाट मनु जोड़ै ॥६६॥
हाट पिंगुला जब मनु वड़ै । बिन मारग गगनंतर चढै ॥
वह मगु नाना[1] स्योंकरि गढु चढीअै । डावर[2] तार पलमि तहँ बडीअै॥
पिगुल राता सभ गढ़ साधे । पाँचहुं नायक इक ठाँ बाधे ॥
प्रान नगर की सभ विधि जानी । पिंगुल जाय जोति पहिचानी ॥
हाट अनूप पिंगुला नाऊॅ । नानक तहिँ बूझै सभ भाऊ ॥६७॥
हाट सुष्मना जब मनु जाय । अनंद केल सुख सहज विहाय ॥
केल करै सुख रलीआ[3] मानै । जब मनु सुष्मन हाट पछानैं ॥
सुष्मन राता करै अनंद । काम क्राध त्यागै सभ निंद ॥
अनद कलोलनि इहु मन राता । शीतल भया गया सभ ताता ॥
तामस तिष्णा मन ते गई । जब सुष्मन की सोझी पई ॥
इडा पिगुला सुष्मन सूझी । तब मन गुहज कथा सभ बूझी ॥
सुख का हाट सुष्मना कीना । नानक तहि सुख डेरा लीना ॥६८॥
वेनी हाट जबै मनु जाय । मनु तहिँ वेनी कर्म कमाय ॥
बेनी सगम जब मनु जाता । तब अठसठि सहजे ही न्हाता ॥
बेनी हाट वहि जोति पछानी । बेनी ध्यानु धरहि जब ध्यानी ॥
बेनी महि सभ जोति दिखाई । नानक वेनी सेॅ लिवलाई ॥६९॥
त्रिकुटी हाट मैँ त्रैगुन त्यागी । चौथे पद कउ भजि वैरागी ॥
तीन गुनाॅ[4] की रहत गवाई । जब त्रिकुटी महि करी समाई ॥
राजस[4] तामस सातक तजै । हरि जन चौथे पद को भजै ॥

---

(१) नन्हा, सूक्ष्म । (२) जेसे डमरू की तार, उलट पलट करि अपनी चोट के निशाने पर पडती है उसी तरह सुरति की तार भी अपने घर को लक्ष करके वारवार उधर पलम (लटक) कर अर्थात टिक टिकी बाध कर उस गढ में वड (प्रवेश पा) सकती है। अथवा डावर नाम ऊर्णनाभी जतू (मकडी) का है जिस प्रकार वह अपने भीतर की तार के साथ नीचे लटक कर फिर उसी के सहारे चढ कर अपने घासले रूप तने हुए जाल में प्रवेश कर जाती हे ऐसे ही सुरत रूपी मकडी भी श्वास प्रश्वास की तार से उतर चढ कर (शब्दाभ्यास के प्रभाव से) जहा से आई हे उस अपने निज देश रूपी घोंसले में प्रवेश कर जाती है भाव समाय जाती है॥ (३) खुशी, रगरस । (४) इडा पिंगुला सुषमना से भाव है ।

चौथे रचि कछु अवरु न जानै। त्रिकुटी माहि चदोआ तानै॥
त्रिकुटी ध्यानु धरहि जब क्षीना[१]। नानक तहिं मनु सहज पतीना॥७०
मनी हाट जब मनु मगनाना। प्रगट जोति माथा झललाना[२]॥
प्रगट जोति आई जब माथै। बिअंत कोटि उधरे तिंह साथै॥
कीनी किरपा आपि गुसाई। ताँके मस्तकि जोति जनाई॥
मनी हाट मैं जोति दिखावै। जब मनु मनी हाट मैं जावै॥
प्रगटि जोति जनु हरि संगि राता। नानक हरि जनु अगमु पछाता॥७१
द्वार हाट महि जब मनु गया। दशव द्वारे शीतलु भया॥
पोहि[३] न साकै उत घरि कालु। उत घरि होय वहै मनु लालु॥
लालहिं लालु मिलहि जब जाय। तब कालै का कछु न वसाय[४]॥
हीरे कउ जाय मिलिआ हीरा। जब दशवैं जाय चढ़े वजीरा॥
दशवैं दुआरे जब मनु गइआ। नानक जन्म मरण ते अस्थिर भइआ॥७२
जैसे सलिलहिं सलिल समाना। तैसे हरि जनु हरि मनु माना॥
जैसे कनिका काटि कीआ है राई। ऐसे हरि जन अंकि[५] समाई॥
जन महि हरि हरि महि जनु राता। हरि जन जन हरि एको जाता॥
उन्मनि ध्यान जनु हरि सग राता। कहु नानक जन अगमु पछाता॥७३
अठसठ हाट का कीआ निबेरा। बिरला खोजि लहै जनु तेरा॥
हाट हाट की जुगति बताई। जिंह घर जाय सु करम कमाई॥
मन ते आपहुं कछू न होई। जिंह घर जाय सु तैसा होई॥
कायाँ गढ़ महि हाट बनाए। इहु मनु उनके बीचि समाए॥
इह मनु सभ घरि भ्रमता फिरै। गुर किरपा ते अस्थिर थिरै॥
प्रान पिंड की चीन सुनाई। नानक जन कउ सोझी पाई॥७४॥

॥अध्याय सम्पूर्ण ६॥

---

(१) सूक्ष्म हुआ। (२) मसतकि में जोति प्रगटती हुई झलका मारने लग जाती है। (३) छू नहीं सकता। (४) बल, जोर। (५) हरि की गोद में।

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

॥ राग रामकली महला १ ॥

॥ ध्याउ निरबाण का ॥

(वाह वाह, गुरुजी वाणी)।

॥ श्लोक ॥

वाह वाह जिनाँ सिवरिआ से परवाण भये ॥
नानक सची सिफति सिऊँ भउजलि लघि पये ॥

॥ पौड़ी ॥

नाँ तदि बरनु चिहनु नहि देही। नहि सुरति शब्दु कोई पास सदेही[1]
नाँ तदि मात पिता भाई सुत दारा। तदि तूँ कहाँ रहत निरकारा॥
नाँ तदि बाँधिआ देहु न कीआ पउना। तहाँ नरकि सुर्ग तदि परता कवना
तदि आब पाक आतिश नहिँ धारे। नरकि सुर्ग तदि कउन सिधारे॥
तदि हाड मास नारी नहि चाँमु। तद्हुँ ध्याईऐ कउनै रामु॥
निरकार की अकथ कहानी। नानक विसम भया हैरानी॥१॥
धुधूकारि[2] महाँ अंध्यारु। धुंधूकारि न कीआ पसारु॥
धुधूकारि न पाणी पौणु। धुंधूकारि न सिआणप[3] सौणु॥
धुधूकारि न वेद पुराना। नहिँ को मूरख नाँ को सिआना॥
धुधूकारि कतेब न बेद। धुधूकारि ब्रह्म[4] नहि भेद॥
नाँ तदि बरन न देह उपाई। नानक कीमति कही न जाई॥२॥
नाँ तदि चंदु नही शितलाई। नाँ तदि सूर्ज किरणि तपाई॥
नाँ तदि गगन न कीए तारे। नाँ तदि धरति न कीए पसारे॥
नाँ जलबबु[5] न पौण उपाया। नाँ तदि ब्रह्म न कीनी माया॥
कवन रूप हिरदे महि धारौं। नानक अकथु कथा का क्या बीचारौं॥३॥

(१) अब ब्रह्मंड की सीमा से निकालते हैं और अगले दरजे के मत्र उपदेश के योग्य बनाते हैं। —

सनेही, पिआरा। (२) इस धुधूकार स्वरूप का वरनण पीछे करदिया हे। (३) शौनक ऋषि की सिआणप रूप विद्या ज्योतिष आदि शास्त्र (एक ज्योतिष के कहने से सभ प्रकार की विद्या का ग्रहण है क्योंकि सभके कर्ता शोनक नहीं हुए)। (४) यह भी पीछे कह दिया हे कि जब व्याप्य जगत ही कोई नहीं तो उस में व्यापक ब्रह्म कहा रहेगा। (५) जल का बबा, इस कथन से जल की उत्पति काल की धारा ला है।

धुंधूकारि सुन्न जब होता । कवनु सुचेत कवनु पै सोता ॥
तब पीर पैकँबर देव न थाना । नाँ को बहिकै कथै ज्ञाना ॥
नहिँ मुनिजन सनकादिक जोगी । नाँ को व्यापक नाँ को भोगी ॥
नाँ को राजा नाँ को महता । नानक तदि नाँ को पाटि नहीँ को पहुता ॥४॥
लोह[१] कलम नही स्याह[२] सुपेदी । नाँ वीचारी नाँ को भेदी ॥
विष्णु महेशु ब्रह्मु न कहीजै । नाँ को उपजै नाहि मरीजै ॥
ओपति खप्र तदि न कछु धारी । नानक कथा न जाय बीचारी ॥५॥
तदि नहि कीने आदम हवा । तदि शिव शक्ति न कीने दिवा ॥
कुराण कतेब न तीह सुपारे । बाँग बुलेल न सुनणै हारे ॥
महमद कलमाँ रासि न कीने । चारि कुरान कहहु किनि चीने ॥
दुआय सलाम निवाज[३] न कोई । नानक धुधूकार सुरति नहि लोई ॥६॥
नाँ तदि गुरू न सिक्ख न साखी[४] । सुचि सजमु जुगति कहाँ लै राखी
नाँ तदि होम जग्य इस्नाना । गऊ गायत्री वेद न पुराना ॥
नाँ को सुरता[५] नाँ को बकता । नाँ को निबलु न कोई शक्ता ॥
अपुना बरनु चिहन नहि कीना । नाँ तदि नानक कछु द्रष्टीना ॥७॥
नाँ तदि पुरुप न कीनी नारी । नाँ तदि ओपति खपति न सारी ॥
नाँ को शाहु नाँ कोइ भिपारी । नाँ कछु चौपड कीनी सारी ॥
नाँ को राय न रंकु कहावै । नाँ को मुक्त न नरकि सिधावै ॥
बालकु बिरधि न होता कोई । नहि निहसश न सहँसा होई ॥
अगम कथा कछु लखी न जाई । नानक जिसु किरपा तिसु देइ दिखाई ॥८॥
अमिता साहिबु मिति नही आवै । अकल निरंजन कल नाहि दिखावै ॥
अपर अपार पारु नहि पायै । रूपु न बरनु कवन बिधि ध्यायै ॥
धुधूकारु अति गहिर गँभीरु । नानक लखिया न जाय बहुत बिस्थीरु ॥९॥
अडज जेरज उत्भुज नहि सेता । नहि सहज सुभाउ, सजमु; नही नेता।
तदि तापु त्रित हीआ नही हेता ॥

(१) मसतक गत आकाशमडल में जीवों के कर्म फल चित्रितकारी ब्राह्मी शक्ति। (२) सहस दल कमल रूप नभ मडल जिस पर जीवों के कर्म चित्रित होते हैं । ऐसा श्याम सेतपद । अथवा पाप पुन्न रूप कर्म स्याही सफेदी । (३) निमाज । (४) उपदेश, प्रमाण, उदाहरण । (५) श्रोता ।

नाँ कछु सुनता नाँ कछु कहता । अपरंपर निरबाण बिधाता ॥
तदि अपना आपु न साजि सवारिआ । नानक जाति वरनु न बिचारिआ ॥१०
कवन रूप तेरा आराधऊँ । कवन जोग कायाँ लै साधऊँ ॥
कवन तन्तु लै तन्तु वीचारऊँ । कवन ध्यान तुध अतरि धारौं ॥
ध्यानु रूप ततु जोगु न पायै । नानक अचरज पुरुष कौन विधि ध्याईऐ ॥११॥
तदि अपना आपु आप ही उपाया । नाँ किछु ते किछु करि दिखलाया ॥
जब अपने प्रान पिंड की जानी । तब प्रगटी वाह वाह[1] की बानी ॥
वाह वाह का अगम बिचारु । जिस सिऊं परचि रहिआ निरकारु
जब अपना आपु उपाय पतीना[2] । तब नानक वाह वाह सौं भीना ॥१२॥
तहिं वाह वाह कीना परधानु । तहँ वाह वाह का अगम नीशानु॥
तहँ वाह वाह का सिमरण भारा । तहँ वाह वाह का बडा पसारा ॥
तहँ वाह वाह की महिमा नीकी । तहँ वाह वाह आलम है जीकी ॥
तहँ वाह वाह सौं आपि परचिआ । तहँ नानक वाह वाह सौं आपे रचिआ ॥१३
तहँ वाह वाह का अचरज रूपु । तहँ वाह वाह कउ कीआ अनूप ॥
तहँ वाह वाह सौं हरि प्रभु राता । तहँ वाह वाह सिऊं बैठि उठाता ॥
तहँ वाह वाह बिनु अवरु न बीआ । तदि वाह वाह का सिमरनु कीआ ॥
करि वाह वाह धरि गगन बिछोरी । नानक वाह वाह की अगम है डोरी ॥१४
तहँ वाह वाह सौं राता सुआमी । तहँ वाह वाह की अकथ कहानी ॥
तहँ वाह वाह प्रभ का परचाउ । तहँ वाह वाह सिऊं बनिआ सुआऊ
तहँ वाह वाह सिमरनु प्रभि कीना । प्रभु वाह वाह सिऊँ सहजि पतीना
प्रभु वाह वाह बिनु निमप न रहता । तहँ नानक वाह वाह प्रभु कहता ॥१५॥
जब धरणि अकाश कछू नहि कीआ । तब प्रभु वाह वाह मथि लीआ
चंदु सूर्ज नहि कीआ उजारा । तब वाह वाह प्रभु मन महि धारा ॥
तब पौण न पाणी पाकु न तेजु । तब वाह वाह का कीआ बंधेजु॥
वाह वाह कीना निरबाणु । नानक वाह वाह हैराणु ॥१६॥
वाह वाह की बडी हैरानी । वाह वाह की मिति नहि जानी ॥

(१) धुन्दूकार में हिलोर रूप वाह वाह शब्द सरूपी आनन्दाकारा अवस्था। (२) पतीजना, परतीत लाना। (३) विलास।

बचनु देति छालकु[1] होय आया। आपे अचरजु[2] खेलु रचाया॥
त्रै मूरति छालकु महि आनी। तब मनसा उपजी हैरानी॥
छालकु फोरि तीनि प्रगटाने। त्रैगुन प्रगटे एक समाने॥
धुंधूकारि प्रभु रहै निरारा। नानक तिहु ते कीआ पसारा॥२३॥

तहँ वाह वाह आपि अपाइँदा[3], गुर शब्दी सचु सोइ।
वाह वाह वाणी सचु है, सचु मिलावा होय॥
नानक वाह वाह करदिआँ, करमि प्राप्त होय॥ २४॥

वाह वाह करती रसना सुहाई। पूरे शब्दि मिलिआ प्रभु आई॥
वाह वाह मुखि सहज कढाई[4]। वाह वाह सिऊँ प्रभ बनि आई॥
वाह वाह करि रचन रचाई। वाह वाह धरि धुनि लिव लाई॥
नानक दरि सचे शोभा पाई॥ २५॥

वाह वाह करत मुख ऊजल होवै। वाह वाह कौ सहजि बिलोवै[5]॥
तहँ वाह वाह का नेत्रा[6] कीआ। वाह वाह सहजै मथि लीआ॥
तहँ वाह वाह करि तत्त वटोल्या[7]। वाह वाह करि ताला खोल्या॥
तहँ वाह वाह सिऊँ आपे राता। नानक वाह वाह करि आपु पछाता॥२६
तहँ वाह वाह सिऊँ रचिआ रंगि। तहँ वाह वाह सखा है संगि॥
तहँ वाह वाह सिऊँ रहै निराला। तहँ वाह वाह ऊची टकसाला॥
तहँ वाह वाह सिऊँ आलमु करता। तहँ वाह वाह सिऊँ ध्यान धुनि धरता

---

(१) छाला। (२) पीछे भी थोडे से भिन्न भेद के साथ इस उत्पत्ति का प्रकार आ चुका है। जो ग्रंथ, शास्त्र देखे जावें सभ में उत्पत्ति का प्रकार निआरा ही निआरा है। सो इसका वास्तिवक अभिप्राय संसार की अनस्थिरता, और कुछ भी ना होना समझाने का है। जिन जिन पूर्ण आचार्यों ने उत्पत्ति लिखी है इस प्रकार लिखी हे कि अपने आपको निरवाण अवस्था में इस संकल्प पूर्वक अभेद जा किया है कि हम को इस संसार इंद्र जाल की रचना का हाल विदित हो, परन्तु मालिक की शक्ति अपरपार हे, इस का वारा पार नही हो सक्ता यह उत्थान अवस्था में और ही प्रकार का ठाठ रचना का दिखला देता है। सो जग्यासुओं को व्यामोहित नहीं होना चाहिये यह कुछ नहीं हे परन्तु कुछ नहीं का कुछ कर दिखलाया है। इस कुदरत के सहारे कर्त्ता पुरुष को घर में खोजो।

संकल्प किये बिना भी उत्थान दशा के आते संसारी रचना का प्रकार कई वार स्फुरण हो आता और स्मरण रहि जाता हे।

(३) कहिता, जपता। (४) सहज के मुख से अथवा सहज स्वभाव से निकालता था। (५) सहज मटकी में मथन करता। (६) मथते समय मथानी के साथ मथन करने वाली जो रज्जु बँधी होती है। (७) माखन निकासा, ऊपर से बटोर लिया, निकाल लिया॥

तहँ वाह वाह का अगम वीचारु । तहँ वाह वाह का अतु न पारु ॥
तहँ वाह वाह ऊचे ते ऊचा । तहँ वाह वाह कउ को न पहूचा ॥
वाह वाह मति धुंधूकारि । नानक आपे जपिआ पिआरि ॥१७॥
नहि कछु दूजा प्रभु एककारु । तव वाह वाह का करत अहारु ॥
तव वाह वाह सिऊँ अकथु कहानी । तव प्रभु रहता महा निरबानी ॥
तव वाह वाह सिऊँ हरि ठहराया । अति अतीतु वाह वाह रीझाया ॥
वाह वाह रीझाया आपि । नानक वाह वाह तहँ रहिआ व्यापि ॥१८
तहँ वाह वाह ही जपु तपु पूजा । तहँ वाह वाह विनु अवरु न दूजा
वाह वाह सिमरनु अरु सेवा । तहँ वाह वाह विन अवरु न देवा ॥
तहँ वाह वाह लागी धुनि तारी । तहँ वाह वाह की कथा निआरा
तहँ वाह वाह कीर्तनु जसु गाये । नानक वाह वाह बिनु कछु न दृष्टाये ॥१९॥
करि वाह वाह[१] कीना ॐकार । वाह वाह करि कीआ बीचारु ॥
करि वाह वाह धरि गगन विछोडे । वाह वाह करि अहि निशि जोडे
करि वाह वाह धुनि धरनी बाँधी । करि वाह वाह मनसा आराधी ॥
मनसा मन ते उपजि खलोई । दोय कर जोडि आइ ठाँढी होई ॥
आपे मनसा मन ते कीनी । नानक आगे होय अधीनी ॥२०॥
खुला ध्यान छूटी जब तारी । तब मनसा मन माहिँ चितारी ॥
प्रभु पूछै तूँ कवनु री बाई । तुम ते उपजी मनसा माई ॥
मनसा लीजै वचनु हमारा । एकस ते प्रगटै पासारा ॥
त्रैगुण प्रगटहि अनत तरगा । नानक प्रभु ते मनसा मंगा ॥२१॥
खुला ध्यान छूटी जब तारी । करि वाह वाह मनसा मनि धारी ॥
चितवनि करते मनसा आई । प्रभु पूछै तूँ कवनु री बाई ॥
मनसा माई मन ते होई । तुम चितवी तब आय खलोई ॥
री मनसा क्या रचनु रचाईऐ । करि बिथार[२] मनु सहजि लडाये ॥
करनि हार तुम आगम धनी । नानक सो कछु करहु जो तुम मनि बनी ॥२२
तब मनसा लै निकटि वहाली[३] । वचनु देत पुरमी[४] हथिआली ॥

(१) उमत, ॐकार की धुनी हुई । (२) विस्तार । (३) बिठला लिया । (४) खुजली हुई, फुरकी ।

बचनु देति छालकु[1] होय आया। आपे अचरजु[2] खेलु रचाया॥
त्रै मूरति छालकु महि आनी। तिस मनसा उपजी हैरानी॥
छालकु फोरि तीनि प्रगटाने। त्रैगुन प्रगटे एक समाने॥
धुधूकारि प्रभु रहै निरारा। नानक तिहु ते कीआ पसारा॥२३॥

तहँ वाह वाह आपि अपाईंदा[3], गुर शब्दी सचु सोइ।
वाह वाह बाणी सचु है, सचु मिलावा होय॥
नानक वाह वाह करदिआँ, करमि प्राप्त होय॥ २४॥

वाह वाह करती रसना सुहाई। पूरे शब्दि मिलिआ प्रभु आई॥
वाह वाह मुखि सहज कढाई[4]। वाह वाह सिऊँ प्रभ बनि आई॥
वाह वाह करि रचन रचाई। वाह वाह धरि धुनि लिव लाई॥
नानक दरि सचे शोभा पाई॥ २५॥

वाह वाह करत मुख ऊजल होवै। वाह वाह कौ सहजि बिलोवै[5]॥
तहँ वाह वाह का नेत्रा[6] कीआ। वाह वाह सहजै मथि लीआ॥
तहँ वाह वाह करि तत्त वटोल्या[7]। वाह वाह करि ताला खोल्या॥
तहँ वाह वाह सिऊँ आपे राता। नानक वाह वाह करि आपु पछाता॥२६
तहँ वाह वाह सिऊँ रचिआ रंगि। तहँ वाह वाह सखा है संगि॥
तहँ वाह वाह सिऊँ रहै निराला। तहँ वाह वाह ऊचो टकसाला॥
तहँ वाह वाह सिऊँ आलमु करता। तहँ वाह वाह सिऊँ ध्यान धुनि धरता

(१) छाला। (२) पीछे भी थोडे से भिन्न भेद के साथ इस उत्पत्ति का प्रकार आ चुका है। जो ग्रंथ, शास्त्र देखे जावें सभ में उत्पत्ति का प्रकार निआरा ही निआरा है। सो इसका वास्तिवक अभिप्राय ससार की अनस्थिरता, और कुछ भी ना होना समझाने का हे। जिन जिन पूर्ण आचार्यों ने उत्पत्ति लिखी हे इस प्रकार लिखी हे कि अपने आपको निरचाण अवस्था में इस सकल्प पूर्वक अभेद जा किया हे कि हम को इस ससार इंद्र जाल की रचना का हाल विदित हो, परन्तु मालिक की शक्ति अपरपार हे, इस का वारा पार नही हो सक्ता यह उत्थान अवस्था में और ही प्रकार का ठाठ रचना का दिखला देता है। सो जग्यासुओं को व्यामोहित नहीं होना चाहिये यह कुछ नहीं है परन्तु कुछ नहीं का कुछ कर दिखलाया है। इस कुदरत के सहारे कर्त्ता पुरुष को घर में खोजो।

सकल्प किये बिना भी उत्थान दशा के आते ससारी रचना का प्रकार कई वार स्फुरण हो आता और स्मरण रहि जाता हे।

(३) कहिता, जपता। (४) सहज के मुख से अथवा सहज स्वभाव से निकालता था। (५) सहज मटकी में मथन करता। (६) मथते समय मथानी के साथ मथन करने वाली जो रज्जु बँधी होती है। (७) माखन निकासा, ऊपर से बटोर लिया, निकाल लिया॥

तहँ वाह वाह कीना परचाउ । नानक वाह वाह सिऊँ बनिआ सुआउ ॥२७॥
तहँ वाह वाह अम्रित की बाणी । तहँ वाह वाह उपजी हैरानी ॥
तहँ वाह वाह करि धरिआ ध्यानु । तहँ वाह वाह मजनु इस्नानु ॥
तहँ वाह वाह सुचि सजम पूजा । तहँ वाह वाह बिनु अवरु न दूजा ॥
तहँ वाह वाह है एकंकारु । नानक वाह वाह ओपति पासारु ॥२८॥
तहँ वाह वाह का अगम नीशानु । तहँ वाह वाह सिऊँ बने बखानु ॥
तहँ वाह वाह द्रिढिआ मनि चीति । तहँ वाह वाह सिऊँ साची प्रीति ॥
तहँ वाह वाह सिऊँ आपि रीझाना । तहँ वाह वाह सिऊँ रवि मनं माना ॥
तहँ वाह वाह का कमलु बनाया । नानक होय भवर लोभाया ॥ २९ ॥
वाह वाह करता है सोय । वाह वाह लीआ कठि परोय ॥
वाह वाह तहँ बिश्नु[1] बनाया । वाह वाह तहँ कीनी माया ॥
वाह वाह कीना सुत दारा । वाह वाह लागा मनि पिआरा ॥
वाह वाह कीना धुनि नादु । वाह वाह जोग बिसमादु ॥
वाह वाह कीनी है माला । नानक सिमरै आपि दइआला ॥३०॥
वाह वाह इस्नानु बनाया । वाह वाह का टीका लाया ॥
वाह वाह सुचि सजमु धोती । वाह वाह की पूजा होती ॥
वाह वाह उरसा[2] अरु केसर । वाह वाह कर्ता परमेशर ॥
वाह वाह तहँ कीना चदनु । वाह वाह कउ पूजा बदनु ॥
वाह वाह तहँ ठाकुर द्वारा । नानक वाह वाह तहँ पिआरा ॥३१॥
वाह वाह तहँ पूजा सेवा । वाह वाह तहँ लागी टेवा[3] ॥
वाह वाह तहँ लागी प्रीति । वाह वाह तहँ बसिआ चीत ॥
वाह वाह बिनु अवरु न सुनीए । वाह वाह नादु तहँ धुनीए ॥
वाह वाह तहँ कीर्ति करनी । वाह वाह तहँ जाय न बरनी ॥
वाह वाह तहँ कीआ बनाउ । नानक वाह वाह तहँ सुआउ ॥ ३२ ॥
वाह वाह तहँ रसनु[4] रसाई । वाह वाह तहँ रसि बनि आई ॥

(१) क्षीर सागर शेष की सिहजा पर सोने वाला महाविश्नु इस जगह भावित हे । (२) पूजा के वास्ते केसर चदन रगडने वाला पत्थर । (३) आदत सुभाव प्रतु, यहा धुन से भाव है। (४) रसना से, वाह २ भलीभाति पकाया । रसना यहा आत्मिक शक्ती सुरत हे क्योंकि पिंडी रचना यहा हे ही नहीं ॥

तहँ वाह वाह कीर्ति मुख करै । वाह वाह तहँ सहज उचरै ॥
तहँ वाह-वाह सिऊ वनिआ चीतु । वाह वाह साजनु तहँ मीतु ॥
वाह वाह तहँ सपा सहाई । नानक वाह वाह धुनि लाई ॥ ३३ ॥
करि वाह वाह कीना आकार । करि वाह वाह कीआ व्योहार ॥
वाह वाह करि सफ़ा बिछाई । साढे उणवंजह क्रोड़ि बनाई ॥
वाह वाह करि गगनु बनाया । अकल पुरुष बिनु कला रहाया ॥
करि वाह वाह शशि[१] जोति स्वारी । नानक कीनी कथा निआरी ॥३४॥
करि वाह वाह किरनि है करी । नव सत किरनि एक ही धरी ॥
करि वाह वाह रखिआ अकाश । तहँ वाह वाह बिनु अवरु न पास ॥
वाह वाह तहँ मता मसूरति[२] । तहँ वाह वाह रहता हरि मूरति ॥
करि वाह वाह दिनु रैन उपाए । नानक आपे रग बणाए ॥३५॥

॥ अध्याय सम्पूर्ण ॥ १० ॥

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

॥ अध्याय ११ ॥

॥ उदास कर्म, जोग वैराग ॥

॥ राग सूहबि महला १ ॥

भरमत शांति न आवसि अंधा ।
काल क्राल सदा शिर ऊपरि बिन हरि भगति न छूटहि फंदा ॥
॥ १ ॥ रहाउ ॥

तिष्णा चलै भूख मति हीना । अधिक पिआस माया मदि लीना ॥
जिह्विआ स्वादि कुंडी कठि मीना ॥
सत्संतोष नही मनु मानिआ । दह दिशि धावत भरमि भुलानिआ
दुष्ट संगति मैं लोभ विकारा । साध सगति महि मुक्ति द्वारा ॥१॥
काम सुआदि बाँधियो गज हस्ति । सीस सहे अंकुश मारे अति ॥
मनमुख अंधुले अंधुली मत्ति । शब्दु न चीने होय असत्ति ॥
उपजै बिनसै आवै जाय । नानक गुर बिनु नरकि पचाय ॥२॥

---

(१) चद्रमा । (२) मसौदा गढ़ना, मनसूबा बाधना ।

कवन उदास कहहु बीचार। जो आया सो चलणहार॥
कर्म के बाँधे फिरै बिगारी[1]। जोबन धन मति गति पति हारी॥
हउमै अवगुन बाँधो जाय। शब्दु न चीनै भवजल पाय॥
मुक्तिवर दाता मनहु बिसारै। आवत जावत नरक गुबारै॥३॥
अस्थिरु दाता तिलु न तमाइ[2]॥
एके कउ एका पत्याई। दरि महली घरि सचि वडिआई॥
सतिगुर पाया सुरति समाई॥
इहु मनु मानिआ अगनि निवारी। नानक आत्म तत्तु बीचारी॥४॥
तिष्णा तपति तपै बहु भारी। पर दर्बु हिरे कॉमनि सुत नारी॥
बहु चिंता पीडी जले अहँकारी। जूए खेलणु कची सारी॥
नानक बूडत गिरत तरीए क्यौं तारी। उत्तम खोजै सची कारी[3]॥५॥
बिषु खावै बिषु भोगै भोगु। बिषु पहरै बिषु पेखै रोगु॥
बिषु संचै बिषु की सभ वाड़ी। बिषमु भया भूलै ओजाडी॥
जमु कंकर काल प्रोतो प्रान। नानक अति कालि दुख सहे निदान॥६॥
सहज उदासी आत्म वीचारि। कौन कर्म ले उतरे पारि॥
कहाँ सु बैसै कहाँ भोजनु खाय। कितु घरि बसै न आवै जाय॥
किस ते रहत किस सँगि सुहेला। नानक कितु बिधि हरि प्रभ मेला॥७॥
दास उदासी गुरमुखि भाय। निजि घरि बसै फिरि कालु न खाय॥
पेखि अचर्ज बिसमु होइ जाय॥
अैसा दास उदासी जाणु। सो उदास जाणे मिहमाणु॥
नानक अैसा दास दरगहि परवाणु॥ ८॥
आपे कहि बूझै बोलै तत्तु। आपे अमरु अतीतु सु गतु॥
ब्रह्म कमडल अंम्रित भरिआ। सुन्न समाधि उन्मनि लिव धरिआ॥
वादु बिवादु नाही अभिमानु। नानक दरगह पति परवानु॥९॥

(१) सरकारी बेगार भरने वाले लोग जिन को दाम कुछ नहीं मिलता और बोझा उठवाने का ही कर उन से लिया जाता है ऐसे जो जीव भजन अभ्यास से शून्य जाते हैं केवल उस सच्चे मालिक की करम फल भोगने रूप बेगार ही भोगने आते हैं। अथवा कर्म काडियों को बेगारी कहा है। (२) तिल भर भी जिसे तमा नहीं (निज महिमा में सतुष्ट)। (३) "ऊमउ माथी जमु चोट कारी" (पाठ भी है)।

पति परवाणु दरगहि पति पाई। आदि अंति गुर भया सहाई ॥
हीरे रत्न ज्वेहर लाल। सचु सूची साची टकसाल॥
सचु सराफ सराफी कोलै। नानक सचु कसवटी पूरा तोलै॥१०॥
सहजि उदासी रहै अतीतु। अकल्पत सरोवर पीउ अपीतु ॥
रूख बिखं इकंत को बासा। एक ऊपरि तिसु जन की आसा ॥
ऐसा दासु उदासी मिलिआ। नानक प्रणवै गरभि न गलिआ॥११
चंचल चाय न परग्रिह जाय। पर रूपु न देखै नही पर दरबु हिराय
जैसा अंम्रित ग्रैसा बिषु तैसा। ऐसा दासु उदासी जैसा॥
सहजि उदासु मनाए सउणु। गुरमुखि परखे त्रिभवण भउणु ॥१२
तीनु भवण सचु जाणे थानु। त्रिकुटी छूटी गुणी निधानु ॥
निर्मल पाधरु नदरी आया। ऐसा दास उदासी पाया ॥
सहज उदासी गुरमुखि होय। अस्थिरु कंधु नानक सचु सोय।॥१३
सहज उदासी बसै अकाशि। दास उदासी तपति निवासु ॥
दास उदासी रहे निरासु। गगन मँडिल त्रैलोक निवासु ॥
अहि निशि जागे गुर ज्ञान अभ्यासि। सगल धर्म हरिभगति निवासि
अम्रित गुर बचन सों कवल बिगासु। नानक बिरले दास उदासु॥१४
गुरमुखि ऐसा दासु उदासी। चीने शब्दु सो तपत निवासी ॥
पजे इंद्री गुरमुखि जित्तु। अंम्रित नामु प्राप्त तित्तु ॥
जैसा जल कवले अस्नेहु। त्यौं नानक प्रीति न तूटसि एहु॥१५
ग्रैसा दास मिलै सुख पाया। जन्म मरण का गवणु मिटाया॥
अचिंत भोजनु पति कपडु पूरा। गुरमुखि पैधा शब्दु हजूरा ॥
ग्रैसा दास मिलै शुभ लछणु। नानक कहै उदासी लक्षण ॥१६
कंचन कोट अनूप अपारे। गुरमुख दास बसहि हरि पिआरे॥
ऊची पवड़ी अपरंपर थानु। तहँ पारब्रह्मु सचा दीवानु ॥
सहजि उदासु सचु नदरि परवाणु। नानक कहे उदासी जाणु ॥१७

सहजि उदासी तत्तु बीचारि । बंधन ते मुक्ता मोख[1] दुआरु ॥
रहे अतीतु अकलपति घरि वासु । पारस[2] अंकु न लावै पासु ॥
रहे अतीतु पछाणे ब्रह्मु । जीवत मरे रहे निह कर्मु ॥
जुगति जत्त संजमु शील रक्षणु । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥१८॥
बाहरि जाय न मढ़ी मसाणि । गुर मुक्ते कीए सचे ताणि ॥
सचा उदासु शब्दि मनि चाउ । सिफती रत्ता आतम राउ ॥
गुर की मति लै शिक्षा सिक्खनु । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥१९॥
थोड़ी निंद्रा अलप अहारा । सदा सुचेतु प्रगट पासारा ॥
पर घर जाय न भिक्षा[3] ले । विषया बिष त्यागे अम्रितु सचु ले ॥
सचु शब्दु की सची जक्षण[4] । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥२०॥
धुनि निरंतरि एकु ध्यावै । मूल ध्यान डोरी सचु लावै ॥
पचे मारि जुगति पति पावै । ऐसा दास उदासी पावै ॥
चढ़िआ दास देवै परदक्षण । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२१॥
दे पड़दक्षिणा चढ़े अकाश । पारस परसु मिले प्रभ तास ॥
इड़ा पिंगुला सुषमना नाड़ी । शशिघरि[5] सूर[6] वसै गैणारी[7] ॥
पज सत्त नउँ लागा रक्षणि । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२२॥
दीपक जोति गुर शब्दि बिगासु । अस्थिर मनूआ गुर चरनि निवासु ॥
बोले सत्तु असत्तु न वाकु । सच्चे घरु सचु साचउ ताकु[8] ॥
जपु तपु संजमु सुरत विचक्षण । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२३॥
जोगी जोगु जुगति घरि पावै । ज्ञान भुगति लै मनु तिप्रावै ॥
कलपि त्यागी गुर शब्द सुहेला । आये हर्षु न गइआ भैला[9] ॥
जुगति जत्नु करि अम्रित रक्षण । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥२४॥

(१) मोक्ष द्वार तीसरे तिल से भाव है। (२) अष्ट धातु ही पारस में आ जाती हैं भाव धातु सपर्श, साधू ना करे। (३) एक अपने मालिक को छोड कर जो कि इस का अपना घर भी है किसी ओर के आगे जाचना ना करे। वा सहज स्थिती को छोड कर भोग पदार्थों के सकल्प न उठाता रहे। (४) शोभा। (५) सहस दल। (६) चन्द्र शक्ति। (७) गगन मँडल में। (८) साचे घर में साचे को ताको (टिक टिकी बाध कर देखो)। (९) शोकातुर होना, जैसे म्रितका का भेला (ढेला) अपने आप में सुगडा होता है ऐसे धन हानि आदि से शोकित हुआ नहीं सकुचित होता। (धन हानी पर भय की प्राप्ती नहीं होनी इस कारण भै शब्द डर का सूचक इस जगह नहीं समझा जा सकता)।

नउँ सर शुभर दर्शावँ पूरा । तहँ अनहद सुन्नि बजाए तूरा ॥
तहँ शंभू की[1] नगरी अनहदि घरि रहे । जोगी होय सो नगरी लहै
ऐसा दास उदासी कोय । दासु उदासु निरारा होय ॥
सुन्न ते शंभू आदि गुर रक्षण । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२५॥
सुन्न ते संभू[2] होवै आदि । सुन्न ते नीलु अनीलु[3] अनादि ॥
सुन्न लेख लिखिआ नीसानु[4] । सुन्न ते सहज कला परवानु ॥
सुन्न ते कीता धरती असमानु ॥
सुन्न सभू का जाणे भेउ । सो ऐसा उदासु निरंजनु देउ ॥
ऐसा जोग जुगति करि रक्षण । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२६॥
गुरमुखि ज्ञानु दिढ़ै सचु धर्मु । करि पूजै सगला पारब्रह्मु ॥
ऊची पवड़ी चढ़ै निरारा । अम्रित पीवै निर्मल धारा ॥
निर्मल जोति सचु नदरि परक्षणु[5] । नानक कहे उदासी लक्षणु॥२७
कायाँ नगरु उदासी थानु । पचे इंद्री मारि मशानु ॥
मान सरोवरि करि इस्नानु । ऐसा दास उदासी जानु ॥
ज्ञान खडग लै दूताँ रक्षणु । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥२८॥
ज्ञान खडग लै मन कउ मारि । गुर कै शब्दि सच वीचारि ॥
ऊपरि[6] त्रिभवणु सच्चा सचु थानु । भरपुरि लीणा गुणी निधानु ॥
उदास कर्म रस स्वाद न चक्षण । नानक कहे उदासी लक्षण ॥२९॥
उलटि पवनु मनु सुन्नि समावै । पच बाण लै धनुप चढ़ावै ॥
ऊपरि चढे अकाशि सुमेरि । दे पड़दक्षिणा आवै फेरि ॥
लहे निधानु लिखे निधि नामु । दरगहि पैझै पति परवानु ॥
ज्ञान रत्नु घटि भातरि रक्षणु । नानक कहे उदासी लक्षणु ॥३०॥
उलटी गंगि वहावै नीरु । पलटि सिधोरे[7] धोर सिधोरु ॥
ज्ञान खडगु लै सन्ने[8] बाणु । अगमु निगमु (सभ) जाने जाणु ॥
अठसठि मजनु कायाँ मटु काँसी । प्रणवत नानक दास उदासी ॥३१

(१) सुन्न मंडल । (२) त्रिकुटी के धनी से भाव है । (३) स्यामसेत, सहसदल के धनी से भाव है । (४) इसी स्यामसेत में जीवों के शुभाशुभ कर्मों के संसकार चित्रित किये रहते हैं । (५) परखना, पहिचानना । (६) त्रिकुटी से ऊपरि । (७) पलट कर सुरति गंगा को सीधे राह धीरे धीरे चला जावे । (८) युक्ति रूपी खडग गुरों से लेकर दृष्टि की धार का बान उस में साधे (यहा खडग से कमान का इच्या अभीष्ट है जिस के गोशों में प्राण का चिल्ला भी चढ़ना जरूरी होता है) ।

उँदर[1] दुँदर परिहरि ठाकि। मुक्ति पराइणु[2] सतिगुर के वाकि॥
उलट सरोवर अउघटि[3] घाटि। अठसठि मजनु तिलकु[4] लिलाटि॥
अघड घड़ावै उलटै[5] चाकि। सचु घरि महलि बसे अउताकि[6]॥
गुर की मति लै भया उदासी। प्रणवत नानक दास उदासी॥३२
मन पवना घरि सहजि समाइ। तीन सुन्न[7] की सोझी पाइ॥
गुर के शब्दि रचे भै भाइ[8]॥
अनदिनु मजनु कायाँ मटु काँसी। त्रिकुटी छूटी सुन्नि समासी॥
गुरमुखि चीने सो अबिनासी। प्रणवति नानक दास उदासी॥३३॥
तीन भवण[9] का जाने थानु। उह दरगह पैधे पति परवाणु॥
आदि निरंजनु परमि निधानु॥
पूरे गुर की पूरी मत्ति। एको आसति सत्ति सुमत्ति॥
सो दाना अदली बहे तपति॥
निहचलु मनु न आवै जासी। प्रणवत नानक दास उदासी॥३४
ऐसा दासु मिले मनु मानिआ। सहजि उदासी ब्रह्म पछानिआ॥
अमरु भया अमरा पदु पाया। आनँदु रूप सभु नदरी आया॥
गुरमुखि गिरही माहि उदासी। प्रणवतु नानक दास उदासी॥३५
सहजि उदासी सचि सुहाया। सची दरगह महिलि बुलाया॥
सच्चा भोजन कपड आया।
सहजि उदासी सचिसमाय। निज घरि बसे फिरि कालु न खाय
अचरज रूप पेखि सचि समासी। प्रणवत नानक दास उदासी॥३६
मोहिनी मोहि न सके तासु। जरा मरनु का भया बिनासु॥

---

(१) उलटे हुए जो दो दो दरवाज़े हैं उधर से बंद करके उधर को लगावे। (२) मुक्ति दान में तत्पर। (३) उलटे मारग का घाट। (४) जहां मस्तकि पर तिलक किया जाता है वहां त्रिवेणी का घाट है जिस में स्थित होने से सर्व तीर्थ स्नान के फल वत संपूर्ण पाप धोये जाते हैं। (५) उलटे चक्र में अघड घाडत करे-(सुरति कमल में)। (६) सच्चे घर के मंदिर में उलटा ताक कर वासा करे। गुणों के प्रथम अ, उ उपसर्ग चढ़ाया जावे तो उलटा अर्थ हो जाता है अर्थात दोष रूप अर्थ हो जाते हैं। ऐसे ही ताक के पहिले अ, उ लग जावे तो उलटे ताको अर्थ होगा। (७) सहसदल, सुन्न मंडल, सच खंड। (८) गुरु को हाज़र नाजर जान कर अदब तथा प्रेम से शब्द में लगा रहे। (९) सहज सुन्न।

उर्द्ध कमलु मुखि सहजि विगासु । गुर मति मिलिआ प्रभ गुणतासु॥
ऊचो[1] नदरि सराफी होय । नानक कहै उदासी सोय ॥३७॥
आपे बोले बोलणहारु । आपे समझि करे बीचारु ॥
गुर मति पाई मनु ठहराना । आदि अनूप निरंजन जाना ॥
कवला दासी लागी पाँय । चौथे पदु को जो मनु पतीआय ॥
पंच दूताँ सिऊँ गोष्टि खोई । नानक कहे उदासी सोई ॥३८॥
शुभर सरोवर गुर द्रयाउ । अति निर्मायलु निर्मल नाउँ ॥
प्रेम परायण आत्म राउ ॥
तू बपशहिँ धक्का नहीं कोय । तू बपशहिँ जमु दरि नही गोय[2]
जिसु बपशहिँ सो पूरा होय । नानक कहे उदासी सोय ॥३९॥
अबगत चीने जो आपु गवावै । सो नरु पुनर्पि जन्मि न आवै ॥
जाति वरणु कुल तारे इऊँ । अहि निशि साध सगति गुर सेऊ[3]॥
गुर प्रसादि मिले वडिआई । इऊँ मनु निहचलु कतहूँ न जाई ॥
गुणाँ हार लै कंठि परोई । नानक कहे उदासी सोई ॥४०॥
पूरा सतिगुर सहजि मिलाया । ऐसा दासु उदासी पाया ॥
सर्ब निरंतरि अलखु लपाया ॥
तिष्णा तामस ठाकि मनु मानिआ । आसा मनसा त्यागि समानिआ
निरंकारु अकुलीणु सबाया । नानक दर्शनु दासु समाया ॥
दर्शनु परसि परम गति होई । नानक कहे उदासी सोई ॥४१॥
दर्शनु परसि मनु सहजि विगासिआ । अमरु भया जमु कालु न भासिआ[4]
अचरज रूप हरि नदरी आइया । पति सिऊँ पैधा[5] प्रभ पहिनाया॥
ऐसा उदासी ऐसी पति होय । नानक कहै उदासी सोय ॥४२॥
सो सिष्टि कर्ता करनै जोगु । सुन्न समाधि गगन रस भोगु ॥
जहँ देखा तहँ रहिआ समाय । अविनाशी अलप अलपनो जाय
खड ब्रह्मड जाँकी धर्मशाला । उतपति परलौ आपि निराला ॥
जिन घटि दुबिधा दुर्मति न होई । नानक कहै उदासी सोई ॥४३॥

(१) उलटी नजर से परखने की शक्ति आती है। या सराफी व्यवहार हीरे रत्नों का होता है। (२) गूधा जाना, दुख दिया जाना। (३) सेवन करो। (४) दबका मारना, डराना। (५) सिलअत।

देही अंदरि अठसठ हाट। तिन के बजर जड़े कपाट।
अउघट घाट विषम है बाट॥ ऐसा मार्ग सतिगुरू दिखाया।
गुर शब्द सुरति ते कपट[1] खुलाया॥ अम्रितु नामु रतनु मनि आया
हिरदै लालु न दुरै दुराया। नानक पूरा दर्शनु पाया॥
ऐसा दास मिलै जन कोई। नानक कहै उदासी सोई॥४४॥
सतिगुर मिलति तबी मनु मानिया। तिपा निवारी आपु पछानिआ
रवि शशि[2] आदि निरजन जोति। पवनु[3] पानी अंकार सरोति॥
नाॅ जीउ मरे न दुतीआ जावै। त्रिकुटी फूटी इर्ज सुन्नि समावै॥
निर्मल एक निरजन पावै। नानक जोती जोति समावै॥
त्रिकुटी फूटी मुक्ति दुआरा। तहँ अम्रितु पीवै निर्मल धारा॥
गगन अकाशि गऊआ जिनि चोई। नानक कहे उदासी सोई॥४५॥

अम्रित पीअ त्रिप्त मुक्ति वह होई॥

सगल भवन पाताल सबाए। मिरति अकाशि गगनि लिउ लाए॥
सर्ब निरतरि जोति सरूप। अलपु अतीतु अदृष्ट अनूप॥
निर्मल जोति नही मलु काई। नानक अनहदि शब्दि समाई॥४६॥
सगल भवन पति अलपु सबाया। चहुँ दिशि खोजि अकल्प घरि पाया
बिवेक बुद्धि पाया गुर ज्ञानु। आतमे कउ चीने सो परधानु॥
त्रै सै संठ[4] गठी बूझै जनु कोय। नानक मिलते मुक्ति वहु होय॥४७॥
त्रै सै सठि गठी गुरमुखि[5] खोलै। गुरमुखि सचि सहजि घरि बोलै

(१) किवाड। (२) सूर्ज चाद की आद, निरजन ज्योती है वहीं परही। (३) पवन, पानी अगार (सुपमना, इडा, पिगला) का सरोत नाम चश्मा है। क को ग—व्याकरण की रीति से हो जाता है सो गुरू साहब को यहा अगार शब्द से अगनी अर्थात इडा का कहिना अभीष्ट था। (४) तीन सौ साठ जोडो की गाठे हैं। मन का घोडा प्राण सर्व नाडियो में विचरता रहिता है जहा जहां पर जोड पर गाठी आई है, वहा वहा पर विशेष प्रकार की टकर प्राण खाता है तो जैसे टाप मार कर चलते घोडे पर स्वार को आनद आता है, इसी प्रकार मन भा हर्षमान होता है। ऐसे आनदों की चाट ही से मनइस शरीर में महान दुख पाता हुआ भी (कुष्ट रोग ग्रस्त शरीर को भी) नहीं छोडना चाहता। सो जो अभ्यासी अपने मन को परमपद में पहुचाना चाहता है उसके उत्साह वास्ते गुरू महाराज कहिते हैं कि ३६० गाठ में विचरने वाले प्राण को जो समझ लेवे और (५) गुरमुखि होकर इन की गाठ (मन तथा प्राण) को खोल देवे तो मुक्ति होते देर ना लगेगी। ऐसे गुरमुख का खोलना सहज घर में होगा भाव उसका सत्यनाम से परचा हो जायगा।

पीवै अंम्रित हरि तत्तु विरोलै । मनु अडोलु गुरशब्दि न डोलै ॥
इस मन मिरग को पावै गंठि । तीरथ परसै त्रै सै संठि ॥
छटे सुमेरु बसे अस्थानि[1] । हरि जनु हरि हरि एक समानि ॥
इहु मनु शीतल ब्रह्म ज्ञानि ॥
अजर जरे अग्रहु को गहै । गुर शब्दि अस्थिरु घरि वहै ॥
एक द्रिष्ट समसर सभ कोई । नानक कहे उदासी सोई ॥४८॥
ज्ञान खडग लै मन सिउँ लूझै । मार्ग पंच दशाँ का बूझै ॥
इस मनु मैगलु[2] कउ शब्दि ले बधि । लहै त्रिबेणी त्रिकुटी संधि ॥
अजरु जरै पूरा थिरु कंधु । इहु रत्न ज्वेहर परखै जनु कोई ॥
नानक कहै उदासी सोई ॥ ४९ ॥
निर्मल नामु हृदे हरि कठि । हरि हरि हार लै रिदे परंठि ॥
मनु समझै अस्थिरु सचु गठि । मुक्ति द्वार नही जमु शिर लठि
आत्म कउ चीनै मजनु अठ संठि ॥
सति सरि न्हावण पूरा होय । नानक कहे उदासी सोय ॥५०॥
जुग जुग निर्मलु मैलु न काई । निह केवल निराहार दीपक धूपाई
ऋद्धि सिद्धि रची तिन कीमति पाई । जो दाना बीना अति सघाई
अकथु अपारु रविआ जुगताई । नानक सुन्न समाधि लगाई ॥५१॥
आसा मनसा गुर शब्दि निवार । काम क्रोध ब्रह्म अगनी जारि ॥
जरा मरन गतु गरब निवारे । निर्मल जोति अनूप उजारे ॥
सचे शब्दि सचि निस्तारे ॥
लबु लोभु मिटे अभिमानु । जब सचे तपति वैठा परधानु ॥
शब्दु अनाहदु बाजे पज तूरा । सतिगुर मति लै पूरो पूरा ॥
गगनि निवासि आसणु जिसु होई । नानक कहे उदासी सोई ॥५२॥
गगनि निवासि आसणु जिसु बासा । ते जन विरले दास उदासा
रहै इकति मडी मसाणे । चलते मन कउ भीतरि आणे ॥
उडरि भउरु गगनंतरि चढे । गुर परचे ताँ भीतरि वड़े ॥

(१) सच्चखण्ड । (२) हस्ती ।

ऊपरि कूंप गगन पनिहारी । अम्रित पीवै दशवैं दुआरी ॥
परचै पिडु ऐसा जोग होई । नानक कहे उदासी सोई ॥५३॥
शुभर सरोवरि घरिहरि वासु । सहजि निपंन्ना[१] कवल प्रगासु ॥
सचो जोति महि कवल सरूप । अदृष्ट अलिप्त स्वादु अनूप ॥
सचु दतारु सचु सहजि निपंन्ना । साची जोति हसु इकवन्ना[२] ॥
चुणि मुक्ताहल हंस चुणि खाय । सचु चुगे अम्रित अघाय ॥
जुगति जतनु करि गुरमुखि रक्षणु । नानक जोग वैराग के लक्षणु ॥५४
थोडी निद्रा अल्प अहारी । पहिरा दीना दशवैं दुआरी ॥
जागत रहै न लागसि चोर । चेतन पुरुप वैठा अभमोर[३] ॥
जतु सतु सजम सुरति विचक्षण । नानक कहै साध के लक्षण ॥५५॥
तिभवणु जिसु मेपुला[४] अमरापदु सहा । अकल्प घरि आसनु दृष्टा भउ सहा
सो आकलु पूजहु सतिगुर के मुंडा[५] ॥
सो अकाल पूजहु सतिगुर की सेवा । जाँके वदे देवी देवा ॥
सो आकलु चीनहु अगम अपारा । जिन खंड ब्रह्मड कीए पाहारा
जिह्विआ अनरस सुआदि न चक्षण। नानक जोग वैराग के लक्षण ॥५६
तामस तिष्णा लोभु निवारे । पच अगनि[६] घट भीतरि जारे ॥
रहे अतीतु आतमु बीचारे । सो अविनाशी पुरुप निरारे ॥
अहि निशि रहे गडीर चढाय ॥
पंच मारि मनु निज घरि ठॉइ । आपे मेले सहिज सुभाइ ॥
गगनि अकाशि चिति चेता रखणु । नानक कहे जोग के लक्षण ॥५७
साध निवाजे वदे चोरा । जमु जागाति न लागसि अउरा ॥
निर्मलु पाधरु सतिगुर दिखलाया । विपु विप त्यागि अंम्रित रस भाया
मनसा सतोपे सहजि समाया । आपि वीचारि अमर पदु पाया ॥
ध्यान निरंतरि डोरी रक्षणु । नानक कहे जोग के लक्षणु ॥५८॥
अकलु निरजनु जोति अपारा । घटि घटि दाता सो प्रभू हमारा

(१) उत्पन्न हुआ । (२) एक रग का भाव अदुती । (३) मेरा पियारा, मेरे हृदय विषे, मेरे चारों ओर (रमिया हुआ) । (४) तडागी जो कमर के गिरद साधू (निर्बाण) लोग पहिरते हैं । (५) पे गुरू के शिष्य । (६) पाच प्रकार की रौशनी ।

अमरु अजोनी दाता सोइ । दैंदे तोटि न कबहूँ होइ ॥
जुगु जुगु देइ न आवे तोटि । जिसु बपशहि तिस छोटो छोटि[१]॥
मुक्ति वरु दाता सचा सोय । नानक दूजा अवरु न कोय ॥५९॥
मन पवणे का जो जाणै भेउ । जिह्वा इन्द्री सचि समेउ ॥
सभ घट भोगे रहे अतीतु । आपे चतुर बिधाते कीतु ॥
अजपा जापु घट पिड जीआ का रक्षणु । नानक सतिगुर साध का लक्षण ॥६०॥
सभसै ऊपरि सभना माँहि । बूझहु गुर ज्ञानी शब्दु सलाहि ॥
शशि घरि सूर समाने भाइ । दरि दर्शन की सोझी पाइ ॥
रहे अलिप्तु न मनु डोलावै । नाद विनोद[२] की सुरति समावै ॥
नानक प्रेमु पदार्थ पावै ॥ ६१ ॥
निज घरि बैसि करे बीचारु । जति देखा तति एकंकार ॥
एककार अनूप निरारा । साध संगति मिलि मनु पतीआरा ॥
सो अबिनाशी जिह्व रूप न रेखे । नानक आतम को चीने जन्मु सुलेखे ॥
अजरु जरे गुर शब्दि निहाल । अनहदि शब्दि सची टकसाल ॥
खरे षजाने खोटे[३] रालि । आपे परखे नजरि निहालि ॥६२
पूरा सचु तोलु पूरा गुर नालि । सची मोहर सिञाणै सालि ॥
ऐसा शाहु सराफी करे । सची नजरि एक लिव तरे ॥
हीरा रतनु लाल परखाय । सची कसवटी परख कसाय ॥
मनु माणक जिनि परख पछाता । ऐसा शाहु सराफी जाता ॥६३
पूँजी नामु निरंजनु राता । सचु पैकारी[४] सचे माता ॥
सचु कसवटी परख चितु लाइ । खरा षजाने खोटा नहीं पाइ
नऊँ निधि नामु अक्षै निधि पलै । प्रणवत नानक दरगह मलै ॥६४
दाना बीना गुरमत जाणु । वहुडि न ताईऐ तितु पति परवाणु ॥
जिसु बपशे सो खरा पिआरा । आपे बपशे बपशन हारा ॥
तिस की कीमति कोय न पावे । नानक सचे सचि समावै ॥
सचि पतीजै सिरजणहारु । नानक पूरा तिसु भंडारु ॥६५॥

(१) माफी ही माफी । (२) "बिंद्" । (३) चूली में फेंके जायगे अर्थात् ससार रूप राल में ।
(४) सचु ही चतुराई, या (सचे पर ही अपनी सम कारी (कारर्वाई रखता हुआ) और ।

आपे शाहु सराफ वजीरा । आपे परखि विसाहै[1] हीरा ॥
आपे शब्दु सुरति गुर चेला । आपे साध संगति गुर मेला ॥
आदि अनाहदि शब्दु निराला । नानक चपशे गुर गोपाला ॥६६॥
आपे सतगुरु माणकु हीरा । अति निर्मायल गहर गँभीरा ॥
शुभर सरोवर धीर सधीरु । आदि निरजन सगल शरीरु ॥
नाम विना मैं नाहीं कोइ । नाम विना जमुदरि दुख होय ॥६७॥
नाम विना जमु मारे वाटि । वेद पुराण पडहिं वहु पाठ ॥
नाम विना जम पंथ करारा[2] । पुरसलात खन्ने[3] की धारा ॥
सिरि जम ककर ऊभी[4] मारा । नानक जमु मारे नाही कछु चारा
नामु मिलै चलै मैं नालि । नामु मिलै दुख लहै दुरालि[5] ॥६८॥
नामु मिलै सची पति सोइ । नामु मिलै अंति बेली होय ॥
नामु मिलै दरगह जैकार । नामु मिलै नानक सचि पिआरु ॥६९
आदि जुगादी है भी होगु । आपे अलपु लपावन जोगु ॥
जत सत का पूरा शब्द का सूरा । नानक तहँ वाजहिं अनहदि धुनि तूरा
पूरब पछम चढि दक्षिण जाय । रवि शशि दोऊ इकत्र मिलाय ॥
इकति सूति हारु परोवै मणीआ । नानक सो ऐसा दासु उदासी गणीआ ॥७०
भउरु उडरि गगनि सरि धावै । पच बाण लै धनुप चढावै ॥
सहजि ध्यानी रहै ध्यानि । त्रिकुटी मिलि फूटी मुक्ति परानि ॥
निजि घरि रहे न आवागउनु । गुरमुखि सदा मनाए सउणु[6] ॥
तुरीआ तत्तु प्रवै गुर ज्ञानु । नानक सोई दासु उदासी जानु ॥७१॥
अनहद बाजै मनहिं अनद । इन विधि मेला गुर गोविंद ॥
गुर गोविंद मिले मनु माना । घटि घटि ब्रह्म अलिप्त समाना ॥
ब्रह्म पछानै केवल वैरागी । नानक सुन्न रहै लिव लागी ॥७२॥

(१) वणजै । (२) करडा, कठिन, क्रूर । (३) खडग की धारा समान नन्हा (सूखम) होने के कारण लघने को महा कठिन । (४) घनी मार । (५) दलने वाला, दुखदाई दुख भी निर्वित हो जाता है । (दुख सभ ही दुख देते हैं परन्तु एक दुख सहे जाते हैं एक असहि होते हैं । अथवा एक ऐसे दुख होते हैं, जिनमें से सुख निकल आता है, एक ऐसे होते हैं जिन में और दुख की शाखें पसर चलती हैं । सो नाम के प्रताप से ऐसे महान दुख भी दूर हो जाते हैं) । (६) यही शगुन मनाता रहे कि निज घर में ही मगन रहूं ।

ऐसा ज्ञानु पदार्थु सारु । आतम चीनि परात्मु चीने अकथ कथा का अगमु बीचारु
मनु जो देवे रहे लिउ लागी । सुर नर नाथ केवल वैरागी ॥
हरि भगति भाउ तत्तु रसुलीना । तिंह घटि बाजे अनहद धुनि बीना॥७३
अस्थिर थान अगम पुरि वासा । ते अवधूती दास उदासा ॥
आतम रामु सर्व महि जानिआ । सहजि सुमति गुर शब्दु पछानिआ
सतु संतोषु सतिगुर का पूतु । नानक भउ भंजनु सतिगुरु अवधूतु ॥७४
इहु मनु मारे त पावे गुर ज्ञानु । शब्दु बीचारे सो पाए ध्यानु ॥
मनु मनसा बुधि सुन्नि समावै । जन्म मरन दुखु हउमै जावै ॥
अखंड मंडल महि डोरी धरै । नानक मनु जीते जीवतु मरै ॥७५॥
मूल मुकट[१] मणि हिरदे राखे । उहु मुक्ति पराइणु अहि निशि रसु चाखे
तिष्टि सतोषि रहे लिउ लाई । नानक जोती जोति मिलाई ॥
जोती जोति मिलाई साचे । संगति गुर साध मिलति जम का भउ बाचे ॥७६
रहै अतीत हउमैं परहरै[२] । सुख दुख ते रहता वैकुठहु[३] परै ॥
आवत कउ हर्ष न जावत कउ सोगु । सहज घरि आय न व्यापै सोगु
अनभउ[४] त्यागि निरभउ घरि रहीऐ । आपु बीचारि अमरा पदु लहीऐ ॥७७॥
निशि बासुर गुर ज्ञान बीचारा । रामु रिदै पदु पावै सारा[५] ॥
मुक्त पदार्थ गुर गोविंद । सो मुक्त सरोवर नाही निंद चिंद ॥
अंतरि शब्दु निरंतरि बाणी । नानक गुर किरपा ते जाणी ॥७८॥
कवला दासी चरण सरेवै । तिस अगम दइआल अभिन्न अभेवै ॥

---

(१) अंतरयामी ने इस काया को शिर रूप मुकट से सजाया है, केश इस पर कलगी धरे हैं । जैसे मुकट (ताज) के आगे बहु मूल्य हीरा मणी जडा हुआ होता है इसी प्रकार चारि खानि के पातशाह पुरुष के मुकट में त्रिनेत्र रूपी हीरा मणी जडी है। इस मुकट के मूल में उसे गुरों के उपदेश द्वारा जान कर उसे सदा हिरदे में रखे भाव भूले नहीं ध्यान में रखे (ध्यान करता रहे)। जो ऐसा करेगा। (२) त्यागे। (३) त्रिकुटी का स्थान ब्रह्म लोक होने ते वैकुंठ है, उस से परे शुद्ध आदि स्थान में। (४) सुरति ज्ञान स्वरूप होने से अनभउ स्वरूप है इसका अपना स्थान (सुरति कमल) अनभउ घर है अथवा त्रिकुटी में पहुचने पर यहा सुरति को गुप्त विद्या का भेद खुलना आरम्भ होजाता है इस कारण वोह अनभउ घर है, परन्तु यहा माया और काल की अभी गम्य है इस कारण वोह निरभय पद नहीं निरभउ का घर सुन्न है, यहा पहुचे जीव पर माया और काल का बल नहीं रहता। (५) सार पद, सभ का निचोड भूत।

सतिगुर मत्ति पदार्थ लहै । इहु मनु उन्मनि काल कउ गहै ॥
सचखड अपरपर वासु । प्रणवत नानक हम ताके दास ॥७९॥
परमहस पँच मुद्रा धारी । ब्रह्म कर्म करै ब्रह्मचारी ॥
जप तप सजम तीर्थ वासी । पच गिरासी[1] तउ सन्यासी ॥
तोडे बधन काटी जम फासी । दुत्तरि तरै मुक्ति घरि जासी ॥८०॥
आई मिटे कालु क्यों बचे । अहिनिशि राम रसायण रचे ॥
अपिउ पीवै गुरमति पति सचे ॥
सचु जोगु कमाई का धनी । परचे पिंड जोग बिधि बनी ॥
ऐसे काल बचन जग घरे । अस्थिरु कंधु कदे न पडे ॥८१॥
आई मेटण का समर्थ । अगम अथाहु बिअंतु अलखु ॥
ताँका अंतु न किनही पाया । वहु बिअंतु जिसकी सभु छाया ॥
गुण निधानु गुणी रीझाया । नानक पूरा दर्शनु पाया ॥८२॥
मुक्ति रगि राता रसनि रसाय । आपे कहि बूझे सुरति समाय ॥
उह हरि रसि सूचा सदा सचिआरु । उपरि गुर शब्दु अनाहदु सारु
आदि जुगादी है भी होई । नानक करे करावे सोई ॥८३॥
निज घरि थानु निरालमु होई । तिसि ठाकुर ते भिन्न न कोई ॥
अनद रूप अनाहद सोई । जिनि सिरजी तिन ही फुनि गोई ॥
कथनि न पाईऐ अकथु तिहु लोई । गुर सेवक नानक भेदु न कोई ॥८४॥
सच्चे भावै ताँ पति परवाणु । हउमैं जाय ताँ मिलिआ जाणु ॥
निर्गुन गुर[2] ज्ञानु न जाने अंधु । सरगुण सदा हउमैं दुख बधु ॥
भूख पिआस रैणि अधयारी । नानक निर्मल गर्बु निवारी ॥८५॥

(१) पच कामादिकों को ग्रासने वाला । (२) इन दोनो पदो का अन्वय इस प्रकार भी हो सकता है "गुर ज्ञानु न जाने अधु । निर्गुन सर्गुन हउमैं सदा दुख बध", अर्थ सपष्ट है । आगे चल कर एक जगह निरगुण सरगुण दोनो को ही गुरू साहब खडन करेंगे, इस कारण ऐसा अन्वय किया गया है । जज्ञासू हैरान होंगे कि निर्गुन सच्चा इष्ट है वोह कैसे खडन हो सकता है इस का उत्तर—जिस प्रकार एक ब्रह्म के चार ब्रह्म गुरू साहब ने पीछे कहे हैं ऐसे ही निर्गुण भी दुख का कारण है। क्योंकि जहा प्रयत हउमें है, वहा प्रयत दुख है, और निराकार के उपासक, जो अपने आप को ऐसा मानते हैं उनमें इस बात का अभिमान और आग्रह पाया जाता है कि हम निरगुण निराकार के उपासक हैं। युक्त मस्तो का तो शिर तोडना अपना धर्म माना जाता है, भला

मान सरोवरि मजनु जनि कीना। नाम दानु गुरमुखि जम चीना
निज घरि बैसि अम्रित रस भीने। आतम आदि अनूपहिँ चीने॥
तत्तु लहे गुरमुखि परबीना। अगन बुझी नानक ठरु सीना॥८६।
आतम चीनि सुशब्दु समालि। जमु जगाति न लागसि कालि॥
नामु मिलै चलै मै नालि॥
करे बबेकु बबेकी सोय। नानक जाँ मनि दूजा अवरु न कोय॥८७
बबेक ज्ञान आतम प्रगासु। आतमे को चीने सो तषत निवासु॥
गुरमुखि सहजि सुभाइ रग माणे। गुरमुखि सचु चदोआ ताणे॥
आपे नाथु अनाथु सबाया। आपे श्रीधरु सहजि समाया॥८८॥
अमर पुर नगरु महाँ अस्थाना। तहँ हरि भगत बसहिँ परधाना
तहाँ अखूटु भंडारु नामु षजाना। तहँ ही तुरीआ तत्तु समाना॥
तहँ ही ठाकुर सर्ब सुजाना। तहँ नानक आपे बीना दाना॥८९॥
एक शब्दु दुइ कथा बीचारे। सो आदि जुगादी पुरुष निरारे॥
जागतु रहे समाधि सुचेता। सो समदर्शी तत्त का बेता॥
नानक तितु घटि कालु न परेता। उहु अनहदि राती रहे सुचेता१॥
एको एकी निर्गुन प्रभहेता॥ ९०॥
जोग मारग उदास कर्मा। जपु तपु संजमु निर्मल धर्मा॥
पंज तत्तु प्राण का बंधु। जीउ जोति मिल कीआ कंधु॥
गुरमुखि जोगी जुगति पछाणु। नानक लिखिआ लेखु धुरे परवाणु॥९१॥
आपे दाना बीना जाणे। आपे कहि बूझे हुकम मनि भाणे॥
तिभवणि जोति सुशब्दि लपाई। सर्व जीआ पाले शरणाई॥
सर्व जोति प्रभु रहिउ समाय। नानक सो दाता तिसु तिलु न तमाय॥९२॥
साक्त भूले मोहे माया। कनिक कामनी सिउँ मोहु वधाया॥
हउमैं भरमि मुठा धधु कमाया॥

इस अहकार और आग्रह का क्या हेतु है? लाचार निरगुण का इष्ट बाधना ही उत्तर होगा। जिस से स्वय निशा (तसल्ली) होजाती है कि निरगुण सरगुण दोनों ही एकसे हैं। वाहगुरू का भेद तो नियारा ही है। जैसा कि— "निरगुण सरगुण दोनों भाई। प्रभु की कला न मेटी जाई" इस पचम गुरूजी के बचन अनुसार यह दोनो भ्राता हैं, इनका पिता प्रभु और ही हटाया है।

(१) सावधान।

घरि घरि फिरे न आवे शांति। जनमि मरहि झूरहि दिनु राति॥
पूर्व लिखिआ कर्मु कमावे। नानक राम भगति सुख पावे॥९३॥
जैनी अंधुले भ्रमत खै कालु। गुर ज्ञान गवाया पडे वशि कालि॥
कर्म धर्म की सार न जाणहि। कूडै राते कूड़ वपारहि॥
शास्त्र वेद नही पूराना। सदा कुचील नानक प्रभ भाना॥९४॥
तीर्थ वर्त नेम नही माला। भगति विवेकु नही सचु भाला॥
सतु संतोपु न सतिगुर पाया। हउमैं त्रिष्णा कर्म भुलाया॥
केवल राम रिदै हरि नाँही। रामु भगति विनु मुक्ति फलु नाही९५
दया दिगवर बाले भोले। सो रसु पीवै जो तत्तु विरोले॥
पडित मिसरा[1] सूचा चारी। पाठ पडहिं अंतरि अहंकारी॥
वेद वीचारसि ब्रह्मज्ञानी। नानक गुरमति सचि समानी॥९६॥
गुरमुखि सति सति सभ साधिक। गुरमुखि सनकादिक जनकादिक॥
गुरमुखि साइरु बांधिउ सेत। लंका लूटी साधिउ[2] दैइत॥
गुरमुखि ध्रू प्रहिलादु तराइउ। नानक हरणाकशु छेदि भगति जसु गायो॥९७॥
सर्व निवासी पवना धारी। ईशर मुनिंद्र सेवक दरबारी॥
अनदिनु सेवहिं आतम वीचारी। विरले पावहिं मुक्ति दुआरी॥९८॥
त्रिभवण लोय[3] केते गुन गावहिं। कहि न सकऊँ केते बिललावहि[4]
भ्रमि भूले केते पछुतावहिं। अतु नही केते सुख पावहिं॥
केते कहहिं केते कहि[5] जावहिं। नानक भूले गुरमति समझावहिं॥९९
साकत दुर्मति नरकि पचाना। राम भगति सत्संगु न जाना॥
गुर्मति खोजत परम निधाना। आपे वपशे हरि जसु माना॥
अनहदि आदि निरजन पावहि। नानक मूए बहुडि न आवहि॥१००
खोजी उपजै वादी खपै। सो पूरा जो अहि निशि हरि जपै॥
निरकारु निर्भउ मनि भावै। जहँ उपजै तहँ जाय समावै॥
जिनि निरंकार अकारु उपाया। नानक बूझै जिसु आपि बुझाया१०१

(१) ब्राह्मण जाति हो परन्तु कर्म साधारण हों तो उसे मिसर करके पुकारते हैं। (२) "सताप्यो"। (३) त्रिलोकी में कितने लोग। (४) विरलाप कर रहे हे, भाव व्यर्थ साधनो में पच रहे हैं। (५) कहते २ चले जा रहे हैं।

सतिगुर परचै पावै मानु । सर्व निरंतरि अलपु पछानु ॥
सुन्न सरोवरि सोहै सोय । नदरि करे थिरु (प्रा) पति होय ॥
आदि अतीतु पूरा गुर ज्ञान । नानक जुग जुग परम निधानु॥१०२॥
ताँकी गति मिति कही न जाय । वेद कतेब रहे गुण गाय ॥
जेता कहीऔ अंतु न पारु । अंतु न भगती कथनैहारु ॥
जाँ कउ राखै सहजि सुभाय । नानक इहु मनु सुन्न समाय ॥१०३॥
जाणै आदि अंति तिंह लोइ । सर्व जीआ का दाता सोइ ॥
चीनै गुर ज्ञान संसा भउ खोय । हम न काहूँ के हमरा नही कोय ॥
अकुल शरनि पूरी मति होय ॥
शरनि परहु राखहु प्रभु लाजा । तूँ अलप अपार किसका मुहताजा॥१०४
अलप अपार पाए जनु सोइ । जिसु साध सगति गुर दर्शन होइ ॥
अकुल चीनि करि कवल बिगासा । गुरज्ञान खडग ले दूत विनासा ॥
नानक सो पाए पुरुप अलेप । जैसा देखहि तैसा देखु ॥ १०५ ॥
असुरा नदी अपुठी तरी । उलटी पलटि सिधीरी करी ॥
सीधा तहँ कवल पूरन तहँ पवन । इऊँ निवारै आवा गवन ॥
मनु पवनु ले शब्दि कउ बंधु । नानक इऊँ तूटे जम का फंद ॥१०६॥
गगनतर कउ भउर उडारै । भउ वैराग सुमति वीचारै ॥
अहि निशि ध्यान एक लिव लावै । चौथे पद कौ जौ सुरति समावै ॥
नानक इतु[१] जुगति कमावै जोगु । आयै हर्षु न गयै सोगु ॥१०७॥
सो पूरा ब्रह्मज्ञानी होय । जिंह घटि मनि एको अवरु न कोय ॥
अनहद शब्दि रहै लिव लाय । नेमु वर्तु सचु सजमु भाय ॥
लहै पदार्थु गुर्मति नालि । नानक सो दाता नाले भालि ॥१०८॥
मनु मनसा माया गहि राखहु । जिह्वा इन्द्री एको चाखहु ॥
नेत्र श्रोत्र दीसहि असराला[२] । मनुमद्री[३] गुरशब्दु निराला ॥
निहकर्म रहै निहकेवल जोगी । नानक गुरज्ञानी कायाँ रस भोगी ॥१०९॥
द्वादश मुद्रा प्रान अधारी । क्षमा धीरज संतोप बीचारी ॥

(१) इस । (२) भयानक, संसार नामी जीव चत-निगलने वाले । (३) मनमन्दिर (सहसदल) । अथवा मद्री नाम ढोलक का भी है, सो ब्रह्मांडी मन रूपी ढोलक का गुरशब्द अर्थात् त्रिकुटी मडल का शब्द न्यारा ही है ॥

सुरति शब्दु धुनि नादु बजावै। अंम्रित गुर ज्ञान भगत फल पावै॥
इतु रसु अगनि मरै घिनशै नही सूतु। नानक गुर निर्मल अवधूत॥११०॥
गुर का शब्दु मंत्र मनि मांही। घट घट मुंद्रा जोग कमाही॥
जोग जुगति सजम गुर जाणै। चलते मन कउ उलटि गहि आणै॥
सतु संतोष क्षमा धनु साचा। नानक हरि रसु गुरमति राचा॥१११॥
एह चंचल चाय न जाय तमाशे। अहिनिशि निहचलु सहजि बिगासै॥
अम्रित नामु भोजन त्रिप्रासे। गुरकै शब्दि कवल परगासै॥
जूऐ जाय न खेलै पासै। राम रस पीवै कालु न ग्रासै॥
जो खेलै सो सरपर हारै। नानक जगु जीते हउमैं मारै॥ ११२॥
सुआद बिवाद ते रहत निरारे। पंच सुखा परधान विचारे॥
सभ घटि भोगी रह्यो समाय। सतसर शुभर भर लीलाय॥
सतसर न्हावणु मैलु न माय। नानक प्रेम पदार्थु पाय॥
प्रेम पदार्थ गुरमुखि पावै। आसा मनसा त्यागि समावै॥११३॥
सो अबिनाशी आपे आपि। काल बिकाल[1] कउ मारै चापि॥
पर घर जाय न सुनीऐ कथा। एहु आदि पुरुष सतिगुर की नथा॥
सतिगुर की साखी सुनि गुरपूता। नानक जुग जुग गुर अउधूता॥११४
अउधूत गगन बसै ब्रह्मडा। गगन सर आसन कलपति विष खडा॥
आसा मनसा अगनि का नासु। जिंह घट महि केवल प्रगासु॥
निर्भउ अलपु सुन्न सर वासा। नानक बोले दासन दासा॥ ११५॥
अंतरजामी मिले सुहेला[2]। गुरमुखि साध सगति हरि मेला॥
सतसर भरिऐ माणक मोती। अगम पुरुष सचु मालु परोती॥
रोग विजोग सोग परजाले। आपु पछानि गति पति मनि नाले॥
ऐसा सतिगुर पुरुष निरारा। नानक दीनबधु दीनदइआला॥११६॥
दुविधा की मटुकी अनुभउ घरि फूटी। समझि मनु मानिआ त्रिकुटी छूटी॥
धधु अधु नहीं नेरे आवै। आपु बीचारि एकु लिव लावै॥
नख शिष सासस हरि रंगि भीने। नानक आपे दाने बीने॥११७॥
जोगी की नगरी सुन्नसर रहै। आय न जाय शब्दु रसु गहै॥

(१) विकाल, क्रूर। (२) सुखेन ही।

अचिंत भोजन अपरंपर धानु। गुरमति ले पूरा ब्रह्म ज्ञानु॥
संभू की नगरी सुन्न ते होई। नानक जो वसै सो जोगी होई॥११८॥
सभू की नगरी सुन्नहु परगासी। को जोगी वसै अतीतु उदासी॥
जपु तपु संजम रहै निराला। हिवै घरु बधै लगै न पाला[१]॥
भोजनु पहिरै अगनी सारु। ऐसा जोगु जुगति बीचारु॥ ११९॥
गुर चेले का मेला भया। सर्व सुमति सर्व सिरि दया॥
अखंड मंडल महि सुंन्न समाना। मन पवना सचखंडि टिकाना॥
क्षिमा धीर्ज सतोप बीचारी। नानक मनु मानिपा भयजलु तरु तारी॥१२०॥

॥ अध्याय समाप्त होया॥ ११॥

॥ १ ॐ श्री सतिगुर नानक निरयाण प्रसादि॥

॥ अध्याय १२॥

श्री बावे जद इह ध्याउ यारवाँ उपदेश कीता। ताँ मुक्त रूप जो है, चेला राजा शिवनाभ, सो सुन्न महल मन पवना इस्थित भये। राजा के ग्रह मैं स्वर्ण महल मंदर मैं सिंहासन पर जो श्री बावाजी विराजमान हैं। अरु श्रीनाथ जो हैं गोरखनाथ सो भी सिंहासन पर बैठे हैं तथा चारों ओर सर्व गुप्त प्रगट सिद्ध यथा २ अधिकार बैठे हूए सभ कथा सुणकर तिसमै को प्राप्त भए॥ होर राणीआं झरोखिआँ पर बैठीआँ सो भी सुणकर, सभ के मन पवन इस्थिर हो गए। अरु देवता अरु गुप्त सिद्ध सभ फूलो की वर्षा करने लगे। जै जैकार शब्द करने लगे। तीन दिन तीन घड़ी समाध मे जुड़ गए। बहुड़ि सभैही जागे, राजा जी सभ की न्यारी न्यारी पूजा करै। रोज हो सभा को यथा योग्य सतोष करै। कभी मंदर में ही बैठे रहे। कभी देवता सिद्ध मंडली समेत समुद्र टापूआँ का सैल करन चले जावन। तहाँ ही गुप्त प्रगट सिद्धाँ की सभा लग जावै। छिन मात्र हो मैं सहस्र जोजन चले जावन। जहा रमणीक स्थान होवै तहा ही बैठ लीला करैं। ताँ फेर यारवाँ ध्याउ सुणकर राज मंदर मैं राजसिंहासन पर बैठे हुए श्री बावा जी के सन्मुख श्री गोरखनाथ जी बोले।

॥ श्री गोरखोवाच॥

तपा जी तुम धन्य हो। धन्य तुमारे बचन है। सर्व जगत के कल्याण के कारण हैं। सुणते २ हमको त्रिप्त नहीं होंदी। ताँते कृपा करिकै सेवक जाणकर तपा जी होर भी मन पवन इस्थिर के कारण बचन उपदेश करोजी। ता श्री

---

(१) माया अविद्या की जूड़ी।

बाबाजी बहुत प्रसन्न होए। अरु आखिओसु नानकजी तुमारे बचन उपकार के हेतू हैं। ताँते होर भी सुणो॥ ताँ श्रीगुरू अगम निगम सुखबेद अमर बाणी बोले॥

योग वैराग सचखंड की जुगत, वाणी उपमा सचदानंद जी की।

॥ रागु आसा महला १ ॥

॥ पउड़ी ॥

जोग वैराग सहिज घरि पाये।
आत्म चीनि परात्मु चीने सहजि समाधि लगाये॥
बोलै सत्ति असत्तु न भाखै। अंम्रितु रसु गगनंतरि चाखै॥
कारन करन समर्थु निरारा। आपे करि वेखै वरतु अपारा॥
जन्म मरन दुख दूर करेइ। नानक पूछि न लेवै देइ॥१॥
इह निहचलु चालि गुरमति गति पाये। जीवतु मरहि सहजि लिव लाये,
दर दर्शन की जिनि सारि न जानी। वे बूडि मूए बिनु सरवर पानी॥
बूडत कउ तुलहा हरि गुर मति नाउं। नानक दर्शन को बलि जाऊँ॥२॥

॥ रहाउ ॥

गुर द्रयाउ सरोवर सत पूरा। अति निर्मायल अंमृत भरपूरा
ज्ञान पदार्थ निर्मोलक हीरा॥
सतसर मंजन मैलु न राई। दर्शन परसि परम गति पाई॥
दर्शन कउ बलिहारै जाऊँ। दर्शन पेखि निज महली थाऊँ॥३॥
जैसी सुरति[1] तैसी तिसु मुक्ति। जैसा भाउ तैसी तिसु भगति॥
भये अबिनाशी अलप निवासी। बधन मुक्ता निर्भउ रासी[2]॥
गगन मंडिल अम्रितसरु[3] कूआ। नानक सो रसु पीवै जो जीवत मूआ॥४॥
अम्रित बूँद सुन्न ते होय। त्रिभवनु जगतु उसै का सोय[4]॥

(१) ध्यान। (२) "बासी"-पाठांतर है। (३) मान सरोवर से यिह कूआ नियारा है और ध्यान के समय इस प्रकार दृष्ट आया करता है कि मानो यिह उलटा हुआ है, और जैसे कूएँ की मडेर पर बैठ कर जल में ध्यान करें तो अपनी ही सूरत दृष्ट आती है ऐसे ही इस भीतरीय कूप में ध्यान पसारने से बीच में एक झरोखा सा दृष्ट आता है जिस में घुसे बिना आगे जाना दुर्घट है। (४) शोभ रहा है।

आकलु षीनीए तत्तु विचारा । त्रिभवनि जोति सची सिरकारा ॥
दीप लोअ पुरीआ पाताल । नानक सो दाता गुरमति नालि ॥५॥
अकथु कथै बिचरै गुर ज्ञानु । अजपा जापु जपै अनहदि मनु मानु
पीवै अपित गुर ज्ञानु ध्यानु । मनु निर्मल भउ भंजनु जानु ॥
गुर सेवक[1] मिलि अलपु पछाना । नानक सहजि भाय मेरा मनु माना ॥६॥
क्योंकरि ब्रह्मज्ञानी होय । हउमै मैलु गुर मति बिपु खोय ॥
सतन की रेन साध पग सेवै । रहे अतीतु अकल्प[2] घरि देवै ॥
घरि मदर महि हीरा[3] लालु । नानक सो पावै नदरि[4] निहालु ॥७॥
ऐसे ब्रह्म ज्ञानी लक्षण । जिह्वा इंद्री सुआद न रखणु ॥
गुरमुखि रहै अलेप निराले । ज्यों जल भीतर कवल निराले ॥
गुरमुखि ब्रह्म अगनि परजाले । गुरमुखि पच साध रखवाले ॥
ज्ञान खडग लै भ्रूकी बाण । तसकर मार पच घर जाणु ॥८॥
सभ गुण ज्ञानु ध्यानु बुधि पावै । साध सगति महि तत्तु परावै ॥
मनु निहचलु हरि सगति अचारु । निहचलु नामु निरजनु सारु ।
हरि जनु ठाकुर एक अकारु ॥
ज्ञान मुक्ति का गुर महल पछानु । नानक जुग जुग भगति नीसानु ॥९
सतिगुर शरनि हरि का जसु भाला[5] । जब सतिगुर पुरुष भये किरपाला
हरि हरि रत्न ज्वेहर लाला । अलप निरंजन दीन दिआला ॥
कायाँ मटु निर्मलु होय समाला ॥
तिस महि अलपु न लपनो जाय । आदि निरजनु सहजि सुभाय ॥
नानक सो सतिगुर दीआ दिखाय ॥१०॥
सभ रस सजमु अलप ध्याना । सभ घट ताँके ओहु पुरुष परधाना ॥
सो अविनाशी करे प्रतपाला । घट घट पूरनु देइ दिआला ॥
अठसठ मजन सभ तीरथ तह ही । नानक खोजत गुर मति घर राह ही ॥११

(१) शब्दसुरति । (२) अफुर घर, वास्तव में तो सुन्न मँडल अफुर घर है, परन्तु सहसदल में पिंडी मन का निज घर है वहा इसके उलट आने पर स्वाभाविक ही यिह अपनी चचलता छोड देता है इस कारण इसी सहसदल को ही यहा गुरुसाहब के कथन का अभिप्राय है। निशानी भी इसी स्थान की ही देते हैं। (३) हीरे लाल वत उस अकल्प घर में जोति है। (४) दृष्टि में देखने कर दृष्ट आता है। (५) मस्तक में शब्द रूप भाला (नेजा), वा भला।

गुरमुख खोजत लहै घर अपना। निजघर वसै सची सचु रसना॥
सचु रूप पेखै बिस्थार। सची जोत सचा परकार॥
गुरमुख निज महली पावै थाउँ। पेख अचर्ज अचर्ज घर जाउ॥१२॥
देही नगर महाँ अस्थाना। तहँही केवल[1] ब्रह्म समाना॥
तहँही सतिगुर अम्रित भरपूरा। तहहीं बाजहि अनहद धुनि तूरा
तहँही जोग जुगति की गरमा[2]। नानक मोख मुक्ति तहँ धरमा॥१३
तहहीं कवल तहीं कवलासु। तहँही काम क्रोध का नासु॥
तहँही आदि पुरुष का वासु। तहँही सुर्ग मिरतु आकासु॥
तहँही सर्गुन निर्गुन सोय। तहँही भगति भाउ सहसा दुखु न होय॥१४
दूख भूख तिपा तहँ नाँहि। तहँ जठर रोग सोग सहसा भउ क्राँहि
तहँ पाप पुन्न नहीं को धर्मा। तहँ नेम बरतु नाँही को कर्मा॥
तहँ रक्त बिंदु नाँही इह कायाँ। तहँ निर्मल जोति अनूप समाया॥१५
तहँ कोट जोध सचु जोत सरूपा। तहँ कई कोट खंड ब्रह्मंड दीप धूपा॥
तहँ कई कोट ब्रह्मे अरु शेशा। तहँ कई कान्ह कोट कई महेशा॥
तहँ कोट इन्द्र छत्रपत छत्रा। तहँ कई कोट जोध सूर अजित्ता॥
तहँ असख भगत गुण रवहि तरगा। तहँ कोट बिनोद सदा अनदा॥१६॥
तहँ अस्थिर मनूआ कतहूँ न धाया। तहँ ममता मोह न छाया माया
तहँ आदि निरजनु गुर अलप लपाया। इद्री नही सबलु[3] नही दुख काया
नानक साहिबु सचा सोइ। अलप निरंजनु अनत न कोइ॥१७॥
तहँ होम न जग नही अन पूजा। तहँ एकु निरंजनु अवरु न दूजा
वेद कतेव नहीं गुण गणी। ओअंकार शब्दु सो सुनणी॥
तहँ पोथी पाठ न पूजा अरचा। तहँ खेती वणजु नहीं को परचा
तहँ तीरथ तट नाँही कत न्हाईअै। नानक अनहदि शब्दि समाईअै॥१८॥
तहँ बाँधपि मीतु नही कोई पिआरा। तहँ एकु निरजनु अलपु निरारा॥

(१) सर्व प्रपंच के बाध निश्चे पूर्वक जिस में सुरति अभेद होकर अरूढ़ अवस्था का अनुभव करती है उस पद की ओर इशारा है। (२) स्थिती (पूर्णता), वडुर्गी, जन (सरगरमी)। (३) माया सबल ईश्वर, अथवा इद्री उपलक्षित काया विशिष्ट (देह अध्यासी) जीव।

तहँ कालु कर्मु जरा रोगु न ब्यापै । तहाँ आप पछानिआ जुग जुग आपै
तहँ तेजसु तामसु[1] नहीं अहँकारा । नानक तहँ एको अलख अपारा ॥१९
तहँ पोथी पाठ न पढ़ै पडता। तहँ गरडपुराण न वाचहि सिम्रता ॥
तहँ कउण सजोग को नहीं विजोगु। तहँ कंचन काया नहि को रोगु ॥
तहाँ सचाखड अमर पुर नगरी। तहँ साध बसै जरा नही मगरी॥२०॥
तहँ काम क्रोधु नाही अभिमाना । तहँओपति खपति नहीँ विज्ञाना
तहँ शक्ति शरीरु नहीं कुल जाया। तहँ तेजु अतेजु नहीं मति माया
तहँ धधु वंध नाही सिरि कारा । तहँ सहसा सोगु नही वैरारा[2]॥
तहँ सत भगत हरि हेत पिआरे । नानक शरनि परे आत्म बीचारे॥२१॥
तहँ जपु तपु संजम नहीं वनवासा । तहँ षट शास्त्र भरम न पवन अभ्यासा ॥
तहाँ हठ निग्रहु नाही पाखंडा । तहाँ आदि निरजनु महाँ बलवहारे ॥
तहँ ससीअर सूर नही अँध्यारा। तहँ नरक सुर्ग नाहीं सिर मारा ॥२२॥
तहँ कूड कुसत नहीं झुठ्यारा[4] । तहँ सची दरगह सचु पिआरा ॥
तहाँ जोति अनूप अतीतु सबाया। तहँ वरनु भेष नाही बापु माया ॥
तहँ उत्तम नीचु नही को अतरा। नानक सो निर्मलु सर्व निरतरा ॥ २३ ॥
तहाँ नारि कुटवु नाही सुत धीआ। तहँ बधिपु मीत नाही कोई बीआ ॥
तहाँ खेती वणजु नाही व्योहारा। सेव भगति का मुक्ति दुआरा ॥
तहँ जमुजगाति[5] नहीं करु[6] लीजै । नानक तहँ सचा सचि पतीजै ॥२४॥
लशकर लाख नहीं तहँ थांहा । तहँ घोडे लाख नहीँ पतिशाहा ॥
नहीं तहँ लखमण रूपा सोना । नहिं तहँ पासा मलमल झोनाँ ॥
तहिं तहाँ तबू पलघ निवारा । सिहासन छत्र नहीँ सिकदारा ॥
असु पवन अस्वार नही हस्ती। तहँ राज न्याय बहै नही तपती ॥२५॥
तहँ गढ़ कोट नहीं पाटम्बर । तहँ छत्रधार नहि झूठ अडंबर ॥
तहँ नाही पान तबोली हरिमा । अंम्रित जल शीतल नहीं पयना ॥

(१) तीन महादेवों से भाव है। ततस्वर्ण घत 'तेजस' ब्रह्मा का रग है, स्याम रग धान 'तामस' से विश्नु की व्यक्ती का ज्ञान कराया है, और 'अहकार' रूप से रुद्र शिव महादेव । (२) वैराग्य । (३) बलवत, शक्तिवान, बलिष्ट । (४) झूठ । (५) महसूल । (६) डट (हाला) ॥

तहँ माय बाप सुत मीत न भाई । कामण कामु नही तहँ राई ॥
संत सभा गोष्ट सचु थाँनु । तहाँ पारब्रह्म अपरपर मान ॥२६॥
ताँकी जोति त्रिभवण प्रभ धारे । ताँकी जोति गगन ध्रू तारे ॥
ताँकी जोति शशि सूर उज्यारे । ताँकी जोति चदु हिव धारे ॥
सो अविनाशी अलप अपारे ॥
ताँकी जोति धरति आकासा । नानक मिल जोती कवल बिगासा ॥२७॥
ताँकी जोति ब्रह्मे कई कीआ । ताँकी जोति विश्नु सभ थीआ ॥
जोति[१] अतीत त्रैगुन वशि काला । देव दानव वशि शरनि दइआला ॥
घटिघटि जोति रहे लिव लाई । नानक सुन्न समाधि लगाई ॥२८॥
तहँ जोति अनूप शब्द निरबाणु । केवल ब्रह्म सो शब्दु पछानु ॥
तुम ही प्रभु जी अवरु न कोय । आपे करे करावै सोय ॥
सो अविनाशी चीने जनु कोइ । नानक पुनर्पि जन्मु न होइ ॥२९॥
हउमैं त्यागै भरमु चुकावै । आत्मा कउ चीने सुरति समावै ॥
आसा मनसा सहसा मोह जाय । रहे अतीतु अवगति[२] शरनाय ॥
ताँकी जोति कई मुनी महेशा । नानक देखि दिखावै गुर ऐसा ॥ ३० ॥
प्रथमे मानसरोवर मजन करै । दुतीआ दक्षिण कउ दिशा धरै ॥
दक्षण ते जाय पच्छिम को जाय । तऊ हाट पटन की सोभी पाय ॥
पच्छम ते जो चढ़े सुमेर । आवै परदक्षणा के फेर ॥३१॥
साध संगति मिलि बुद्धि प्रगासु । प्रान मुक्ति मेला प्रभ तासु ॥
दे प्रदक्षण चढ़ै अकाशि । गगनंतरि बैसै तपत निवासु ॥
अंतरि बाहरि एको आदि । नानक सो गुर आदि जुगादि ॥३२॥
आदि जुगादी रहियो समाय । अकलु अविनाशी तिहुतिलुन तमाय ॥
त्रिभवन जीअ जोति सभ ताँकी । गुर ज्ञान बुद्धि अस्थिर मति जाकी ॥
साक्त मुगध काल वशि कीने । सो मुक्ता जो आतम चीने ॥
सो चीने जिसु आपि दैयाल । नानक अनहदि शब्दि निहाल ॥३३॥
तहाँ सचु ही सचु सचा तिहँ रूपा । तहाँ सर्व मई तहाँ सर्व सरूपा ॥

(१) दृष्टि गोचर होने वाली सब प्रकार की ज्योति से रहित । (२) अव्यक्त पद, सर्व का कारण भूत ।

तहँ निर्भउ थाऊँ सचा सचु कोट। ब्रह्मपुरी सुखी सभ लोक ॥
तहँ दुःख संताप न ससा रोगु। न को मरै न कोई संजोग ॥
तहँ अमरापुर नगरी निहचल थाउँ। तहँ नानक पिड बखशीश गिराऊँ ॥३४॥
तहँ किसै न दूप न कोई भूपत। तहँ सभको सुखी दुखी नहँ रोवत ॥
काल कंटक की नाँही खेटा। तहाँ जमडंड की नाही भेटा ॥
तहाँ पौफ पता नाही खेकाल। तहँ जोर जुलम नाही जावाल ॥
तहाँ निरभउ नगर सदा अजरावरु। तहाँ नानक सगत कीर्तनु का साहरु ॥ ३५ ॥
तहाँ सच्ची संगत सच्चे गुरभाई। तहाँ सचे प्रीतम प्रान सहाई ॥
तहाँ सचा नगर अटल अविनाशी। तहँ सभ को सचा आय न जासी ॥
तहँ सची वाणी गुरमुख गावहिँ। नानक सचे सचु समावहिँ ॥ ३६ ॥
तहँ सचा रूप अनूप अपारु। परम जोत नाम परवारु ॥
तहँ अनूप देह निर्मली जोत। तहँ काया काची नाहीँ तहँ छोत ॥
तहँ रक्त बिंद की नही मडोली। तहँ तसकर पच नही इक टोली ॥
तहँ अनंद बिनोद कोड अखारे। तहँ शोभावत सत हरि विचारे ॥
तहँ आदि निरंजन दीन दयाला। तहँ नानक नदरी नदरि निहाला ॥३७॥
तहँ अनहद शब्द अनाहद गावहि। तहँ पारब्रह्म परमेश्वर भावहि ॥
तहँ असंख शब्द सफा वाहते। तहँ सची वाणी गुरमुखि गावंते ॥
तहँ सची जोत अनूप अपारा। तहँ नानक सचो सचु वरतारा ॥३८॥
तहँ असंख भगत प्रभ पास हजूर। हरि सग राते रहै भरपूर ॥
तहँ असख जोध महाँ बलसूरे। तहँ गुणी ज्ञानी गुरमुख पूरे ॥
तहँ गुरमुखि गाईऐ सची वाणी। तहँ नानक पाया पद निरवाणी ॥३९॥
तहँ सचु तुलीचा सचु तपत पसाउ। आदि जुगादी सचु पसाउ ॥
दूजा होया न होसी होगु। आदि अत सचा सजोगु ॥
गुरमुखि सचु शब्दु नीसाणु। आदि जुगादि अभगु दीवाणु ॥
अभगु आदि सभू सवाद। नानक आदि जुगादी आदि ॥ ४० ॥
आदि जुगादी सचु गुर ज्ञान। आदि अत गुर ज्ञान ध्यान ॥

निहचल अपरंपर सदा अविनासी। निहचलु नामु आय न जासी॥
निहचल हरि कीर्तन अखिल अखंड। नानक निहचल सचा सचु खंड॥४१॥
तहँ सची प्रीति न कबहूँ तूटै। नवनिध नाम अखूट न खूटै॥
तहँ अटल पिंड संगत गुरभाई। तहँ नाम सुहेले गल लए मिलाई॥
तहँ परमहंस प्रीतम हरि पिआरे। तहाँ मिले सुप्रीतम शब्द स्वारे॥ ४२॥
तहँ मिले प्रीतम फिर नहीं विछोड़ा। तहँ थानपती निज महली सोहा॥
तहँ सचा निरंकार घरि अपने आया। तहँ गुरमहली महलु बुलाया॥
तहँ अकल पुरुष कैवल गुरज्ञान। तहँ नानक जुग जुग परम निधान॥४३॥
गुरमुखि चीनै पद निरबाणु। अनहद राता शब्द निरबाण॥
गुरमुखि सच्चु प्राप्त पोतै। सच्चु दुलीचै बैठा ओतै॥
सची सुरत शब्द मनु धीर। नानक साहिब एक वजीरु॥४४॥
अटल अखंड कैवल कवलतु। थाप तरोवर मोहण मंत॥
रत्न ज्वेहर सतसर भरिआ। सुफल ब्रिरख अम्रितु रसु फलिआ॥
लाल गुलाला गहब्बर गूडा। सुभर सरोवर भर भरपूरा॥
सत्त सरूप सर्ब सिर अकाल। नानक आदि अंतु दीनदयाल॥४५॥

इति श्री प्राणसंगली श्री गुरग्रंथे सचखंड प्रभाव बरनन नाम द्वादशमों ध्याउ सपूर्णं॥ १२॥

॥ १ ॐ सतिगुरु प्रसादि ॥

॥ अध्याय १३ ॥

॥ गोष्ट[1] श्री रामानंदजी नाल होई ॥

॥ प्रश्नोत्तर माला महला १ ॥

(श्रीरामानंदोवाच)

ओअंकार शब्द प्रगासा । तुम तो सतिगुरु हम तो[2] दासा ॥
एक शब्द का पूछत भेव । कृपा करो भाखो गुरदेव ॥१॥

---

(१) श्री गुरूजी जब काशी विषे अपने शब्द के प्रभाव से नानू तथा चतुर दास आदि पंडितों को अनेक प्रकार की चरचा गोष्टी द्वारे विद्या मद से रहित करके सत्य नाम के उपासक (उनको) बना चुके तो सम्पूर्ण नग्र में गुरू साहब की प्रख्याती हो गई कि—

सकंद तथा ब्रह्मा के संवाद द्वारा भविष्यत पुराण पूर्वार्ध० त्वाष्ट कल्प अध्याय १२६ में जिस नानक नाम वाले गुरू अवतार का निरूपण हुआ हुआ है (जैसा कि— "एवं वैधर्म्य प्राचुर्ये भविष्यति यदा कलौ ॥ ३३ ॥ तदा वै लोक रक्षार्थ म्लेच्छाना नाश हेतवे । पश्चिमे तु शुभे देशे बेदिवंशे च नानक ॥ ३४ ॥ नाम्ना च भुवि राजर्षि ब्रह्मज्ञानैक मानस । भविष्यति कलौ स्कन्द तत्ववित्कलयाहरे ॥ ३५॥ स श्री मद्राजशार्दूलानुपदिश्य च पुन. पुन । म्लेच्छान्ह निष्यति स्कन्द धर्म तत्वोपदेश कृत् ॥ ३६ ॥ तेनोपदिष्ट मार्गं वै ये ग्रहीष्यति भूमिपा । ते वै राज्य करिष्यन्ति तस्य शिक्षानुसारित " ॥ ३७ ॥

अर्थ—जब कलियुग में इस प्रकार धर्मात्मा पुरुष अल्प रहेंगे पापी बढेंगे ॥ ३३ ॥ तब, लोगों की रक्षा के लिये और म्लेच्छों के नाश वास्ते अति उत्तम पश्चिम देश में बेदियो की कुल में नानक ॥ ३४ ॥ इस नाम वाला प्रिथ्वी में राजऋषि, जिसका एक ब्रह्मज्ञान में ही मन लगा है, हे स्कंध ! तत्वज्ञान संपन्न, हरि का कलाऽवतार कलियुग में होगा ॥ ३५ ॥ (ब्रह्माजी कहते हैं कि) सो नानक, हरि का अवतार , राजसिंहों को पुन पुन उपदेश करके म्लेच्छो का विनाश करेगा, धर्म का यथार्थ तत्व (भगति नाम जप को) साथ २ दिखावेगा ॥ ३६ ॥ उस नानक अवतार के उपदेश किये नाम भगति मार्ग में जो क्षत्रिय लोग चलेंगे, उसकी शिक्षा के प्रभाव से वुह राज्य को पालन करेंगे-गुरू के सिंह कहावेंगे ॥ ३७ ॥)

सोई गुरू अवतार यहा आए हुए हैं—रामानंदजी ने भी इस वृत्तांत को सुन कर सेवकों से पूछा कि वुह कहा पर निवास रखते है ? तो सेवकों ने कहा कि दिवस को नगर में दरशन देता है और रात्रि को वन विषे गुप्त होजाता है। ऐसा सुन कर एक दिन अपनी बहुत सी शिष्यमंडली सहित रामानंदजी गुरू साहबके दर्शन को आये।(और) प्रणाम करके बैठ गये-गुरू साहब ने भी परम सत्कार करके पूछा कि आओ स्वामी रामानंद जी पुरातन जोगीशर ! सर्व कुशल तो है ? तों गुसाईं जी कुशल समाचार का उत्तर देकर बोले कि तपाजी हमारा प्रश्न है इसका उत्तर कृपा करि देवो (उस समय यह गोष्टि परस्पर हुई, किसी प्रसंग वश्य से शिव नाभ आदि को संगलादीप में श्रवण कराई जान पडती है)।

(२) जल्प तथा वितंडाभाव की शंका निवारण अर्थ प्रथम ही अपने आप को दास कहि दिया है इस कारण श्रद्धा भक्ति संयुक्त (गोष्ट रूप) प्रश्न है।

कवन शब्द कवन नाद[1] । कवन गोष्ट कवन बाद ॥
कवन पूछे कवन कहे । कवन अरंभ सुहेला रहे ॥ १ ॥

(श्री गुरोवाच)

शब्द एक दूसरा नाद । समझ गोष्ट अनसमझ बाद ॥
मन पूछे उन्मन गहे । पवन अरंभ सुहेला रहे ॥ २ ॥

(श्री रामानंद०)

कवन मलीन कवन प्रगास । कवन घर आसन रहे उदास ॥
कवन घर मन निहचल रहै । कवन दर्शन अलप पुरुप को लहै ॥३॥

(श्री गुरू०)

अलमल[2] काया निर्मल प्रगास । सहज[3] आसन मन रहै उदास ॥
प्रेम आसन मन निहचल रहै । अकल दर्शन अलप पुरुप को लहै॥४॥

(श्री रामानंद०)

कवन कायाँ कवन जीउ । कवन सुंदरी कवन पीउ ॥
कवन घर कवन घरवास । कवन तत्त लै खेले बिलास ॥ ५ ॥

(श्री गुरू०)

काया करनी कारन जीउ । आतमा[4] सुंदरी प्रान पीउ ॥
निहचल घर परचै घर वास । पाँच[5] रत्त लै खेले बिलास ॥६॥

(श्री रामानंद०)

कवन आवै कवन जाय । कवन खोवै कवन खाय ॥
याका मोहि बतावहु भेव । पूछै सिक्ख कहो गुरदेव ॥ ७ ॥

(श्री गुरू०)

संजोग आवै बिजोग जाये । माया खोवै ब्रह्म खाय ॥
सतिगुर कहै सुन रामानंद । ब्रह्म गोष्ट में परमानंद ॥ ८ ॥

(श्री रामानंद०)

कवन बटाऊ[6] कवन बाट । कवन बस्ती कवन हाट ॥
कवन कुंजी कवन ताल । कवन खोलै कवन रखवाल ॥ ९ ॥

---

(१) ध्वनि । (२) महा मलीन (परम अंधकार रूप) । (३) सहज घर सुषम्ना का घाट वहा पर की स्थिती से मन में वैराग्य होता है । और प्रेममई स्थिती से मन निस्तरंगता को प्राप्त हो जाता है । (४) जीवकला, सभ की अपना आप रूप । (५) पाच आकाशी शब्द । (६) पथी, मुसाफर ।

(श्री गुरू०)

जीउ बटाऊ जन्म बाट । काया बस्ती अठसठ हाट ॥
सतिगुरु कुजी शब्द ताला । सतिगुर खोलै गुरू रखवाला ॥१०॥
पवन बटाऊ काया बाट । ब्रह्म बस्ती समझ हाट ॥
शब्द कुंजी सुरत ताला । खोल परचै तौ शब्द रखवाला ॥११॥

(श्री रामानद०)

कवन जोगी कवन रावल । कवन धान[1] कवन चावल ॥
कवन अपदा कवन पानी । कवन बोलै अनाहद बानी ॥ १२ ॥

(श्री गुरू०)

अलप जोगी अकल रावल । प्रगट धान गुप्त है चावल ॥
अपदा[2] ऐनी खिमा खीमानी । शब्द नाद बोलै अनाहद बानी ॥१३॥

(श्री रामानद०)

कवन जोगी कवन जुगता । कवन सुदरी कवन भुगता ॥
कवन ससा कवन जोग । कवन उपकार विचार परजोगु ॥१४॥

(श्री गुरू०)

अलप जोगी अकल जुगता । आतमा सुंदरी प्रान भुगता ॥
ससा रोग (शब्द जोग) । सुरति उपचार विचार पर जोग ॥१५॥

(श्री रामानद०)

कवन मत्र कवन माला । कवन तिलक कवन जप माला ॥
कवन ध्यान कवन धर्म । कवन चाहे आशरम ॥ १६ ॥

(श्री गुरू०)

नाम मत्र सचु माला । तत्तु तिलक जुगति जप माला ।
ध्यान तत्त आतमा धर्म । सहजे चाहे सच आश्रम ॥ १७ ॥

(श्री रामानद०)

कवन शब्द लै बाँधे वध । कवन शब्द रहे निर्बंध ॥
कवन शब्द लै उन्मन रहै । कवन शब्द अगम की कहै ॥ १८ ॥

---

(१) गंहू आदि धान । (२) ऐनी नाम पानी के चशमे का है जो कि भाव आखों मे है, यही अपदा का मुख्य कारण है क्योंकि कुरूप वस्तु के दर्शन से भी दुःख ही देती हैं और सुरूप दर्शन से भी बधायमान ही करती है। इन का भाव इनकी पानी रूपा द्रिष्टी धार का खिमा करना अर्थात् अपने ठिकाने पर स्थिर करना=धारना खिमानी= स्थिरता, भाव शाति का कारण है।

(श्री गुरू०)

गुरु का शब्द लै बाँधे बंध । सतिगुरु शब्द रहे निर्बंध ॥
वकता शब्द लै उन्मन रहो । परचे शब्द अगम की कहो ॥१९॥

(श्री रामानद०)

कवन घरि चाँद कवन घर सूर । कवन घर बाजै अनहद तूर॥
त्रिकुटी तेज करे झुनकार । गगन वर्पै केती धार ॥ २० ॥

(श्री गुरू०)

अर्द्ध चाँद[1] उर्ध सूर । अंतर बाजे अनहद तूर ॥
त्रिकुटी तेज करे झुनकार । गगन वर्पै एको धार ॥ २१ ॥

(श्री रामानद०)

कै आदमि सिरजा करतार । कै पात चले संसार ॥
केते पख चले साथा । प्रिथमी कह्यो केते हाथा ॥ २२ ॥

(श्री गुरू०)

दोइ आदम[2] सिरजा करतार । दो पात[3] चले संसार ॥
पाँचौं पक्षी[4] चलैं साथा । प्रिथमी कह्यो साढे तीन हाथा ॥ २३ ॥

(श्री रामानद०)

प्रिथमी कहीए केते खड । केता ऊचा है ब्रह्मंड ॥
अबर उगवैं केते तारे । इंद्र वर्पै केते धारे ॥ २४ ॥

---

(१) शुन्य मडल का धनी नीचे है और भवर गुफा का धनी सूर्ज ऊपर, इनकी अतरालिक हद्द में अनहद का बाजा बजता हे । यद्यपि सहस्र दल का मालिक चाद नीचे तथा त्रिकुटी का मालिक सूर्ज ऊपर है और इनकी अतरालिक सधि में भी अनहद की ध्वनि होती तो है तथापि सहस्र दल में जो प्रकाश हे वोह सुन्न मडल का आभास मात्र है और भवर गुफा के धनी का आभास त्रिकुटी में है इस कारण स्वामी रामानद् जी जैसे आचार्य के साथ नीचे मडल के अधिकार की वार्ता को उपेक्षत कर (छोड) रक्खा है । परतु विपर्य्य ज्ञान रूप भ्राति के सशय निवृत्ति अर्थ कह भी दिया हे कि त्रिकुटी में जो झनकार शब्द का है वह ऊपर ले शब्द के तेज का है और गगन मडल में केवल एक धार मात्र ही शब्द की वर्षती है । जहा से धार आती है वह भडार तो ऊपर ही हे । सो त्रिकुटी के शब्द तथा प्रकाश का भडार भवर गुफा में तथा सहस्र दल के शब्द तथा तेज का भडार सुन्न मडल में है यह सूचन कराया । (२) जीव, ईश्वर । ईश्वर को भी आदम कहि देने से कई एक ईश्वरवादी चिडेंगे, परतु आदम नाम पुरुप का है । सो पुरुप शब्द का प्रयोग जीव ईश्वर दोनों के वास्ते एकसा ही होता है । पुरुप प्रकृति के सयोग से ससार की उत्पत्ति और पुरुप स्त्री से सतान उत्पत्तिवत् । (३) पाप पुन्न । (४) पक्षीवत् उडने वाले पाचों प्राण ।

(श्री गुरू०)

प्रिथमी कहीए नवखंड । चार[1] उंगल ऊचा ब्रह्मंड ॥
अंबरि उगवैं[2] हैं दो तारे । इंद्र बर्षे एको धारे ॥ २५ ॥

(श्री रामानद०)

कवन[3] यह पेड का भंडार । कवन है मन का अहार ॥
कवन यह बकते का बिवहार । कवन ते होवै उपकार ॥
कवन से कहीए काया अवतार ॥ २६ ॥

(श्री गुरू०)

प्रान यह पेड का भंडार । शब्द यह मन का अहार ॥
बबेक यह बकते बिवहार । अकल सिऊँ कीजै उपकार ॥
कायाँ सौं कहीए कृष्णावतार ॥ २७ ॥
जो जो जीव का नही बशेष । चेतन होय सतिगुरु को देख ॥
बकते के नैन सुनते के स्रवन । गुणीए गुण घट मैं हर त्रिभवण ॥२८॥
शब्द[4] गुरू सुरति धुनि चेला । करै ध्यान मंत्र मैं मेला ॥

(१) लिलाट स्थान । (२) सहस दल कमल रूप आस्मान में सुरति निरत रूप दो तारों का साक्षात होता है । सुरति का प्रकाश उजला होता है निरत का श्याम आभा सयुक्त इसी करके ही सहस दल कमल का नाम श्यामसेत भी लिया जाता हे । इसी की छाया आख में है, आख की ज्योति उजली है परतु धीरी श्याम सरूप है । इसी वास्ते सुरत निरत दोनों का बास आख में माना है । (३) इस ससार रूपी वृक्ष का । (४) जैसे गुरू की आज्ञा में बर्तना शिष्य का धर्म है- ऐसे ही जो अनहद रूपा शब्द घट में होता है, उसकी जो ध्वनि है उसके पीछे सुरति का चलना धर्म है॥ शब्द गुरू है, ध्वनि उसकी उपदेश रूप आज्ञा है, सुरत चेले को उस ध्वनि के पीछे२ चलाओ भाव जहा से वोह ध्वनि आती है उसके पीछे २ सुरति की तार बाधकर चलते जाओ-परतु गुर शब्द (नाम उपदेश) रूप दीक्षत मत्र का उस ध्वनि के साथ मेलान करके सुरत, को, ध्यान कर्तव्य है । बहुत से जज्ञासू शब्द और शब्द की ध्वनि को एक रूप जानते हें परतु यह एक रूप हें भी ओर एक रूप नहीं भी हें । जेसे अगनि का प्रकाश तथा दाहक धर्म स्वाभाविक (निज रूप है) ऐसे ही शब्द का शब्दायमान तथा ध्वनित होना भी निज रूप सहज सुभाव है । परतु जिस प्रकार प्रज्वलित अगनि के सन्मुख चद्रकात मणि धर देवें अथवा अगनि बधन मत्र का प्रयोग करें तो अगनी का दाहक धर्म न्यारा हो जाता है- प्रज्वलित तो रहती है परतु दाह करने की सामर्थ्य नहीं हो सकती । इसी प्रकार भीतरीय शब्द में बध मोक्षकारी दोनों शक्तियें हें । जिनका निर्भार ध्वनि पर होता है- सो जब सुरति रूपी चद्रकांत मणी तथा गुर शब्द रूपी शब्द बधन मत्र को उस शब्द के सन्मुख एकटक स्थिर किया जाता है तो शब्द से ध्वनी न्यारी हो आती है जिस पर गुर शब्द रूपी जीन डाल कर सुरत यदि आरूढ़ हो जावे तो ध्वनि सचखड में अवश्य पहुचा कर ही छोडेगी । ध्वनि परखने के वास्ते एक सहज दृष्टात लो — समय दिखलाने वाली घडी में से एक शब्द टन टन (एक रस) जारी रहता

नां खेलवो जूआ[५] नां हारवो दूआ। न वैठवो पिंजर न होयवो मूआ ॥२९॥

(श्री रामानंद०)

ऐसा गुर ज्ञान जीवत ही मूआ। रामानंद सुआमी निहचल हूआ॥
किरपा करि गुर नानक रामानद शिष्य कीआ। राइ महल का बीचार दीआ ॥३०॥

एह बचन गोष्ट जद बाबे सुनाई ता गुसाई जी गुरु जी के चरणो पर मत्था टेकिआ। ते हथ जोड़करि आखिओसु जी! एती अवध मेरी एवें बृथा गई। वडे भाग भए जो गुरु के दर्शन होए हैं। अब मुझ दास को मंत्र उपदेश करो। ता बाबा बहुत हसिआ। ते आखिओसु गुसाईं जी! तुसीं पुरातन जोगीश्वर हो- सभ कुछ जानते हो॥ ता गुसाईं जी आखिआ जी! मैं ता सभ कुछ जाणता हा पर तुमारे बचन सुणकर मेरा हिरदा शांत प्रकाश होया। सारी विद्या तेरे बचनो पर कुरबान है जी। जो तुसीं मंत्र उपदेश कहोगे, सो मैं गुह्य हिरदे मैं रखागा। ता बाबे गंगा जी मैं स्नान करवाय के पूर्बमुख[६] बैठाय कै मंत्र उपदेश कीता। कहु 'सत्यनाम' एह चार अखर सत्त हैं—ते होर[७] त्रिगुण पसार असत्त है। सत्त से प्रगटे हैं सत्त के आश्रे हैं। सत्त विषे लीन होता है। इतने ही मैं समझो। ता रामानंद जी गुरमुख होके बहुत बहुत प्रसन्न होया। आखिओसु जी। अब मैं कृतकृत्य होया। अनेक प्रकार की धूप दीप नैवेद अन्न फूल सो पूजा करी। ते पिछली सारी उमर की तपस्या गुरू जी के आगे भेटा रखी। बाबे प्रसादि वर इह दीआ, जो तुम को सदा सत्तनाम स्मर्ण रहे। कबहू न भूले। इह वर लै करि अपने आसन पर गया। जा इह कथा[८] कबीर जी ने सुणी जु श्रीरामा-

है यह तो शब्द है परंतु ध्वनि इसे नहीं कहि सक्ते। उस घडी को कान से लगाओ दस पंद्रह मिनिट प्रयत उसके शब्द में आले बंद करके सुरत को (उसमें) लगा दो, तो जहा पर टिन टिन की आवाज बंद होगी एक बहुत ही झींनी जैसी आवाज वहा पर प्रत्यक्ष सुनाई देवेगी, उसीका नाम ध्वनि है। उस ध्वनि में से ही शब्द प्रगट होता है, उसी में समाता है, उसी के आश्रे शब्द को स्थिरता है। गुरू का गुरआई भाव बाहरला अंग है, परंतु सतगुर भाव उसका निजरूप हुआ उसके अंतर में है। ऐसे ही शब्द का शब्द भाव स्थूल रूप है और अंतरीव अंग (ध्वनी रूप) उस का निज रूप है। शब्द का बीज सरूप निज रूप, सचखंड के धनी से आया और उसी का सरूप है। इस वास्ते ध्वनी को सतगुर सरूप कहा है। ताते पहिले के कथन से दूसरे का विरोध नहीं। शब्द गुरूहै और ध्वनि सतगुर स्वरूप है जो इसको यथार्थ २ (भीतर) परख लेवे अवश्य सच्चखंड का झलका देखे। (५) विषय भोगों पर जन्म की बाजी लगाना। (६) जब सूर्य पूर्व में उदय होता है तो क्षण प्रति क्षण इसका प्रकाश उन्नति के शिखर कोही (बढता) जाता है इसी वास्ते पूर्व का नाम 'चढता' ही लोगों में प्रसिद्ध हो गया है। और इसी हेतु से पूर्व दिशा में चढाव (उन्नति) के संस्कार दृढ रखे गए हैं सो जो कोई ऐसा कर्म जिसमें उन्नति या पूर्णता आदि की आवश्यकता हो तो पूर्वमुख होकर करने की ही शास्त्र आदि की मर्यादा है। (७) इससे इत्तर, (सिवाय) और सब कुछ। (८) (कबीर जी रघुनाथपुर को उस काल में गये हुये थे, बडों की बात शीघ्र ही लोगों में पसर जाती है) जबी ही गुरू साहब के तथा रामानंद जी के इस प्रकार के मिलाप की कथा कबीर जीने सुनी।

नद जी श्री बाबे जी का शिष्य होया ता कबीर जी फूलपान लैके बाबे का दर्शन करन आये। आय करतार करतार करि बैठ गए ॥ ता बाबे कहा ॥ आओ भगत कबीर कुशल है? ता कबीर कहा गुरू जी तेरे दर्शडिठे[1] सभ कुशल होई है। पर जी मैने सुनिआ है जो श्रीरामानदजी का सशय आप ने निवारन कीआ है। ताते मेरे भी सशय को छेदन करो। तुम तो जगत विषे गुरू सूर्य प्रकाश भए हो, सर्व जगत के कल्याण नमित्त तुमारा अवतार है ॥ ता बाबे कहा– तुसीं भी बचन करो।

॥ गोष्ट कबीरजी नाल होई महला १ ॥

कहै कबीरा चरन लाग करि, किरपा कीजै देवा।
अगम अगाध बिषम पद कहीए, सो कित[2] पाईए सेवा ॥
मुहि समझाय कहो गुर पूरे, भिन्न भिन्न अर्थ दिखावहु।
जिह बिधि परम अभय पद पाईए, सो बिधि मोहि बतावहु ॥
मन बच कर्म कृपा करि कहीए, क्योंकरि मिलै अपारो।
चेला कहै सुणो सतिगुर जी, दीजै शब्द बिचारो ॥१॥
नानक कहै सुणो कबीर जी, शिष्या एक हमारी।
मन तन[3] पवन जीउ करि एका, सुन्न लगावहु तारी ॥
कर्म अकर्म दोऊ पख त्यागहु, सुरत निरत बिधि मेलहु।
निशि बासर तुम खोजत खोजत, सहज कला[4] मैं खेलो ॥
तजि माया निर्मायल होवहु, मन के तजहु बिकारा।
सतिगुर कहै सुनहु रे चेला, इह बिधि मिलै अपारा ॥२॥
कबीर माया पर्बल निबल हऊँ, क्यों मन इस्थिर होय।
काम क्रोध व्याप्त सदा, सुरत निरत दई खोय ॥
मन राखऊँ तउ पवन सिधारे, पवन रहे मन जाई।
मन तन पवन जीउ होय एका, सो बिधि देहु बताई ॥३॥
नानक आसण दृढ करि पूता, उन्मन ध्यान लगावउ।
अल्प अहार खडत करि निंद्रा, काम क्रोध पर जारउ ॥

(१) देखने करके। (२) "सो पाईए कित भेवा"—पाठ भी है, किस प्रकार। (३) शरीर को माली भूत करके अर्थात आसन लगाकर श्वास के साथ मन तथा सुरत को एक करके सुन्न मंडल में नाम के सहारे ताडी लगावो, भाव सुरत निरत की बिधि मिला दो। इगला पिंगला की संधि को स्थिर कर दो। उस काल में कबीर जी रामानुजी व्यवस्था में रहते थे तभी ही कर्म अकर्म दोनों पक्ष का त्याग गुरू जी कहते हैं। (४) सहज रूप में स्थिरता रूप।

दहदिशि[१] रोक एक दर राखो, सुरत निरत रस पीजै ।
जोऊ अंतरि सोऊ बाहरि दीसै, इत बिधि मन वशि कीजै ॥४॥
कबीर कवन सूक्ष्म कवन अस्थूल। कवन डाल कवन है मूल ॥
क्या लै सोवै क्या लै जागै, क्या ले रहो उदासा ।
कवन अगनि की धूनी तापउ, कवन मॅडल मैं वासा ॥५॥
नानक ब्रह्म सूक्ष्म सुन्न अस्थूल । मन है पवन डाल है मूल ॥
कर्म[२] लै सोवहु सुरत लै जागो, ब्रह्म अगनि तुम तापहु ।
निश वासर[३] तुम खोजहु निज घरि, इह विध रहो उदासो ॥
सतिगुर कहे सुनहु रे चेला, एहु लच्छन परकासो ।
गुर प्रसादि सर्ब मैं पेखहु, सुन्न मडल करि वासो ॥६॥
कबीर ऊहाँ जाय न देइ सॅदेसा, क्या अचर्ज होइ जाई ।
मैं भै[४] चक्र भयो गुर पूरे, इह विधि देहु बताई ।
अपना अनुभउ कहो गुरूजी, परम जोति क्यों पाई ॥७॥
नानक शशीअर चलत देख तुम, लाखउ जहिं कीटी भीर न होता ।
सतिगुर कहै सुनहुरे चेला, मिलै परम तत जोता ॥८॥
कबीर धन्य धन्य गुरनानक, जोगी सतिगुर परम उदारा ।
निर्मल पद दिखरायो मोकउ, रमता राम अपारा ॥९॥
जब हम भगत भए सुखदेवा । तब जनक विदेह कीआ गुरदेवा ॥
कलि मैं कोरी[५] नाम कबीरा । ढूंढ थके मन भयो न थीरा ॥

(१) दसों दरवाजे ही रोक कर एक में रखो-नौ दरवाजे बद करने योग्य हैं परतु दसवा गुप्त रीति से जो खुला रहता है उसी में से प्रकाश आता रहता है वह बद हो जावे तो नीचे प्रकाश नहीं आ सकेगा। नीचे प्रकाश आना ससारी जीवन तथा बधन का कारण है। ससारी ओर से जीते मरना मोक्ष का हेतु है इस विचार पर दसम द्वार का भी निरोध कहा है। नौ दरवाजे निरोध हो सक्ते हैं दसम का निरोध नहीं हो सकता किंतु इसका प्रवाह ही उलटा फेरना निरोध करना है। दसम दुआर गुरूजी ने तीन कहे ह प्रतु यहा उस दसम द्वार से भाव हे, जिस घाट पर कि मन वैठकर अपना कार्य करता है। नौं दरवाजे निरोध करने की आज्ञा साधारण अधिकारी प्रति आचार्यों की होती हे परतु पूर्ण योग भ्रष्ट परमोत्तम अधिकारी के वास्ते लोगों की अतिम सोपान ही प्रथम सीढ़ी होती है। यही कारण है कि योगियों का अतला दशम द्वार कबीर जी का प्रथम पद समझा गया है। (२) कर्म काड आदि की प्रवृत्ति को लै अर्थात् लीन करके। (३) "निश वासर तुम खोजत खोजत इह विधि मनूआ राखहु"—पाठ भी है। (४) मैं चकित हो गया हू। (५) जुलाहा।

बहुत भाँति तप सिमरन कीनो। तऊ न एहु मनु चंचल भीनो[1] ॥
हार परे सतिगुर के दुआरे। गुर नाम दान दे लीए उबारे ॥ १० ॥
समझ परी तब भयो उदासी[2]। तब काटी जम काल की फासी ॥
जात कमीन जुलहा अपराधी। गुरु किरपा ते भगति समाधी ॥
सत्तिपुरुष सतिगुरु ते पाया। तब सत्तनाम लै रिदै बसाया ॥
मुक्त भये सतिगुर के शब्दी, बिनसी[3] सभही पीरा ॥
जुग जुग सतिगुरु नानक जपिआ, कीट मुरीद कबीरा ॥ ११ ॥
लै उपदेश गुरू का पूर्ण, मन महि भया अनंद।
मुक्तिकर्ता[4] नानक गुरू, रचक रामानंद।
न पिंजर न सूहटा, न बाणी न बंद ॥
कल कीरति नानक रही, पायो अलप अछेद।
चंद सूर्ज नही बासना, नहि बिद्या नहि वेद।
दास कबीर, गुर भए गुरू नानक दीनो भेद ॥
कहाँ नाथ कहाँ सिद्ध है, कोऊ न या जग थीर।
नानक गुर सर्वत्र थिर, इहु गहि रहे कबीर ॥ १२ ॥

॥ प्रश्नोतर माला संपूर्ण ॥ २ ॥

जद ऐसे उपदेश श्री बाबेजी, कबीर जोग कीता, ते 'सत्तनाम' नाम का मंत्र दित्ता[5]। ता बाबे आखिआ इहु चार अक्षर तेरे हृदय के तम हरनहारे हैं। कलिजुग के क्लेश मिटावने को बिश्नवत समर्थ हैं। हृदय के विषे धारणे करि मन के संकल्प विकल्प को छेदणेहारा है। सर्व शास्त्रो का अरु सर्व मंत्रो का अरु सर्व देवतिओ का इह बीज है, जैसे वृक्ष का बीज है तैसे सर्व का बीज सत्त[6]

(१) द्रवीभूत, प्रेमार्द्र, रसमगन। (२) गुरमताऽविलंबी, शरीर आदि के अहं मम अध्यास शून्य। (३) "काटी सगल पीरा" भी पाठ है। (४) मुक्तिकर्ता, मुक्तिदाता। (५) दिया। (६) संसार में जिस ओर ध्यान पसार के देखा जावे, या तो जड वस्तु द्रिष्ट आती है या जंगम, जड जंगम भाव को छोडकर यदि कोई वस्तु 'संसार' खोजें तो कुछ भी हाथ नहीं आवेगा, इस वास्ते संसार का सरूप ही जड जंगम है। इस जड जंगम का बीज "सत्त" है। यदि हम किसी वृक्ष के बीज को देखना चाहें तो ना मूल में मिलेगा, ना छाल में और न फूल पात में मिलेगा, ना डाली डाल में। परंतु यदि हम फली या फल को हाथ में लेवें तो तत्काल बीज को देख पावेंगे। जप तप तीर्थ व्रत दान पूजा आदि साधनों में प्रवृत्त होकर यदि 'सत' का खोज कोई लगाना चाहे तो ना लगा सकेगा। योग से भी सत्त का पता ना चलेगा सत्त सरूपी बीज केवल तब ही जाना जावेगा जब कि विवेक ज्ञान की शरन में आवेगा। संसार के पदार्थ अनंत हैं एक २ का विवेक कर सकना असम्भव है, चौरासी

है । जां बावेजी दहिभा तौ कबीर जी वहुत प्रसन्न होया । ते आखिओसु जी अज मेरी भगति सपूर्ण होई । ते सर्व पुन्नो का फल मैने पाया है । क्यो जु प्रतक्ष

लाख योनि गत सपूर्ण पदार्थों का शिरोमणि भूल ससार वृक्ष का फल सरूप मनुष्य शरीर भी एक पदार्थ हे । जो कुछ ससार में हे सव ही कुछ इस में हे जैसे ससार में जड चेतन दो भात के पदार्थ हैं ऐसे ही जड तथा चेतन दो वस्तुओं का समुदाय रूप यह मनुष्य शरीर हे । इसी से ससार का आरभ और इसी पर ही समार की समाप्ती है । वीज में वृक्ष है (मूल-तणा-डाली पात फूल फल आदि सब कुछ वीज में है) और वीज फल में है । इस लिये फल की खोज की जावे तो वीज हाथ लगता है, जो फल को नहीं खोजता वीज को नहीं पाता, ताते मनुष्य शरीर को खोजिये कि सत्त हाथ आवे । शरीर तीन हैं एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म तीसरा कारण । स्थूल शरीर पाच भूतों के पच्चीस तत्त्वों से वना हुआ हे । १-काम क्रोध शोक मोह भय आकाश के पांच तत्त्व हैं । २-चलना, वलना, धावना, पसारना संकोचना-यह वायु के पाच तत्त्व हैं । ३-क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, क्रांति-यह तेज के पाच तत्त्व ह । ४-शुक्र (वीर्य), रक्त, लाला—मूत्र, पसीना यह जल के पाच तत्त्व हैं । ५ हाड मास, नाडी, त्वचा और रोम-यह पृथ्वी के पाच तत्त्व हैं । यह सब स्थूल शरीर का मसा लह है । दूसरा सूक्ष्म शरीर यह सत्रह तत्त्वों का समुदाय रूप हे । पाच ज्ञान इद्रिया, पाच कर्म इद्रिया, पाच प्राण, दो मन वुद्धि-(चित हकार मिला कर कोई १९ तत्त्व का भी कहते हैं वात एक हा हे ।) पाच भूतों की उत्पति तीन गुणा से हे । और कार्य में सदैव कारण रहता हे इस लिये जितनी पांच भैातिकी रचना है उस सभ में तोनों गुण व्यापक हैं । एक एक भूत के सतो गुण अश से -कान, त्वचा (चर्म), नेत्र, रसना, नासिका रूप ज्ञान इद्रिया क्रम पूर्वक उत्पन्न हुई हे । हर एक भूत के रजो गुण अश से एक एक कर्म इद्री उपजा हे -वाक इद्रिय, हाथ, पाव, लिग, गुदा । पाचों भूतों के मिले हुये सतो गुण अश से मन वुद्धि (चित अहकार) रूप अत करण प्रगटा है । पाचो भूतों के राजसी अश से पाच प्राण -प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान और पाचों भूतों के तामसी अश से भोगने योग्य पदार्थ (स्थूल) उत्पन्न हुये हैं ॥ अव तीसरा जो कारण शरीर हे वोह केवल तीनों गुणों के साम्य भाव रूप अज्ञान मात्र हे । तीनों शरीरों की प्रक्रिया तो प्रगट कर दी । परतु हम को प्रक्रिया मात्र से क्या सिद्धि जव तक कि खोज का भेद हाथ ना आवे । अब इन तीनों शरीरों की सपूर्ण सामग्री को इकत्र कर लीजिये जिस एक शरीर से तीन में गये अव फिर तीन का एक ही समझ लीजिये । प्रक्रिया ज्ञान केवल शारीरिक मसालह के वोधन अर्थ था । जब तक मूल भाग की ओर से वृक्ष पर आरूढ ना हुआ जावे फल कैसे प्राप्त हो सके । जितनी सामग्री निरूपण हुई या तो कोई द्रव्य रूप है, या क्रिया, गुण (ज्ञान) रूप । किसी द्रव्य को सिद्धि कदाचित् नहीं हो सक्ती जव तक कि उसकी अस्तित्व अर्थात (हस्ती) द्वारा स्फुर्ति ना होवे । ज्योंही कोई वस्तु सनमुख आवे और "यह अमुक वस्तु है" ऐसा वोध ना होवे, उसका ज्ञान हृदय में नहीं उपजेगा मन में उसका सकल्प नही उठेगा, इद्रियों में क्रिया शक्ति नहीं जागेगी । जिससे अवश्य मानना पडेगा कि क्रिया, ज्ञान (गत) इच्छा जो समग्र ससार की प्रवृत्ति निवृत्ति का मूल हे उन सव की मूल सत्ता (हस्ती) ही है ॥ कोई पुरुष खडा होवे परतु कोई है ! क्या है ? कौन है ? अमुक (फुलाना) है ऐसे सकल्प द्वारा यदि उस पुरुष में अस्तित्व (सत्ता) किसी को भान नहीं हुई तो चाह पुरुष तन के ठुड से भी क्या वढ कर हो सक्ता है, भाव उमसे कोई भी काय सिद्ध नहीं हो सक्ता परतु ज्योंही वोह अपने आप हां "हू" इतने मात्र शब्द से अपनी

गुर परमेशर का दर्शन होया है । धन्य भाग हैं मेरे इहु बचन कहिकर कबीर जी गुरु जी के चरनो पर मत्था टेकिआ । जा नेत्र खोले ता बाबा गुप्त होया । बालवा कुछ देश विच जाय निकला ॥

इति श्री प्राण सगली श्रीगुरुग्रथे मार्ग वृतात प्रकाश प्रश्नोत्तर माला
बरनन नाम तेरमों ध्याउ सम्पूर्ण ॥ १३ ॥

हस्ती का होना सूचन करावे तत्काल प्रश्नोतर का व्यवहार चल पडेगा कहीं शत्रुता कहीं मित्रता आदि सब उस में भास आवेगी । इसी प्रकार शुभाशुभ क्रिया ज्ञान और एक २ पदार्थ की पदार्थता भाव का जब तक ज्ञान ना होवे तब तक किसी वस्तु की स्थिरता नहीं हो सक्ती । जिस काल में जिस की सत्ता भान हुई उसी काल में उस वस्तु की उत्पति तथा स्थिरता होती है । घट हे, मट हे, पट है जल है, थल है पुरष है, देव है, दैत्य है वेद हे, कतेब है-पुरान है, कुरान है ऐसे यावत पदार्थ मात्र का नाम लो, सभ की आधार भूत सत्ता (है) के बगैर कोई पदार्थ द्रिष्ट नहीं आता । सत्त का आकार कोई नहीं और सर्व आकार उसी के हैं सर्व वस्तु विकार को प्राप्त होती हे परतु सत्ता ज्यों की त्यों निर्विकार रहती हे । सत्ता का नाम कोई नहीं परतु सभ की नाम सरूप, स्वय नामी (रूप) यही हे । नाम बिना रूप की सिद्धि नहीं इसी वास्ते रूप २ प्रति नाम कल्पित करिके कार्य सिद्धि की जाती है, परतु सर्व नाम मिथ्या हैं। सच्चा नाम यही सत्ता है, इसी में ही सर्व नाम कल्पना किये जाते हैं इसी करके ही इसको 'सत्त नाम' कहा गया है, यह ही सर्व का बीज हे । जो वस्तु प्रसिद्ध हो उसको नाम कहा जाता है सो सत्त ही प्रसिद्ध है, सत्त का निशान ही सर्व के साथ है । इस कारण भी इसको 'सत्त नाम' कहा जाता है । सत्त नाम के उच्चार्ण मात्र से सर्व वेद शास्त्र पुराण का स्वते ही उच्चारण हो जाता है । और भगवत के सर्व नामों का उच्चार्ण भी हो जाता है । सत्त को सर्व का आधार (ज्यों का त्यों) जान लेने से सर्व ठौर सत्य वस्तु का ही दर्शन होता है । इस प्रकार सत्तनाम का स्वरूप जान लेने से अहता ममता का विष्य सर्व द्वैत प्रपच विस्मर्ण हो जाता हे। और अतर सुरति साक्षात्कार को प्राप्त होती है । जब इस प्रकार की अतर्मुखी दशा प्राप्त होजावे तो उसमें सत्तनाम रूप शब्द का ध्यान करे । यह सत्त नाम का स्मर्ण कहाता है । इसी को ही सुरत का अभ्यास भी कहा जाता है। परतु जब इस दशा में स्वय सत्तनाम का अनुसधान किया जावे तब तो इस का नाम नाम स्मर्ण कहलाता है और जब अपने आप निर्यत्न ही सत्तनाम की ध्वनि (उक्त अवस्था में) स्फुट भान होने लग जावे और सुरत का खिचाव उसमें होवे तो उसका नाम भजन कहाता है। यिह सत्तनाम के स्मर्ण भजन की विधि तथा परस्पर का भेद है । स्मर्ण से भजन की परम विशेषता है । और भजन ही सर्व का बीज सत्त हे । अत्यत दुष्प्राप्य होने से "कहु नानक कोटन मे कोऊ भजन राम को पावे"। क्रोडों अधिकारियों में से इसकी प्राप्ती किसी विरले को ही होनी गुरूसाहब ने सूचन कराई हे ।

॥ १ ॐ श्री गुर नानक निरंकार प्रसादि ॥

॥ अध्याय १४ ॥

श्री बाबे जद तेरहूा ध्याउ सुनाया ता राजा शिवनाभ हाथ जोर कर बोलिआ जो हे श्रीगुर परमेश्वर जी इस ससार विच जीऊ क्योकरि उपजदा है क्योकरि गर्भ विच रहिदा है। ते ससार की आदि उत्पत्ति क्योकरि है। होर कितनीआ सदबीरा उत्पत्ति दीआ सुणीआ हैं, पर जी ! तू आप करणकारण हैं। तेरा ही कीता होया सभ कुछ है। तैथो[1] कुछ छपिआ नही। होर शास्त्र वाले अनुमान करिकै ते सुण करि आखदे हैनि, ते जी ! तू आप कर्ता पुरुष हैं। भावैं तू बहुतेरा[2] ही आपनू छपावना ही हैं। पर जी तेरी कृपा नाल असा तैनू पाया है ते समझिआ है जो तेरा कीता, सभो आकार है, तू आदि पुरुष गुप्त प्रगट (सभो) तू हैं हैं।

जा इतनी बेनती राजे कीती ता श्री कर्तापुरुष जी, प्रसन्न होय करि वचन कीता ध्याउ चैध्वा सुन्न-ते-उत्पत्ति-कीती—बिसमाद बाणी प्रगट कीती ओसु, सुखवेद बोलना श्री बाबेजी का।

उन्मुन सुन्न प्रान पिन्ड का वन्धेज गुरूजी वाणी

॥ राग राम कली महला १ ॥

॥ श्लोक ॥

आत्म परबोधु ततु अगम बीचारु ॥
परमार्थ प्राण सगली ज्ञान विवेक अपारु ॥
अगमु खाणी अगमु गुर ज्ञानु। आदि अत जपि एको ध्यानु ॥१॥
उन्मनि आदि सुन्न आपार। गगन उत्पत्ति ते पवन निरार ॥
पवनु उत्पति ते जल बिन्न अकार। सर्वनिरतरि अलख अपार ॥
सुरति शब्दि धुनि ओअकार। आदि अनूप प्राण आधार ॥२॥
ऐसा अलपु अपार निराला। सो अमरु अडोल सर्बसिरि काला[3] ॥

॥ १ रहाउ ॥

सुन्न शब्द ते उठै झनकार। सुन्न शब्दि ते ओअकार ॥
सुन्न शब्दि ते पवनु विचार। सुन्न शब्दि ते अगनी[4] चार ॥
ओअकार लै ब्रह्मा भया। देवी देव उपंन्ने मया ॥ ३ ॥

(१) तेरे से। (२) बहुतही। (३) सर्व की सरकार। (४) चन्द्र अगनी मानसरोवर घाट में एक अगनी, दूसरी त्रिकुटी प्रकाश, तीसरी अगनी सहस कमल की जोती, चोथी अगनी भैंदल (तीसरे तिल) का प्रकाश; यिह ४-अगनी हैं।

जीअ जोति घटि घटहि समाना । कूचु मुकामु हुकमु नीसाना॥
सो आदि जुगादी अवगतु भया। सो अकुलु अलेपु सदा थिरु रह्या ॥

सोगु विजोगु न तिसु कदे, सो नायक नाथु अमारु ।
अदृष्ट अलिप्तु अलेप सो, ताका कथनु न पारावारु ।
घटि घटि वैसि न दीसई, जहँ देखा तहँ सोइ ।
जिनि करि वीचार जगु थापिआ, श्रोह मरेन वूढा होइ ॥४॥
अपर पुरुष अपार सो, ब्रह्म विधाता राय ।
अदृष्ट अलिप्त अलेख सो, अलखु न लखणा जाय ॥
उहु नारि न पुरुषु न जाति तिसु, तिसि सिरि नाही कालु ।
सुप्ने बाजी जगु कीआ, सिरि सिरि माया जालु ॥
गति मिति वेदु न पावही, भेद कतेबाँ नाहि ।
पढ़ि पुस्तक अन्तु न पाईश्रै, सिद्ध साधिक तिण[1] गाहि ॥५॥
वेद[2] कतेबाँ पाप हो, त्रैगुण कथि विस्थारु ।
अन्तु न पावैं बपुड़े उहु, ऊचा अगमु अपारु ॥
चहुँ जुगाँ सालाहिआ, कीमति किनै न पाइ ।
जो सतिगुर अलखु लखाइआ, घटि घटि रहिआ समाय ॥६॥
शिव सनकादि ब्रह्मादिका, इन्द्रादिक मुनि देव ।
सनकादिक जनकादिका, हरि चरण साधु गुरसेव ॥
सुर नर मुनिवर शुक व्यास, ब्रह्मे बिश्न महेश ।
अन्तु न पावहिँ बपुडे अपरंपर पुरुष अलेख ॥ ७ ॥
किलविप हता गुन निधान, सुर नर देव अपारु ।
प्राण पुरुष पुरुषोत्तमा, उतभुज[3] चलित[4] निरारु ॥

(१) फोकले तृण, जिनमें कण है ही नहीं प्रतु गाह रहे हं, भाव व्यर्थ जप तप आदि काष्ट साधनों में प्रवृत हैं चित्तकी शांति रूप फल हाथ नहीं आता किन्तु छोड नहीं सकते, 'गुण गाहि'--पाठ भी है। (२) वेद तीन गुनों में ही प्रवृत करते हं और फिर यिह माया मई हैं। जो जिस भाँति की प्रवृति वाला होगा अंत में वैसीही गति को प्राप्त होगा–सो यथार्थ मारग को गुप्त रख कर माया की संगति कराने वाले की सगति सभ कोई ही निषेध करता हे। (३) जड। (४) जगम। इन दोनों से नियारा है।

ब्रह्मा विश्नु महेश मुनि, 'कवलाकंतु'[1] मुरारि।
किंतु लिखिआ रचनु रचाया, त्रैगुन करि बिस्थारु[2]।
सो आदि निरंजन त्रिभुवन धनी, घटि घटि रहतु निरारु॥
ज्ञानी ध्यानी कथि रहे, अंतु न पारावारु॥
आपे आपु उपाय करि, ब्रह्मु कवलु प्रगासु[3]।
नानक सहजे रवि रहिआ, ऊर्ध कवल[4] बिगासु॥ ८॥
दुइ[5] पुड जोडि बिछोडिआ, धरति कीआ आकासु।
आपे करण समर्थु है, आप उपनै तासु॥
खड दीप कई लोअकरि, गगन मँडल पाताल।
सर्व निरंतरि एक तूँ, अबिनाशी अबिचाल॥
करे करावै कर्मु करि, करि करि वेखै सोय।
नानक एको रवि रहिआ, अवरु न दूजा कोय॥ ९॥
जल बिंबु अपारु सु घोरु तहँ, कीओ चरित अपार।
शिव शक्ती धरि अवतरे, रक्त बिन्दु आकारु॥
चन्द[6] सूर्ज दुइ साखीआ करि, निर्मल जोति उज्यारु।
करि करि वेखै सो पातिशाहु, सुर्ग मिर्तु पातालु॥
किंतु न जाई मेटिआ, जो लिखिआ सो नाल।
आपे कहि बूझै सुनै, आपे करै बीचारु।
नानक दूजा को नही, सिरि सिरि सिरजनहारु॥१०॥

प्रान मुक्ति प्राप्त गुर ज्ञान। ज्ञानु ध्यानु गुर शब्द पछानु॥
अकलु अबिनाशी करनेहारु। अकथ कथा अगम बीचारु॥
घटि घटि आदि अदिष्टु समाया। नानक आपे करि वेपै चिरतु[7] उपाया॥११॥
जहाँ देखा तहाँ तेरा खेलु। पउण पाणी अगनी का मेलु॥
इसु देही महि अलपु समाणा। बूझहु गुर ज्ञानी इहु पद निर्वाणा॥

(१) महा विश्नु से भाव है (मान सरोवर के अधिष्ठाता)। (२) विस्तार। (३) ब्रह्म लोक अथवा त्रिकुटी को आपही रचकर आपही उस में उसने अपना प्रकाश किया है। (४) उससे नीचे सुरगापुरी सहस दल कमल सहज का घाट रचकर उसमें भी आपही रम रहा है। (५) उसके नीचे पिन्ड ब्रह्मड धरती की संधि रूप आकाश को जोड कर फिर न्यारा न्यारा कर दिया, उस (जीव की बैठक) को (जहां पर) उसने रचा है। (६) चन्द सूर्य (नेत्र) उस निरमल जोत के उजारे की साखी देते हैं। (७) चरित्र।

त्रैविधि ऊपरि सो ब्रह्म ज्ञानी। नानक बूझीअले इह अकथ कहानी ॥११॥
सो आदि पुरुष अविगतु सुजानु। जिनि जगु थापिआ चलितु विडानु[१]॥
पच तत्तु लै इहु घटि थाप। जो किछु कीनों सु आपे आपि ॥
अपु तेजु वाय प्रिथमी आकासा। पंचि मिलै जड़ि[२] जोति प्रगासा ॥
सोहं आदि निरंजन सोई। नानक अवरु न दूजा कोई ॥१२॥

दुइ मिलि जगतु उपाया, मातु पिता हेतु मिलाइ।
जो उपजे सो बिनससी, क्तिुं न मेटिआ जाइ॥
गरभवास महि आयो, चंचल करि संजोगु।
शिव शक्ती घरि आयो, पंचि अगनि तनि रोगु ॥
जीउ जोति पवना मिलै, मात पिता रस भोग।
नानक शरनि अपार की, काटहि सोग विजोगु ॥१३॥

सागर महि बूँद कीओ विस्थारु। ताँका कोय न पावै पारु ॥
वरन जाति कुलु किआ तिसु कहीअै। सो अबिनाशी गुरकी मति लहीअै ॥
सासु सासु तनु धनु सभ ताकउ। सो अलप पुरुष अपरपर साकउ ॥१४॥

साठ दिनसु महि पिंड भया, रक्त बिन्दु जीउ पाय।
जीआँ का जीउ पवनु है, बिन पौने कौन जीवाय ॥
पवनु माया आकारु है, जब पवना तब देह।
जब देह छोडि पवना चलै, तब भसमु भया तनु खेह ॥
सर्वां ऊपरि हुकम है, सर्व निरतरि सोय।
नानक मन तन प्रभि बसै, अति सहाई होय ॥१५॥

करै करावै करनैहारु। करि करि वेखै सिरजनहारु ॥
आनंद रूप अनूप अपारा। कीते का नाही कुछ चारा ॥
चेतनांमुखी सदा दरि सुखी। अचेत पिंड नानक दरि दुखी ॥
तीन चार मास उद्रमहि भये। दुय मास महि प्राण करये ॥
जिधर सर्व शरीर अकारु। ताहिं खान पान नहिं पवनु अहारु ॥१६॥

(१) आश्चर्य। (२) जड चेतन।

सुख दुख की सार न जाणई हर्ष सोग तिस नाहि ।
पाप पुन्न नही मनि वसै सुचि संजम नहीं तॉहि ॥
जो किछु कीओ कमाइओ तैसे बधन पाय ।
कर्म बंधन की जेवरी[1] नरि साक्त दूख सहॉय ॥१७॥
पट पंच मास बिधि नै कीओ मुख मस्तक पग हाथ ।
नाक कान जीभ करी तिसनो हिरदे राख ॥
भवनु गगनु सभ तनु कीओ सप्त समुद सधीरु ।
परम जोति आनंद रूप मन तन देह शरीर ॥
परम हंस बिचि नायको सो होआ आदि अनीर ।
मथि समुंद्र रचना करी निरकार आकार ।
पवितनु करि साजिओ बक[2] देह दश द्वार ॥
त्रई लोक नाथु सचा धनी निर्मल जोति अपार ॥१८॥
नैन उद्र सभ तनु कीअउ सो समर्थ करनै जोगु ।
अस्त[3] चर्म मुख रोम तिसु घरि महि कीओ सजोग ॥
कायां नगरु गढु साजि करि बिचि बालक भोगै भोगु ।
आत्म जोति सजोग करि शिव शक्ती घरि वासु ।
नाभि कमल सत्सरि कीआ मनु इन्द्री आकास ॥
जोग बिजोग सजोग धरि सुख दुख का अस्थानु ।
भला बुरा अरु पुन्न पाप हुक्म लिखिआ नीसानु ॥१९॥
रसु अंतरि जिसु तुच्छ पल प्रभ अधु न सूझै भोगि ।
वाट वटाऊ[4] आयो हॅउमै दुबिधा सोगु ॥
रंगु चिहनु आनद रॅगि इह अचरजु कीना घाट ।
अजब समाशा प्रभु कीआ, जगु खेलै नटूआ नाटु ॥
ज्यौं तसकरु पर घरि बसै पर धनु चाहै चीति ।
भोरु भया बधनु परै त्यॉ साक्त गरभि वसीति ॥
नानक गुरमति छुटीऐ प्रेम भगति मन चीत ॥२०॥

(१) जेवडी । (२) बॉकी, सुन्द्र । (३) हाड । (४) मुसाफर ।

सप्त अष्टमैं माह भै[1] सम्पूर्ण देह शरीरु ।
ऊर्धि ध्यान अतरि करै कष्ट दुखी तनु पीरु ॥
नव दश मास उदर महि भये माय वाल दुहुँ दूख ।
वाहरि निकसि न पावई गर्भि नरकि कहँ सूख ॥
मात दिनसु पक्ष को गणै जितने अनदिनु सूरु[2] ।
जठर[3] कुंड कलमल[4] करै ज्यौं जल ते मीना दूर ॥२१॥
तव ज्ञानु ध्यानु किछु नाँहि मनि गीत कवित्त न स्वाद ।
तिष्णा तामसु लोभ मोह काम क्रोध विषु[5] वादु[6]
अकलु पुरुप नही मनि वसै साध संत नही सेव ।
आत्म रामु न चीनिओ नॉ हरि भगति गुरदेव ॥
निर्दया मुखि झूठ मनि आया उदर मझारि ।
नानक सचे नामु विणु नॉ उरवारु न पारु ॥ २२ ॥
माया मगनु महाँ अप्राधी सशै रोग सतापै ।
साध सगति गुर दर्शु न सेवा मनु झूठै धंधि व्यापै ॥
लालच लागे नामु बिसारिओ लोभ पाप मनु लाया ।
नानक मेलि लेहु करि किरपा गुर मति भरमु चुकाया ॥२३॥
सुधर्मु कर्मु नही करि सकिओ मनु भूल्यो सु धनी बिसारि ।
भरमि भूलो मन वावलो[7] चौपड वाजी हारि ॥
बिखला नदी डरावणी क्यौं पाईयै भवजलु पारि ।
कालु जालु जमु कर्मु फुनि पायो उदर मझारि ॥
हरि मुख ते वेमुख सही न जाती हरि भगति ज्ञानु ।
नामु निरजन बीसरे मनि गरभि वसिओ अभिमानु ॥२४॥
शुचु सजम नामु न मन वसै मैला देह शरीरु ।
मनमुख अंधा मैला मडा[8] न गुरु शबदु न पीरु ।

(१) हुए। (२) सूर नाम सूर्य का है परन्तु शकाती (मिती) का कारन होने से और सप्त वारों (सप्ताहक दिनो) की आदि होने से 'सूर से वार आदि का भाव है। (३) गरभ कुड । (४) व्याकुलता वशि हाथ पॉव मारना, कुरविलाट करना । (५) विषय वासना। (६) झगडा । (७) कमला । (८) जीताही मुरदा ।

किस शरणागति छुटीअै क्यों वचै जमु तीरु ।
हरि गुरु शरणागति छुटीअै साध संगति वसि चीति॥
जमु कंकर नेडि न आवई टूटै न सची प्रीति ।
हरि भगति हेति मनु वेधीअै जब पाईअै हरि वरु मीति ॥
नर साक्त दुख न चूकई कालु सदा सिरि देखु ।
नानक प्रभ शरणागती जिसु नाँही मस्तकि लेख ॥ २५ ॥
मात पिता करि देह उपाया । अनेक कर्मि करि इहु तनु पाया।
गरभ वासु महि कवनु सहाई । अलप अपारु घटि घटि जुग भाई।
तहँ दूसर अनत न देवन हारु । अपरंपरु ठाकुर अपर अपारु ।
किस पहि माँगउँ दे आधारु । मन महि काम क्रोधु चंडारु ॥
साध संगति बिनु जन्मु विकारु ॥ २६ ॥
अगनि कुंड मलमूत्र महि सो दाता पूर्न देह।
सभ जीअ तिसके सो त्रईलोकनाथ-प्रभ दीन की रक्ष करेह ।
तिस मते मसूर्त को नही आपुन लेवै देह ॥
तिसु अंबड़ि कोय न सकई उहु ऊचा अपरु अपारु ।
उहु आदि निरंजनु आदि गुरु आदि अति सचु सारु ।
सतिगुर मिलिआ नदरि करि नानक मुक्त द्वारु ॥ २७ ॥
तहाँ सपा सैनु नही मीतु को नाँ सुत बंधपु नारि ।
विकर्म अधर्म कमाया मन आयो उद्र मझारि ॥
लाख चैाराशी जोनि भ्रम पायो देहु शरीरु ।
तिसु महि अलप अपार सो चीनहि गुनी गँभीरु ॥
मिलु सतिसगति साध की दुख हउमै दूरि करेइ ।
जन्म मरन भउ मेटिआ जनवासा[१] सहजि घरेइ॥ २८ ॥
तहँ भाई कुटंब पूतु नही धीआ। तहँ नेवु ष्वासु[२] न बीबी मीँआ ।
तहँ माई बाप कहो को थीआ ॥
तहँ अन धन लक्ष्मी नही माया परवारु।नाहीँ तहँ षडग बान अउध[३] हथीआरु

(१) डेरा, स्थिती, उतारा । (२) नायब, ष्वास, खासेदरबारी । (३) आयुध, हत्यार, शस्त्र ।

नही शब्दु सुरति धुनि ओअंकारु[1] वीचारु ।
नही मनु मनसा असथिरु गुरशब्दु पिआरु ॥
मनु मुगधि इंद्री नहीं गुर ज्ञानु परगासु ।
दैआ भउ पति सति नही गुर चरन निवासु ॥
हउमैं के वधनि परे (माता) गरभि निवासु॥ २९ ॥
तहँ नेब ष्वासु चेरी नही चेरा । तहँ रस भोगणि नही, नरकि वसेरा
तहिँ हुकमु सलामु नही किछु तेरा । तहँ गज हैवर नही मालु घनेरा ॥
तहिँ पहिरनु ओढनु कछूओ नाही । तहँ धनवत कहाँ ते खाही ॥
से काल गिरासे जमपुरि जाँही । नानक भगति रते गुन गाही ॥३०॥
तहाँ चोआ चदन मरदनु नहीं अकि । तहाँ षोडसीगार न कामणी बकि॥
सिरि जमुकाल ज्यों चद कलंकि ॥
तिष्णा तामसु सहै सजाई । भूख प्यासै नींदि न पाई ॥
वक नाड़ि रसु कछूओ जाई । नानक सो दाना करे रजाई ॥३१॥
इड़ा पिंगुला सुषमणा इस देही महि परधान ।
तिसु ध्यानि अहि निशि जपै अजरु जरै गुर ज्ञान ॥
अखीं अंधु ना सुनही गधु । कंनीं सुरति न बाँधे बहु बंध ॥
जिह्वा नामु रसनु नही चाखिआ । बिपु अनरस मीठै अम्रित भाखिआ ॥३२॥
इद्री सबलु मनु ताँकै भाइ । इद्री का पीडिआ मनु दह दिशि धाइ ॥
फेडे फेडु न बूझै अधु । साक्त मूढ़ा भरमु दुखु बंधु ॥
भूलै समझै सतिगुर मति पावै । नानक पुनर्पि जन्मि न आवै ॥३३॥
मनु पवनै की सुधि न, बुधि नाँही मतिहीनु ।
मन्मुख मति फीकी बावरी आत्म रामु न चीनु ॥
गर्भिवासु तनि पीडीअै ज्यौं तिल कोल्हू लठि सहीनु[2] ।
बिनु अगनी के तनु तपै ज्यों जल बिनु है मीनु ।
कर्म कला की जेवरी पशू बाँधिओ काल अधीनु ॥ ३४ ॥

---

(१) शब्द सुरति तथा ॐकार की धुनी भी यहा कहीं वीचार मात्र भी नहीं । (२) कोल्हू में पड़े तिल जैसे लठ की नपीडों को सहारते हैं ।

तहाँ अबिनाशी पूर्न देइ । क्षनु क्षनु पहुँचावै सभ सेइ ।
तिसु कुभर कुंट[1] महि करै प्रतिपाला। दीना प्रभु वधपु दीनदयाला ॥
ब्रह्म विधाते लिखिआ सिरि लेखु। तिसु कोय न मेटे सिरि सिरि देखु॥
तिसका कीआ त्रिभवण परवानु। नानक सो आपै जानै जानु ॥३५॥
बंधन बाँधिओ उद्र मझारि। सागर ते साइरु[2] उपजिओ पिआरि॥
जन्म मरन की सोझी नाहि । सतिगुर ते भूला आवै जाहि ॥
जन्महिं मरहिं जोनि बहु पाहि ॥
काल क्राल[3] की नाही सारा[4] । ऊंधै[5] कवल सीस जमु मारा ॥
तिष्णा तामसु लोभ विकारा। नानक जन्म मरहि साक्त अनेक वारा३६
विनु गुर शब्दि न मन पत्याइ । जन्मि मरै फिरि आवै जाइ ॥
लख चैाराशी भरमै कई वारा । विनु हरि भगति न मुक्ति द्वारा॥
भूख प्यासै शांति न आवै । नानक नदरी[6] नदरि समावै ॥३७॥
गर्बु गुमानु महा बलवतु । दुर्मति विसरे सहजि सुमतु[7] ॥
जीवन धनु सतति की आसा कीनी। आतम तत्तु वीचारु न चीनी॥
निर्गुण सरगुण की सार न जानी। नानक अंधुलै धंधु परानी ॥३८॥
उत्तम जन भगति न जानसि मूढा । भवजलि डूबे साक्त कूडा ॥
वहु जूनि भवै इहु पुर्बि कमाया। अपना कीआ आपे ही पाया॥
हरि रस माते मुक्ति द्वार । नानक गुरमति तत्तु वीचारु ॥३९॥
जिव मीना जल बाहरा ज्यों चात्रिक जलै अधीनु ।
तिवैं उद्र महि दुख सहै अंधलउ कालि ग्रसीनु[8] ॥

(१) हुँवस वाली कोठी, कुभी नरक समान। (२) कवीश्वर, (अपनी राय) गुरू साहब (प्रगट कर रहे हैं) कि ससार सागर के साथ इस जीव को प्रीति उत्पन्न हो गई है। (३) भयानक, दुखदाई, क्रूर। (४) सुध, खबर, सूझ। (५) वर्तमान दशा जो जीवो की है, यह उलटी है जब इस दशा में जीव की वैठक होती है तो जीव की दृष्टी नीचे पिंडी रचना की ओर होती है। इसी को ऊधा कमल कह कर इस की निंदा गुरू जी करते हैं—और इससे उलटी दशा में जोव की निगाह यदि पलटी जावे तो वोह सीधी अवस्था है जिसे आम लोग उलटी कहेंगे। (६) नजर की नजर में ही समावें (७) सहज शब्द जो सुमत रूप सत्यनाम है उससे दुर्मति दूर होती है। (८) ग्रसे हुए।

सहे कमायो आपनो हरि गुर तै वेमुख तास ।
त्याँ उदरि नरक महि दुख सहै जो लिखिआ भोगु विलास ॥
माता पूछे पंडिताँ जोतक पड़हि अनेक ।
जो विधि ने लिख पाया को वुझै न ज्ञानु विवेकु ॥४०॥
माय सहै दुख आपनो बालकु सहै कमाइ ।
जिनि कीना तिसु भाइआ तिस कीमति कही न जाइ ॥
पढि गुण अतु न पाईऐ हउमैं खपै[1] खपंति ।
लेखै अंतु न पाईऐ विनु हरि भगति न प्रापति ॥
सूरति मूरति एक लिव जिसै जनावै सोइ ।
नानक ताॅका दासु है जुगु जुगु हरि सेवकु होइ ॥ ४१ ॥
जिंव तिल इख तनु पीड़ीऐ दुख सहै बिपु खाय ।
जिंव आरण लोहा पाहीऐ[2] तपै भपै[3] भा खाय ॥
जितना वासा गरभि कुड ऐसी सहै सजाय ।
सुख दुख सहु तूं आपनो जैसा पुरबि कमाय ॥
नाॅ ओह वधै वधाइआ नाँ ओह मेटिआ जाय ।
ऐसा संम्रथु को नही किसु पहि करउँ बिनतु[4] ॥
पूरा सतिगुर सेव तूं गुरमति सोह मंतु[5] ॥ ४२ ॥
सुख दुःख अरु पुन्न पाप, भला वुरा वापारु ।
साध संगति सतिगुर नही भायो, इऊँ वसिओ गरभि गुवारि ॥
दरु[6] दर्शनु नदरि न आवई घरि दर की सोझी नाहि ।
अधु गुण्तु दुर्गंध वासु नर साक्त गरभि गलाहि ॥
तू भोग कमाइओ आपनो भागि कहाँ पहि जाँहिं ।
नानक साक्त कर्मां बाहरे[7] मरि जन्महि जोनी पाहिं ॥ ४३ ॥

(१) खपने में ही खपते हैं भाव झँबेले में पडे रहते हैं। (२) पान चढाईये । (३) तप तप कर लाल वर्ण हो जाता है, भा (अगनी) खा खा कर । (४) विनय, प्रार्थना । (५) टिपण में प्रथम इसका भेद प्रगट किया गया है । (६) दर्शन का दरवाज़ा (त्रितीय तिल) । (७) विहीन ।

पंख[1] प्रान ते नाहि तनु नाँ गुर शब्दु न पछानु ।
वशि तिसकै जीउ देहि, ओहु पूरा पुरुप भजानु ॥
सुख दुख रोगु विकारु मनि लदि लिआयो भारु ।
बधन बंध भवाईऔं[2], लख चौराशीह वार ॥
हरि भाउ भगति नही मनि वसै साध सगति नही पिआरु ।
करि साधू की निंदु लोभु मनि आयो उदरि मॅझार ॥ ४४ ॥
जे गरभकुंड ते नीकसौं ए गुण करम करेउँ ।
सर्व[3] जीआँ प्रतिपासरै अहिनिशि भगति करेउँ ॥
मनु धनु बुद्धि तिसु देसि लउँ गुर मिलि मुक्ति सनेउँ[4] ।
सेव न छोडउँ गुरदेव की जब लगि जीअ जोति समेउ ॥
बुरा ना काहूँ चितविउँ दुख संतापु न देउँ ।
नानक संगति साध मिलि अमिउ महाँ रस प्रेउँ ॥ ४५ ॥
करउँ प्रभू बेनतीआ इक बधिकु[5] गरभि गुबारि ।
अनाथु अतीतु सुपथि सिरि प्रभ दीजै मुक्ति द्वारु ॥
अहिनिशि जाचउँ सचिनामु सतिगुर की सेव करेउँ ।
हरि गुर की टेक न छोडसाँ सचु घोलि महाँ रसु प्रेउ[6] ॥
आपे ही आपु पछाणिआ देखि गुरमति पावै भेउ ॥ ४६ ॥
खोट खपटु नही मनि करउ परधनु नाँ हिरि लेउँ ।
वलवचु[7] न करौं किसै साथि किछु सुकृतु कर्मु करेउ ।
बिष्या माया पलरौं[8] निंद चिंद न करेउ ॥
चोरी चंचल मति परहरउँ रहउँ अतीत सरूप ।
दया दगबरु नामु एकु मनि एको आदि अनूप ॥

(१) यहाँ पर आ कर अब श्वासा के अजपा जाप का इष्ट भी छुडवाते हैं। प्रान रूपी पखों कर यिह शरीर जीवित नहीं है और नाँही हस मन्त्ररूप गर्भित प्राण कर इसका सजीव रहिना पछानो। बलकि जीव तथा देह उस परम पुरुष के वशि में हैं, उसी मात्र को भजो (भाव) केवल उसी मात्र में मगन हो जाओ (फिर पिछले सिलसिले पर आते हैं)। (२) भ्रमाइये, फिराइये। (३) सर्व जीवो की जो पालना करता है, रात्रि दिन उसी की भगति करूगा—और (४) मन धन बुद्धि (आपाभाव) देकरि, गुरों को मिलकर मुक्ती का सनेंहा (सँदेसा परवाना) शब्द रूप लेऊँगा। (५) कारागार, जेलखाना। (६) पीऊँ। (७) छल ठगी। (८) परहरै, त्यागो।

हरि चरण कवल उर धारिसँउ आदि अंति प्रभु सेव ।
मुक्ति पदार्थ देहि प्रभि सफल जन्मु गुर सेव ॥ ४७ ॥
अध कूप ते काढु प्रभ एहु बंधिकु महा अनाथु ।
अनाथु अतीतु तिसु पंथि सिरि प्रभ कीजै मुक्ति पलासु ॥
गरभि कुंड मलमूत्र महि रखिउ किरपा धारि ।
उर्धि ध्यानु अंतरि करै इक निमप न मनहुँ बिसारि ॥
भई कृपा दरि आइउ जन्म पदार्थु पाय ।
मुक्ति पदार्थु देहि प्रभ सफल जन्मु गुर भाय ॥ ४८ ॥
भई कृपा बंधन कटै दरि आयो दुखु जाणु ।
कर्म बिधाते लिखिआ चार रत्न नीसाणु ॥
जन्मु पदार्थ पाइउ मानुष रूप शरीर ।
अंधा मुगध अचेत मति बाहरि मनु नही धीरु[१] ॥
मुक्ति पदार्थ छोड़िओ करण पलाह[२] करेइ ।
जैसे कर्म कमाईअहि तैसे बंधन परेइ ॥ ४९ ॥
जन्मि लैइ अवतारु करि खूलै पाट किवार ।
शिव शक्ती घरि आइओ मोहे चलितु अपारु ॥
चार पदार्थु प्रेम हितु सुख दुख लिखिआ लिलारि[३] ।
मिरतु मंडिल माया मई मोहिउ मोहनिहारि[४] ॥
मुक्ति पदार्थु मुक्ति घरि त्रिहुँ गुण का सिरि भारु ।
नानक भरमि विगुचीऐ[५] किउँ तरीऐ भवजल सारु ॥५०॥
कर्मी बाँधो आया कर्मी बाँधो जाय ।
नानक मुक्ति प्रानु सो, चीनै आपु गवाय ॥
राज रूपु रसु भोगणा माया भरमि भुलाय ।
सो सूरा पूरा साधु गुर सहजि रहे लिव लाय ॥
तिसु शरणाई नानका सहजि भाइ गुण गाय ॥ ५१ ॥

(१) ढारस, शांति, धीर्य । (२) कुरबलाट, चीपा चापी, कीरणे । (३) मस्तकि ।(४) माया। , (५) खराब होईए, घाटे में पड़िये ।

भूख त्रिपा दुइ लगीआं रुदन करै बिललाय ।
बिष्टा जलुरसु घोलिआ पीवै सो दिन[1] साय ॥
भी फुनि दूध पीआइऐ त्यों शुभ कहि जीवन माय ।
माय सरसी[2] बालु पेपिकै सपरवारु सबाय ॥
अडनि खेलै दरि घरि फिरै मात पिता मनि चाय ॥
गरभि बास ते निकस्यो जन्मो करि अवतार ।
नानक सचे नामु बिनु न उरवार न पार ॥ ५२ ॥
जो शरन परै प्रभ एक की छूटै सतिगुर सेव ।
हउमै तिष्णा परहरै हरि चीनै आत्म देव ॥
तिस हरि दर्शनु की आस है हरि जपै आपु गवाय ।
मस्तकि हाथु सतिगुरू का तउ आसा मनसा खाय ॥
रामु नामु रसु मनि बसै रहै अतीतु सुभाय ।
मनु जीतै त्रिभवण जिणै नानक प्रभि शरणाय ॥ ५३ ॥
बहनि भाइ बिगसैं सुखी जब देखिउ बाल सुभाय ।
दादी नानी फुफी मासी मामानी मनि चाय ॥
गाय मंगलु बाजत तूरे[3] परचियो द्रव्य सींगार[4] ।
सो दिन बिसरिउ आप ते पशू बाँधिउ मोहि पियार ॥
जन्मि मरै जो आयो हउमै खपै खपाय ।
नानक किसि का को नही जगु अधा धध[5] भुलाय ॥५४॥
एकु इकेला गरभि महि तहाँ अवरु न कोई मीतु ।
जब जरु जरुवै तनु पीडीऐ तब कहो कवन सगीतु[6] ॥
मात गरभ ते निकसिउ महाँ अनाथु अतीतु[7] ।
जब रोग सोग मनु तनु खपै तबहि न बेली[8] कोय ॥

(१) सा दिहाड़ी, निमप्रती, रोज बरोज । (२) हर्षवान हुई सभ प्रवार समेत । (३) बाजे ।
(४) भूषण घटजाने पर अधिक धन खरचते हैं । (५) "भरमि" । (६) सगी, साथी ।
(७) बिगधर, अथ मृत ममान । (८) सहायक, मददगार ।

जब जम पंथि भवाईअै तब सैन[१] सपा कहं सोइ ।
जब जम पुरि वद्धे मारीअहि किसहि सुणावहि रोय ॥
जब भवजलि वद्धे मारीअहि कोय न राखनहार ।
नानक सचे नाम विनु ध्रिगु जीवनु संसारि ॥ ५५ ॥
जब दरगहि लेखा मगीअहि वहि धर्मु करै बीचारु ।
तहां जीउ अकेला मारीअै कहाँ सु कूक पुकार ॥
विनु सचै वेली को नही सो निधरिआं[२] आधार ।
पच पॅखेरू[३] उडरे मनु झूठा अहकारि ॥
पाप पुन्न दुइ साखीआ तिसु सचै के दरवारि ।
नदरि तेरी सुख पाया सचै शब्दि अचारि ॥
जो दीआ कीआ पाईअै ठाकि न सकै कोय ।
नानक गुरमुखि छूटीअै जन्मु सकार्थ[४] होय ॥ ५६ ॥
जब दरगह लेखा मगीअै तहाॅ हाजर कीजै जीउ[५] ।
तहाँ सचा शब्दु बीचारीअै तहाॅ सचै शब्दि पतीउ[६] ॥
तहाॅ शब्दु सहाई जीआ का सतिगुर पूरा नालि ।
गुर शरनि परे से उवरै भउजल उतरै पारि ॥
भवजल विपमु डरावणा सतिगुर बोहिथु[७] आदि ।
दर्शन देखि विगसिआ सचै दरि शावाशि ॥ ५७ ॥
अब लोक सबाए मीतु करि सुपरवार कहाय ।
ज्यो आया तिउं जावसी को सगि न साथी माय ॥
दिनु दिनु खूलै गंठडी लजि टूकिस मूसा खाय ।
गणवै[८] सास ग्रास मुखि अंध न सोझी पाय ॥
विन गुर ज्ञान न छुटसी जासी जन्मु गवाय ।
नानक गुरमति उबरे रहे एक लिव लाय ॥ ५८ ॥

(१) अग साक, सवधी, मित्र उस समय कहाॅ सोये रहते हैं। (२) निराश्रयों का आश्रा। (३) पाॅच प्राण। (४) सफला। (५) जान। (६) प्रतीत लावो। (७) आदि बोहिथ, धुर का जहाज़। (८) गणती के श्वासो का मुख में ग्रास लेता है।

एको एकी आयो एको एकी जाँहि।
एको जन्मिओ मरहि एकु एकु गरभि दुख पाँहि॥
एको दुखु सुखु मनि बसै एको दुखु सहाँमु।
हउमैं झूठा जगु भ्रम खपै जब मन ते विसरे राँमु॥
एकै रचहि त सुख सबहिं सबै निरंतरि सोय।
आदि निरंजनु अकुल धनी अंत सहाई होय॥ ५९॥
ओहु प्राण पुरुष पुरुषोत्तमा जाति बरनु कुल नाहि।
अकुलु अलेपु अथाहु सो आदि अंति मनि माहि॥
खंड मंडल ब्रह्मंडि सो त्रिभवण करनैहारु।
अविचल अविनाशी नानका निरभउ हिरदै धारि॥ ६०॥
बालकु खेलै खेलना[१] मात पिता मनि चाउ।
गहली[२] भोली बावली इहु जगु सुप्ना वाउ[३]।
कालु कड़कै सिरि खड़ो ज्यौं बाजीगरु खेलै दाउ॥
जो जनमिउ सो जायसी जींवदिआँ माराइ।
वारी आपो आपनी तनु देही भसम रलाइ॥
जो दीसै सो बिनससी सिरि दीसै कालु बलाइ[४]।
कालु अथर्वण[५] महाँ बली अतिकाल लै जाइ॥
माता मनि आनंदु है जब देखिउ बालक पिआरि।
चउपड़ खेलै खेलना हरिगुण मनहु विसारि॥ ६१॥
बिपु माया मनु बेधिआ मरि जन्मै आवै जाय।
जिनि माया जगु मोहिया मोहि रली[६] लपटाय॥
काटी कटै न मरि रहै ऐसी प्रभू रजाय।
कर्म काल की जेवरी जन्मु बिरथो जाय॥
ज्यौं बन फूले केतकी[७] कितही काम न साइ[८]।
गुर सेवा हरि लिव उबरे नानक सहजि सुभाइ॥ ६२॥

(१) खिलौना। (२) अधिक भूली हुई, बहुत भोली, (३) स्वप्न रचना वत्, व्यर्थ ही, वा स्वप्न के वायु झकोलेवत्। (४) कालरूपी भूतना। (५) जगी जोधा। (६) ठगी मात्र खुशियों में लपट करके। (७) केवड़ा। (८) सो।

जिनि माया जगु मोहिआ ब्रह्मा बिश्नु महेश ।
ब्रह्मादिक सनकादिका इंद्रादिक मुनिएस[1] ॥
जती सती भेषी कई मोहे मोहनहारि ।
सिद्ध साधिक अरु जोगी जंगम ग्रिह बनि चिताधार ॥
देवी देव सबाया सिध साधिक मुनि ध्यानि ।
जाल काल वशि पाँहि[2] सो हुकमि सचै नीसानि ॥
हरि भगति कीए हरि पासिआ[3] सचु अपरंपरु मानि ॥ ६३ ॥
बेद कतेब तिनि मोहिआ से कूक सुणावहि लोइ ।
नरक सुर्ग पाथर दिसै त्रिहु गुण सहसा होइ ।
पूछहु बेद पढ़ंतिआँ विणु नावै मुठी[4] रोइ ॥
सुर्ग लोक तिन मोहिआ गगन मंडल पाताल ।
गुर शरनि परे से उबरे हरि हिरदै एकु समालि ।
नानक सो दरु दर्शनु पायसी अबनाशी नदरि निहालि ॥ ६४ ॥
साथ लदै तिनाँ पाधीआ[5] गुर की सचि मति धीर ।
प्रीतम[6] प्रान पिआरिआ मन तनि बसहि शरीर ॥
गूडी बाणी प्रेमु पदु गुर की मति अगाहु ।
विणु नाँवै को थिरु नही बिनु नावै किआ वेसाहु ॥
विणु नाँवै सभु अपवित्र है बिन नाँवै नापाक ।
विणु नाँवै किआ गलि मिलाँ विन नाँवै किआ साक ॥६५ ॥
विणु नाँवै किआ मंत्रीआ कोइ देइन आदरु आखि ।
विणु नाँवै जम मारसी नाँ को संगी साथि ॥
विणु नाँवै किआ सुखि वसाँ किउँ नाम विना घरि जाउँ ।
नामि विना दोहागणी भूली आवउ जाउँ ॥ -

(१) मुनीश्वर । (२) पडेँगे । (३) पासे, दरबारी (४) मोहे हुए । (५) पधीआँ, मुसाफराँ । (६) ऐ पिआरे ! प्रान प्रीतम तो मन, तन तथा शरीर में भाव कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर के अतर इन ते परे अपना आप हुआ (साक्षी स्वरूप से) निराजमान है ।

गुर के शब्दि सतोपीआ सचु दरगहि पाई मानु ।
सतिगुर कउ शाबाशि है नामु दीआ जिनि दानु ॥ ६६ ॥
जहाँ नगरु तहाँ राजनु सोइ । जिसका कीआ सभ किछु होइ ॥
जो किछु करि पाया सो एका वारा । बहुरि न पायै जन्मु अपारा ॥
काम क्रोध तनि लोभु वधाया । तनु धनु सुत पिआरा कामणि चितु लाया ॥
कापड़ पहिरे सोहणे पटरस मीठे खाय । नानक लेखै माँगीअै अउत जणेंदी[१] जाय॥६७

घर वालू[२] का देह मडोली[३] काची गागरि जाणु ।
कालु सदा सरु साँधहै ज्यौं पखी सिरि सीचाणु[४] ॥
जब जमु पकड़े तब को न छडाए। सुपने ज्यौं भूले फिरि पछुताए ॥
आपे जिसु बपशै तिसु मेलि मिलाए। नानक सहजि भाइ लिवलाए ॥६८

दुधु मखनु रोटी खाय बाल भोगै रसकस भोग ।
सो दिन मन ते बिसरै मात पिता सजोगु ॥
अँधुला धँधु व्याप्या दुर्मति जोग व्योग ।
खावै भोगै मीठ रस नाम बिना सभ रोगु ॥
झूठे खेलै खेलणा झूठै नाल पिआरु ।
ज्यौं आया त्यों जायमी मिटै न लेख लिलारु ॥ ६९ ॥
जन्मु मरणु दुख कालु सिरि घरि घरि माई बापु ।
गरभि पवहि मरि ऊतरहि[५] सिरि मारै कालु सतापु ॥
धर्म धीरज धरमापुरै पापी पिआरा पापु ।
वेसवा केरे पूत ज्यौं किसहि कहहिंगे बापु ॥
जमदर बाँधे मारीअहि दरगहि नाही मानु ।
जम जरूपै इहु गढ़ जोहिआ बिनु साध संगति हरि ध्यानु ॥
मनमुख नामु विसारिआ दरगह चलिआ हारि ।
नानक सचै नाम बिनु अधा नरक गुवार ॥ ७० ॥

(१) सतान उत्पन्न करती हुई भी जो असतान वत दुखी हो, जैसे उसकी सतान 'अउतरी के कहाती है वैसे ही दरगाह में लेखा माँगते समय जीव का मद तर हाल होगा। (२) रेत का कोट। (३) मढ़ी। (४) बाज पक्षी। (५) जन्म लेता फिरे, मर करि फिर जन्मे।

बाल बिनोद अचेत भै सुत्तिआँ गई विहाय ।
घरु दरु रखि न सकिओ गाफलु भया रजाय ॥
भवजल विषमु डरावणा क्यो तरीअै मेरी माय ।
जो दुख सहीअै गरभि कुंड सो दुख तेरे नालि ॥
सो दाता भुगता थिरु धनी होरि हउमै बाँधे कालि ।
तू सहु कमाया आपना किस कउ दोष धरेहि ॥
तिसु अँबड़ि[1] कोइ न सकई मरि जनमहिं होवहि खेहि ॥७१॥
शिव शंकर मुख सबाए देवा । बहु कर्म कमावहि अंतु न सेवा ॥
सिद्ध साधिक त्रयतीस[2] सबाय । जो हउमै त्यागै सो दर्शनु पाय ॥
भगत ज्ञानी साधू सोय । नानक जिसु मनि साचा अवरु न कोय ॥७२
पीर नाथ नारद मुनि सारै । जोगी जती पंडित बीचारै ॥
जो आतमु चीनै सो ततु लपारै[3] ॥
आदि पुरुष अपरपरु पाया । सतिगुर परचै परम पदु आया ॥
आपु पछाणै सो लहै निधानु । आपु पछाणि महलु घरु जानु ॥
नानक पावै भगति नीसानु ॥७३॥
हठी तपी केते बनवासी । नगन मोनि ते[4] पवनु अभ्यासी[5] ॥
इकि निरहारी पवनहार उदासी । बिन सतिगुर सहजि सतोष न आवासी ॥
साक्त अधुलै शब्दु न जाणिआ । नानक केवल भगति मनु मानिआ ॥७४॥
अकलु पुरुष केवल गुर ज्ञानु । नाम निरंजनु अंतरि ध्यान ॥
प्रेम पराइणु प्रीतमु मानु । नरु निहकेवल निर्भउ दीबानु ॥
जीवन्मुक्ति अम्रित फलु पाए । सर्ब-निरंतरि रह्यो समाए ॥
आदि अतीतु पूरा गुरुज्ञानु । नानक माने परम निधानु ॥७५॥
परम निधान पदार्थ नाउं । परम तत्तु सचा विसमाउ ॥
अमर अजोनी आदि जुगादि । परम निधान पूर्न परमादि ॥
आदि-अंत सचु पूर्न पूरा । नानक जुगु जुगु अस्थिरु सूरा ॥७६॥
इति श्री प्राणसगली श्री गुरु प्रथे उन्मुन सुन्न प्राण पिंड बधेज नाम चौथो ध्याउ ॥ १४ ॥

(१) पहुच, बराबरी । (२) तेतीस कोट देवता । (३) बीचारै, लखै । (४) और । (५) हठयोगी ।

॥ १ ॐ श्री सतिगुर नानक निरवाण प्रसादि ॥

॥ अध्याय १५ ॥

श्री बाबे जद चौथ्वा ध्याउ सुणाया ता राजा जी अते नाथजी ऐसे प्रसन्न होए। जो कहणे विच नही आवदा। सभनादे हिरदेकमल बिगास होते भए। नगर के जो लोग भागवान हैं ते सभ सुणकर मुक्त रूप होए। सभना टापूआदे राजे सुणकर आए। श्री बाबे जी को बारबार प्रणाम करते भए। षोडश प्रकार कर पूजा करत भए। श्री गोरखनाथ को तथा सर्व सिद्धाँ विषे जो गुप्त प्रगट थे तिन की राजा जी अरु महलेश्वर सभ मिलकर पूजा करते भए, भोजन वस्त्रों कर। जिस २ अधिकार के पुरुष थे, सभनो की प्रसन्नता श्री राजा जी करते भए। अरु राजे के भाग सभ सलाहते भए, ते श्री बाबा जी जो पवनहारी हैं तिनकी जैकार बोलते भए, ना सभ स्वस्थ चित होए, तॉ श्री बाबा राजा की ओर प्रसन्न अम्रित द्रिष्टि कर देखते भए। जैसे वर्षा सो भरा हुआ मेघ वर्षा करणे को आय सम्रथ होत है। तौ प्रिथ्वी बडे बिलास कौ प्राप्त होती है। अरु मोर प्रसन्न होते हैं तैसे श्री गुरू जी को कृपाल देखि कै राजा हाथ जोड़ कै बेनती करत भया।

श्री राजोवाच—हे भगवान कृपानिधान जी ? मेरी इह इच्छा है जो श्री सतिगुरू जी की उसतति सुणाईए जी, ते निरजोग भगति का बिस्थार सुणाईए जी इह प्राणसगली मेरे प्राणो का कवच है। मेरे कल्याण के हित है। श्री गुरू जी तुमारी इह कला प्रगट होई है। जा राजे जी बहुत बेनती कीती, ता श्री गुरू जी प्रसन्न होय कै पध्रवा ध्याउ प्राणसगली जी का सुणावणे लगे।

सुसंवेद अगमबाणी परम जोत का ध्याउ चलिआ

॥ राग भैरउ महला १ ॥

गुरमुखि नाम निरंजन लीजै,
साध संगति मैं राख गुसाइ राम रिदै मुखि अम्रित पीजै॥१॥ रहाउ ॥

॥ पउड़ी ॥

गुर जत सत संजम मुक्तिवर दाता जपु तपु सहजु ध्यानं।
सतोष सरोवर ज्ञान परायण घट घट सो परधानं ॥
सभ सुच संजम गुर ज्ञान पदार्थ हरि अंतरि भगति पजाना।
मिथ्या लोभ नहीं सचु सूचा सहजभाय मनु माना ॥
परम निधान परम गुर पूरा घटि घटि ब्रह्म पछानु।
गुर आदि जुगादि जुगो जुग अतरि अबिनासी पुरुप प्रधानु ॥१॥
गुर आदि जुगादि जुगो जुग जागै मरै न आवै जाई।
गुर निरवैर निर्भउ भउ खडन सचे सच समाई ॥

गुर हरि रंग भीना ज्यौं जल मीना निर्भेउ तिल न तमाई ।
गुर बेशुमार अपार अपरंपर कीमत कहणु न जाई ॥
गुर द्रयाउ सदा जल निर्मल दुर्मति मैलु न काई ।
गुर उपदेश ज्वाहर माणक सो सेवै पुर्व कमाई ॥ २ ॥
गुर जत सत पूरा सत बुध मूरति सत्त पुरुष निहकाम ।
संतोष सरोवर गुर ज्ञान पदार्थ रत्न अमोलक नामं ॥
गुर आदि निरंजन पाप निखंडन अगम रूप बिस्राम ।
गुर ब्यत मित किनै न पाई नौं निध नाम निधानं ॥
गुर अलेख अलक्खु न लखीऔ शब्द मिलै मन माना ।
नानक सतिगुर तिनको भेटै जिन कर्म पया नीशाना ॥३॥
काम क्रोध हंकार न लोभं त्रिश्ना तामस नाही ।
सहसा जोगु व्योग न व्यापै जो शब्द रत्ते मन माँही ।
सतिगुर सेव परम पद पाईए साचे सच्च समाँही ॥
हर्ष सोग ते मुक्त अजोनी हरि निर्मल जोति शरीरा ।
आनँद रूप अनाहद वाणी प्रभ जाणहि पर पीरा ।
कैवल गुर ज्ञान अजोनी सँभउ रिदै वसै मनु धीरा ॥ ४ ॥
मुक्ति सरोवर न्हाय सु मुक्ता नाँ तिसु जन्म न कालो ।
नाँ तिसु बासा गर्भ जठर महि उह पूरा दीन दयालो ॥
सूचा मनु साचु न मैला होई । आपे आप उपंन्ना सोई ॥
आपु पछानि वसै ब्रह्मंडि । काल बिकाल कउ खंड विखडि ॥
सदा अतीतु आवै न जाय । नानक गुण कहि गुणी समाय ॥५॥
जाति बरन ते मुक्ता है साधू कुल अपमानु[१] न गर्बु करै ।
उह साधू भगत मुक्ति का दाता तिस चरन रहउ लिव लाग रहै ॥
हर्ष सोगु ते रहत निरारा सहज भाय वैरागी ।
सर्ब जीआँ महि रहिआ समाई उर्ध ध्यान लिव लागी ॥
अजपा जापु जपै जिँह आई । नानक सचु सिउँ राता सचु समाई ॥ ६ ॥
सचु सिउं राता सचे माता । आय गया क्यो आवै जाता ॥

(१) गुरमान (अभिमान) ।

सचु उपदेश साधू गुर लक्षण । जप तप संजम सुरत विचक्षण ॥
हिरदै हार परोवै कंठी । सचु धनु पल्लै नानक गंठी ॥ ७ ॥
सचु धनु पल्लै मत परवानु । सचु धनु पल्लै अमर दीवानु ॥
सचु धनु पल्लै सिक्ष सलाहु । सचु धनु पल्लै पातशाही पातशाहु॥
सचु धनु पल्लै तपत निवासु। नानक सचु धनु पल्लै हरिगुण प्रगासु ॥८
सचु धनु पल्लै दर सचे पति । सचु धनु पल्लै जा वहै तपत्तु ॥
सचु धनु पल्लै अपरंपर थान । सचु धनु पल्लै दरगहि मान ॥
सचु धनु पल्लै सचु नीसानु ॥
सचु धनु पल्लै नामु सचु सारु। सचु धनु पल्लै नानक जैकारु ॥९॥
सचु धनु पल्लै ताँ सचि समाय । सचु धनु पल्लै सचे पत्याय
सचु धनु पल्लै गहर गंभीरु । सचु धनु पल्लै गुणी गहीरु ॥
सचु धनु पल्लै रत्न अमोलु । नानक सचु धनु (पल्लै) अगम अतोलु१०
अंतरजामी जोति सबाया प्रभ काटै पर पीरा ।
सभ तीर्थ मंजनु गुर दर्श तुहारो रिदै वसै मनु धीरा ॥
अकथ कथा निर्गुण मनु मानिआ अलखु ध्यानु मन राता ।
सुरत शब्द धुनि आनि निरंजन ओह पूर्न पुरुष विधाता ॥
उह पूर्न पुरुषपुरुपोत्तम पूरा । उस पत परवाना नानक सचु सूरा ॥११
एको एकी रहतु निरालम आतम तत्तु बीचारा ।
नानक ताके चरन सरेवै ओह सतिगुर पुरुष निरारा ॥
सो पुरुष परंम निधान ज्ञानी किलविष हता सर्ब मए ।
नरहर नरनाथ निरंजन देवा उर्ध ध्यान लिव लाय रहे ॥
नरहर नाथ निरंजन सुआमी अमर अजूनी आदे ।
आय न जाई सचु ठकुराई नानक आदि जुगादे ॥ १२ ॥
पारब्रह्म परधान निरालम त्रिभवन जीत अपारा ।
सतिगुर शरन महाँ शम[1] पाईऐ सो आकुल रिदै पिआरा ॥
निरवैर निहकाम निरोधर सोई आदि सरूपो ।
सर्ब निरंतर सारु समालै सो आकुल आदि अनूपो ॥

(१) "महारम"=परम शांति ।

सो आकुल आदि जुगादि जुगताई ओह सचा सचु पतीणा ।
कर बिस्थार जिन सफा बनाई सो नानक घटि घटि लीणा ॥१३॥
मुक्ति पदार्थ इन विधि पावसि साध सगति लिव ध्यानु हरे ।
साध सगति मनु इस्थिर आछे गुर अलपु लपावै नदरि करे ॥
खिमा दया सचु संजमु निहचलु काम क्रोध का नासो ।
लोभ मोह जन निकटि न आवै दर सचे दासनु दासो ॥
अहनिशि एक नामु लिव लाए हउमै दुविधा नासी ।
सत सतोप वसै घटि भीतरि प्रभ पाया अविनासी ॥ १४ ॥
निंद चिंद नही तात पराई तिश्ना तामस दूर करै ।
सुख दुख रहत अतीत निरालम सो सतिगुर साधू मुक्ति सरे ॥
अजपा जापु जपै गुरवचनी परम जोति पुरुषोतम है ।
एक अनेक जप जोत सबाई निर्गुण सरगुण एको है ॥
अध्यात्म कर्म महाँरस मीठे आपे[1] जानै अलष घरे ।
मूल मंत्र जो एको चीनै जन नानक ताँकी शरन परे ॥ १५ ॥
जप तप संजम सुरति विचक्षण । ज्ञान खड़ग ले मनहि समक्षण[2] ॥
ऊची पउड़ी लै गगनंतरि चढीआ । अनहद बीचारु चमकी जोतहीआ ॥
जिँव दामनि चमक चदायण पेखे । त्यों अंतरि जोत निरंतर देखै ॥१६
दिव्य दृष्टि जोत अनूप तहिँ होती । गुरमुखि पसरी साची जोती ॥
सचु सरूप साचु प्रगासु । गुरमुखि घटि घटि सचु निवासु ॥
आस्त नास्त एको नाऊँ । नानक दर्शन को बल जाऊँ ॥ १७ ॥
सचु सो दर्शनु कुदरत मुशताक । सचु भोजन सचु घर अउताक ॥
सचु सपाई प्रीतम राउ । सचु रचै सचु मनु चाउ ॥
साचा प्रीतम प्रेम अनद । प्रेम प्रायण परमानंद ॥
गुरमुखि सचु सदा वपशंद ॥
सचु द्रिढता सचु सचि समाउ । नानक जुग जुग सचु पसाउ ॥१८
सतिगुर मिले मुक्त दर खूलै, हरि भगति भाउ मन मानै ।
पंच मार मनु मनहि समानिआ, अनत न दुतीआ जानै ॥

(१) "आप रहे जन अलख घरे"—पाठ भी है । (२) मनमुख करे ।

सचु उपदेश साधू गुर
हिरदै हार परोवै कठी
सचु धनु पल्लै मत पर
सचु धनु पल्लै सिफ़ स
सचु धनु पल्लै तपत निवा
सचु धनु पल्लै दर सचे
सचु धनु पल्लै अपरंपर

सचु घ

सचु धनु पल्लै नामु स
सचु धनु पल्लै ताँ सचि
सचु धनु पल्लै गहर गँ
सचु धनु पल्लै रत्न अमो
अंतरजामी जोति सवाय
सभ तीर्थ मंजनु गुर दर्श
अकथ कथा निर्गुण मनु
सुरत शब्द धुनि आनि
उह पूर्न पुरुपपुरुपोत्तम पू
एको एकी रहतु निराल
नानक ताके चरन सरेवै
सो पुरुप परंम निधान
नरहर नरनाथ निरंजन
नरहर नाथ निरजन सु
आय न जाई सचु ठकु
पारब्रह्म परधान निरा
सतिगुर शरन महाँ शर
निरवैर निहकाम
सर्ब निरंतर सारु

त्रिभवण ऊपर सिंहासन थाँन । तहीं निरंजन पुरुप सुजान ॥
तहँ अंम्रित वरसै किरपा धार । तहाँ प्रीतम सचु मनि सचु पिआरु ॥
तहाँ भगत सँवूह का अंतु न पारु । तहँ पवन न पानी नाँ आकारु ॥
तहाँ पुरीआँ सप्त ऊपरि कउलास । नानक निरकार निरजासु[१] ॥२५॥
प्रभु दया करे जनु मेल मिलाए । सो जनु बिछुड नाँ दुख पाए ॥
दुख संताप नहीं गुर सेवा । अंतरजामी पुरुप अभेवा ॥
जिन जानिआ गुरु शब्द लखाया । नानक प्रभ पूरा दर्शन पाया ॥२६
आदि अंत प्रभ सदा सहाई । सो हरि प्रीतम रह्या समाई ॥
अहिनिशि निर्मल हिरदै हरि भाउ । नानक दर्शन कउ वलि जाउ ॥
हरि दर्शन परसे भया अनद । नानक सर्व सदा गोइंद ॥
दर्शन परसै गुरुमति धीरु । नवनिध गुण गावै देख हजूर ॥
शब्द गुरू उपदेश दिढ़ाया । सतिगुर परचे परम पदु पाया ।
अमर अजोनी सचु पसाउ ।
कीता पसाउ एको कवाउ । नानक होवै लख द्रयाउ ॥ २७ ॥
अपने धर्म कउ निहचल पालै । ज्योँ प्रीतम गऊ गोपाले वालै ॥
अैसा हरि जन ज्योँ जल मीना । हरि सिऊँ प्रीति प्रीतम मनु लीना ॥
नानक सललै सलल मिलाया । त्रिभवन एको जोति लिउ लाया ॥
बिन सतिगुर मेलि न सके कोई । सतिगुर मिलै मुक्तिवर होई ॥२८॥
सतिगुर शब्द भगत जसु गाया । अलप पुरुप इक चलत दिखाया ॥
सतिगुर मिलिआ मनु पत्याया ॥
करि करि वेखै आपि सुजाँन । सत जनाँ हरि भगत निशाँन ॥
अकथ अपार की अकथ कहानी । नानक मुक्ते पद निरवानी ॥२९॥
पथ मिलहि अपने घरि पूरा । तिस घटि बाजहि अनहद तूरा ॥
कार्ज सिद्ध सहज वैरागा । हरि भगत हेत पूरे वड भागा ॥
साध संग जस पावै देवा । नानक आदि अंति प्रभ सेवा ॥३०॥
हउमै दुख का भया बिनास । सहज भाय जन दासन दास ॥
शरनि परे लाज राख अपारु । तूँ बेप्रवाह मैं दीन बीचारु ॥

(१) निरपेक्ष भूत तत्त्व (परम तत्त्व) ।

हरि रस चाहहि मीत पिआरे। अहिनिश भगत रहै लिव धारे॥
निज महली घरि सूख वसाही। हरिजन निश्चउ मरै न जाही॥
गुर शब्दी घर कार्ज सारे। जन के कार्ज आप स्वारे॥
भगति भाय रह्या भरपूर। किसु नेडे किसु आखाँ दूर॥ १९॥
जो जन दर्शन आस पिआसा। जुग जुग ताके चरन निवासा॥
साध जनाँ मागऊँ पग धूरे। सहज दुख भरम मिटे ते दूरे॥
भला बुरा आतम ते जान। हरि भजु मन तूँ होहु स्यानु॥
जन्म मरन की आस मिटाई। तब पहि[1] आपु पछाता भाई॥
दुइकर जोड़ि कराँ अरदासु। नानक साध जनां महि हरि पूरी आस॥२०
सो मुक्त तिप्त हरि दर्शन पावै। साध सगति महि हरि लिव लावै॥
गवन मिटिआ हरि वसिआ चीता। अकाल जपत रहै नित नीता॥
पी अम्रित मनु त्रिप्तु अघाना। सर्ब महि एकु देखि मनु माना॥
अनहद शब्द अतीत वजाया। सो आकल आदि निरजन गाया॥२१
मन तन भूख पिआस न लागी। दुतीआ भाउ संसा हऊँ त्यागी॥
गुरमति चीनि भया वैरागी॥
दीन दयाल भए किरपाला। राखहि राखन हार दयाला॥
साध सगति महि मनु तनु रँगै। नानक दुत्तर तरउ तिँह सँगै॥२२
कचहुँ कंचन करे अपारा। आकल भया तत्तु बीचारा॥
आपे करन करावन हार। आपे पार उतारै तारु॥
आपे संगति साध मिलावै। नानक आपे आँख[2] दिखावै॥
आपे सतिगुर[3] आपे गुरबाणी[4]। आपे सेवक सुरत समाणी॥२३॥
पंचलोक ठाकुर परधान। साध संगति मिलि इहु मन मानु॥
सभ महि ठाकुर रह्या समाय। सो प्रभ सतिगुर दीआ दिखाय॥
जो आतम चीनै आपु गवाई। प्रभ दीन दयाल महल घर पाई॥
त्रिभुवण उपर सिहासन बासा। नानक सो आदि पुरुष प्रगासा॥२४

(१) "पहि" सदिग्ध पाठ प्रतीत होता है यदि यही पाठ शुद्ध हो तो अर्थ पास ('निकट') करने से अर्थ (पक्ती का) हो सकेगा। सभव है कि 'पहि का जगह 'प्रभु' पाठ होवे। (२) 'आप' पाठ शुद्ध हो तो तीसरा नेत्र और 'आप' पाठ होने में कथन (उपदेश) करके अर्थ होगे। (३) शब्द ध्वनि (अनाहत)। (४) अनाहद शब्द (जो श्वासा की चोट से प्रगट हुआ करता है)।

त्रिभवण ऊपर सिंहासन थाँन । तहीं निरंजन पुरुष सुजान ॥
तहँ अम्रित बरसै किरपा धार । तहाँ प्रीतम सचु मनि सचु पिआरु ॥
तहाँ भगत संवूह का अंतु न पारु । तहँ पवन न पानी नाँ आकारु ॥
तहाँ पुरीआँ सप्त ऊपरि कउलास । नानक निरंकार निरजासु[१] ॥२५॥
प्रभु दया करे जनु मेल मिलाए । सो जनु बिछुड़ नाँ दुख पाए ॥
दुख सताप नहीं गुर सेवा । अंतरजामी पुरुष अभेवा ॥
जिन जानिआ गुरु शब्द लखाया । नानक प्रभ पूरा दर्शन पाया ॥२६
आदि अंत प्रभ सपा सहाई । सो हरि प्रीतम रह्या समाई ॥
अहिनिशि निर्मल हिरदै हरि भाउ । नानक दर्शन कउ वलि जाउ ॥
हरि दर्शन परसे भया अनद । नानक सर्व सपा गोइंद ॥
दर्शन परसै गुरुमति धीरु । नवनिध गुण गावै देख हजूर ॥
शब्द गुरू उपदेश दिढ़ाया । सतिगुर परचे परम पदु पाया ।
अमर अजोनी सचु पसाउ ।
कीता पसाउ एक्को कवाउ । नानक होवै लख द्रयाउ ॥ २७ ॥
अरने धर्म कउ निहचल पालै । ज्योँ प्रीतम गऊ गोपाले वालै ॥
ऐसा हरि जन ज्योँ जल मीना । हरि सिउँ प्रीति प्रीतम मनु लीना ॥
नानक सललै सलल मिलाया । त्रिभवन एको जोति लिउ लाया ॥
बिन सतिगुर मेलि न सकै कोई । सतिगुर मिलै मुक्तिघर होई ॥२८॥
सतिगुर शब्द भगत जसु गाया । अलप पुरुष इक चलत दिखाया ॥
सतिगुर मिलिआ मनु पत्याया ॥
करि करि वेखै आपि सुजाँन । सत जनाँ हरि भगत निशाँन ॥
अकथ अपार की अकथ कहानी । नानक मुक्ते पद निरवानी ॥२९॥
पथ मिलहि अपने घरि पूरा । तिस घटि बाजहि अनहद तूरा ॥
कार्ज सिद्ध सहज वैरागा । हरि भगत हेत पूरे वड भागा ॥
साध संग जस पावै देवा । नानक आदि अंति प्रभ सेवा ॥३०॥
हउमै दुख का भया बिनास । सहज भाय जन दासन दास ॥
शरनि परे लाज राख अपारु । तूँ बेप्रवाह मैं दीन बीचारु ॥

(१) निरपेक्ष मूल तत्त्व (परम तत्त्व) ।

हरि रस चाहहि मीत पिआरे । अहिनिश भगत र
निज महली घरि सूख वसाही । हरिजन निश्चउ र
गुर शब्दी घर कार्ज सारे । जन के कार्ज आप र
भगति भाय रह्या भरपूर । किसु नेड़े किसु आर
जो जन दर्शन आस पिआसा । जुग जुग ताके
साध जनाँ मागऊँ पग धूरे । सहज दुख भरर
भला वुरा आतम ते जान । हरि भजु मन तूँ
जन्म मरन की आस मिटाई । तब पहि[1] ३
दुइकर जोड़ि करौं अरदासु । नानक साध जन
सो मुक्त तिप्त हरि दर्शन पावै । साध संगति
गवन मिटिआ हरि वसिआ चीता । अक
पी अम्रित मनु त्रिप्तु अघाना । सर्ब
अनहद शब्द अतीत बजाया । सो आ
मन तन भूख पिआस न लागी ।

गुरमति चीनि

दीन दयाल भए किरपाला ।
साध सगति महि मनु तनु
कचहुँ कंचन करे अपारा
आपे करन करावन ०।
आपे संगति साध
आपे सतिगुर[3]
पंचलोक ठाकुर
सभ महि ठाकुर
जो आतम चीनै
त्रिभुवण उपर सि

---

(१) "पहि" सदिग
करने से अर्थ (पक्ती प
(२) 'आप' पाठ शुद्ध हो
होगे। (३) शब्द ध्वनि (अ

अस्थिर कंत मिलिआ सिउ लाय ॥
सुरत शब्द आवै परतीत । भगति भाय सचु गुण संगीत ॥
पच मिलहि सग्राम न हारै । गुर ज्ञानु खड्गु लै मनु मनसा को मारै ॥३९
मनु निहचल घरि अम्रित रस पाया। अनरसु तयागै सहजि सुभाया ॥
सो अबिनाशी सिर छत्र अपारा । पंच मिलहि तत्तु कार्ज सारा ॥
साध सगति मिलि दरगहि मानु । नानक साध संगति मिल निरजनु जानु ॥४०॥
सतिगुर परचै सो प्रभ पाया । तिसकी जोति त्रिभवन सोभाया ॥
दूर दरद मन साचा भाउ । आदि जुगादि सचु पसाउ ॥
गुण निधानु कैवल तिहु लोइ । नानक आवागवण न होय ॥४१
इहु मनु मानिआ आतम वीचारु । मनु निहचलु पावै पद सारु ॥
साध सगति गुर शरनि रहाउ । बिन अभिभगती आवै जाउ ॥
नानक सो प्रभ जुग जुग गाया । सतिगुर मिलीअै इहु पद पाया ॥
अमर पद चीनि रहे लिव लाई । नानक इत रस कालु न खाई ॥ ४२ ॥
कचहुँ कचन होय गुरमति लाल । पंच मिलहि तहिँ लाल गुलाल ॥
पंच मिलहि हरि नदरि निहाल ॥
जुग जुग सचा अमर दीवानु । पूरे गुर के शब्द पछानु ॥
नानक गुर ते रह्या आव न जानु ॥ ४३ ॥
साध सगति कारज सिद्ध होई । पंच मिलहि तिन की मति होई ॥
मनु मानिअै अघ दूख न होई । मन मानिअै निर्भउ घरि सोई ॥
मनु मानिअै मनूआ थिर थाई । नानक दर्शन कउ बलिजाई ॥४४॥
सतिगुर का मन शब्दु पछानु । त्रैदल साधु मिलावै मानु ॥
सो पंचा ऊपरि परधानु ।
पच मिलहि छत्र सिर लेइ । वैसे तपत सुअदल करेइ ॥
करै तपावस अदली आपे । उन्मन कालु कउ मारै चापे ॥४५॥
पुरुप बैठा हुश्यारी । घर दर राखै शब्द विचारी ॥
बाहरि लीला एकु । बूझहु ज्ञानी करहु विवेकु ॥

अकथ कथा का तत्तु बीचारु । तूँ भै भजन अलख अपारु ॥
निकट वसहि संगी मनु माहि । सहजभाय मिलिआ बुध ताहि ॥३१
साध सगति मिल ज्ञानु प्रगासै । साध सगति मिल कवल बिगासै ॥
साध सगति मिलिआ मनु माना । ना मैं ना हउँ सोह जाना ॥
सगल भवन महि एका जोति । सतिगुर पाया सहज सरोत ॥
नानक किलविप काट तहाँ ही । सहजि मिलै अंम्रित सीचाही ॥३२॥
सहजि मिलै मनु सुन्न समाना । सहजि मिलै मनु ते मनु माना ॥
सहजि मिलै घर लहै निधानु । सहजि मिलै दरगहि प्रवानु ॥
सहजि मिलै सचा नीसानु । सहजि मिलै नानक घरु जानु ॥३३॥
सचु मिलै सची पति आई । सचु मिलै फुनि काल न खाई ॥
सचु मिलै साचे घरि जाई ॥
सचु मिलै गुर ज्ञानु अचलु । सचु मिलै सुख लहै म
सचु मिलै नानक दर मलु ॥ ३४ ॥
पच मिलै अस्थिर मनु पावै । पंच मिलै गरभ
साध सगति महि ऋद्धि सिद्धि वुद्धि ज्ञानु । पच मिलै
पंच मिलै पावहि प्रभ सोय । नानक गुर मिलीअै
साध सगति गुर ज्ञानु समावै । साध सगति ६
मनु शब्द अतीत विरला जनु कोय । तिसु घटि ु
दूजै भाय साक्त दुख लागै । नानक ओइ आइ ज
मनु मानै मनु माहि अनंदु । घटि घटि चीनै
सुख दुख दाता वपशिआ मनु आय । अकथ क
मनु निहचल पूरी गुरमति । मनु निहचल
मनु निहचल सत संगति पावै । नानक सो दर्शन
पंच मिलहि परवार सधार । मूल ध्यान घर
सतिगुर मिलै भउभंजन गाईअै । नानक
शब्द पछान मिलै गुर ज्ञानु । नानक तारू
सभि सखीआँ मिलि मंगल गाया । जिस
सचु मंगल सहीआ गुण गाय । सचु मंगल

अस्थिर कत मिलिआ सिउ लाय ॥
सुरत शब्द आवै परतीत । भगति भाय सचु गुण संगीत ॥
पंच मिलहि संग्राम न हारै । गुर ज्ञानु खड्गु लै मनु मनसा को मारै ॥३९
मनु निहचल घरि अम्रित रस पाया । अनरसु तयागै सहजिं सुभाया ॥
सो अविनाशी सिर छत्र अपारा । पंच मिलहि तत्तु कार्ज सारा ॥
साध सगति मिलि दरगहि मानु । नानक साध सगति मिल निरजनु जानु ॥४०॥
सतिगुर परचै सो प्रभ पाया । तिसकी जोति त्रिभवन सोभाया ॥
दूर दरद मन साचा भाउ । आदि जुगादि सचु पसाउ ॥
गुण निधानु कैवल तिहु लोइ । नानक आवागवण न होय ॥४१
इहु मनु मानिआ आतम वीचारु । मनु निहचलु पावै पद सारु ॥
साध सगति गुर शरनि रहाउ । विन अभिभगती आवै जाउ ॥
नानक सो प्रभ जुग जुग गाया । सतिगुर मिलीअै इहु पद पाया ॥
अमर पद चीनि रहे लिव लाई । नानक इत रस कालु न खाई ॥ ४२ ॥
कचहुं कचन होय गुरमति लाल । पंच मिलहि तहिं लाल गुलाल ॥
पंच मिलहि हरि नदरि निहाल ॥
जुग जुग सचा अमर दीबानु । पूरे गुर के शब्द पछानु ॥
नानक गुर ते रह्या आव न जानु ॥ ४३ ॥
साध सगति कारज सिद्ध होई । पंच मिलहि तिन की मति होई ॥
मनु मानिअै अघ दूखे न होई । मन मानिअै निर्भउ घरि सोई ॥
मनु मानिअै मनूआ थिर थाई । नानक दर्शन कउ बलिजाई ॥४४॥
सतिगुर का मन शब्दु पछानु । त्रैदल साधु मिलावै मानु ॥
सो पंचा ऊपरि परधानु ।
पच मिलहि छत्र सिर लेइ । वैसे तपत सुअदल करेइ ॥
करै तपावस अदली आपै । उन्मन कालु कउ मारै चापै ॥४५॥
चैतन्य पुरुष बैठा हुश्यारी । घर दर राखै शब्द विचारी ॥
अंतरि बाहरि लीला एकु । बूझहु ज्ञानी करहु विवेकु ॥

अकथ कथा का तत्तु बीचारु । तूं भै भजन अलख अपारु ॥
निकट बसहि संगी मनु माहि । सहजभाय मिलिआ बुध ताहि ॥३१
साध संगति मिल ज्ञानु प्रगासै। साध संगति मिल कवल बिगासै॥
साध संगति मिलिआ मनु माना । ना मैं ना हउँ सोह जाना ॥
सगल भवन महि एका जोति । सतिगुर पाया सहज सरोत ॥
नानक किलविप काट तहाँ ही । सहजि मिलै अंम्रित सीचाही ॥३२॥
सहजि मिलै मनु सुन्न समाना । सहजि मिलै मनु ते मनु माना ॥
सहजि मिलै घर लहै निधानु । सहजि मिलै दरगहि प्रवानु ॥
सहजि मिलै सचा नीसानु । सहजि मिलै नानक घरु जानु ॥३३॥
सचु मिलै सची पति आई । सचु मिलै फुनि काल न खाई ॥
सचु मिलै साचे घरि जाई ॥
सचु मिलै गुर ज्ञानु अचलु । सचु मिलै सुख लहै महलु ॥
सचु मिलै नानक दर मलु ॥ ३४ ॥
पच मिलै अस्थिर मनु पावै । पंच मिलै गरभ जोनि न आवै॥
साध संगति महि ऋद्धि सिद्धि बुद्धि ज्ञानु । पच मिलै तव मुक्त ध्यानु ॥
पच मिलै पावहि प्रभ सोय । नानक गुर मिलीऐ कार्ज सिद्ध होय॥३५
साध संगति गुर ज्ञानु समावै । साध संगति दरगहि पत पावै ॥
मनु शब्द अतीत विरला जनु कोय । तिसु घटि दुतीआ भाउ न होय॥
दूजै भाय साक्त दुख लागै । नानक ओइ आइ जाहि अभागै ॥३६ ॥
मनु मानै मनु माहि अनंदु । घटि घटि चीनै केवल चंदु ॥
सुख दुख दाता बपशिआ मनु आय । अकथ कथा की सोझी पाय ॥
मनु निहचल पूरी गुरमति । मनु निहचल तब वहै तपत्त ॥
मनु निहचल सत संगति पावै । नानक सो दर्शन पैधा जनु जावै ॥३७
पंच मिलहि परवार सधार । मूल ध्यान घर ओअंकार ॥
सतिगुर मिलै भउभजन गाईऐ । नानक अनहद शब्द समाईऐ ॥
शब्द पछान मिलै गुर ज्ञानु । नानक तारू थाहि पछानु ॥ ३८ ॥
सभि सखीआँ मिलि मंगल गाया । जिस मंगल शोभा सचु पाया ॥
सचु मंगल सहीआ गुण गाय । सचु मंगल सूहागु न जाय ॥

अस्थिर कत मिलिआ सिउ लाय ॥
सुरत शब्द आवै परतीत । भगति भाय सचु गुण संगीत ॥
पंच मिलहि सग्राम न हारै । गुर ज्ञानु खड्गु लै मनु मनसा को मारै ॥३९
मनु निहचल घरि अम्रित रस पाया। अनरसु त्यागै सहजि सुभाया ॥
सो अविनाशी सिर छत्र अपारा। पंच मिलहि तत्तु कार्ज सारा ॥
साध सगति मिलि दरगहि मानु। नानक साध सगति मिल निरजनु जानु ॥४०॥
सतिगुर परचै सो प्रभ पाया । तिसकी जोति त्रिभवन सोभाया ॥
दूर दरद मन साचा भाउ । आदि जुगादि सचु पसाउ ॥
गुण निधानु केवल तिहु लोइ । नानक आवागवण न होय ॥४१
इहु मनु मानिआ आतम वीचारु । मनु निहचलु पावै पद सारु ॥
साध सगति गुर शरनि रहाउ । बिन अभिभगती आवै जाउ ॥
नानक सो प्रभ जुग जुग गाया। सतिगुर मिलीअै इहु पद पाया ॥
अमर पद चीनि रहे लिव लाई। नानक इत रस कालु न खाई ॥ ४२ ॥
कचहुँ कचन होय गुरमति लाल। पंच मिलहि तहिँ लाल गुलाल ॥
पंच मिलहि हरि नदरि निहाल ॥
जुग जुग सचा अमर दीवानु । पूरे गुर के शब्द पछानु ॥
नानक गुर ते रह्या आव न जानु ॥ ४३ ॥
साध संगति कारज सिद्ध होई। पंच मिलहि तिन की मति होई ॥
मनु मानिअै अघ दूख न होई । मन मानिअै निर्भउ घरि सोई ॥
मनु मानिअै मनूआ थिर थाई। नानक दर्शन कउ बलिजाई ॥४४॥
सतिगुर का मन शब्दु पछानु । त्रैदल साधु मिलावै मानु ॥
सो पचा ऊपरि परधानु ।
पच मिलहि छत्र सिर लेइ । वैसे तपत सुअदल करेइ ॥
करै तपावस अदली आपै । उन्मन कालु कउ मारै चापै ॥४५॥
चैतन्य पुरुप वैठा हुश्यारी । घर दर राखै शब्द विचारी ॥
अंतरि बाहरि लीला एकु । बूझहु ज्ञानी करहु बिबेकु ॥

अकथ कथा का तत्तु बीचारु । तूं भै भजन अलख अपारु ॥
निकट बसहि संगी मनु माहि । सहजभाय मिलिआ बुध ताहि ॥३१
साध सगति मिल ज्ञानु प्रगासै। साध सगति मिल कवल बिगासै॥
साध सगति मिलिआ मनु माना । ना मैं ना हउँ सोइ जाना ॥
सगल भवन महि एका जोति । सतिगुर पाया सहज सरोत ॥
नानक किलविष काट तहाँ ही । सहजि मिलै अंम्रित सीचाही ॥३२॥
सहजि मिलै मनु सुन्न समाना । सहजि मिलै मनु ते मनु माना ॥
सहजि मिलै घर लहै निधानु । सहजि मिलै दरगहि प्रवानु ॥
सहजि मिलै सचा नीसानु । सहजि मिलै नानक घरु जानु ॥३३॥
सचु मिलै सची पति आई । सचु मिलै फुनि काल न खाई ॥
सचु मिलै साचे घरि जाई ॥
सचु मिलै गुर ज्ञानु अचलु । सचु मिलै सुख लहै महलु ॥
सचु मिलै नानक दर मलु ॥ ३४ ॥
पच मिलै अस्थिर मनु पावै । पंच मिलै गरभ जोनि न आवै॥
साध सगति महि ऋद्धि सिद्धि बुद्धि ज्ञानु। पच मिलै तब मुक्त ध्यानु ॥
पच मिलै पावहि प्रभ सोय। नानक गुर मिलीऐ कार्ज सिद्ध होय॥३५
साध सगति गुर ज्ञानु समावै । साध सगति दरगहि पत पावै ॥
मनु शब्द अतीत विरला जनु कोय। तिसु घटि दुतीआ भाउ न होय॥
दूजै भाय साक्त दुख लागै । नानक ओइ आइ जाहि अभागै ॥ ३६ ॥
मनु मानै मनु माहि अनंदु । घटि घटि चीनै केवल चंदु ॥
सुख दुख दाता बपशिआ मनु आय। अकथ कथा की सोझी पाय ॥
मनु निहचल पूरी गुरमति । मनु निहचल तब बहै तपत्त ॥
मनु निहचल सत सगति पावै। नानक सो दर्शन पेधा जनु जावै ॥३७
पंच मिलहि परवार सधार । मूल ध्यान धर ओअंकार ॥
सतिगुर मिलै भउभजन गाईऐ । नानक अनहद शब्द समाईऐ ॥
शब्द पछान मिलै गुर ज्ञानु । नानक तारू थाहि पछानु ॥ ३८ ॥
सभि सखीआँ मिलि मंगल गाया। जिस मंगल शोभा सचु पाया॥
सचु मंगल सहीआ गुण गाय । सचु मंगल सूहागु न जाय ॥

राखै बस्तु एक लिवलावै । चोर न पैसे दूत न खावै ॥
गगन अगंम अरंपर वासा । नानक प्रभ सेवक निकट निवासा ॥४६॥
काल कंटक तिश्ना गलि कीनी । आत्म राम गुरमति सचु चीनी ॥
काल बिकालु न आवस नेरा । प्रेम अगनि गुर शब्द निवेरा ॥
जन्म मरन की चूकी कान । नानक हरि भजु मुक्त निधान ॥४७
सचु अस्थिरु पच सागर मॅझारे । अदल करै अपने बीचारै ॥
पंचा का जो जानै भेउ । ओहु अलप निरंजन करता देउ ॥
सो अगम निगम का जाणै जाणु । नानक घटि घटि पुरुष सुजानु ॥ ४८ ॥
सो बूझै जिसु आपु बुझावै । सतिगुर शब्द अनहद पति पावै
इहु मनु समझि अतु घरि पावै । मन तिप्तै फिर भूख न आवै
भरम जाय सतिगुर मति आवै । नाथहि नाथ निरजन पावै ॥
हउमैं जाय ताँ इह रस पावै ॥ ४९ ॥
गुरमति उपजै प्रेम ज्ञानु । गुरमति लागै सहज ध्यानु ॥
इन विधि आपे आपु पछानु ॥
गुरमुखि उलटी नाउ तरावै । नानक गुरमुखि अगनि बुझावै ॥५०॥
सहज सतोप न मनहि डोलावै । निर्भउ घर बसै न चोटा खावै ॥
एकहि रचहु एक करि जाण । एको ही त्राण[1] निमाणिआँ का माण॥
नानक इह रसु कालु न चापै । ताँ गुरमति आपु पछानै आपै ॥५१॥
अगनि बुझी मनु शीतल भया । अनरसु त्यागि महारसु लया ॥
गुरमति मनु चलता ग्रिह राखै । गुरमुख सचु समायण चाखै ॥
अकथ कथै जुग जुग परवाणु । नानक सर्ब निरतरि एको जाणु ॥५२
गुरमुखि जोग पवन अभ्यास । गुरमति वेद सिमृति अभ्यास ॥
गुरमुखि नाद वेद धुनि बाणी । गुरमुख जीआ जुगति समाणी ॥
गुरमुखि तत्तु निरजनु गाया । गुरमुखि नानक मनु पत्याया ॥
गुरमति सर्ब देवा इक सेवा । नानक चीनस अलप अभेवा ॥५३॥
गुर की मति को ले न जाइ कहही । मन्मुख निगुरे जम पुर रहही ॥
सिर जम ककर अति दुख सहाहि । इउ गरभि गलहि बहु जोनि भरमाहि ॥५४

(१) रत्तक ।

गुरमुखि अघड़ घडावै थाट । गुरमति ले पूरा नही घाट ॥
गुरमति टेक टिकै नहि मनूआ डोलै । गुरमति शॉत सहजि घरि बोलै ।
गुरमति पूरा तोल अतोलै । नानक गुरमति तत्तु विरोलै ॥५६॥
गुरमति अस्थिरु चितु मनु माना । गुरमति लेइ सोई परधाना ॥
गुर की मति ले रसक रसाई । गुरमति लेइ न कतहूं धाई ॥
सतिगुर का सेवक सो हितकारी । नानक सहज मिलै प्रभ किरपा-धारी ॥५७
साध संगति बानी मनि भावै । कहै सुनै मनु सुन्न-समावै ॥
इत रसु जम जंदारु न लावै । गुरमति लाहा मूल करावै ॥
गुरमति संगति मनु ठहरावै । गुरमति नानक जो सेव कमावै ॥५८॥
दर्शन पावै सो वडभागी । आतम चीनि भए वैरागी ॥
सदा दयालु दया प्रभ धारी । हउमै त्याग मिलै बनवारी ॥
इत रस जन्म मरन दुख जावै । नानक गुरमति अवगति कउ पावै ॥५९॥
अवगति नाथ न लखिआ जाय । बिश्न महेश रहे लिव लाय ॥
तॉके दर्शन कउ बिललाय । सिद्ध साधक मुनि जोगी ध्याय ॥
जोगी जती तपसी गुरज्ञानी । अकथ अपार साधू गुर ज्ञानी ॥
रहै निरालम अकथ कहानी ॥
अकथ कथा लीनी मनु मानिआ । नानक निहचल घटि २ जानिआ ॥६०॥
अगम अलप गुर दीआ दिखाई । सतिगुर मिलीऐ तिश्ना भउ जाई
मूल पछॉन सु ब्रह्मज्ञानु । इहु मनु शीतलु ब्रह्म ज्ञानु ॥
आदि अंत का सपा सहाई । नानक सतिगुर सोझी पाई ॥६१॥
प्रभ से प्रीतम तजहि गवारु । आनि आनि मीतहि वेकार ॥
दुख कर्मा के बधे कालु सतावै । सुरति शब्द बिनु मुक्ति न पावै ॥
जन्महि मरहि काल के बॉधे । कालु न छोडै बिनु हरि रसु राधे ॥
बिन हरि मीत सखा नॉ कोय । नानक सहजे होय सो होय ॥६२
आत्म प्रबोध अतीत विचारी । आदि निरंजन प्रभ मिलै मुरारी ॥
सतिगुर शब्द कीआ परधान । सची दरगहि सचा मानु ॥

राखै बस्तु एक लिवलावै । चोर न पैसे दूत न खावै ॥
गगन अगंम अरंपर वासा । नानक प्रभ सेवक निकट निवासा ॥४६॥
काल कंटक तिश्ना गति कीनी । आत्म राम गुरमति सचु चीनी ॥
काल बिकालु न आवस नेरा । प्रेम अगनि गुर शब्द निबेरा ॥
जन्म मरन की चूकी कान । नानक हरि भजु मुक्त निधान ॥४७
सचु अस्थिरु पच सागर मँझारे । अदल करै अपने बीचारै ॥
पंचा का जो जानै भेउ । ओह् अलप निरजन करता देउ ॥
सो अगम निगम का जाणै जाणु । नानक घटि घटि पुरुप सुजानु ॥ ४८ ॥
सो बूझै जिसु आपु बुझावै । सतिगुर शब्द अनहद पति पावै ॥
इहु मनु समझि अतु घरि पावै । मन तिप्ते फिर भूख न आवै ॥
भरम जाय सतिगुर मति आवै । नाथहि नाथ निरजन पावै ॥
हउमैं जाय तॉ इह रस पावै ॥ ४९ ॥
गुरमति उपजै प्रेम ज्ञानु । गुरमति लागै सहज ध्यानु ॥
इन बिधि आपे आपु पछानु ॥
गुरमुखि उलटी नाउ तरावै । नानक गुरमुखि अगनि बुझावै ॥५०॥
सहज सतोप न मनहि डोलावै । निर्भउ घर बसै न चोटा खावै ॥
एकहि रचहु एक करि जाण । एको ही त्राण[१] निमाणिआँ का माण॥
नानक इह रसु कालु न चापै । तॉ गुरमति आपु पछानै आपै ॥५१॥
अगनि बुझी मनु शीतल भया । अनरसु तयागि महारसु लया ॥
गुरमति मनु चलता ग्रिह राखै । गुरमुख सचु समायण चाखै ॥
अकथ कथे जुग जुग परवाणु । नानक सर्ब निरतरि एको जाणु ॥५२
गुरमुखि जोग पवन अभ्यास । गुरमति वेद सिमृति अभ्यास ॥
गुरमुखि नाद वेद धुनि बाणी । गुरमुख जीआ जुगति समाणी ॥
गुरमुखि तत्तु निरजनु गाया । गुरमुखि नानक मनु पत्याया ॥
गुरमति सर्ब देवा इक सेवा । नानक चीनस अलप अभेवा ॥५३॥
गुर की मति को ले न जाइ कहही । मन्मुख निगुरे जम पुर रहही ॥
सिर जम ककर अति दुख सहाहि । इक गरभि गलहि बहु जोनि भरमाहि ॥५४

(१) रक्षक ।

गुरमुखि अघड़ घडावै थाट । गुरमति ले पूरा नही घाट ॥
गुरमति टेक टिकै नहि मनूआ डोलै । गुरमति शॉत सहजि घरि बोलै ॥
गुरमति पूरा तोल अतोलै । नानक गुरमति तत्तु विरोलै ॥५६॥
गुरमति अस्थिरु चितु मनु माना । गुरमति लेइ सोई परधाना ॥
गुर की मति ले रसक रसाई । गुरमति लेइ न कतहूं धाई ॥
सतिगुर का सेवक सो हितकारी । नानक सहज मिलै प्रभ किरपा धारी ॥५७
साध सगति बानी मनि भावै । कहै सुनै मनु सुन्न समावैं ॥
इत रसु जम जंदारु न लावै । गुरमति लाहा मूल करावै ॥
गुरमति सगति मनु ठहरावै । गुरमति नानक जो सेव कमावै ॥५८॥
दर्शन पावै सो वडभागी । आतम चीनि भए वैरागी ॥
सदा दयालु दया प्रभ धारी । हउमै त्याग मिलै बनवारी ॥
इत रस जन्म मरन दुख जावै । नानक गुरमति अवगति कउ पावै ॥५९॥
अबगति नाथ न लखिआ जाय । बिश्न महेश रहे लिव लाय ॥
तॉके दर्शन कउ बिललाय । सिद्ध साधक मुनि जोगी ध्याय ॥
जोगी जती तपसी गुरज्ञानी । अकथ अपार साधू गुर ज्ञानी ॥
रहै निरालम अकथ कहानी ॥
अकथ कथा लीनी मनु मानिआ । नानक निहचल घटि २ जानिआ ॥६०॥
अगम अलप गुर दीआ दिखाई । सतिगुर मिलीऐ तिश्ना भउ जाई
मूल पछॉन सु ब्रह्मज्ञानु । इहु मनु शीतलु ब्रह्म ज्ञानु ॥
आदि अंत का सपा सहाई । नानक सतिगुर सोझी पाई ॥६१॥
प्रभ से प्रीतम तजहि गवारु । आनि आनि मीतहि वेकार ॥
दुख कर्मा के बधे कालु सतावै । सुरति शब्द बिनु मुक्ति न पावै ॥
जन्महि मरहि काल के बॉधे । कालु न छोडै बिनु हरि रसु राधे ॥
बिन हरि मीत सखा नॉ कोय । नानक सहजे होय सो होय ॥६२
आत्म प्रबोध अतीत विचारी । आदि निरंजन प्रभ मिलै मुरारी ॥
सतिगुर शब्द कीआ परधान । सची दरगहि सचा मानु ॥

आतम वीचारी अगनि निवारी । आद अंत जन करणी सारी ॥
नानक जुग जुग भगति निरारी ॥ ६३ ॥
गुर शब्दी मनु भया विगासु । सतिगुर परचै मिलै प्रभु तासु ॥
घटि घटि साचा प्रेम आनंदु । आदि अंति भजु गुन गोबिंदु ॥
गुन गोबिंद की कवन वडाई । त्रैलोक मिल किनै कीम न पाई ॥
नानक सचे सच वडाई ॥ ६४ ॥
मनमत को भूलै तिस गुर समझावै । पूर्व लिखिआ साधू गुर पावै ॥
सतिगुर मिलै पूर्व सजोगु । आयै हर्ष न गयै सोगु ॥
हर्ष सोग समसर कर जाणै । नानक निरगुण सत तिसु भगत पछानै ॥ ६५ ॥
निरगुण कथा जाके मन भावै । निर्मल निश्चल सो घर थिर पावै ॥
अपिओ पीए अंम्रित रसु नावै । आदि अनील अनादि समावै ॥
इत रसु जम कै संगि न जावै । नानक प्रेम पदार्थ पावै ॥ ६६ ॥
जिस जन दरगहि मिलै वडाई । त्रिभवण जोति रहै लिव लाई ॥
चचल मति थाकी निश्चल बुधि पाई । साध संगति महि सुरत समाई
मन मान्या गुर अलप लपावै । नानक सहजि समाधि लगावै ॥६७

॥ इति श्री प्राण संगली गुर ग्रथे पचदशमो ध्याउ सपूर्ण ॥१५॥

॥ १ ॐ श्री सतिगुर नानक निरबाण प्रसाद ॥

॥ अध्याय १६ ॥

श्री बाबे जी जा पँद्रह्वा ध्याउ सुणाया ता राजे शिवनाभ बेनती कीती—जी मिहरवान ! सतिगुर जी की बुद्ध कौन कहीए ? जिसकरि सिक्ख का कल्याण होता है, अरु मुक्ति पदार्थ पावता है । अरु जी गुर बुद्ध ते प्रगास जो होता है सो क्योंकरि होता है ? अरु जी वहु कौन आराधन है अरु कौन ध्यान है जिस करि मुक्त होईता है (ससार ते) ? सो कृपा करि बरनण करो जी ! जा राजे प्रश्न करिआ ता सदा दयाल पुरुख गुर परमेश्वर जी परमतत्व का ध्यान बोले—

॥ राग केदारा गौड़ महला १ ॥

काल वल निर्जोग भगति ।

बुद्धि प्रगास मुक्ति गुरु ध्यानु । इस ग्रहि मदिर आत्मे कउ जानु ॥
रामु रसायणु सहिज पछानु ॥१॥ रहाउ ॥

सो ग्रही जो भगति ग्रहि जागै। तिसु ग्रिह मंदिर चोरु न लागै॥
राखै वस्तु गुरमुखि निज ध्यान। धर्म दया दृढ़ पुन्न परान॥
परमहंसु परम पुरुप परधान॥
उहु पावै मुक्ति न फासै जम जाल। तिसु कर्म किंतु नाही शिरि काल॥
नानक दया करी हरि दयाल॥१॥
दाना बीना देखै, बीचारु। हैाँमैं दूख मिटै वेकारु॥
कायाँ हरि मंदिरु ब्रह्म समाना। सत शब्द निहकेवल ध्याना॥
भगति भाउ करि रहहि अतीता। कहि सुनि बूझहि हरि रस गीता॥
त्रिकुटी छूटै मुक्ति दुआरु। अम्रित पीवै निर्मल धारु॥
सर्व मुक्ति वैकुंठ बुद्धि पाई। नानक सो प्रभ प्रान सषाई॥२॥
सपा सपाई सो दीवान। भगति वडाई भगति नीसान॥
असख नाम प्रभ सूचा करै। जपि केवल नामु उपाधि दुख टरै॥
केवल रामु रहिआ भरपूरि। केवल नामु मेरै संग हजूरि॥
केवल राम रवते[1] जाणु। नानक गुरमुखि पावहि माणु॥३॥
इह कुटंथ त्रिष्णा ग्रिह सागर, भूख पिआसे त्रिप्त नही।
माया ममता लोभ नर मूठे, अहिनिशि तिनके जन्म जाहीं॥
बिन गुर शब्दै शांति न आवै। जलतु फिरै तिस नहि तिप्रावै॥
शब्दि सुरति नहीं बूझसि बवरे नटूआ ज्यों संगि भुलाना।
नानक तप्र बुझी गुर शब्दी जब चीनिआ आतम रामा॥४॥
सुत बंधिप माया मद माते सपा सैन बाप माई।
नामु बिना कछु संगि न चालै सब झूठी प्रीति लगाई॥
नानक छोडि चले ग्रिह मंदिर खिण महि भई पराई।
तब ससा दुख न लागै बिनशै इऊँ साक्त भुख न जाई॥
धर्मराय जब डंडु लगाना तब शिरि धुनि बहु पछुताई।
अंध गुवार किछु नदरि न आवै दर की पविर न पाई॥
सतिगुर मिलै ताँ सहसा भागै नानक हरि केवल जोगु कमाई॥५

---

(१) रमणहारा (व्यापक)।

ब्रह्मण सो जो ब्रह्म कैा चीनै उत्तम सो परधाना।
अस्थिर चीत अस्थिरु मति पूरी ब्रह्मज्ञान इसनाना ॥
निर्मल संतोप सदा सचु शिक्षा क्षमा दया गायत्री।
जपु तपु सजमु सुरति सदा तपु धीर्ज वच 'सत' शांती ॥
मनु जीते जगु जीति जनेऊ पूजै हरि देउ निरारा।
एक शब्दु इकु कथा बीचारी सो चीनै ब्रह्म अपारा ॥६॥
परम तत्त की हिरदै माला मनि तनि एक सुभाया।
हरि हरि हारु कंठि लै पहिरै हरि हिरदै हरि राया ॥
अठसठि मजनु मस्तकि टीका अनत न मनु डोलाया।
अंतरिध्यानु धर्मु सचु पड़िआ मान सरोवर न्हाया ॥
जिह्वा इंद्री जत जुगति जनेऊ अनदिनु सद ही मुक्ता।
जोग जुगति सचु एको एकी मनु मानिआ ब्रह्म सु जुगता ॥७॥
निर्मल कथा अकथ कउ चीनै निर्मल देह पुनीता।
निर्मल नामु भोजनु करि त्रिपतै पंचे इंद्री जीता ॥
निर्मल जोति निहकर्म निरंजन निर्वैरु पूजा न जुगता।
निर्वैर निरोधर[1] नरु निहकेवल ब्रह्म ज्ञानी भगता ॥
ताका दर्शन पुन्न फलु पावै नानक निर्भउ हरि चेता।
कोटि कुटंतरि महि विरला को साधू पुन्न प्रायण[2] वेता ॥८॥
अहिनिशि निर्मलु निर्मलु मनु धोती, ब्रह्म कर्म का वेता।
एकु ध्यानु सचु माल प्रीती सूचा मनु तनु चेता ॥
निर्मलु साखी सत संतोपी निर्मलु नामु सुहेता।
ब्रह्म कर्म करि ब्रह्मु पछाता सची सुरत सुचेता ॥
निहकर्म का तत्तु अभिअंतरि सूचा, सूचे मनु बुद्धि देही।
सूचे सत साच कउ चीनै, प्रभ आपे दया करेही ॥ ९ ॥
रहै अतीत आप कउ चीनै, सभ महि रहै निरारा।
सुत बंधप माया ते मुक्ता, सभ सुख हित हरि पिआरा ॥

(१) जिस का किसी के साथ विरोधता होवे। (२) पुन्न-नाम पवित्र का है सोई परम आधा भूत वस्तु (ऐसे शुद्ध परम तत्त्व का जाननेवाला)।

ते भ्रमि भूले नरक पचानु ॥
साध संगति विनु भरमु न नासै । निम्त निम्त भरमवि काल ग्रासै ॥२१
जो इस मंदर का महलु पछानै । तपति वहै अदली राजानै ॥
इस ग्रहि मंदर महि हीरे लालु । नानक परखै नदरि निहालु ॥
सची कार धुरहुँ फुरमाई । नानक सचे सच वडिआई ॥ २२ ॥
मान सरोवरि न्हावहिँ गुर ज्ञानी । गुरमुखि बूझीअलेअकथु कहानी
संतोष सरोवरि सचु इस्नानु । अठसठ का टीका कर्म नीशानु ॥
मनु निर्मलु सूचा सचु होई नानक इत रसि पुनर्पि[1] जन्म न होई ॥२३
ससा भ्रमु त्यागि त्रिकुटी मिल फूटी, कवलु विगासे भाई ।
आदि जुगादि अनाहदि लीणा, साची सुरति समाई ॥
केवल गुर ज्ञान रत्न प्रगासिआ पुनर्पि जन्मु न राई ।
निरंकार निज महली वासा नाँ आवै नाँ जाई ॥ २४ ॥
किलविष काटै शरनि परै पारु दीसै भउजल ससारा ।
सतिगुर बोहिथ आदि जुगादी भउजलि पार उतारनिहारा ॥
इकु आवहिँ इकु (चलि चलि) जाही ।
वेद कतेव पुकारहिँ बपुडे इहु अकथु कथा मन माँही ॥
भउ दुत्तर तारन दुःख निवारन, साचा सिरजनिहारो ।
नानक प्रभ नदरि मुक्ति दरु खूलै, जिसु सगति मुक्ति दुआरो ॥२५॥
सतिगुर का सेवकु इद्री का जती । हिरदे का मुक्ता जिह्वा ते सती ॥
चंचल चाय न जाय तमाशै । जूए जाय न खेलै पासै ॥
अतरि ज्ञानु हरि चरन निवासै । सूरज कवल किरणि प्रगासै ॥
सची जोति सचि, सहजि विगासै ॥ २६ ॥
अंतरि साचा नामु निधानु । सदा दैयाल सर्व सोजानु ॥
हिरदै हरि गुन हरि परम निधानु । अज्ञान मारै तउ मिलिआ जानु॥
गुन का गर्बु न कुल का भेदु । नानक सो अमरु कंधु नहीं छेदु ॥२७॥
अस्थिरु मनु मति सहजि घरि रहना । अकथु कथा जम का डहु न सहना ॥

(१) फिर, दूसरीबार ।

सचा साहिब अलखु अलेपु । घटि घटि वरतै तिसु रूपु न रेपु ॥
जो आया सो निहचउ जाय । नानक एकु सचु रहिआ समाय ॥१५
जैसी जानसि पूजसि तैसो । घटि घटि देखु ज्ञानी ग्रैसो ॥
क्या जपु क्या तपु क्या ब्रतु पूजो । जब लग ब्रह्म न चीनसि नीको[1] ॥
विवेक बुद्धि हरि भगति सुहेला । इतु रसि मन मानिआ गुर चेला॥१६
गुर चेले का भया मिलापु । चूका सोगु विजोगु संतापु ॥
जन्मु मरनु दुख कालु न व्यापै । संसा भरमु न काल संतापै ॥
निर्मल थानि रहिआ भरपूर । आस अँदेसा सभ दुख दूर ॥
मन बुद्धि जीअ जोति इकु ठायँ । मनु पवना ले सुन्न समाय ॥१७॥
अमरबेलि अम्रित फलु लागा, कर्म फलु-कहाँ भाई ।
पडित ज्ञानी सिद्ध साधिको, समझि बतावहिँ राई ॥
तिलु महि तेलु जत्नु कर पाईऔ, जब कोल्हू लठि इक बैला ।
रस महि दृष्टि धरी तउ पावै, इऊं अतरिजामी भैला[2] ॥
दूध महि घिरतु काष्ट महि अगनी, बिनु जत्नु घिधी कहाँ पाईऔ ॥
नाना भेप रंग बहुतेरै,[3] नानक नदरि समाईऔ ॥ १८ ॥
राम नामि लिव लागसि छूटै, सभ रस या घट माँही
ब्रह्मा बिश्नु महेश सुदेवा, सो अलपु न लपिआ जाही ॥
केवलु ब्रह्मु न जाई लखनो, सभ महि गुप्त निराला ।
एकु अनेकु सर्ब को दाता, सो पूर्नु दीन दिआला ॥
अदृष्ट अगोचर कथनि न कथीऔ, सतिगुर परचे पाईऔ ।
तुरीआ ततु आप कउ चीनै, नानक सहज समाईग्रै ॥ १९ ॥
अध्यात्मु कर्मु किरतु समानिआ । अंतरिगति अतरि विधि जानिआ
अंतरि बाहरि भिन्न न कोई । सो बूझै जिसु किरपा होई ॥
सो बूझै जो ब्रह्म ज्ञानी । घटि घटि रवि रहिआ निरबानी ॥ २० ॥
जो इस मदिर का महलु न पावै । सो मरि मरि जन्मै ग्रावै जावै ॥
जितु घटि शब्दु नाँही गुर ज्ञानु । उजड़ थेहु मटूआ[4] माशानु ॥

(१) यथार्थ रीति से, भली प्रकार । (२) सत्य सरूप, पिआरा । (३) अनत । (४) शमशान भूमि में जैसे मढ़ी उसारी हुई होती है-ऐसे ही ।

ते भ्रमि भूले नरक पचानु ॥
साध संगति विनु भरमु न नासै। निप्त निप्त भरमवि काल ग्रासै ॥२१
जो इस मंदर का महलु पछानै। तपति वहै अदली राजानै ॥
इस ग्रहि मंदर महि हीरे लालु। नानक परखै नदरि निहालु ॥
सची कार धुरहुँ फुरमाई। नानक सचे सच वडिआई ॥ २२ ॥
मान सरोवरि न्हावहिँ गुर ज्ञानी। गुरमुखि बूझीअले अकथु कहानी
संतोष सरोवरि सचु इस्नानु। अठसठ का टीका कर्म नीशानु ॥
मनु निर्मलु सूचा सचु होई नानक इत रसि पुनर्पि[1] जन्म न होई ॥२३
ससा भ्रमु त्यागि त्रिकुटी मिल फूटी, कवलु विगासे भाई।
आदि जुगादि अनाहदि लीणा, साची सुरति समाई ॥
केवल गुर ज्ञान रत्न प्रगासिआ पुनर्पि जन्मु न राई।
निरंकार निज महली वासा नाँ आवै नाँ जाई ॥ २४ ॥
किलविष काटै शरनि परै पारु दीसै भउजल ससारा।
सतिगुर बोहिथ आदि जुगादी भउजलि पार उतारनिहारा ॥
इकु आवहिँ इकु (चलि चलि) जाही।
वेद कतेव पुकारहिँ वपुडे इहु अकथु कथा मन माँही ॥
भउ दुत्तर तारन दुःख निवारन, साचा सिरजनिहारो।
नानक प्रभ नदरि मुक्ति दरु खूलै, जिसु संगति मुक्ति दुआरो ॥२५॥
सतिगुर का सेवकु इद्री का जती। हिरदे का मुक्ता जिह्वा ते सती ॥
चंचल चाय न जाय तमाशै। जूए जाय न खेलै पासै ॥
अतरि ज्ञानु हरि चरन निवासै। सूरज कवल किरणि प्रगासै ॥
सची जोति सचि सहजि विगासै ॥ २६ ॥
अंतरि साचा नामु निधानु। सदा दैयाल सर्व सोजानु ॥
हिरदै हरि गुन हरि परम निधानु। अज्ञान मारै तउ मिलिआ जानु॥
गुन का गर्बु न कुल का भेदु। नानक सो अमरु कंधु नहीं छेदु ॥२७॥
अस्थिरु मनु मति सहजि घरि रहना। अकथु कथा जम का डडु न सहना ॥

[1] (१) फिर, दूसरीबार।

आदि जुगादि रहहु हरि शरना। इतु रसि जानु जरा नहीं मरना॥
ऊची पउड़ी गुरु मति ले चलै। अनत विचारि चमकि ज्यौं तडै ॥२८
जो तिनि कीआ भला करि मानै। हउमैं जाय तं आपु पछानै॥
बाहरि जाते शब्दु गहि आनै। सर्व निरंतरि अलखु पछानै॥
आपु पछानि महिलि घरु जानै॥
शब्दि नादु की सुरति समावै। नानक सुन्न समाधि लगावै ॥२९॥
सर्व निरंतरि अलखु परधानै। एको एकी ब्रह्म पछानै॥
देखि विनोद मन माहि अनद। गुरमति पाए परमानंदु॥
गुरज्ञानु प्रायण सतिगुर का पूत। नानक सतिगुर गुर अवधूत॥३०
घटि घटि ब्रह्म सु गुरमुखि जाता। ज्यों जानिआ मनु मानै[१] राता॥
अगम निगम की जाणै बातां। सोई गुर पूरापुरुप बिधाता॥
जिन अपुने वशिगति पंच समाए। नानक घटि घटि अलखु सबाए ॥३१॥
मुक्ति तिप्ति नहिं अन घर जाय। सर्व निरंतरि तृप्त अघाय॥
मोह के जाल न फासै कबही। रहै अतीतु शब्दु गुर गहही॥
हरि हरि सूधा साचु दैयाला। नानक शरनि परे जग जीवनु हरि संत जना रखवाला॥
राखै राखनिहारु सुआमी, जिसके जन्त्र सबाए॥
आपे दाना आपे बीना, अलखु न लखना जाए ॥३२॥
हरि ऐसो मीत विसारिकै, क्या नवतन मीतु बिरानु॥
जमु मारे घत्ति[२] पिंजरै, अति करै खुलहानु[३]।
अति सपाई बीसरै, किसते लीचै दानु॥
अति काल पछुतापसी, नामु बिना क्या त्रानु[४]।
जनमि मरहि फुनि अवतरै, काची मत्ति देह निमानु ॥३३॥
जब धर्मराय तनु पीड़ीऐ, वशि कीता जम जदारि।
जब हरि लेखा मँगीऐ, बहि धरम-लेख वीचारि॥
कहाँ सु अउसुर मीतु से, सपा बंधपु सुत नारि॥
जग सिऊं प्रीति सु मिट गई, धधु थका सिरि कागु।
जिसु सपमु विसारी नानका, तिसु क्यों थिरु नाह[५] सोहागु ॥३४॥

(१) 'मानिआ' पाठ भी है। (२) डालकर। (३) लत=मर्दन; पाइमाल। (४) रक्षक।
(५) सच्चा पति।

सागर गहरा गाँदला अगनि बिंब असरालु[1] ।
मनमुख निगुरे बूडीअहि सीस मारे जमकालु ॥
भाय[2] भड़के तितु तनु पर त्रिया संगि रउणु[3] ।
तपति थंम्म गल लाईअहि तहँ संगि न साथी कउण ॥
तहँ आपे बपशे नानका गुरमुखि करणी सारु ।
नानक नामु अराधि तू सचि सवारणहारु ॥३६॥
पूरा सतिगुर जिसु मिलै, सचु बोलै पति परवाणु ।
देखि दर्शनु अउगुण हिरै, आतमरामु पछाणु ॥
अगनि मरै सुखि घरि बसै, अचिंत पुरुप की सेव ।
आतम जोति निरजना, आदि अंति गुरदेव ॥
से सूरा पूरा शब्दि गुरु, अकथु कथै बीचारि ।
नानक दरि सचै सचिआर सो हउमैं अगनि निवारि ॥३७॥
जो जन्मै सो जाय मरि जो आवै सो जाय ।
किसके कहीअहि घरि मंदर, हउमैं संगि काल बलाय ॥
तिष्णा तामसु लालची जासी मूलु गवाइ ।
तनु धनु साथि न चलसी राज रूप सभ छाइ[4] ।
कालु कड़कै शिरि खड़ा, जरु जीते जोबनु हारि ॥
नानक गुरु बिनु बिगुचीए[5] सो मुक्ति नहीं कुड़िआरि[6] ॥३८ ॥
गरभि सघारै कालु बलु अफ़रिउ[7] कालु असरालु ।
कालु सहारै मुनिवरा किंतु पया शिरि कालु ॥
कालु कड़कै शिरि खड़ा ज्यों पंखी सीचानु[8] ॥
कालु संघारै अंति कालि हुकमि सचै नीशानु ॥
सतिगुर कालु लिखिआ शिरि लेखु ।
आपि अकालु नानक सचु एकु ॥ ३९ ॥
सो अबिनाशी भरपुर रहिआ ताका अंतु न पारो ।
साहिब सेवहि संत भगत जन तिन राखै प्रान अधारो ॥

(१) भयानक, (ससार नामक भयानक जीव का नाम भी) है । (२) अगनी प्रचंड । (३) पर स्त्रियों से जो रमन करते हैं । (४) छाया (पर छाया) जेसे धूप की (नाशवत) होती हे । (५) घाटे, तोटे को ही प्राप्त होईता है । (६) पे झूठे । (७) हंकारी । (८) बाजपक्षी ।

त्रिभवनु जीअ काल वशि कीने सासि गिरासि कमाई ।
जो आया सो जाय स्वेरै उठि चलना हुकमु रजाई ॥
सभ सैं ऊपरि कालु सिआणा जगु बउरा नाम दुराई ।
जो अकालु वपशे जन अपने इकु तिलु पलु सचु वडिआई ॥४०॥
कोई फरू[1] नही काल करालै, थाके कर्मि कमाई ।
कटक काल सिर ऊपरि ठाँढा, सभ कालै नाथि चलाई ॥
नाँ को कालै मीत पिआरा, ना कालै (को) वैराई ।
अंतिकाल वलु हिरै न छोडै, सिध साधिक वुद्धि काई ॥
अपना कीआ कमावहि वपुरे, जैसी पुरवि कमाई ॥
वलु छलु करि लैजाय न छोडै, निर्भउ कालु सवाई ॥ ४१ ॥
कालु अहेरी[2] जीअ न छोडै, जलि थलि महीअलि सारे ।
अष्ट दिशा चहुँ कुड न छोडै, सुर्ग मिरतु पइआले ॥
गण गंधर्व मुनि काल ग्रासे, देवी देव सबाया ।
मुनिवर जोध सभ काल सघारै, जति जोगी जोगु कमाया ॥
जो सतिगुर शरनि परहि सत्संगति, हरि हिरदै अलपु ध्याना ॥
नानक राखि लेहु जन अपने, जहाँ गुर वचनी मनु माना ॥४२॥
गरभ संघारै काल बलु ऐसा, वालु बिनोद न शंक करै ।
भरि जोबनु तिसु कालु न छोडै, वृद्ध अवस्था दृष्टि करै ॥
जप तप किंतु न छोडै प्रानी, जो जुग केते जाँही ।
एह जरु जरवाना काल के, कुतरे रोग करहि तनु हीना ।
नानक शरनि परै हरि गुर की, हरि साध सगति रसु पीना ॥४३॥
कालु जीअन को पारधी[3] हुकमि लिखे नीशानु ।
भ्रमु पाखडु काल न छोडई, विनु हरि भगति क्या तानु ॥
लवि लोभ लै जाय रसातलि, भूले चोटाँ खाई ।
काम क्रोधि तनु भसमु सवाया, अंतवार पछुताई ॥

(१) पकड़नेवाला (बराबरी करनेवाला) । (२) शिकारी । (३) धीमर (जाल में फसानेवाला) ।

पाप पुन्न व्योहार सु करनो, दे दे लैनो साई ।
नानक भगति रते वैरागी, हरि साध सगति वुद्धि पाई ॥ ४४ ॥
सभ से उपरि कालु सिआणा । लिखिआ लेखु धुरे परवाणा ॥
सचे हुकमि कालु सघारे । मनमुखि निगुरे सीसि जमु मारे ॥
पिड पडे जीउ लैसी (आ) सिरि कालु कडके आय ।
नानक सचे नामु विनु जमपुरि बांधा जाय ॥४५ ॥
नवतन कालु शिरि सदा कडके । ज्यों निशि दामनि विजुली चमके ॥
ज्यों सिरि घणु[1] मारे लोहारु । ज्यों गईअरि[2] अंकुश सिरि भार ॥
ज्यों अनदिनु अगनि भपे दिनुराति । त्यों नामु विनाँ सुखु नाही शाति ॥४६॥
शिरि जमु ककर मारे कालु । बिन गुरि आप गया वेहालु ॥
विनु गुर जम की पावै पालि[3] । विनगुर डूबैगो असरालि ॥
विनु गुर अत्ती[4] अरु महा अतिताई[5] । नानक गुर विनु नरकि पचाई ॥ ४७
विन गुर अत्ती अरु तपति वहु ताता । जलतु फिरे माया मदि माता
परग्रिह जाय नरकि विस्रामी[6] । विपु भोगै[7] हरि विसरतु सुआमी॥
चुभहि पगि जमु सूल सघारा[8] । तह जमु मारगु पंथ करारा ॥४८
तहँ नाँ को सपा सगि साहाई । तहँ तप्र थंम्म गलि लागहि भाई॥
महाँ अगनि महि तहि तू जलै । तह सिरि जमु कंकरु अटलु न टलै ॥
सचे न्यायं बहै धरम राय । नानक तहँ आपे बपशे हुकमि रजाइ ॥४९।
जत्न करहि जीवन धन संतत कउ, जुगत जीअ की जाणै सोइ ।
ताँकी कीमति कहणु न जाई अैसा समथ नाही कोइ ॥
जो अस्थिर सभ चलणहारी करि करि वेखै आपे सोई ।
आवागवनु कीआ तिसु भाया फुनि दूजा हुकमु न होई ॥

---

(१) अहिरण। (२) हस्ती । (३) "धाड़"-पाठातर प्रतु पाल नाम धाड का है और धाड नाम डाके का । (४) अत्त (जुलमी) उठाने वाला। (५) १-अगनी लगाने वाला २-नँगा शस्त्रलेकर जो मारने आवे। ३-स्त्री हरने वाला ४-धरती (खेती) हरने वाला ५-विष देनेवाला ६-धन हरने वाला जो इन छु अपकर्मा को करे वोह अत्तिताई होता हे-भाव (हत्यारा) जिसको वारंवार ऐसा करते रहिने का स्वभाव ही पडगया हो। अथवा सर्व प्रकार करके निर्वलों तथा संतों साथ अत्याचार करने वाला हो वोह महाँ अत्तताई है। "सत का दोपी महाँ अत्तिताई" इस में पचम गुरू साहव का वचन प्रमाण हे। (६) निवास करने वाला। (७) विपय भोग। (८) मारा।

सो साधू जिस अलखु निवासी आदि अत सपाई ।
नानक साध संगति गुर वचनी हरि राम नामु लिवलाई ॥ ५० ॥
जिसु गुरमुखि हिरदे सचा नाऊँ। सो तपत निवासी महलीथाऊँ॥
कालु जालु तसु हुकमे कीने। सिरि सिरि जीआ सुख दुख दीने ॥
जेते जीअ तेते सभ तोही । नानक सर्वते ऊपरि ओही ॥ ५१ ॥
तनु धनु नाँही आपनो, अवराँ क्या कहीअै ।
जिसका है सो तिस का गुर की मति लहीअै ॥
सतिगुर कौ पूछि करहु वीचारु । सर्ब्ब उपरि एककारु॥
जिसका जगतु त्रिभवणु आकारा। आपे शाहु आपे वणजारा ॥५२॥
आपे रत्नु ज्वेहर लालु। आपे माणकु मोती सालु[१] ॥
आपे गउहरु[२] आपे हीरा। आपे परखि विसाहे हीरा ॥
आपे राजनु आपु वजीरा ॥
आपे तपति दुलीचे पाउ । नानक सचे सच पसाउ[३] ॥ ५३ ॥
आपे शाहु सराफु अपारु । आपे वणजु करे वापारु ॥
आपे पूरा तोले तोलु । आपि अतोलु अडोलु अमोलु ॥
आपे सचा परमानंदु । नानक सचा सदा बपशिंदु ॥ ५४ ॥
आपे रत्नु ज्वेहरु कीना । आपे परखे आपि कसि[४] लीना ॥
आपे देवे आपे लेइ । आपे कीमति नदरि करेइ ॥
आपि अतीतु हुकमि टकसाल । नानक नदरी नदरि निहाल ॥
नदरि निहाल रहे लिव लाय । अवगतु नाथु न लखनो जाय ॥५५॥
उत्तम जन संगति उत्तम गुरु ज्ञान। उत्तम गुण गावै दरगह परवाणु॥
जे तिस भावे सतिसगु मिलावै। सोई करे जि सचे भावै ॥
जो तिनि कीआ त्रिभवणि परवाणु। नानक समझ रहे मिहमाणु॥५६॥
तिसु मुक्ति प्राप्ति लहे निधानु। सो जन्मु सकार्थु भगति नीसानु ॥
जैसा है तैसाही रचे । आकुल चीने काल ते वचे ॥
रहे अतीत कल्पति विपु[५] त्यागे। नानक तितु घटि जमदून न लागे५७

(१) घोगा जो कौडी के आकार का होता है। (२) मोती। ३) पसारा, प्रसन्नता। (४) परीक्षा करना, कसवटी पर घिसना। (५) मिथ्या विषयभोग, कल्पनामात्र, ।

इहु मनु मैगलु शब्दि वशि कीता। गुरमुखि बोलहि सचु पवीता ॥
गुर के शब्दि कायां गढ़ जीता। आपु कउ चीनहि पूरे गुरु मीता॥
अम्रितु नामु महाँ रसु पीता। नानक जुग जुग अमरु अतीता ॥५८॥
नर्मल पाधरु[१] सतिगुर मति पावहि। सतिगुर सेवि शब्दि सामावहिँ ॥
सचा शब्दु नदरि सचि रक्षण। गुर ज्ञान पदार्थु ततु बिचक्षणु ॥
नानक साध गुरू एहु लक्षणु ॥५९॥

घटि घटि मुक्ता मुक्ति दुआरु। उरवारि पारि जिस की सिरिकारि॥
बूझहु गुर ज्ञानी करहु बीचारु। सर्वे ऊपरि करनैहारु ॥
शब्दि अनाहद जोति अतीता। नानक जुगु जुगु रगि रगीता॥६०
ज्यों जल ऊपरि कमल निरारे। त्यों साधू जग ऊपरि बीचारे ॥
जल कवलै का देखि सनेहु। बिन जल कवल न उपजै एहु ॥
जहाँ जल सरोवर कवल सरूप। त्योँ नानक जुग जुग आदि अनूप॥
चात्रिक मीन जैसी जल प्रीति। नानक सो प्रभ अहिनिश चीत ॥६१
सरवर महि हस मोती चुन खाहि। सतिगुर मतिज्ञानी अम्रित अथाहि॥
बगुला काग नहीँ उह देश। शूकर सुआन साक्त नर पशूभेसि ॥
ज्यों सर्पनि काटा लहरि ले काई। नानक ते बेमुखी जहाँ भगति न भाई ॥६२
ते बेमुख उरवारि न पारि। गुर दरश न पाया सचि वीचारि ॥
शब्दु न साखी सची नही प्रीति। जमपुरि जाँहि दुखाँ की रीति॥
कऊए कूकर शूकर गधूए। सरप स्याल क्रिम विष्टा मधूए ॥६३॥
त्रिश्ना बाँधे मरहि सभ दूखा। ओहु मिटहि न भावी सहहै दुख भूखा॥
सतिगुर मिलै त इहु रस भाए। साध सगति मिलि इहु रस पाए ॥
दर्शन देखि रहै हैरान। अमर पदार्थु भगतु नीशानु ॥
नानक कहै स्रिष्टि करता सोइ। जिसका कीआ त्रिभवण लोइ॥६४
जिसु गुर प्रसादी इहु मन द्रवै। उह पर-घर भिक्षा काहे भवै[२] ॥
जिस अतरि नवनिध भगति भडार। ओह सभ हीका दाता देवणहार॥
सति संगत मिलिआ सो परवाणु। नानक सो दरगह पावै माणु ॥६५
अठसठ तीरथ का इस्नान। जो दर्शन पाए सो परधान ॥

(१) मार्ग। (२) क्यों भ्रमण करेगा।

अकल्प तरोवर[1] पूरा भगवान। निरभउ मन कैवल पतपरवाण॥
सुफल्यो वृक्ष अम्रित फल लागे। नानक नाम रते वड भागे॥६६
सर्व जीआँ पालै शरनाई। दया पति दाता अत सपाई॥
प्रान पुरुप पुरुषोतम है। देंदे तोट न कबहूं से॥
सो दरु घरु राखै जिसु सचु पिआरु। नानक पूरा तिस भंडार॥६७
मनु मानिआ निर्भउ घरि बासु। सचु शब्दि सुखि सहजि[2] निवासु॥
ऊचो गढ अपरपर थाउ। अमर अजोनी सचि तपत पाउ॥
नानक सचे सचु समाउ॥ ६८॥
शिपा सरोवर[3] अम्रित सर भरिआ। से पीवहिं सत भगत जन तरिआ॥
अंजनु सारु निरजनु पाया। सो आसा माहि निरासु दिखाया॥
जन्म मरन का गवन मिटाया। नानक जिनि पूरा दर्शनु पाया॥६९॥
सतिगुर पूरे दीक्षा दीनी। शब्दि गुरू अम्रितु विधि चीनी॥
सचु जोगु वैरागी जोगी। भगतु ज्ञानी कायाँ रस भोगी॥
घट मटके महि जीवतु मूआ। नानक सो जन अस्थिर हूआ॥७०
अकल्प विरख की पूरी मत्ति। नानक सच घर वहै तपत्त॥
तुरीआ तत्तु पाए सुर ज्ञाना। सभ दुःख मिटाए भगति पजाना॥
अस्थावर जगम कीट पतगा। नानक भेप नाना इक रगा॥७१
हीरा रत्त ज्वेहर लाल। मनु मोती तिसका है साल॥
हिरदै हरि गउहर लाल गुलालु। अनहद राता सदा निहालु॥
सची जोति रही भरपूर। निध गुण गाए देख हदूर॥ ७२॥
आदि जुगादी साचा सोइ। तिसकी कीमति कहै न कोइ॥
सतिगुर बाझहु[4] परख न होय।
आपे परखै बूझै लोइ। नानक सो आपे नदरि करेइ॥ ७३॥
पाखड करै न लोक दिखावै। अंतर जोत तितै लिव लावै॥
गधण[5] वैण नही पतिआवै[6]। अंतरि ज्ञान तितै आघावै॥
अतर बाहर अलप लपाए। नानक जोती जोत मिलाए॥ ७४॥

---

(१) वृक्ष। (२) "महलि' पाठातर—अर्थ ब्रह्म रध्र, जो कि भाव 'सुभ्र सरोवर से है। (३) क्षमा सरोवर पाठ भी है। (४) बिना। (५) मलीन वाणी (वासना ग्रसित जप पाठ आदि से) भाव है। (६) प्रतीति नहीं आवे।

जाग्रत अवस्था गुर शब्द सुहेला । सर्व त्यागि गुर संगति मेला॥
दुरमति जो बूझहि मिलण दुहेला ।
अवगत नाथ करै सो होय । सर्व जीआ का दाता सोइ ॥
ज्यों जोहड पानी सरताल । नानक मुक्ते नदर निहाल ॥ ७५ ॥
सतिगुर सेवहि परम पद पावहि । साध संगति महि सहजि समावहि
अस्थिर घरि वसै न आवै जावै ।
अवगत नाथ निरंजन एकै । नानक बूझहु गुर ज्ञान विवेकै ॥ ७६ ॥

इति श्री सुसंवेद प्राण सगली श्री गुर ग्रंथे परमतत्व ध्यान वरनन नाम षोडशमो ध्याउ सपूर्ण ॥ १६ ॥

॥ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

अध्याय १७

॥ कलावती वाणी सुसंवेद ॥

॥ राग सूही महला १—श्लोक ॥

जोबन बाल वृद्ध अवस्ता[१] । जोबन हारिआ जरूआ[२] जित्ता ॥
जम ग्रिास्या पलक पलत्ता[३] । खनिअहु[४] तिक्खी पुरस्लात करडाता॥
जम मार्ग मुत्ता[५] गर्भ रहत्ता । बाल विवस्था शोभा सम्पत्ता[६] ॥
नानक भ्रम भूला जन्म अविर्था[७] ॥

॥ पउडी ॥

भ्रमि भूले जन्म तैं खोयो, इह अवसर चढै न हाथ ।
कवडी बदले खोया, लाल अमोलक आथ[८] ॥
ग्रिह कुटब महि पलचिआ[९], मोह मिथन[१०] दुर्गंध ।
माया कामु व्यापिआ, नहि बूझै मानुष अंध ॥

---

(१) अवस्था । (२) वृद्धावस्था । (३) परचा हुआ, वा पलटा भाव संसार में परचे हुए जीव को जम ने जब पल भर में ही पकड लिया । अथवा जब जम ने पकड लिया तो पलकें पलट जाएगी अर्थात् संसार की ओर देखना नहीं मिलेगा । (४) खडग से भी तीक्षण पुरस्लात (परलोक के कठिन मार्ग) से गुजरना पडेगा । (५) मोहिआ, ठगा हुआ, घबराया हुआ । (६) संपन्न, संयुक्त अथवा बाल अवस्था की शोभा वृक्ष के पत्र वत झड जाने वाली नाशवत है । (७) व्यर्थ, अकार्थ । (८) माया (धन) । (९) परचिआ, उरझा । (१०) मिलाप, संयोग ।

खड[1] पक्की कुड भज्जै बिनसै, जर जित्तै जोबन हारु ।
नानक सच्चै नाम बिन किन बिध उतरै पारु ॥ १ ॥

राम नामु जप मूढे अधु ।
भ्रमि भ्रमि जोनि भेप बहु कीने राम भगति छूटै जम फंधु॥१॥ रहाउ॥
पर घरि जाय न घरि बसै मद काम लोभ की तात ।
दिनस माया पर दर्ब हिरै पर घरि चितवै राति ॥
लाज नाहि कुल लोक की भउ नाँही मनु अपमानु ।
सतिगुर साध न रसु मिलिओ भ्रम मुठा गर्ब गुमानु ॥
पान फूल रस मास मद भोगै भोग अनीति ।
घर मदर महली बसै जरु जरूआ[2] नही चीत ॥
सेज सुखाली सुख सवैँ कामनि सिउँ प्रीति लगाय ।
अंति दुखाली दुख सहै जमपुर चोटाँ खाय ॥ २ ॥
मन हठि कबही न चेतही सहहि सजाई भारु ।
धम्माँ के गलि लगाईअहि सिर पर अगनि अँगारु ।
जित पथी लगा सु सेवकी उत पथ[3] चलाईअहि मीत ।
पिछै जमु मारै कुठार सा समोँ नही तुझ चीत ॥
करैँ हवाँई[4] बिगसि मनु खासैँ[5] अति सजाय ।
नानक अपने कीए कउ अति रसातल जाय ॥ ३ ॥
दूताँ भय हरि बीसरै सहहिँ जमडंड सजाय ।
गाफल भूला दुर्मती कतही न हरि गुण गाउ ।
जोबन माता न सुख सवैँ जिस हिरदै नाही नाउ ॥
हरि भगति हेत नहि पाईऐ नही साधू गुर संग ।
नानक सच्चे नाम बिन मन तन मैला भग[6] ॥ ४ ॥

(१) पकी हुई खेती खड नाम (अहि में) ले जाकर (सभाल लो) नहीं ते। कुडक कर अर्थात् तिडक (कुरडी हो) कर टूटती हुई विनाश को प्राप्त होवेगी भाव योवन अवस्था में निज अहि रूप भगवत के दरबार में अपनी सुरत को चढाकर ले चलो नहीं तो वृद्धावस्था के आए नीच योनियोँ की प्राप्ती रूप विनाश को प्राप्त हो जावोगे। (२) जोरावर (जालम) वृद्धावस्था। (३) उसी मार्ग। (४) कामना, ख्वाहिशा। (५) खावेंगा, पावेंगा। (६) " रग " पाठ भी है।

दर्ब स्नेही भूप[१] ज्यौं बिन दुख सुख नाहिन राम।
सुंदर नारी सोहणी अति ततकारी[२] काम॥
तितु जम पंथ चलाईअहि जहँ महाँ तप्त बहु घाम।
तप्त कडाहे ताईअहि जिन मन्मुखि नाही राम।
किंतु न मेटिआ जायसी जो कर्म लिखिआ नीसानु॥
जहाँ जमु पथ डरावना तहाँ मन जाणा तोहि।
इथै नामु विसारिआ लीआ मोहनी मोहि॥
क्यौंकरि कालहुँ वचसी क्योंकरि जम ते छूट।
सहै सजाई मूढ मन पड़े वदाणी[३] कूट॥
जैसा करहि तैसा सहहि अवरु न राखणहार।
अपणी करणी पै पचिआ साक्त मुग्ध गवार॥ ६॥
कुंभी नरक तहिँ सुनींदा मनु तहीं निवासा होगु।
तैं रखणहार न चेतिआ हित माया रस भोगु॥
इन माया ममता मोहिआ जपन न देई नाम।
हक्कु हलालु न जाणिआ खाया रज्ज हराम॥
शराअ स्रायति न जान्यो तहाँ तरीकत नाँहि।
बिन मन सोधे नानका घोर नरक महिँ पाहि॥ ७॥
तिनाँ मिहर मुहब्बत्त नाहि मनि हर्ष सोग बिललाँहि।
भाउ दया मनि तिलु नही बाँधे दुःख सहाँहि॥
ऐसा संम्रथ को नही जो मेटे एहु उपाध।
पूरा सतिगुर जब मिलै मेटै सगल व्याध॥
साक्त गुरू न जानिआ बिन गुर दुख सहत।
लख चौरासी भरमि भ्रमि साक्त नरक डुबत॥ ८॥
लख चौरासी नाँ भवैं सतिगुर की मति लेइ।
सतिगुर का शब्द जिस मनि वसै जो अरपि सत मनु देह॥

(१) जो द्रव्य के साथ प्रीति करने वाला हो यदि वह राजा भी हो तो दुःख बिना उसे कुछ भी सुख प्राप्त नहीं होता (एक गुरु को प्राप्ती बिना) राम दुःख तो उस हाता ही गया है। (२) सताप कारी। (३) जैसे लोहार के घन की-चोट पर चोट-अहिरण पर पड़ती है वैसे ही हे मूढ़ मन तुझ पर भी सज़ा (मार) पड़ेगी, जो कि सहनी पड़ेगी।

आवन जाना तिहँ मिटै हरि कीरति मनु बेध ।
दुःख निवारण मनु बसै होत न जम की खेध[1] ॥
विनु मनु बेधे स्याम[2] सिऊँ अवर कीरति सभ बाद ॥
नानक मनि तनि सोऊ बसै जो पूर रहिआ अति आदि ॥ ९ ॥
ते मुख खरे सुहावने जिन मुख हरि हरि राचु ।
तिन शोभा नहीं गनी जाय जो मनु राम रचे साचु ॥
कूड कपट तिन त्यागिआ साचु लीआ मनु पोय ।
सप्त दीप नव खड महि तिस जन उसतति होय ॥
शिव शकर नारद व्यास तिसु आगै डंडउत ।
जो जन राता प्रेम पद तिनकी इह अमरउत[3] ॥
प्रिअ अपने सिऊँ रचि रहै तिन महमा गनी न जाय ।
नानक सेवक सत सगि रहै प्रेम लिव लाय ॥ १० ॥
मूढे भरमि न छुटीए विन सतगुर की टेक ।
विनु नावैं पै लूटीऔ जम मारै तिस फेट[4] ॥
साध सगति मनु थिर रहै सतिगुर शब्द बवेक ।
उझडि भूला मारीऔ किलु पया सिरकालु ॥
क्यों भउजल पार उतारीए महाँ विपम असराल[5] ॥
कुँभी नरकि पचाईऔ सिर पर झमकै काल ।
नानक शरन अपार की गुर कै शब्द निहाल ॥ ११ ॥
गुरज्ञान ध्यान मनु बीसरै कनक कामिनी हेत ।
असु गज देखे बहु घने पायकु रथु अनेक ॥
सोनाँ रूपा दर्व बहु आने चलत अनीत ।
ज्यों मखी मीठे पचि खपै मनु तनु झूठी रीति ॥

---

(१) खेद । (२) त्रेदल, तीसरा तिल, शिवनेत्र, आकाश का बीजतत्त्व, जिसे नुक्ता स्वेदा या Eastern star भी कहते हैं। (३) हाकमी, सरकार । (४) धक्का, वगार फसाकर, काबू पाकर । (५) भयानक, असार ।

कूकर असीआ[1] ज्यौं गलै निकसै फाटी भीति ।
सेज सुखाली सोहिआ अवरु कामिनी हीत ॥
इन विधि सो प्रभु वीसरै जगु खेलै जूआ रीत ॥ १२ ॥
गढ मंडप अरु मोहणी ऊचे गगन गहीर[2] ।
तपत दुलीचे[3] अति भले नेब[4] ग्वास वजीर ॥
दल लशकर तिस अगले वहु दिसन भाई वीरु ।
पुत्र घने पोत्रे वहुत अरु दिसै सपरवार ।
तित मगि नहि साथी सपा को अंतिकाल सहु मार ॥
ज्यों दीपक मंदिर महि धरे सभ चानण मंदिर माहि ।
ले पवन झकोलै ऊडरै अंधु धधु घटि ताँहि ॥ १३ ॥
मेरी मेरी सभ को कहै किछु लदि न चलिओ कोय ।
इन माया जगु मोहिआ आय जाय दुख रोय ॥
म्रित मंडलि ग्रिह मडपा तनु धनु देखि भुलाहि ।
कोऊ विरला घरि चीनै नानका गुरमति सहज सुभाइ ॥
हऊँ हऊँ करता आया हऊँमैं करता जाइ ।
राम नामु धनु वीसरै उर उरझि मुआ पछुताइ ॥ १४ ॥
ओह अपतपशू[5] अज्ञान मति पति गति नहि आचारु ।
तैसो जैसी कामनी सेव भगति बिनु छारु ॥
घर दर नदरि न आवई नॉ उरवारु न पारु ।
नॉ गुर शब्द न भेदीऐ क्यौं सोहै गुर दुआरु ॥
बिनु पउडी गढि क्यों चढै कचन कोटरसाल ।
गुर पउडी सचु पाईऐ नानक नदरि निहाल ॥ १५ ॥
मन्मुख पापी पच मरै दर सचै कुपरवाणु ।
जमु ककर मारै सिर खडा किछु चलै नाही ताणु[6] ॥
पुरुष नारि वेमुख खपै जो कूड बोल मल खात ।
जिन पूरा सतिगुर न सेविआ सेजाय रसातल आत ॥

(१) हाँडी का गलावाँ । (२) गभीर (३) गद्दी, मसनद, गलीचा, गुद्दड, शुचआसन । (४) नायब अमीर, चोबदार, चॅवर बरदार । (५) नाकदरा पशू, नाकारा समझ कर त्यागा हुआ ढ़ोर, पशू । (६) सामर्थ, ताकत, बल ।

बिष[1] खावै बिष ओढनो बिष पीवहि मिठी सुआइ[2]।
हुकम भया सभ छोडना अतकाल पछताइ ॥ १६ ॥
साक्त मुग्ध अजान मति सुरति शब्द नहीं जान।
भाउ सुभाउ न जाणई बधक कर्म कमान ॥
हरि जसु कने न सुणे जो अंति छडाए सोय।
जम की फाही प्रै फसी[3] क्यों कार छूटन होय ॥
उलझि परे उलझाउ महि छूटन कवन बीचार।
तिन होवति ख्वारी बहुति अंत धर्मराय के दुआर ॥
सिरखुर[4] पाटी तिनाँ पति ते नर पाक रले।
नानक पूरे गुरू बिन साक्त गरभ गले ॥ १७ ॥
बिनु जग आपु गवाया से मूए अपने पाप।
अनिक बार जन्महि मरहि उपजहि थाप उथापु ॥
तिँह बारी टिकन न आवई लख चौरासी माहि।
आवन जाना नाँ मिटै पया जमानै[5] राहि ॥
अस्थिति कबहुं न पाईअहि निश दिन डोलत नीत।
नानक पूरे गुरू बिन क्योँ थिर रहीअै मीत ॥ १८ ॥
हरि ते बेमुख ते फिरहि जिन अत बनैगी भीड।
लहहिँ सजाई अनगिणति ज्यों तेली तिलु पीड ॥
कोलू बिच गडीर[6] ज्योँ एहु तन एवैं होय।
साक्त महल न पावई अत लहै दुख रोय ॥
अब पछुताने होइ क्या तुम अउसर खोय अजान।
नानक पूरे गुरू बिनु साक्त मूए निदान ॥ १९ ॥
साक्त नामु बिसारिआ दूजे लगी तारु।
जब जम ककर मारसी तब कै पहि करऊ पुकारु ॥

(१) विषय रूपी कडवी विष। (२) "माई" पाठ भी है। (३) जम की फासी (जब) पडेगी तो फसे हुए का कैसे छूटना होगा। (४) सिर से लेकर पाव प्रयत तिनकी पति (प्रतिष्ठा, इज्जत) उतारी जाती है। भाव बडी दुर्दशा होकर धुद धूडी में मिलाये जाते हैं। बार बार जन्म मरण द्वारे मरदन किये जाते हैं। (५) यम के मार्ग में पडा हुआ, यमदूतों का वशवर्ती हुआ। (६) कमाद का गन्ना।

कोआ सहैँगा आपना को न छुडावै आय ।
आगै हटक न को करै गहि जमकंकर लै जाय ॥
मित न कोई कर सकिआ पारब्रह्म का सत ।
नानक साक्त मूढ कोइ जम ते पकडि न रखत ॥ २० ॥
इसु मनु को जम ते रखै तिस कउ इहु मनु देहु ।
इत उत तिनका अमर है तिन जन दिक्षा लेहु ॥
तिना चरनाॅ ऊपरि सीस धरि अठसठ, तिन संग आहि ।
तिन चरनन का दास होहु जो पूरे कल माहि ॥
तिन आगै आप विचाय तू जन्म सुफलु तिना होइ ।
नानक साक्त तउ छुटै जब जन का सेवक होइ ॥ २१ ॥
जमपुर बाॅधा मारीअै मनहु कुशुद्ध सिर मार ।
निन गुर नरक पचाईअहि मुक्ति नाहि कूडिआर ॥
घधामे[1] कढे अवगुणी निंदा की सिर पोट ।
अर लोभ बुरिआईआॅ सिर मारे जम चोट ॥
नित निंदा झूठी करै मुँह कूड बोल पत जाय ।
सतिगुर की सेव न कर सके ना हरि भगति सुभाय ॥
से जाहि रसातल नरक कुडि जम बाॅधा काल बिहालु ।
साक्त भरमु हराया कौडी बदलै लालु ॥ २२ ॥
जीवन धन सलति की आस मन कीनी, हरि गुण मनहु बिसार ॥
रस भोग करै सुख चीतवै भर जोबन[2] बहि नार ॥
सेज सुखाली मोहिआ कामण हेत पिआर ॥
इह द्रिढ निहचै करि मानिआ सचै माया दानु[3] ।
मिटै न पुर्ब कमाया मिटै न आवन जानु ॥
पच चोर तिस घर मुसहिँ हउमैँ मनु अपमानु ।
काल दिसै जिस सिर खडा जिस बाँभ जीउ परानु ॥

(१) आर्य । (२) पूर्ण यौवना स्त्री के साथ बैठकरि । (३) माया के ही सब कार्य करता है निश्चय करि यही सत्य मान रखी है । काम-आदि का ही माया अर्थात् क्रिया ही सचे करता द्रिढ निश्चे कर रखा है (अपने आप समझना) ।

जर जरूआ जम सिर रखिआ एव[1] घटै सुख केव ।
नानक इत रस छुटीअै जाँ पाईअे सतिगुर सेव ॥ २३ ॥
मन्मुख मोहु व्यापिआ उठसि नाहि वैराग ।
मोह माया की प्रीति अति सभा कालुप दाग ॥
दाग दोप मुख लायके अवसर चलिआ रोय ।
जम मारग पथु डरायणा सग न साथी कोय ॥
सागर गहरा अति घना-सूर तपे सिरझालु[2] ॥
मन्मुख दझै वोडीअै काम क्रोध विक्रालु ॥ २४ ॥
विष अगनी तन पीडीअे परत्रिया परधन मोहि ।
पर निंदा जीउ चित्वै माया लावै धोहि ॥
जन्म पदार्थु खोया दूजै हेत पिआरु ।
काले हूँ धवले भए कायाँ डोली भारु ॥
आवत क्या ले आया जावत क्या लै जाय ।
बिन हरि भगति न छुटसी समझ देखु मन माहि ॥ २५ ॥
बिरध भया तन कंपिआ हीनी देहि सिर रोगु ।
खड पक्षी झुरि-झरि जायसी सहसा सोग विजोगु ॥
चरन गिरे कर कंपिआ विनु हरि नामु न धीरु ।
सिधा[3] वैणु न निकलै नेत्र धुदले नीरु ॥
कंन्नीं वैन न सुणीदा रहै पराकउताण[4] ।
हथ डंगोरी पग खिसहि डोली देहि नीमाणु ॥ २६ ॥
जनका सेवक तब होवै जब पूर्ब पवै लिलार ।
लिलाट लिखे बिन क्यों मिलै जो करै उपाउ हजार ॥
जिनके मस्तकि लिखिआ लेख तेई सहजि मिले ।
तिन आवन जाना सभ मिटै फिर मात न गर्भ गले ॥

(१) इसी प्रकारही चीणहोता रहता है। अथवा आयू घटती रहती है सुख किस प्रकार से होवे। (२) प्रात काल, स्वेर, धूप। सिर पर सूज तप रहा हे (दिन चढ आया है) भाव म्रित्यू निकट आगई है। (३) सपष्ट, सीधा बचन। (४) दूसरे के ताण (सहारे) पर रहे। अत्यत असमर्थ वृद्ध, जिसकी क्रिया आप कर निर्वाह ना हो सके।

तिन रखवाला आप होत जो सिमरहि नामु पिआरु ।
नानक तिनकी धूर वाँछ उतरै भउजल पार ॥ २७ ॥
भउजल ते जो परे पार हरि रसु मन क्रम पीउ ।
मन शितलाई सुख घना शांति परी हम जीउ ॥
दुख के फाहे सकल काटि सुख की साखी चीन ।
सतां पहि आपु विचायकै अनत सूख मनु लीन ॥
जो जन हरि के हो रहे हरि तिनही कै नालि ॥
नानक पसरी ब्रह्म जोति बिनसी भ्रम की पालि[१] ॥ २८
बिनस गई जिस भरम भीति ब्रह्म प्रगास भया ।
दुबिधा दुर्मति छुट गई अम्रित सहज पीआ ॥
अम्रित त्रिप्त अघाया विष्या त्यागी दूर ।
जीवत मुए हरि सिऊँ मिले रहते सदा हजूर ॥
साक्त मनि हरि सिमरनु नही माया व्यापक कीन ।
नानक साक्त जम दुआर सहहिं सजाय अधीन ॥ २९ ॥
साक्त के मनि नही बिगास मन के सदा गुबार ।
तिन हरि सिमरन नहीं भावई नाँ सत्सग पिआर ॥
आठ पहर निंदा रचहि उस्तति त्यागी दूर ।
साक्त निंदा संत की अंत मरहिंगे झूर ॥
साक्त कै मुख लागिआँ चढै अतोलवाँ भार ।
नानक निंदक साध कै जलै अगनि की धार ॥ ३० ॥
साक्त जलबल होइ सुआह टिकन न पावै ठउर ।
चउरासीआ ही भरमता अहिनिश उडत उडार ॥
ज्यों फमट[२] दीपक महि पचै इऊँ निंदक निंदा माँहि ।
नानक साक्त न बुझहिं भूले मार्ग जाँहि ॥ ३१ ॥
ज्ञानु ध्यानु जप तप नही सत्सगति नहिं परतीति ।
नामु दानु हरि हरि नही सुकी सडी मसीति ॥

(१) पक्ति, जजीर, वधन, बेडी । (२) मच्छर, पतगा, परवाना ।

कागद ज्यों बूँदा परी काची गागर भीन ।
पूत[१] मात सुत[२] बधपा जग सिऊँ झूठी प्रीत ॥
अल्प जीवन डोसी[३] भया आसा मनसा चीत ।
आसा मनसा बेधिआ इहु मन चचल चीत ॥
पर दर्ब हिरहि परघर बसै शब्द न साखी मीत ॥
अजगर भार उठायो जल सागर असरालु ।
बिनु गुर पार न पाईऔ जम मारै बेहालु ॥
कऊए मारहि सीस चढि बर्पहि अगनि अगिआर ।
नानक नदरी छुटीऔ सचु सवारनहार ॥ ३२ ॥
जम जदारी[४] सीस निस जिस मन ते बिसरै राम ।
ज्यों आया त्यों जायसी जम सहहि तिआस[५] सहाम ॥
डीगै[६] डोलै मनु चलै दहदिश तिश्ना धाय ।
किसै न भावै घर रखिआ कूड बोलि पति जाय ॥
पापीआ सच्चु न भाया कूडै धरै पिआर ।
नानक बध चलाईऔ लख चौरासी भार ॥ ३३ ॥
चरन गिरहिं कर कपमान जाजर[७] देह गिरत ।
सिर कपहि थरथर करै जिह्वा रसु नही रचु ॥
भई पुरानी देहुरी जर जरु[८] आया अत ॥
कफ मिलि कलु बिरोधिआ छाती ऊभा सास ।
नैनी नीर बहै सदा बहु तिश्ना भूख पिआस ॥ ३४ ॥
अति क्रोध तिश्ना घणी भूख पिआसा रोय ।
कहिआ कोय न मानई अत न साथी कोय ॥

(१) अपना पुत्र। (२) भ्राता। (३) दोषी, दूषित। (४) जम की फौज को आरास्ता (प्रबधित) करने वाला अथवा जिद (जान) को आरे वत चीरकर शरीर से न्यारा करने हारा यम=काल। जदार नाम चोर का भी है सो जान को चुरा ले जाने वाला यम चोर – जम जदार=यम के डडे का नाम भी है। (५) यम मार्ग की दु मह (कठिनता से सहारी जाने वाली) तृषा को सहारता है। (६) गिरे पडे, कपायमान होवे। (७) जरजरी (क्षीण)। (८) जोरावर बुढेपा।

जोवन गया न वाहुड़े फुनि एहु देहि न होय ।
नानक नामु विसारिआ जन्म अकार्थ खोय ॥
विन हरि भगति न छूटई जे चतुर कहावे कोय ॥ ३५ ॥
मन्मुख भवहिँ विवाण[१] महि कवहूँ न पावै राहु ।
अहि निश सदा दुखी फिरहि लेत न सिअला[२] साहु ॥
नप शिप ते दुःखी भरिआ कवहूँ सुखी न होत ।
सुख तजि जम के वशि परै मूढ धुने धुन[३] रोत ॥
साक्त सहै सजाय वहु जिस लिखिआ लेखु लिलाट ।
नानक साक्त पार[४] न पावई रहै निमाणै[५] घाट ॥ ३६ ॥
साखत मुठे वाट महि जानि न मिलहि हजूर ।
संत सहाई साथ विनु मरहि विसूर विसूर ॥
ओट न पकडी साध की फिरिआ छानत छार ।
जब मन कउ मुशकल वनै तव कउन छुडावनहार ॥
साखत वेला अंत की गया बहुत पछुताय ।
नानक कोई साध न पकरिआ जो लेवै अंत छडाय ॥ ३७ ॥
अंत सखाई साध है इत उत के रखवालु ।
संत विनाँ नाँ छूटीऔ जव जम झोटै[६] वालु ॥
संत उवारहिँ भीड़ ते संत रखहिँ जम ठाकि ।
संतां की आज्ञा अमर जम कंकर ताकै हाकि[७] ॥
पर उपकारी संत कलि देइ नामु उपदेश ।
नानक इत उत आदि अंति संतन कउ आदेश ॥ ३८ ॥
हरि हरिजन हहिँ सदा एक दुतीआ कबहूँ न होय ।
ज्यौं जल जलहि समाया पारस मिल कंचन होय ॥

(१) बीआबान (ससार जगल) । (२) सिअरा, साहु, शीतल श्वास, चैन का दम । (३) हाय हाय करता हुआ, सिर पटकता हुआ । (४) पारला किनार ब्रह्माड का पार पद, अभय पद । (५) जहा सत्कार मान नही होता अेसा पिड वा ब्रह्मड का घाट काल मडल । (६) जब केशों से पकड कर यम झूणेगा, (जब केशों को खसोटेगा) । (७) यम दूत संतों की अटल आज्ञा या हाक (ललकार) को ताकता है भाव ध्यान में रखता हे ।

ज्यौं चंदन काष्ट मोहिआ दुतीआ कह्या न जाय ।
ज्यों सुरसरि[1] महि सर मिलै होय उदक सभ जाय ॥
ज्यों हीरे[2] हीरा वेध्यो त्यौं संत मिले हरि जाय ।
नानक हरि जन एक हरि दुतीआ कह्या न जाय ॥ ३९ ॥
दुतीआ त्रितीआ कछु नही सभ एकोही प्रगास ।
एको रूप वरन[3] एक एक रत्त इकु मास ॥
एक ब्रह्म इक बरन[4] इक एको बोलनिहार ।
एका जाति सनाति[5] इक एको ही उपचार[6] ॥
एको धातु[7] रहत एकु एकु ही साख[8] ऽरु सैन ।
बरन चिहनु सभ एकु इक एको ही वरतैन[9] ॥
तुमते परगट सत होहिं अरु सताँ ते तूँ जाप[10] ।
नानक पूरन पारब्रह्म घटि घटि रहिआ व्याप ॥ ४० ॥
अम्रित रस तसकर हरै अरु दुख की पोट कपाल ।
घोर अंधेरी दुख घणा विमल नदी भरनाल[11] ॥
मन्मुख मोह व्यापिआ वशगति कीता काल ।
विनु हरि रस गत मत पत नही देखहु नदर निहाल ॥

(१) (ज्यों सर सभ सुरसरि मिलै) पाठ भी है। (२) जैसे हीराकणी से हीरा वेधन किया जाता है इसी प्रकार सत्पुरुष—क्रीकणी, अर्थात अश रूप सत ; सतलोक रूप मडल को वेधन करके हर एक में भरपूर, हरि में (वह) समाय जाते हैं। (३) रग। (४) ब्राह्मण क्षत्री आदि बरन। (५) जाति से उत्तम जाति भाव है, और सनाति से भाव नीच जाति का है। अथवा जाति नाम रचना का हे उसको सनाति=कारीगरी, सभ एक ही है। (६) सेवा, उपासना साधन। (७) वात पित्त कफ तीन। रस रक्त मास मेद मज्जा अस्थि वीर्य सप्त यिह। अकाश वायू आदि पच महांभूत। तथा इनके शब्द स्पर्श रूप रस गध रूप पाँचों गुन। इद्रियाँ। इन प्रत्येक का नाम धातु है। सारार्थ यिह कि धारणे वाली वस्तु (सर्व शरीर आदि में एक ही है)। (८) साक और सैन। रिश्तेदार सबधी। अग साक। (९) वरतन (व्यवहार)। (१०) हे अतर्यामी सत तुमते प्रगट होते ह और तू सतों से प्रगट (साक्षात्कार को प्राप्त) होता हे। इसी कारण "सत अनतहि अतर नाही" सर्व एक ही है। (११) विशेष करके मैल के साथ भरी हुई नदी वैतरणी। अथवा 'भर नाल' नाम गुरू सप्रदाय में समुद्र का हे सो इस प्रकार के होते समुद्र समान पारावार से रहित वैतरणी नदी से पार होना पडेगा यिह अर्थ होगे। वा भर नाल अर्थ भार साथ वैतरणी से पार होते हुए घोर अधेरी रात में भारी दु ख होगा।

माया साथ न चलई जर रुप्पा[1] धन माल ।
जोवन धन मित्त न आखीए वदफैली[2] क्या हाल ॥
गुर किरपा ते छूटिये नानक नदरि निहाल ।
माया साथि न चलई अत मारे जमकाल ॥ ४१ ॥
धुरहु[3] धुराहूँ विछुडे तिन क्योँ होवै मेल ।
तिल ज्योँ घाणी पीड़ीए तावण[4] तत्ते तेल ॥
किथहु आया कहिँ गया मन्मुख लहै न मेल ।
भीत पुराणी गिर पडी काच-गगरीआ फूट ॥
हस रोय उठ खेलिया ढाह मड़ोली लूट ॥
जगत प्रीति खिन महिँ गई निमप घरी महि टूट ॥ ४२ ॥
जोबन काम सगि भरमिआ भरम भूले सुख काहि ।
जन्म गयो तन धन गयो बंकी देह सु नाहि ॥
भोर भया उठि चलिआ हंस बटाऊ राहि ॥
बेमुख गत पत मत गई खोयो रत्न गवार ॥
ज्योँ छूछै घरि चोरटा[5] चलिआ जन्म बिगार ।
दुख ससा मनहुँ न चूकई सो दिन आयो नेड़ ।
तिसही दुःख सहाईए सहु सात्क अपने फेड़[6] ॥
जन्मु गवायो जमु ग्रस्यो भस्म भयो तन पाक ।
गुर[7] मिठा ज्योँ माखीआ कहा सु घर औ ताक ॥
जमपुर वद्धे मारीअन सिर जम कंकर काल ।
जम कंकर मारे सिर खडा जिस साखत अध गवार ॥

(१) सोना रूपा चादी ।(२) दुराचार वालो का। (३) धुर धाम से जो धुर के भागों से विछोडे गए हुए हैं। (४) तावण नाम कडाहे का है। और उस मट्टी के बरतन (हडिया) का भी, जो कि तेली लोग पिलते हुए तिलों के ऊपर खोलता हुआ तेल (ऊपर से) डालने के वास्ते औटाने के लिये अगनि पर चढाए रखते है—सो जैसे तप्त तेल के कडाहे समान नरक में तिलों की घाणी समान पीडत कीए जारहे, मन्मुख जीव को पकाये जावेगा तो जेसे तिलो के ऊपर कोलू में पीडते समय खौलते हुए तेल को तेली डालते हैं ऐसे ही मन्मुख जीव को नर्क में पीड २ ऊपर से महान् तप्त तेल को डाल डाल कर जीव को पकाते हैं भाव जीव को परलोक में असहि पीडा मिलती है। (५) चोर बच्चा, पिता पुरुषी चोर घराने का चोर। (६) कीए का फल। (७) गुड।

सुखी हूँ दुःख उपजिआ विनु हरि हेत पिआरु ।
सगत गुर साध न पाईअहि नॉ हरि भगति सनेहु ॥
नानक मूसै दुर्मती फिर नाही वकी देहु ॥ ४४ ॥
साक्त खड़ीअहिँ जमपुरी सभ जम की सरकारु ।
विन गुर वद्धे मारीअहिँ कहाँ सु कूक पुकारु ॥
शब्दु न साखी भै वसै जो अंत सहाई होय ।
हरि जस कंन्नी[१] नॉ सुनै जो अत छडावै सोय ॥
जहिँ कीरत्न सगति साध की उपजी प्रीति न चाउ ।
दया मया नही नामु मुखि नॉ हरि भगति न भाउ ॥ ४५ ॥
तितु जम पंथी सहम्म[२] तिस भगति नही गुर ज्ञान ।
निर्दया नही मामु दानु उजड मढी मसान ॥
साध संगु नही पाया अंधु धधु लपटान ॥
चुभहिँ पगीं जम सूल तिस सूर तपै सिर भारु ।
घुमणघेरी दुख घणा[३] पाप लहे सिर भारु ॥
तिथै अवगण ले चले अंध कूप गुवार ।
गुण नाही नॉ गुरशब्द मनु, क्यों पाईऐ मुक्ति दुआर ॥ ४६ ॥
तहिँ अध कूप गुवार महि तहाँ साक्त का असाउ[४] ।
तहिँ नरक घोर के कुड महि तह साक्त जलवल पाउ ॥
तहाँ सु जम दल लघणा अगन पाणी भडवाउ[५] ।
भड भड दिसै अगनि रूप दभै मन्मुख ताउ[६] ॥
हावै[७] दोजक साड़ीऐ आपत्त[८] पशू बेताल ।
नानक आवै जाय भवाईऐ जिसु कितु पया सिरकाल ॥ ४७ ॥
जिसकी माया तिन लई नारी अवर भतारु ।
तन विणठा[९] जीउ खेलिआ छाडि चलिआ घर वारु ॥

(१) कानों से । (२) सहम, सशा, अदेशा, डर । (३) वहुतही=च्यत । (४) आथा, ठिकाना । (५) अगनी पाणी तथा वाउ (वायू) जिस जम पथ में भड भड रूप भयानक शब्द कर रहे हैं । (६) सेंक, उश्नता, ताप । (७) ऊभेश्वास लेते हुए को । (८) 'अपवित्त' पाठ भी है । (९) विनसा, नाश हो गया ।

जैसे कर्म कमाईअहि सहु जीआ तूँ नाल[१]।
अधुले नाम विसारिआ वशगति कीता काल ॥
अत न साथी संगि को नाँ कुछ भोजन खानु।
गल संगल तिस नानका ओहु दरगह कुपरवाणु ॥ ४८ ॥
साक्त गरबि व्याप्या जन्म मरन दुख ताहि।
आवा गवन न मेटीअहि जे जुग घ्नेरे[२] जाहि ॥
कुंभी नरकि पचाईअहि जिस साध संगति बुद्धि नाहि।
जिनाँ नाम विसारिआ से बाँधे दुःख सहाहि ॥
सतिगुर का शब्दु न चीनिओ ते नर नरकि पचाहि।
सेवक भाय फलु पाया से दरगह पैधे[३] जाहि ॥
भगत सोहन दर गाँवदे नानक शब्द सलाहि ॥ ४९ ॥
दरगह पैझन[३] सच्चिआर जिन सच्चे नालि पिआरु।
कर्म धर्म दुइ साखीआ तिस सच्चे कै दरबारु ॥
दर सच्चे लेख निवड़ै[४] बहि धर्म करै वीचारु ॥
जिनाँ नामु अराधिआ पूरे गुर की ओट।
से मुक्त भये जन नानका तिन जम बाधे[५] दिल खोट ॥ ५० ॥
सिर नउतन[६] काल न छोडई थाकी कर्म कमाइ।
जंत्र जीउ तिस सगमै अनत न काहूँ जाय ॥
सच्चा साहिब सो धनी सिर सिर हुकम सवाइ।
आसा मनसा मोहनी गल बंधन पाए पाइ[७] ॥
पूर्ब लिखिआ नां टलै जो लिखिआ लेख रजाय ॥
मोह सदा अपमान मनु हउमैं गारवि देहु।
कामु क्रोधु मनि वसि रहै अंतकालि तनु खेहु ॥ ५१ ॥
साक्त जन्मै भरमि भरम अगनत सहै सजाय।
तरवर टूटे पात ज्यों नाहिं कहीं ठहिराय ॥

(१) साथ। (२) व्यत। (३) सेवक भाव से प्रेम प्रीति का पहिरावा पहिन कर मान प्रतिष्ठा पूर्वक भगवत की दरगाह (सच्चखण्ड) में जाते हैं। (४) भस्म हो जाते हैं। (५) तिन्होंने खोटे मन वाले छलयुत (दुष्ट) जम काल को बाँध लिया, अथवा नाश कर दिया है। (६) नित्य नवीन रहने वाला (एक रस बलिष्ठ)। (७) पाँऊ में।

बाउ बघूले ज्यों फिरै साखत सिरि एहु लेख ।
मनहठ कर्म कमॉवदे बलवच करै वहु भेख ॥
मति फिट्टी विलखी जुगति सजम रहत न भाय ॥
नानक निमप न काटीग्रै साक्त कउ लिखी सजाय ॥ ५२ ॥
सहै सजाई बहु घणी लहै दुःख पर दुःख ।
साखत कबहूँ न त्रिप्तीए तिस व्यापै माया भुःख ॥
माया ममता मोहिआ नामु न धरै पिआरु ।
जमदरि बद्धा मारीए साखत होय पुआरु ॥
साखत जम कारणि पती[१] लेखै कबहूँ न शुद्ध ।
नानक साखत मारीए मन हठ मनही बुद्ध ॥ ५३ ॥
मन्मुख मनु की मति चलै सुनै न कब उपदेश ।
नहि[२] सिर अंकुश सतिगुरू नहि मन ब्रह्म विवेक ॥
नहि भाउ भगति सेवा नही नही जप तप इस्नानु ।
मन्मुख खोटी रासि है अतरि गर्व गुमानु ॥
हउमैं ममता मद भरिआ फिरै अह अभिमानु ।
नानक जिन कीआ तिसहि न जानही साक्त गलहि निदान ॥५४
ज्यों मीना फाथा जाल महि त्यों साखत फाथा आय ।
ज्यों माखी गुड़ स्यों मुई तिन आप न सकिओ छुडाय ॥
ज्यों दीपक देख पतंग खपिओ त्यों साखत निंदा जाल ।
भारु पराया सिर करहि से जम के राहै चाल ॥
बधी निंदा पोटली[३] निंदक लई उठाय ।
नानक आपे नरक जाहि तिनाँ लेत न कोइ छडाय ॥ ५५ ॥

(१) साक्त जम के वास्ते (जम के नाम) पत्रका लिखता है भाव वासना को लेकर कर्म करता है। (२) ना तो सिरपर सतिगुरों का अकुश ही धारता है और ना उसके मन में ब्रह्मज्ञान का ही प्रादुरभाव है। इस वचन में एक ध्वनि निकलती है कि जब तक पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक गुरू का अकुश सिर पर धारे रखना चाहिए, जो ऐसा ना करेगा और ब्रह्मज्ञान प्राप्ती से शून्य ही स्वतत्र हो फिरेगा वुह मन्मुख है। उस मन की मति में चलने वाले की दशा आगे कही है। (३) गाठ (बोझा)।

निंदक खोटी रासि है नाँ तिस लाहा न मूल ।
निदक सिर बहु करज है पाथा व्याज अतूल ॥
साख्त की सभ पूँजी गई लाहा निमष न पाय ।
साख्त अधे मूढ मन खोई खेप अजाय[1] ॥
ज्यों आया त्यों चलिआ हथ पछोड़ै अत ।
नानक साख्त दुखी भये चले न साधू मत ॥ ५६ ॥
दहि दिश धावै भूख मनि त्रिप्र नही दुख एउ ॥
गर्ब गुमान न चुकई दुर्मति छुटहि केउ ॥
तिश्ना तामस लोभ मोह साख्त मनु लाया ।
बिनु हरि भगति न छुटई सहु कीआ कमाया ॥
सुत्ता अध न जानई सभ रैण[2] विहाणी ।
नानक शरन अपार की गुरमति बुधि जाणी ॥ ५७ ॥
उत्तम जन सगति परधान । सुन्न समाय रहै मनु मानु ॥
इहु मनु समझै लहहि निधानु ।
इहु मनु समझै अपनै घर निधि पावै ।
अपने घर महि घर नदरी आवै ॥
अकथ कथै अवगत कउ पावै ।
नानक सुन्न समाधि समावै ॥ ५८ ॥
साधू की मनु ओट गहु मन हठ कर्म त्यागि ।
आपु तजहु गोबिंद भजहु संतन चरनी लागि ॥
पानी पक्खा पीस जन अपना आपु गवाउ ॥
गुर की आज्ञा द्रिढ गहि रहौ संतन पाँहि[3] विचाउ ॥
होय सतन की रेण रहु नीचहुँ नीच कहाइ ।
नानक मार्ग संत कै हउमैं ममता जाइ ॥ ५९ ॥

---

(१) अपनी रास पूंजी साक्त (मन्मुख) ने व्यर्थ ही गवादी । रास पूंजी से भाव स्वास का खोना ही खेप खोना है । (२) आयू रूपी सगली रात्रि व्यतीत हो गई । (३) सतों के पास, सतों के आगे अपने आप को बेच डालो और उनके मोल लिये हुए सेवको वत सेवक होकर उन की आज्ञा को द्रिढ़ता से पालन करो ।

साधू का अंचल द्रिढ़ गहै तिस जमु नॉ सुप्नै दीस ।
सोवत जागत मिलै सत मनु कर्म राच जगदीस ॥
अठसठ मंजन नित करै साधू के दर्शन माहि ।
ग्रिह महि साध न जानई अठसठ भरम फिराहि ॥
अठसठ लागैं चरन आय जो लै साधू उपदेश ।
नऊँ छिअपट अरु वेद चारु[1] तिस आगै आदेश ॥ ६० ॥
साध वचन जिन मानिआ से ऊचे ते ऊच ।
तिन त्रैकुल[2] तारे आपने अवर स्रिष्टि वहु मूच[3] ॥
पर उपकारी संतसग जिस किस लेह उधारु ।
लागे किसहि न छाडई तारे भउजल पारु ।
अनलागे रोवैं घाटि (पर) जो लागे से पारु ॥ ६१ ॥
तिन आवन जाना नाहि तिल[4] जो साधू शरनि परे ।
प्रेम भगति से रच रहे भवजल विपम तरे ॥
लगे पर[5] तिन प्रेम के चढ़ै गगन सिर जाय ।
मान सरोवर हस ज्यौँ चुन मुक्ताहल खाय ॥

---

(१) नौं व्याकर्ण, छ शास्त्र, पट वेदांग तथा चारो वेद उसके आगे नमसकार करते हैं । भाव सतों के दीक्षत गुरमुख का अनुभव इन सभ के सिद्धात के ऊपर चढ जाता है। (२) नानकी, दादकी और श्वाशुरी यिह तीन कुल तार लेता है। माता का अश नाना के घर का है और पिता का अश दादा के घर का—माता पिता के सयोग से ही उपासक का शरीर वना है। और विवाहितहोकर श्वशुर के घर के अश को अपना अग बनाता है। इस कारण एक उपासक के उद्धार से तीन कुलों का उद्धार इस जगह कहा गया है। क्योंकि सतान के हर्ष विपाद की प्राप्ती पर इन तीनों सम्बन्धियों को बराबर एक सा हर्ष विपाद प्राप्त होता (सम्सार में) सभ के देखने में आता है। सो जैसे हर्ष विपाद का एक सारखा हिस्सा मिलता है तो उद्धार का भी अवश्य ही मिलेगा। सो जो उत्तम सतान अपने परवार का हित चाहती है उसे करतार का याद में लग जाना चाहिये आप ही निरसदेह सभ का भला हो जावेगा। जैसे जो खाएगा उसी को तृप्ति होगी दूसरे को नहीं ऐसे ही जो भजन करेगा वही उद्धार पाएगा दूसरा नहीं? ऐसी सभावना नहीं करनी चाहीए क्योंकि जिस प्रकार माता की त्रिप्ती से पुत्र की त्रिप्ती होती है और प्रिय वस्तु पुत्र को खिलाकर माता पिता सतुष्ट होते हे जिससे प्रीति पात्रों की एक दूसरे की सतुष्टी से एक दूसरे की सतुष्टता निश्चित है। इसी प्रकार पुत्र के उद्धार से प्रीति पात्र तीन कुलों का उद्धार भी अवश्य ही होता है। ताते हितकारी माता पिता आदि को अपनी सतान को भगवत भजन में अवश्य लगाना चाहिये। (३) उसके पीछे मुक्त होवेगी। (४) जो एक वार भी सत्सग में प्रवृत्त हो गए हे उनको तिलभर भी आवागवन (का सशय न होगा) (५) पख, खभ।

अपना आप[१] गवाय के मिलै निरंजन जाय ।
नानक तिन मित नाँ पवै जो रहै चरन लपटाय ॥ ६२ ॥
जिनाॅ प्राप्त चरन ओट से पूर्ण ब्रह्म रखे ।
तिन सभ महि एक पछानिआ से आपु निवारि चले ॥
नीचा ही ते नीच होय पाई पदवी नीच[२] ।
तिनकी महमा क्या गनीं जिन मति पाई ऊच[३] ॥
अपरपर[४] सेाॅ मिल रहे तिनाॅ मित लखी न जाय ।
नानक सेवा साध की सेवा का फलु पाय ॥ ६३ ॥
जो तिन कीआ भला परवानु । अपने घर महि लहै निधानु ॥
अमर अतीत केवल गुर ज्ञानु । आदि अंत सदा सचु ध्यानु ॥
निज घरि पाया परम निधानु । नानक बुझ लेहु तत पद निरबानु६४
शब्द सुरत पत गत रहै जब पाये गुरू दैआलु ।
ससा तजि अनहद रचै मन चूकै आल[५] जंजालु ॥
कवल बिगसै सचु मनु गुर के शब्द निहालु ॥
इस काची महि सचु जमायलेहु बूझहु गुरज्ञान बीचारु ।
इहु अकथ कथा गुरज्ञानु मति प्रभु दीजै किरपा धारि ॥
इहु मनु राता सचु सिउँ हउमैं भार चुकाय ।
नानक सचे रवि रहे नाॅ विछुड़ि दुख पाय ॥ ६५ ॥

॥ इति श्री प्राणसगली गुर ग्रथे ध्याउ सतारवा सपूर्ण ॥ १७ ॥

---

(१) आपाभाव, देह अध्यास, हऊमैं । (२) दीनता अग को लेकरि भजन प्रायण होकर सर्व की आधार भूत नीच पद्वी जो धुरपद है सो प्राप्त हो जाता है। जैसे मकान की नींव पर ही मकान की सर्व मजिलों की स्थिरता होती है यदि नींव खेंच लें तो मकान स्थिर नहीं रहि सक्ता ऐसे ही सर्व नीचे ऊपर के मडलों तथा मडलेश्वरों की अवधीभूत आधार स्वरूप जो चेतन्यता की निधि है सो चिन्मानता नीच पदवी धुर पद्वी है। (३) जो इस प्रकार के ज्ञान से सभ के नीचे हो जाता है वोह एक प्रकार से सभ को अपने में ही ल लेता है जेसे समुद्र सब को अपने में लेकर अत्यत ऊचे परवत आदि को भी अपने में डुबाय लेने वाला होने से सर्व से वडा तथा ऊचा कहने में आता है ऐसे ही सर्व को अपने में प्रविष्ट कर लेने वाली चिन्मात्रता के यथार्थ ज्ञान से ब्रह्मज्ञानी इस ऊची मति को प्राप्त हुआ अपार महमावान हो जाता है। (४) सभ के परे और जिसके परे और कोई नहीं ऐसा अपरपर जो अवाच पद सर्व का अवधी भूत धुरपद है तिसके साथ जो अभेद हो रहे। (५) ग्रह सबधी जजाल ससारिक धधे ॥

॥ ੴ श्री सतिगुर नानक निरबाण प्रसादि ॥

॥ अध्याय १८ ॥

ता ओना गुप्त सिद्धा आखिआ जी। तपाजी!! तुमारे वचन सुणकर मोम की न्याईं पघरे१ गए हा जी! तेरे वचन रसायण हैं। जैसे परम औषधी पारद२ को जमाय देती है—चंचलता उसकी लीनता को प्राप्त होती है तैसे ही मन हमारे चंचल थे। सो तुमारे अम्रित रूप वचन औषधी कर इस्थिर भए हैं। हे गुरू जी रत्न जटित सिंहासन पर विराजमान हो अरु पदमासन कर इस्थित हो। अरु नाना प्रकार के रंगों सहत जो गोदड़ी है तिसको अंग पर धारे हुए शीश पर दलप सजुगत हो। अरु महाराज जी! श्री नाथ जी आपके दक्षण ओर विराजमान हैं अरु मंडलेश्वरों की पंक्ता अरु गुप्त प्रगट सिद्धों कर वेष्टित३ हो। अरु महा योगी-राज तथा पंडितों कर शुभायमान हो। अरु नाना रत्न मुक्ता मणी हार तुमारे अंग पर शोभायमान हैं। अरु शमश्रु जो दाढ़ी है सो चांदी वत चमत्कार करती है। अरु मुख ते चौतरफी सूर्ज वत प्रभा प्रकाशमान है। अरु फूलों तथा नाना प्रकार के सुगंधों पर भ्रमरें गुंजारते हैं। अरु हे महाराज! मंदर विषे विराजमान हो अरु सिद्ध फूलों की वर्षा करते हैं। अरु महा दिव्य अंगना आरती करती हैं अरु सर्व सिद्ध मंडल जै जै कार शब्द करते हैं। जो तुम्हारा इह ध्यान हृदे विषे धारे सो मन वांछत धर्म अर्थ काम मोष को पावते हैं। तुम ऐसे (स्वरूपवान) परब्रह्म हो। हे प्रभु जी! कृपा करि अम्रित रूप महावाक होर भी सुणावोजी। इह सर्व ही मंडल जो है सो मानो कमल है। अरु हे प्रभ! तुम सूर्ज समान प्रकाशमान हो। सर्व को प्रकाश करते हो। जब गुप्त सिद्धा बहुत बेनती कीती। अरु पंडित जो राजा जी का सुपैन नामा था सो तिसने भी बेनती कीती जो जी हमारा भी उद्धार करो जी। तां श्री जगत गुरू जी प्रसन्न होय करि अठारवा ध्याउ श्री प्राण संगली जी का गुहज बाणी निर्जोग भगत सचे खंड के प्रभाव प्रभ गुण निधान सुखदेव वरनन करते भए—

॥ रागु मारू महला १॥

केवल राम रत्त मन भाया।

जाँकी शरनि तरे शुक नारद ध्रू प्रह्लाद अम्रीक जसु गाया॥१॥रहाउ॥

ऊधो दास विदर जन सेवक हरि भगती लिव लाया।

दास सुदामा अक्रूर भगत जनु हरि चरनी चित लाया॥

(१) पिघल, द्रव। (२) पारे। (३) घिरे हुए।

नामदेव त्रिलोचन कबीर दासरो हरि भगत भाय गुन गाया॥
आदि जुगादि करै तिस भावै करि करि वेखै करै करावै।
तुग[1] फकीर शाह सुल्तानै सिर सिर हुकम चलावै॥
भगतजना मैं भगति पजानै हरि नाम रत्न सुख सारे।
नानक मेलि लेहु जन अपने हरि संगति साध पिआरे॥
हरि सत जनाँ भगत जसु गायो। उस्तति सत हरि नाम तरायो॥
अनेक भगत वंदन नित करहि। चरन कवल हिरदै सिमरहि॥
हरि सत जनाँ उस्तति जैकारु। सत सभा संगति परवारु॥१॥
पुरीआँ[2] सप्त ऊपरि कवलासन। तहाँ पारब्रह्म निरंजन का आसन॥
सत सभा संगत परवारु। तहाँ जाति वरन कुल नाहि अकारु॥
तहँ देह न जाति न जोवन माया। तहँ जोति अनूप एक लिव लाया॥२
तहा रत्नां लाली मालु परोई। तहाँ आदि सिंहासन साचा सोई॥
तहँ बाजै शब्द अनहद धुनि तूरा। तहाँ त्रिभवण जोति रहै भरपूरा॥
जोवन्मुक्त सुशब्द लखाईऐ। नानक जुगति गुर की मति पाईऐ॥३
तहँ आदि सिंहासन सचा थान। तहँ भरपुर[3] लीणा गुणी निधानु॥
तहँ हरि का मंदर सचु महाल[4]। तिस मैं हीरा माणक लाल॥
सच पउडी गढ चढ़े निहाल। दर्शन परसि सु लाल गुलाल[5]॥४॥
तहँ आदि निरंजन निर्मल निर्मालु। तहँ सचु सरोवर आदि अतोल॥
तहँ नाम निधान अमित प्रकार। तहँ घर मंदर पुशी नाम परवार॥
तहँ पैनणु पति पूरा परधानु। तहँ आदि जुगादा भगत नीशानु॥५॥
तहँ उस्तति भगत अनेक अनंत। तहँ भगत जोध सूरा बलवंत॥
तहँ अनत पात्र[6] निरवत॥
तहँ सीती सीता[7] सचरूप अपार। वैन मरहि तूठगीए सचु[8] करनी सार॥
तिथहि[9] भगत वसहि कई लोआ। नानक सचे सचु चदोआ॥६॥

(१) बड़ा आदमी (अमीर)। (२) प्रथम भाग पृष्ठ १०० पर का टिप्पण ८ देखो। (३) परिपूर्ण परमात्मा ही भीतर बाहर समाया हुआ है। (४) सच्च खंड रूप महल। (५) गूढ़ा रंग। (६) यहा पर बेशुमार अधिकारी। (७) तहाँ पर पारावार से रहित सत्य स्वरूप सीत (ज्ञात मई चिन्मात्र) तेज में जो सीता (परोये) अर्थात् गुँथन कीए गए हैं। (८) क्योंकि यही सार रूप सच्ची करणी है। (९) तहाँ पर।

तहँ सत जनाँ उस्तति हरि नाऊँ। उस्तति सच्च सचु असराउ[1] ॥
उस्तति सचु शब्दु परवाणु । उस्तति सचु सचा परवाणु ॥
उस्तति आथ[2] कर्म गुर भाउ। उस्तति जुग जुग सचु पसाउ[3] ॥७॥
उस्तति नामु सची गुर बाणी। उस्तति भगत सच पद निरबाणी
उस्तति अनभउ गुरमुखि आदि। सच्ची उस्तति आदि जुगादि ॥
स्वस्त[4] आथ सच उस्तति होई। नानक गुरमुखि चीनै कोई ॥८॥
सुनहो पंडित कर्मा कारी[5]। ज्ञान पदार्थ तत्तु वीचारी ॥
देह विलोईऔ निकलै तथु[6]। जल मथीऔ जल देखु निरथु[7] ॥
ऐसा ज्ञान सुनो अभ[8] मेरे। भरपुर लीणा सर्व ठउरे ॥ ९ ॥
आतम चीनै सो घर[9] दर पाए। आतम राम सुमत्ति समाए ॥
तहँ जोति अनूप प्रगट दिखलाए। निर्मल महल गुर शब्द लिव लाए॥
पति परवाना पैधा गुर भाए। ओअंकार[10] धुनि अलप लपाए ॥१०॥
मिल सत्सगति भगत आनद। नानक सो चीनै परमानद ॥११॥

---

(१) आश्रय दाता, भ्रोसा, ताण । (२) उस्तति कहने का क्रम जो हे सोई गुरो विषे भाव है। (३) प्रसन्नता। (४) कल्यान रूप कहणी अर्थात् निर्वाण वानी ही सच्ची उस्तति भगवत की होती है। अथवा अपने आप में स्थित करने वाली वाणी ही । (५) कर्म कर्त्ता। (६) सार वस्तु=माखन। (७) असारही असार (व्यर्थ)। (८) हे मेरे प्यारे। (९) तीसरा तिल। (१०) ओअकार की धुनी त्रिकुटी के स्थान पर की मानी गई है प्रतु त्रिकुटी में जब पूर्णत इस धुनी का सादयात होता हे तो अवश्य यिह शब्द धुनि सुरति को सुन्नमडल में ले जाती है-और जो सुन्न में पहुचता हे मोक्ष सुख जीते जी ही अनुभव करता है। मोक्ष और कुछ चीज नहीं हे बस " मुक्ति महा सुख गुर शब्द विचार" महान सुख की प्राप्ती यत प्राप्ती का नाम है-जब रचक भर ससारी सुख अनुभव होता हे तो जीव उस काल में अपने पराये की सुध भूल जाता हे भला जब सुन्न में जाकर इसे परमानद का झलका हुआ तो कैसे सभव हो सका है कि इसे अपनी बेगानी कुछ सुरति रहे-किंतु नही रहती। जब इस प्रकार आपा पर के ज्ञान रहित अनुभव गम्य परम सुख में सुरति लीन होगई तो सुरति का आपा भाव उसी (परमानद सरूप परम तत्त) का आपा भाव हो जाता है । और वोही आपा भाव रहित आपभाव मात्र परम सुख को अनुभव करता है जिसका नाम 'अलप लपना' है । अब इस अलप लपाने' में और अनुभव कराने में कौन कारण माना जावेगा। केवल वोही ॐकार की ध्वनी जिसने हमें वहा पहुचा कर इस का अधिकारी बनाया-सो इसी बात-को सन्मुख रखकर "ॐकार धुनि अलप लपाय" कहा है। (यिह जो अलप लपना का किंचित निरणा किया है सो वास्तिक अलप लपने की झलक है-जिस प्रकार दर्पन सन्मुख रखकर बैठे हुए पुरुष को अकस्मात् कोई दिव्य स्वरूप पीछे से झाकी देवे तो उसको दर्पन में पूर्ण दर्श उस का

सो बूझै जिसु आप बुझावै । जिसु मेलै तिसु भरमु चुकावै ॥
सो चीनै जो आपु गवावै । सो सेवक[११] गुर दर्शन पावै ॥
गुरमुखि नेडे मन्मुख दूर । बिन ही प्रीतम मरीए झूर[१२] ।
मन्मुख मरीए गुरमुखि तरीऐ । गुरमुखि बचनी बिष परहरीऐ ॥
गुरमुखि निर्भउ जमहुं न डरीऐ । गुरमुखि निर्मल मैलु न भरीऐ ॥
नानक गुरमुखि अजरु जरीऐ ॥ १२ ॥
ऊंधे[१३] खोरे काचे भॉडे । इन महि अम्रित टिकै न पॉडे ॥
उइ भागहि[१४] फूटहि काम न आए । उइ आवहि जावहि पाक सवाए[१५]
काची गगरी टिकै न पानी । नानक बूझीअले इहु पद निरवानी ॥१३
पवै ऊंधे खोरे वहि जाय । काचा कॉम न आवै ताय ॥
हउमैं बधन रोग शरीरा । आसा मनसा कठनु मनु पीरा ॥
लोभ मोह क्रोध चडारा । त्रिश्ना तामस बली हकारा ॥ १४ ॥
जिसु सतिगुर मिलै मनु अनत[१६] न जाय । सो अविनाशी करै रजाय ॥
नहिं को ऊतम नॉही को हीना[१७] । सभ मैं एक जोति प्रभ कीना ॥
किसते दूर कहु किसते नेरे । इह झगरा सतिगुरू निवेरे ॥ १५ ॥
ते वेमुख उरवार न पारु । तिन दर दर्शन नाहि दुआर ॥
उइ जन्महि मरहिं कर्म के बांधे । क्रिरम जोनि जाहि ते दुखी अप्राधे ॥
नरक पचहि भवजल पच जाहि । दुख संतापु न चूकै तॉहि ॥
मनु कुशुद्ध हिरदै नही नाम । नानक ते जमपुर सहहि सहॉम[१८] ॥
अहिनिस निंद्या करहि बुरियाई । चोरी चचल मति शांति न पाई ॥
सतिगुर ते वेमुख भगति नहि भाउ । अध मुग्ध आवउ फुनि जाउ ॥
पशू प्रेत नीच घरि वासा । नानक जिहँ घटि गुर ज्ञान न अभ्यासा ॥१६

होता है–परतु है वोह आभास मात्र–इसी प्रकार सुन्न में पहुची सुरति के सामने पूर्ण निर्मलताई रूप दर्पण पडा होता है तो उसमें अलप स्वरूप की झलक पडती है जिसे देखते सार सुरति मगन हुई उस परम अम्रित सुख को अनुभव करती है । (११) "दर दर्शन" पाठ भी है अर्थ यिह कि सेवक सचा वोह है जो मालक के दरबार का दर्शन पावे । (१२) सख्य विषे, पश्चाताप करते हुये । (१३) उलटे हुए (वेमुख) तथा कच्चे (साधन सपति से रहित) खोटे (विषय वासना कर ग्रस्त) अत करण भाडे (बरतन) विषे । (१४) वुह तो टूट फूट जावेगा । (१५) सभी ही । (१६) और तरफ नहीं भटक सका । (१७) नीच । (१८) सिरोसिर हुए (व्यत कए) ।

गुरमति निर्मल भांडाभाउ। उह फूटि न बिनसै मैलु न ताउ ॥
उह तत्तु प्रायण सचु पसाउ। जुग जुग अस्थिरु साचा नाउ ॥
अवधू गगन मडल काम धेनु जिन चोई। नानक सर्व जीआँ का दाता सोई ॥ १७॥
अहि निस भॉडा प्रेम करि दुद्ध। पाईअै सुरति समायण[1] शुद्ध ॥
जोग जुगत[2] निरकार समाउ। जुगति बिहूना ततु न पाउ।
गुर ज्ञान मधानी नेत्रा[3] भाउ। तत्तु बिलोय नानक रस खाउ॥१८
लेवै तत्तु गगन सर भरै। सिउ[4] आतम राम स्यों गोष्ट करै ॥
आतम कउ चीनै गुर सुआमी। सभ घट भोगै अतरजामी ॥
सहज वैरागु सुमत्ति समावै। नानक गग समुंद्र मिलावै ॥ १९ ॥
गग बनारसि सिफति तुमारी। सिफती राता सहजि विचारी ॥
छत्तीह अंम्रित भोजन भाउ। नदरी करमी सचु पसाउ ॥
सत[5] सर न्हावन गुरमुखि भाउ। नामु दानु नानक मनि चाउ॥२०॥
अपिउ[6] पीए मनु सुन्न समावै। निज घरि बसै फिर कालु न खावै॥
अकथ कथै गुर मुखि निज ध्यानु। लहै पदार्थ नामु निधानु ॥
दे प्रदक्षणा चढ़ै अपवाड[7]। रस सग्रै तजि बंको नाड़ि ॥

पंच दूत बटवाड़े[8] पाडि[9] ॥

ज्ञान खडग लै मनु[10] स्यों लूझै। मार्ग दश[11] पचां का बूझै ॥
जिह्वा इंद्री त्यागै बांक[12]। प्रणवत नानक दर नहि ठाक ॥ २१ ॥
इह भोगै सो पारग्रामी। अंतर गति बूझीअले सुरत समानी ॥
सर्बै इंद्री द्रिढ करि राखै। मन तन जीअ असत्त न भाखै ॥
कोट कुटतरि महि इस तत्त शब्द का वेता। अखड[13] मडल नानक सचु चेता ॥ २२ ॥

---

(१) जाग (लाग)। (२) जुडते हुए। (३) जो रस्सी दही मथते समय मथनी के साथ बाँधी जाती है। (४) कल्याण स्वरूप। (५) मानसरोवर अतरीव अमृतसर अथवा सत्य सतोष दया धर्म धीर्य वैराग ज्ञान, इन सरोवर रूप सात विषे। (६) अम्रित। (७) पिछवाड, पश्चिम की ओर। (८) वाट मारने वाले, राह मार (लुटेरे)। (९) उनको फाड देवे, पृथक पृथक कर देवे (टुकडे टुकडे कर डाले)। (१०) मन के साथ लडे। (११) दश इंद्रिया चार अन्तःकरण तथा एक जीव इन पच दशों १५ के आने जाने का मार्ग। (१२) व्यंगता (मिथ्या भाषण तथा स्वाद की चाट को)। (१३) सचखड।

पर विरति[1] समाय निरवृति घरि रहही। तैसे मरै जि वहुरि न मरही॥
अजन माहि निरजनु पाए। गुर चेले[2] की संधि मिलाए ॥
त्रिभवन तिसु बूझै गुर शब्द लखाए। नानक सुन्न समाध लगाए ॥ २३ ॥
आपे आपु पछानै सोइ । आपे करि देखै त्रिभवन लोइ ॥
आपु उपाय देइ अधारु । आपे स्रिष्टि कीओ आकारु ॥
चहुँ छत्तीसॉ[3] का जो जाणै भेव। नानक अलप लखाए गुरदेव॥२४
सो अविनाशी तिसु रूप न रेखिआ। गुप्त प्रगट गुरमत्ती देखिआ ॥
वरन अवरन कुल जाति न जाया[4]। आस्तनास्त[5] अलप सवाया॥
अनंद रूप नानक लिव लाया ॥ २५ ॥
अनभउ घरि रहै उज्यारा होइ। तिह अकुल निरजन साचा सोइ ॥
पार न दीसै भउजल ससारु । गुरमुखि सेवक मुक्ति दुआरु ॥
आदि अत अवर नही दूआ। नानक सो चीनै जो जीवत मूआ ॥२६॥
सनक सनंदन तपसी मुनि केते । ब्रह्मादिक इन्द्रादिक तेते ।
देव मनुष्य पशू अरु देवी । ताके अतु न पावहि केई ।
जन्म मरहि फुनि सोभी नाहि। नानक गुरमति ले सहजि समाहि ॥२७।
जोगी जगम विकट[6] जटा धारी । नानक भेप करे भेपारी ॥
खेचर[7] भूचर अरु पवनाधारी । पट कर्म अभ्यासी डंडा[8] धारी ॥
चरपट गोरख अरु कानीपे[9]। नानक सुरनर सेवहि दरदीपे[10] ॥२८॥
देव दानव गण गध्रप सारे । विन प्रेम भगति नही मुक्ति दुआरे ॥
सुखदेव महात्म नारद मुनि व्यासा। सुर नर मुनिजन जोग अभ्यासा॥
सप्त ऋिषि चित मुक्त दुआरै। नानक दरि सेवहि अलप अपारै ॥२९॥

---

(१) पराई वरतन (मायक प्रवृति) को लय अर्थात दूर कर के। (२) शब्द सुरत की सधि। (३) चार वेद, पट शास्त्र, सताई स्मृतियॉ, तीन प्रस्थान इन सभ का जो सार गर्भित तत्व है "चहुँ महि पेख्यो पट महि पेख्यो दस अष्टी स्मृताए। सभ मिलि एको एकु वखाणै" इस सिद्धा को जो ,विवेक के प्रभाव से जाणे। (४) स्त्री। (५) सत् असत् (प्रगट गुप्त)। (६) जो कभी भी काटी ना गई हो, एक रस वढी हुई (वडी वडी लवी)। (७) खेचरी भूचरी साधन के अभ्यास की सिद्धी से सिद्ध हो कर आकाश तथा प्रिथ्वी में गुप्त प्रगट हो विचरने वाले सिद्ध। (८) दडी। (९) कान फटे। (१०) परकाश सरूप दरगाह में अथवा जहा अखड दीपक रूप परम ज्योति प्रकाश करती है उस दरवाजे को सेवते रहते हैं।

उश्न शीत नाँही तहिँ घामा। सूर्ज जपत[1] नही तहि कामा[2]
अगनि विंव नाही तहि राति । तहँ पाप पुन्न नाही कुल जाति
हउमैं गर्भ नहीं तहूँ सोइ । नानक साचा अवरु न कोइ ॥३०॥
नाले[3] अलप गुर दीआ लखाय । सर्व कला जानै रंग लाय ॥
जिन वाँधे कालु जालु अनहदु पत्याइ ॥
सत्त सताई चौदह चारु । ताँके सेवक अहि निश दर दरवारु[4] ।
देखि विचार समझै मनु मानिआ।नानक घटि घटि ब्रह्म पछान्या ३
आपे आप निरजनु सोइ । नानक बूझै विरला कोइ ॥
प्रेम पदार्थ करनी[5] सारी । सहजि भाय मिलिआ वनवारी ॥
साचा साहिवु सर्व सुजानु । आपे भगत आपे नीशानु ॥
आपे सतगुर पूरा गुर ज्ञानु । नानक मनु मानिआ जिन जानु ॥३२॥
अठ अठारॉ वारॉ वीसा । जुग जुग सेवक पच इकीसा ॥
तीन चार एक महि रचहि । धरनि अकाश कला घर सचहि ॥
अतर जामी घटि घटि जाणु । गुर मति चीनै पद निरवाण ॥
उन्मनी कला काल कउ मारै चापु[6]। नानक सो देख्यो थापि उथाप॥३३॥
विन ऑखी देखै त्रैलोइ । विन करनॉ सुनीऐ सभ[7] सोइ ॥
विन जिभ्या जपि कैवल[8] नाऊँ । विन चरनाँ अचर्ज घरिजाउ ॥
विन हस्ताँ सभ सेव कमावउ। नानक निज घरि सहज समावउ ॥३४॥

दूख विनाशन अघ हरन किलविप काटण हारु ।
सतोप सरोवर पर्वतै वर्पै अम्रित धारु ॥
मित कीमति किनै न पाया अलप निरंजन सोइ ।
नानक इहु मनु मानिआ सहजै होय सो होइ ॥ ३५ ॥

॥ इति श्री ध्याउ अठारवाँ प्राणसगली का गुर ग्रथ सपूर्ण ॥

(१ २) दिखाई नहीं-देता। कर्मचारी, सेवक (सूर्य प्रस्त)। अथ्वा वहा पर कोई काम ही नहीं है कि जिसमें प्रवृत कराने के वास्ते सूर्य की आवश्यक्ता पडे। (३) साथ ही। (४) सच्चखड दरवार के दरवाजे पर। (५) यही श्रेष्ठ करणी है। (६) उन्मनी कला (वाजी) में सुरत को चाप अर्थात् खेंच कर (चढाकर) काल को मारडाले। (७) सभ प्रकार का अतरीव समाचार (भगवत के दरबार पास का रागरग)। (८) जिस में और प्रकार की वनावट ना होवे भाव अनाम स्वरूपी सहज नाऊँ (अशब्द रूप शब्द)।

॥ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

॥ अध्याय १८ ॥

ता ओना गुप्त सिद्धा ते श्री गोरखनाथ भरथरी नाथ जी कह्या है गुरू जी तेरे बचन रत्न अमोलक हैं। ते जोग की निधि है। जितने शास्त्र हैं सो कथा राज्या दी, ते बर्तण ससार दी कहदे हैं। ते तपा जी असी[1] ता सिद्ध होए अरु ससार तो विहगम होए ताते तुमारे बचन सुणकर मन में भूष्ण कर राखे हैं। योग भूष्ण एही हैं। योग[2] रत्नाकर तुमारे बचन हैं ताते तपा जी कृपा करि कै होर भी अम्रित पिवावोजी। जा नाथ जी फेर (ऐसे) आखिआ ता श्री सतिगुरू जी प्राणसगली जी का उन्नीहवा ध्याउ आरभ कीता—

सुसंवेद रत्नमाला छोटी।

॥ रागु रामकली महला १ ॥

त्रिहु का मारि मिलावै मानु। पचां[3] माहि रहै परधानु ॥
इन पंचाँ का जो जाणै भेउ। सोई कर्ता सोई देउ ॥
अगम[4] निगम जो वाचै जाणि। नव ग्रहि बाँधै इकतु घरि आणि॥
सत्ति सताई चउदह चारि। ताँके आगै खडे दुआरि ॥
अठ अठारह बारह बीस। आगे काढहिं खडे हदीस ॥
ऊची नदरि सराफी होय। नानक कहै उदासी सोय ॥ १ ॥
उदासी सो जो रहै उदास। रूख बिरख ग्रिह भीतरि[5] वास ॥
अहिनिशि रहिवो जोग अभ्यास। पर त्रिय अगु न लावै पास ॥
जितु तनि दुतीआ मैलु न होई। नानक कहै उदासी सोई ॥२॥
ज्ञान खड़ग ले मनु सिउँ लूझै[6]। मरम दसाँ पंचाँ का बूझै ॥
मनु मिरतक की पावै गठि। तीरथ परसै त्रैसे सठि ॥
जिनि इहु मैलु मनहिं की खोई। नानक कहै उदासी सोई ॥३
देही अंदरि अठसठि हाट। ताँके बजर जराए कपाट ॥

(१) हम तो। (२) योगरूपी रत्नों की खाणि। (३) पाच शब्दो में आरूढ रहे (इस जगह पांच दूतों को स्वाधीन रखने का अभिप्राय नहीं है। क्योंकि अगली सभ पंक्तियों में शब्द का ही प्रसग है)। (४) अगम का वेद जो पढ जाणे। (५) "घर अदर वास"। (६) लड़े।

अवघट घाट त्रिपमु है बाट ॥
ऐसा मारगु (सति) गुरू दिखाया । दहदिशि ढूढि सहजि घरि आया॥
अठसठि गंठी खोले कोई । नानक कहे उदासी सोई ॥ ४ ॥
प्रथमे पूर्ब कउ द्रृष्टि धरै । दुतीआ दक्षण कउ गवनु करै ॥
दक्षण ते जो पछिम जाय । तउ हाट पटन की सोझी पाय ॥
पछम ते जो चढै सुमेर । आवै परदक्षणा कै फेरि ॥
पुरीआँ[१] सप्त ऊपरि कउलासनु । तिथै पारब्रह्म का आसनु ॥
जिन हीरै रत्नो माल परोई । नानक कहै उदासी सोई ॥ ५ ॥
कहाँ सु गगन देव का भउणु । अहिनिशि सदा मनावै[२] सउणु॥
महाँ सूरा पूरा कौन । अहिनिशि जूझै[३] (जागै) दुरजन दौन[४] ॥
बाँधै वैसतर[५] पानी पौन ॥
गगन मंडल जिनि गऊआ चोई । नानक कहै उदासी सोई ॥६॥
गुर का भगतु इंद्री का जती । हिरदे का मुक्ता मुख का सती ॥
द्रिष्टि का दैयाल दया करि दानु । जे घट निविआँ ताँ निविआँ जानु
बचनु शब्दु का सफलिउ होता । नानक कहै सोई अवधूता ॥७॥
चंचल चाय न जाय तमाशे । जूऐ जाय न खेलै पासे ॥
अंगै चगै चित्तु न लाये । गुर का दीआ[६] अकि हँढाए[७] ।
पर घरि जाय न कीजै कथा[८] । संतिगुर केरी एहा नथा[९] ॥
गुर की सीख सुणहु रे पूता । नानक कहे सोई अवधूता ॥ ८ ॥

---

(१) यमपुरी, इद्रपुरी, ब्रह्मपुरी, हरीचदउरी, अमरापुरी आदि सप्त पुरीआ ब्रह्मांड की न्याई पिड में भी हैं, उनके ऊपर कवलासन (पद्म सिहासन) है। तहा पारब्रह्म की इस्थिति है (सप्त पुरियों का वृत्तात आत्मा परमात्मा की गोष्टि प्रसग में गुरू महाराज जी ने आगे सविस्तर कहा है इस कारण यहा नहीं कहा)। (२) "जिनके मन महि हरि हरि गवणु" (पाठ भी है)। (३) जग करता रहे। (४) दुर्जन (कामादि) दमन करता। (५) इडा, पिगला, सुष्मना यिह तीनों अगनी पानी पौन हं सुषमना घाट पर तीनों का जहा सगम होता हे वहा सुरत का स्थिर करना इनका (उलाट करि) यही बाधन है। (६) कहिआ पाठ भी है। (७) पहिने। (८) लोगों से मिलकर लबी चोडी बातें बनाना, या लोगों को जा २ कर व्याख्यान ना सुनाता फिरे। (९) अकुश, कुडा, स्त्रियों के नाक में जैसे नाथ होती हे वोह मानों पती का अकुश हे कि वोह हरदम याद रखे कि मेरे सुहाग का अकुश है। जिससे मुझे व्यभिचार में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए ऐसे ही नवर आठ की पौडी में सचे गुरमुख के लिये गुरू साहब ने नाथ रची है। जो इसे पहिरेगा कदाचित उसे दाग

असुरा नदी अपुठी तरे । अहि निशि सदा सिधीरै सरै ॥
कउल उलटै पलटै पउना । इऊँ निवारे आवा गउना ।
मन पवणे कउ राखै बंध । लहै त्रिवेणी त्रिकुटी संध ॥
अपणै वशि करि राखै दूता । नानक कहे सोई अवधूता ॥ ९ ॥
गगनंतर कउ भउर उडावै । अहि निशि डोरी गुडी लावै ॥
परचा होवै ताँ फिरि घरि आवै ॥
इन विधि जुगित कमावै जोगु । आयाँ हर्षु न गयाँ सोगु ॥
संजम रहै न बिनसै सूता[10] । नानक कहे सोई अउधूता ॥ १० ॥
आसनु साधि निरालमु रहै । पंच[11] तत्तु निग्रहु करि गहै ॥
थोडी निद्रा अल्प अहारी । साध का पिंड सदा वीचारी ॥
जप तप संजम सुरति विचक्षण । नानक कहै जोग के लक्षण ॥ ११
जाँ बोलै ताँ ब्रह्म ज्ञान । अहि निशि जागे सहजि ध्यानु ॥
सुन्न मंडल महि डोरी धरै । गुर प्रसादी कदे न मरै ॥
इन विधि कीजै गुर की सेवा । ताँको बदहिं सगले देवा ॥
जिह्वा भेद न देई चक्खण[12] । नानक कहे जोग के लक्खण ॥ १२ ॥
ताँमस तिष्णा लोभ निवारे । पंच[13] अग्नि घटि भीतरि जारे ॥
अहि निशि रहै गंडीर चढाय । सहजु उपजै दुर्मति जाय ॥
साध निवाजे बँधे चोरा । जम जगाति[14] न लागै तोरा ॥
उत्तम भले जिनाँदे जक्षण । नानक कहे जोग के लक्षण ॥ १३ ॥
पाँचउ इंद्री दृढ़ करि राखे । जिह्वा मुखोँ असत्तु न भाखे ॥
कोट कुटंतरि तत्त का वेत्ता । गगन मंडल महि राखे चेता ॥
सिंच[15] पइआलु गगन सरि भरै । जाय त्रिवेणी मजनु करै ॥
सत्त पंजि नउँ लगा रक्षण । नानक कहै जोग के लक्षण ॥ १४ ॥

नहीं लगने पावेगा और पुरुष शरीर धारने का जो असली उद्देश्य रूपी नाक अर्थात पत (इज्जत) आबरू है वोह गुरमुखताई की नथसे अत प्रयत निभ आवेगी । (१०) तार । (११) पाच तत्व के स्थान में ध्यान लगावे-यिह भाव है । (१२) स्वाद न लेने देवे (परचने ना देवे) । (१३) पाच प्रकार की ज्योति (रोशनो) । (१४) महसूल (हाला) । (गुरबिन मंत्र न जपीए होरा) पाठ भी एक प्रती में है । (१५) पाताल का रस (सुरति) उलटि करि बारबार निरोध करन रूप सिंचता २ गगन सर को पूर्ण कर देवे भाव पूर्णत सुरति वहा स्थिर हो जावे ।

पूर्वि चड़ै पछम कउ आवै । रवि शशि दोय इकत्र मिलावै ॥
अउहट[1] पटण की चीने वाट । ताँ परि बूझै अवघट घाट ॥
नउँ खड देखै पूर्व पछिम उत्तर दक्षण । नानक कहे जोग के लक्षण ॥१५
एहु तनु भाँडा सुरति करि दूधा । पाईअै सचु समाइणु सूधा ॥
जुगति जतन करि सहजि जमाया । जुगति विहूणों विकउ[2] जाया ॥
ज्ञान मधाणा नेत्रा भाउ । इन विधि जपीअै केवल नाउँ ॥
रोल विरोल लीआ है मक्खण । नानक कहे जोगके लक्खण ॥१६
जिन माया जगु मोहिआ ब्रह्मा विश्नु महेश ।
ब्रह्मादिक इंद्रादिका सिद्ध साधिक मुनि-एस ॥
जती सती भवि भीपक रसी मोही मोहनहार ।
इद्र इंद्रादि जुगु जुगु हौमैं चिंताधार ॥
देवी देव सबाया सिध साधिक मुनि ध्यान ।
नानक कालु जालु बशि याहते हुकम सचै नीशानु ॥ १७ ॥
शास्त्र वेद कतेब सुनि नरक सुरग ते जाहि ॥
माया मोहै गुर शब्दु बिनु मन्मुखि भरमि भुलाँहि ॥
सुर्ग मिरत तन मोहिआ सप्त लोक पाताल ॥
आकाशी वैकुंठ लोक से मोहे माया जाल ॥
जो शरनि परै जगदीश की संत जनाँ प्रगरेन[3] ।
नानक सो दर्शनु पाइसी अविनाशी सुख सेन[4] ॥ १८ ॥
गुर जत सत सिवरउ[5] मुक्ति सरोवर जपु तपु सहजि ध्याना ।
सुख[6] सरोवर मुक्ति वर दाता, घटि घटि सो पिरु[7] दाना ॥
यिह सुच संजमु गुरज्ञान पदार्थु हरि अंतरि भगति पजाना ॥
मिथ्या लोभ भये मनु सूचा सहजि भाय मनु माना ॥

(१) ऊपर के हाट्ट तथा पटण (नगर शहर) आदि जो टिकने के स्थान हैं उनकी घाट (मार्ग) को पहिचाने। (२) बरबाद । (३) धूली-भाव उनके चरणों में धूली के समान प्ररम दीनता को धारे। (४) सुख की सेना-भाव अविनाशी सुख सबूह । (५) सिमरण करो। (६) सुख सरोवर। (७) उसी प्रीतम (परम पुरुष) को घट घट में पूर्ण सभ का प्रकाश करता दाना (जाना)।

मुक्ति सरोवर भाय सुमुक्ता नाऊँ सुनि पसम निकाला ।
नाऊँ सुनि दाता गरभु अगनि प्रभु पाया दीन दैयाला ॥ १९ ॥
त्रिभवणमहि घूले अमरूपदु डडा। अलप घरि आसनु त्रिष्णा भेउ खंडा
सु आकुलु पावहिँ सतिगुर की सेवा । जाँ कउ वदहिँ देवी देवा॥
जिह्वा अनरस स्वाद विचक्षण। नानक सहज वैराग के लक्षण ॥२०॥
विमला नदी उलटी तरै । उलटी पलटि सिधीरी करै ॥
सीधा कमलु पूरण तिहँ पवणु । इऊं निवारै आवा गवणु ॥
मनु[1] पवनै कै शब्दि ले बंध । नानक इऊँ टूटै जम का फंध ॥२१
सो अबिनाशी आपे आपि । कालु विकालु कउ मारे चाँपि ॥
परघर जाय न सुने अनकथ । यिह आदि पुरुष सतिगुर की नथ ॥
सतिगुर की सीख्या सुन रे पूत । नानक जुग जुग सतिगुर अवधूत॥
अतरजामी मिले सुहेला । जागत अवस्था मन मारि इकेला ॥
क्षमा सरि भरिआ माणकु मोती। अमरापुर चढि किन माल परोती॥
रोगु विजोगु सोग परजालै । आपु पछाता गति मति नालै ॥
ऐसा अलप अपार निराला। नानक दीनाँ प्रतिपाल समालै ॥२३॥
अरचै कै घरि रहे उदास । परचै कै घरि करै निवास ॥
परचा छोड़ि अरचे दरि खोलै । तीन चार दुइ सम करि टोलै ॥
नऊं द्वरि मूद इकलु घरि जाय । सुन्न गुफा की सोझी पाय ॥
उस दर का खूलै दरवाजा । तां सुणि देखै अनहदि बाजा ॥
ऊहां सर सुभर अंम्रित स्यो भरिआ। एक बूंद रसु कार्ज सरिआ॥
ऊँदरि[2] कै शब्दि बिलाई भागी । नानक कहै सोई वैरागी ॥२४॥

(१) पीछे कहा गया। (२) ॐ+दरि=ॐ से भाव ॐकार शब्द का है प्रतु यहा गुरू साहब को ॐकार पद का कहिना अभीष्ट है सो ॐकार पद के दरि=दरवाजे अथवा दरबार का जो शब्द है (ॐकार की धुनी) उससे अहता रूपी बिल्ली जो सदेव मैं मैं करती रहती हे भाग जाती है तात्पर्य त्रिकुटी के स्थान पर अहता का पटल इस के (सुरति) सामने से भाग जाता हे। अभी नाश नहीं होता इस लिये उत्थान में फिर स्फुरण हो आता है तभी ही हठयोग को खडन किया गया है क्योंकि इस से आगे की खोह खबर नहीं देता और ना पहुचाने की सामर्थ्य ही हे॥ (जो गुरबाणी के वक्ता ॐदरि शब्द को चूहा या उदर का शब्द कहते हैं धोखे में हैं) सुरति शब्द योग की रीती से ॐकार की धुनी ऊपर तक पहुचाती है इस वास्ते गुरू साहब भाय इसका आम तौर पर उपदेश करते भी रहे हे ॐ दर उपरले दर का शब्द (सहसदल का) भी हो सका है परतु ॐकार शब्द समीचीन है।

सीस मुंडावै टोपी पावै । खिंथा पहिरै वन खंड जावै ॥
कंन्ही तुलसी कंठी माला । हाथ फहौडी कांधै म्रिग छाला ॥
कर पखंड लोकां पत्यावै । अंतर की दुविधा कबहूं न जावै
पहरि भेप ग्रिह तिरिआ त्यागी । सो नाही पुरुपा वैरागी ॥
मिलि सतिगुर हउ मै नही त्यागी । नानक सो नाही वैरागी ॥२५
जत दीपक तत्त का तेला । सुरत कर बाती सहज सीं मेला ।
पंचहुं मेल चांदनां करै । तित चांदनै गढ़ ऊपर चढ़ै ॥
उत गढ वैसि होवै वड भागी । नानक कहै सोई वैरागी ॥२६॥
बिन सजम वैराग न पाया । भरमतु फिरिआ जन्म गवाया ॥
क्या होया जो औध बधाई । क्या होया जु विभूति चढ़ाई ॥
क्या होया जु सिंगी बजाई । क्या होया जु नाद बजाई ॥
क्या होया जु कनूआ फूटा । क्या होया जु ग्रहिते छूटा ॥
क्या होया जु उश्न शीत सहै । क्या होया जु वन खंड रहै ॥
क्या होया जो मोनी होता । क्या होया जो वक बक करता ॥
सोहं जाप जपै दिन राता । मन ते त्यागै दुबिधा भ्रांता ॥
आवत सोधै जावत बिचारै । नींदर मूदै तपते मारै ॥
दे प्रदक्खणां दस्वे चढै । उस नगरी सभ सोझी पड़ै ॥
त्रैगुण त्याग चौथै अनुरागी । नानक कहै सोई वैरागी ॥ २७ ॥
सो वैरागी वै महि[1] आवै । शिव कै आगे शक्ति निवावै ॥
शिव शक्ती के कर्म जु करै । अजर वस्तु अगोचर जरै ॥
ऐसा अउपतु[2] खाह गवारा । जितु खाधे तेरे जाँहि बिकारा ॥
तामसु तिष्णा सगल त्यागी । नानक कहे सोई वैरागी ॥ २८ ॥

इति श्री प्राणसगली श्री गुर ग्रथे रत्नयोग निधि (रत्नमाला) उन्नीस्वों ध्याउ सपूर्ण ॥१६॥

---

(१) वै नाम मोल पर किसी वस्तु के वेचने का है सो जो वै-मोल में आजावे भाव विक जावे सो वैरागी है (शिव के आगे शक्ति सुरति को निवा देना भेटा कर देना ही व्यय करना है)। (२) औपदि।

॥ १ ੴ श्री सतिगुर नानक निरवाण प्रसादि ॥

अध्याय २०

सभेही सिद्ध बहुत प्रसन्न होए ते आखण लगे जो वाह वाह जी! तपाजी !! तुसीं सर्वज्ञ हो ईश्वर महा शक्त हो। सभ योगी सुणकर अचर्जमान अते लोभायमान होए हैं। ते सभना की एही इच्छा है जो तुमारे बचन सुणतेही रहीए॥ जा सिद्धा बड़ा प्रेम प्रकाश्या ता श्रीगुरू परमेश्वर जगतगुरू जी बहुत प्रसन्न होयकै बोले, जो नाथो सिद्धो जी !! तुसी जद लग बस्स न करोगे तद लग असी भी बस्स नही करना। क्योंजु-गुर द्रयाउ हैं। अनत ही लहरा है। बेशुमार हैं ता सभना आदेस आदेस कीता। ता श्रीगुरू जी योग समुद्र रत्नमाला योग कर्मयोग यत्न ध्यान, प्रचड विवेक सार ध्याउ वीस्वा बड़ी रत्न माला सुखवेद प्रकाश कीता।

॥ जोग रतनमाला ॥

(जोग जुगुति का यत्न—अगनि प्रचड—बाबे का ज्ञान)

॥ रागु रामकली महला १ ॥

साचा शब्द अनाहद गाया। अनहद राता सचिसमाया ॥
आसणु साधि निरालम ताड़ी। भिक्षा खाय सहजि बीचारी ॥
सिङी शब्दु वजाए नादं। पत्र[1] बीचारी आदि जुगाद ॥
डंडा ज्ञानु ध्यानु वेष धारी। नानक जोगी जुगति बीचारी॥१॥
शर्म कीऑं मुद्रा माया त्यागी। सिफती रत्ता सदा वैरागी ॥
जूए जन्मु न हारै जोगी। आइऑं हर्षु न गइऑं सोगी ॥
कर्णा न सुनै काहूँ की निंदा। धन्य नानक ऐसे जोगिंद्रा ॥२॥
अकल्प मडी महि वहे निराला। अम्रित सचुका पीए पिआला ॥
क्षीवा[2] जोगी अम्रित धारे। सचि रसि माता सचु बीचारे ॥
निरंजनु प्राणी पारगिरामी। ऐसी जोगी जुगति पछानी ॥
सचु विभूति लाय बैठा ताडी। नानक जुगु जुग भगति निरारी॥३॥
आसणु सचु जपु तपु सतु सजम। आसा माहि निरास निरंजनु॥
दे परदक्षिणा गगनतरि (ताडी) चढ़े। अस्थिर जोगी पिंड न पडे ॥
जन्म मरन की चूकी धाई। नानक जोग जुगति की कीमति पाई॥४॥

(१) झोली। (२) अलमस्त।

सुन्न निरतरि दीजे वंध। उडै न हसा छिजे न कंध ॥
सहजि गुफा घरि करे निवासु । गुर का शब्दु अतीतु उदासु ॥
गुर का भगतु इद्री का जती । प्रणवै नानक मुख का सती ॥५॥
गुर का भगतु हिरदे का मुक्ता । हिरदे धर्मु नामु दानु जुगता ॥
औसी जुगति जोग कउ पालै । दर्शन पावै सहजि महलै ॥
दर्शनु परसै होय निहालु । अस्थिर भया नाही सिर कालु ॥
कायाँ नगरी भुगति (नामु) पलै पाय । नानक सचु भोजनु तिप्ते अघाय ॥६॥
पचे इद्री दृढ करि वन्ने[१] । ज्ञानु वानु ले सतसरि सन्ने[२] ।
अहिनिशि ध्यानु निहचलु घरि रहे। सहजि गुफा महि वाहनु[३] अवहै॥
मनु अडोलु गुर शब्दि न डोलै । पीवै अम्रित हरि तत्तु विरोलै ॥
तिहुँका[४] मारि मलावै मानु । नानक जोगी जुगति परधानु ॥७॥
चंचल चाय न खेलै सारी । गुरमुखि त्यागे पर ग्रिह नारी ॥
शब्दु सुरति का करे वपानु । घर ही लाय रहै दीवानु ॥
विपम जोगु अपरंपर थानु । नानक कथना करडा[५] मानु ॥८॥
पूर्व पछम उत्तर दक्षण । चौंपड खेलै गुर कै लक्षण ॥
त्रिकुटी सधि मिलाए वीणा । गुर प्रसादी सहजे लीणा ॥
उतरि अवघट[६] करे निवासु । प्रणवत नानक तॉ का दासु ॥९॥
दक्षण ते पछिम को फिरे । पूर्व ते दक्षण गउण करे ॥
मान सरोवर करे इस्नानु । गगन मडलि महि धरे ध्यानु ॥
नउँ घर ढूँढै फिरि घरि आवै। नानक दशवैं सहजि समावै ॥१०॥
ब्रह्म ज्ञानी ब्रह्म का वेता । गगन मंडिल महि राखै चेता[७] ॥
पच इद्री करि राखै दृढु । ज्ञान खडग जिनै[८] कायाँ गढु ॥

(१) बान्ने, रोके। (२) सधान करे। (३) गगन मडल में चढाई योग्य अस्वारी अर्थ नाम स्मर्ण रूपी मत्र का आवाहन करे। (४) तीन प्रकार की इच्छा है=प्रथम — किसी वस्तु की प्राप्ति के वास्ते उद्योग करने की। दूसरी— दु ख और आपति के दूर होने की इच्छा। तीसरी — किये का फल चाहना-किंतु जब इच्छा अनुसार फल ना होवे तो उस के वास्ते चिंता फिकर करना। सो इन तीन इच्छाओं को मार करि मान (अभिमान) को मर्दन कर डाले ॥ (५) कठिन, मुशकिल। (६) उलटे घाट, उतर करि अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से परिक्रमा क्रम द्वारा चढ कर पिछवाड की ओर लौटकर। (७) स्मृति, याददाश्त। (८) जीते।

उलटे पवनु करे अहारु । त्रैगुण मेटे पावै सारु ॥
नानक अगम कथा का अगम बीचारु ॥ ११ ॥
आसा मनसा हउमैं मारी । चउपड़ खेले पकी सारी ॥
गुरमुखि सहजि करे वापार । अनहद वाजै रुणझुणकारु ॥
त्रैगुण मेटि त्रिवेणी मिणै[1] । गुर मुखि नानक त्रिभवणु जिणै ॥
पंज सत्त नौं तेरह साधे । गुर प्रसादी दूता बांधे ॥ १२ ॥
सुरति बिचक्षण सूरा पूरा । गुरकै शब्दि महा बलसूरा[2] ॥
सहजे रहे गडीर चढाय । दूतां दुष्टां मारे धाय ॥
वकनाडि रसु त्यागि रसाइण । त्रिकुटी फूटी मुक्ति पराइण ॥
त्रिकुटी छूटी शशीअरु फूटा । दुबिधा की मटुकी फूटी भउ छूटा ॥
सुन्न समाय गगनंतरि ताडी । बैठा तपति राजा पंचकारी[3]
अदली तपति बहै सचु निआई । सचु ऐसी जोग जुगति की पाई ॥१४
प्रथमै त्यागी हउमैं शक्ति । तपति निवासी बैठा तपति ॥
सतसर सुभर भरि लीलाणा[4] । अमिउ महाँ रसु पीइ अघाणा ॥
अनहद राता लाल गुलालु । अमर अजोनी सदा निहालु ॥
कायाँ नगरी महि अस्थिर होवै । गुरमुखि जागै सहजे सोवै ॥
चंद सुरज की पाए धुनीआ[5] । हरि कै अँकि समावै गुणीआ ॥
हर्ष न शोक सदा आनदु । ज्ञान विवेकी परमानदु ॥ १६ ॥
परग्रिह जाय न भिक्षा करै । पर रूप न देखै पर दर्बु न हिरै ॥
निंद चिंद किसकी करै न ताति । कायाँ अगनि करै निभराँति ॥
सतिगुर पुरुष बोले सत वादी । नानक अस्थिर आदि जुगादी ॥१७॥
चचल चाय न देखै रंगु । पर नारी नालि न करई संगु ॥
निम्रताभूत[6] उदासी पुरुपा । निझर धार उन्मनि की वर्षा ॥
ब्रह्मज्ञान का देवै बंधु । प्रणवत नानक अस्थिर कंधु ॥ १८ ॥

---

(१) नापे । (२) महान बली, सूरमा । (३) पंच=सत जन, उन की कारी करने वाला, पंच नाम-प्रधानों की सभा का, उस के इकत्र करने वाला, सचे पारलीमेंट (सत्संग) का पातशाह न्यायकारी । (४) पूर्ण, समाया हुआ । (५) धूनी यिह तापे कि चांद सूर्ज को एकत्र मिलाकर स्थित रहे भाव चांद सूर्ज को ईंधन ज्योती के कुंड में डाल करि अगनी तपता रहे । (६) दीनता अगवान ।

ज्ञान खड़ग ले मनु सिऊँ लूझै । मरम दशाँ पचा का वूझै ॥
पंच मारि घर वहै संतोपि । हउमैं दुविधा मेटै दोप ॥
पच अगनि नहिँ कायाँ जाले । सतवंता सती वहै धर्मशाले ॥
सहजि संतोप की भिक्षा लेइ । नानक जोगी सहजि मिलेइ ॥१९॥
सहजि मिले जोगी परवाणु । सचु जोगु गुर शव्दु नीशाणु ॥
जोग जुगति गुर शव्दी राता । अमरु भया फिरि कालु न खाता ॥
सचु जोगु प्रान पति पूरा । नानक जोगी भया हजूरी ॥ २० ॥
देहि नगर महि खोजै देखै । गुर शव्दी महलु घरु पेखै ॥
दशवैं दुआरै लावै डोरी । गुर का शव्दु अनाहद लोरी[1] ॥
पारसु परसि परम पदु पावै । नानक सुन्न समाधि लगावै ॥२१
नउँ सत चउदह अठ अठारह । तीन चार पज सत्त वारह ॥
सत्त सताई चैादह हट नाले । गुर पूरे अंतरि देखाले ॥
गुरमुखि खोजि पवित्र शरीरु । नानक पाया गहिर गँभीरु ॥२२
वोलै सत्ति सत्ति सत्ति वादी । दुविधा दुर्मति गुरमति त्यागी ॥
पजि दूत करि रखे वनणु[2] । गगन मंडिल महि रखे थमणु[3] ॥
गगन मंडल महि अम्रित कूआ । नानक झालि महाँ रसु पीआ ॥२३
सुन्न समाधि अनाहदु ध्यानु । अकाल पुरुप पूरा गुर ज्ञानु ॥
अगमु रूप तिसु रूपु न रेखिआ । सतिगुर परचै अंतरि देखिआ ॥
अलिप्तु अदृष्टु तिसु दर्शनु पाया । आदि पुरुप गुर पुरुप मिलाया ॥
आदि निरंजनु मिलिआ सुभाय । नानक साचे मनु पतीआय ॥२४॥
वोलै सति सति सति पूरा । सत्ति पुरुप वचनाँ का सूरा ॥
अगमु निगमु कै वाचै जाणु । गुर का शव्दु सचु नीशाणु ॥
पूरे गुर दीक्षा सचु दीनी । चीनसि आपि तत्तु परवीनी ॥
मनु मानिआ पूरे गुर एका । नानक जोग जुगति सचि टेका ॥२५॥
त्रैविधि ऊपरि वैठा सचि चउकि[4] । नउँ घरु थापे वैठा नायकु ॥

(१) मायावी कलेशों कर कलेशित सुरति रूप वालकी को परचाने वाली रसीली वाणी । (२) वाध रखे । (३) थिरता, वा गगन मंडल में सुरति की थम्मी देकर रहे । (४) इगुला, पिंगुला, सुष्मना इन तीनों के संगम पर सहस्रदल कमल ।

नाभ कवल सतसर परगास । सहजि सुभाय रवै गुणतासु[1] ॥
चढ़ि सुमेर वैसे अस्थानु । निझरु झरे धुनि सहजि ध्यानु ॥
चंचल चलतु परम तत्तु हीरा । नानक जोती जोति मिली मनुधीरा २६
उलटि पवनु मनु सुन्न समावै । गगनंतरि वैसै थानि सुहावै ॥
चेतन पुरुप वैठा हुश्यारा । राखे वस्तु अनूप अपारा ॥
अउघट घाट विपम है वाट । गुरमुखि खोले वज्र कपाट ॥२७॥
जोगी जुगति निरजन रूप । आत्म चीनै देवै धूप ॥
धूपै आपु गगनंतरि चढै । ज्ञान खडग ले दूता लड़े ॥
कायाँ नगरी मगण चढ़ै । नानक अस्थिर कधु न जोगी पड़ै ॥२८॥
गुर के शब्दि अडोलु न डोलै । मनूआ जीते चउपड[2] खेलै ॥
हुकमै बूझै पासा[3] ढाले । रहे अतीतु न पवे जजाले ॥
थोडी निंद्रा अलप अहारु । प्रणवत नानक तत्तु वीचारु ॥ २९ ॥
ग्रिह[4] कुटंब महि रहै अलिप्ता । गुर प्रसादी सदही मुक्ता ॥
अहरणि[5] मत्ति अचलु नहि चलै । पच अगनि[6] महि पै नहिं जलै ॥
रहे अतीतु जैसे जलि कवलु निराला । ओह दैयावंत हरि दीन दैआला
धीर्जु धर्मु क्षिमा धनु गहे । प्रणवत नानक असथिर घरि बहै ॥३०॥
अस्थिरु मनूआ राखे चीतु । पजे इंद्री दृढ करि जीतु ॥
काँया अगनि ब्रह्म परिजाले । चंचल चीतु न पर घरि चाले ॥
असुरा नदी उपुठी तरे । कवलु विगासे सचु उचरे ॥
जोग जुगति की पाण[7] पछानु । सचु जोगु नानक परवाणु ॥३१॥
बोले सचु जिह्वा सचु सूचा । सचु चढै पउडी गढ ऊचा ॥
ले मणीआ लालु परोवै कंठि । अवघट घाटि मजनु अठसठि ॥
हीरे रत्न परोवै माला । नानक ध्यानु निरतरि रहे निराला ॥३२
ज्ञान खडग सरु संधे बानु । ऐसी जुगति जोगि परवाणु ॥

(१) गुणों का भडार (सर्व का आधार)। (२) प्रदक्षणा क्रम से चढाई रूप चोपड खेल को खेड कर मन से बाजी जीते। (३) गुरु उपदेश रूपी हुकम को बूझकर उलटा प्रवाह रूप पासा ढाले। (४) शरीर रूपी-घर में और इद्रिया रूप कुटंब में अलेप रहिता है भाव ऐसा मगन (उलटि करि) होता है कि तन के भीतर रहिता भी पीछे की सभ सुध विसार ही देता है। (५) लुहार की अहरणवत अचल। (६) पाच विषय अगनी में पडकर नहीं जलता। (७) पप, आय।

पंच मारि जुगति पति पावै । अकाशि निरंतरि सुन्नि समावै ॥
निज घरि रहै अकुलीणि[1] निराला। तव दशवै द्वारै खोलै ताला॥
लहै पदार्थु नामु निधानु। सतसर मजनु करि इसनानु ॥
तत्तु त्रिवेणी त्रिकुटी खूले। नानक तब दर्शन पाया आदि चलूले[2] ३३
लोभ लहरि मनु मारि सतोपी। सगल की रेणु न किसे का दोपी ॥
सुरति विचक्षण पूरी मत्ति। घटि घटि रवि रहिआ सर्वत्तु[3] ॥
सूर्ज एक सगल ज्यौं जोति । राज रक समसरि दृष्टोति ॥ ३४ ॥
धावतु वरजि रखे इक ठॉइ । हरि रसु राता निर्मल नाँइ ॥
कंचन कायॉ निर्मल हस । सची जोति निरंजन अस ॥
गुर का शब्दु जपि मिटै अँधेर। लक्ष चौराशी चूकै फेरि ॥
आसा मनसा ते रहै निरास । प्रणवत नानक हउँ ताका दास ॥३५॥
प्रथमे सोधे कायाँ सुधु । अम्रित नामु प्राप्त दुधु ॥
सहजि सुभाय होय अम्रित जंमै । अम्रित मथीग्रै तत्तु अगमै ।
अम्रित खाय विपु वैरी छेदे[4] । मनु माणकु गुर शब्दी भेदे ॥
अस्थिर कधु जोगी निज घरि रहै । कउलासण[5] ऊपरि जोगी वहै ॥
शब्दु अनाहद आदि जुगादी । जोगी राता गुर परसादी ॥३६॥
कवलासणु ऊपरि जोगी सचु थानु। तहँ त्रिभवणु प्रीतमु अपरपर मानु
तहँ अस्थिर जोगी निज घरि बसै। पेखि अचरजु अनाहदि रचै ॥
तहँ ही जोग प्रापति होय । अस्थिर कंधु फिरि मरै न कोय ॥३७॥
सुन्न सरोवर मजनु करै। सहजि गुफा के घर महि वरै[6] ॥
माणक लालु वणजै वणजारा । नानक परखै परखण हारा ॥
खरे पजाने खोटे रालि । सचु सराफु सिजाणे सालि ॥ ३८ ॥
सुन्न गुफा महि ताडी लाए । दशवैं दुआरै नादु वजाए ॥
जोति प्रगासु गुर शब्दीं होवै । त्रैगुण मेटे चउथे सुखि सोवै ॥
दे परदक्षणा करे नमस्कार । चढ़ि सुमेरि देखै गैनारि ॥ ३९ ॥

(१) कुल (गोत्र) के अभिमान से रहित । (२) आदि का गूढ़ा लाल रग भाव परम प्रकाश स्वरूप आदि देव । (३) सर्व ठौर । (४) वैरी विपय छिन्न भिन्न कर दिये, वल पा सकने को असमर्थ कर दिये । (५) सच्चा खड विपे । (६) प्रवेश करे ।

जपु तपु संजमु सुरति विचक्षण। सतिगुर साध का एहै लक्षण ॥
सुचेत पिंड न कदे अचेता। साध पिंड कउ सदा ही चेता ॥
चेतन मुखी सदा दरि सुखी। अचेत पिंड नानक दरि दुखी ॥४०
हरि गुण गावै सहज बिगासी। गुर कै शब्दि अतीत उदासी ॥
अनहद बाजे रुणझुण कार। त्रिकुटी फूटी मुक्ति[१] द्वार ॥
दशवैं द्वारि चढ़ि अम्रितु पीवै। नानक जुग जुग असिथर थीवै ॥४१॥
जपु तपु संजमु सचु निराला। ऐसी रत्न परोवै माला ॥
रहै इकति अनग्रिहि[२] निहचलि। एक टेक एकै है अंचलि ॥
जोग जुगति की सची चाला। प्रणवत नानक सुण हो बाला ॥४२॥
सुणि हो अवधू जोगु न पाया। पिंड अपरचे भिक्षा खाया ॥
बिनु गुर शब्दि अँधेरु गुबारु। अतिकालि शिरि आवै भारु ॥
जोगु न पाया जुगति गवाई। कितु कारणि सिरि छाई पाई ॥४३॥
बारा पथी जोगु न पाया। बिनु गुर शब्दे भरमि भुलाया ॥
पाखंड कीने जोगु न होई। बिनु गुर पूरे मुक्त न कोई ॥
बिनु नावैं भेपु करहि बहुतेरे। जोगु न पाया लिखतु लिलेरे[३] ॥४४
रंगि नही राता रसि नही ढलिआ। बिनु गुर शब्दे जलिआ बलिआ ॥
कनूआ फाटे शशीअर[४] नही फूटा। जोगु न पाया सुनि अवधूता ॥
माया माँगतु लोभ लुभाना। बिंदु टारि अति पछुताना ॥
काची पिंडी शब्दु न चीने। बूडत बूडे भव जल भीने।
पवन साधि साधना नही करी। नहँ सचु अराधिआ तारी[५] तरी ॥४५
अतरि दुर्मति हउ मै रोग। बनिता छोडि बद नदरि वियोग ॥
काम क्रोध जले दिनु राति। भूख सहे पर घर की ताति ॥
मूँड मुँडाए जोगु न होई। घरि घरि माँगतु जन्मु गइओई ॥
जोगु न पाया जुगति गवाई। कितु कारणि सिरि छाई पाई ॥४६॥
जोग अभ्यास पट कर्म कमावहि। दशवैं द्वारि जीउ पौन चढावहि ॥

(१) सुन्न मडल। (२) नवग्रहि से निआरा ग्रहि दशम द्वार। (३) मस्तकि। (४) कान पडवा लीए प्रतु चद्र तो ना फूटा भाव सहसदल (ऊधा) कमल ना खिला। (५) सच अराध के तारी (इस भव जल विषे) ना तरी भाव निज घर में बैठ करि कमी जीते जागते हुए पूर्वोक्त अलिप्तताई का अनुभव ना किया।

तट तीरथ भवैं दिशंतर देश । विनु शब्दै झूठे सभ भेष ॥
मोन धारी बहु मोनि ध्याना । इक निरहारी सभु झूठ गुमाना ॥
इक तपी हठी हठीए इक टाँगे । इक नगन फिरहिं सद सदही नाँगे॥
इक फिरै विब्राणीं[१] मड़ीं मसाणे । विनु गुर पूरे तत्तु न पछाणे ॥४७॥
गुर प्रसादी रंगि रसि मिलिआ । अमरु भया फिरि पिंड न पडिआ ॥
सचु जोगु गुर शब्दि कमाई । शब्दु अनाहदु किंगुरी वाई ॥
शब्दु अराधिआ पवनु वशि कीता । मनु अजीतु गुर शब्दी जीता ॥
सचु जोगु सतिगुर ते पाया । नानक जोगी सहजि समाया ॥४८
अकुल पुरुष पूरा गुर ज्ञानु । घटि घटि अंतरि ब्रह्मु पछानु ॥
शाप तरीवर जिसकी सभ छाया । अचरज रूप हरि नदरी आया ॥
ऊचारे सुलतानु सहीआ[२] । आपहु आपि उपाए जीआ ॥
अपनी गति मिति आपे जाणै । प्रणवत नानक सद कुरबाणै ॥४९
अगम अगाध मिति किनै न पाई । खड ब्रह्मंड रहे लिव लाई ॥
साधिक सिद्ध गुरू बहु चेले । अफरिउ[३] कालु शब्दु विनु पेले[४] ॥
ताँका अंतु न किनहूँ पाया । बहु विअंत सचु साचि समाया ॥
एहु अतु न जाणे कोई । नानक कीमति कहणु न होई ॥ ५० ॥

इति श्री प्राणसगली श्री गुरु ग्रथे वृद्ध रत्नमाला योग समुद्र वरनन नाम बीस्वाँ ध्याउ सपूर्ण । २० ॥

॥ १ ॐ सतिगुर प्रसादि ॥

अध्याय २१

रत्न माला दा जद भोग पया[५] ताँ राजा शिव नाभ हाथ जोडकर बोलिआ हे गुरू परमेश्वर जी ! इह बुद्धि हमारी महा मलीन है । हुण[६] तुमारे प्रताप ते प्रकाश होदा देखदे हा । गुरू जी ! कई जन्मादा जगाल लगा होया है हुण आप की कृपा द्रिष्टि सो शुद्ध होवेगा । ते सभ ते परावर[७] तुमारी कृपा नाल (अब) ऊची नदरि (सराफी निगह) होवेगी । जा राजे इऊ आखिआ ता श्री सतिगुरू अतर की जाणकरि इकीस्वा ध्याव बोले जीव की नसीहत के लायक—

(१) चीआवान, (घने) जगलों में । (२) निश्चे करके, निरसशय, सभ पर विदित है । (३) अभिमानी । (४) पीडेगा, (तिल कोल्हूवत) । (५) जब समाप्त हुई । (६) अन । (७) विबेक अयगाहिनी ऊची द्रिष्टि ।

॥ महला १ ॥

॥ वाय आतश आब षाक इनों जाती बुझसी ॥

उम्मति पैदे पंज[1] टोल हदर्थ पाक पुदाय ।
जे करि वडी छाल देइ भी फिर धरती पाय ॥
जे करि उडै पंखणू पाणी पउण रजाय ।
सो किस जेवड[2] आखीऐ किसनों पुछाँ जाय ॥
वडी[3] वडा वड मेदनी हउमै करि करि जाय ।
पुछे चारे वेद मैं लेखे अंतु न पाय ॥
चार कतेबाँ पुछीआँ कीमति कहणु न जाय ।
नवखड पुछे मेदनी इकदूं[4] इक चढाउ ॥
सायर सभ[5] ढंढोलिआ बोहिथ दिल द्रयाउ ।
नदीआं नाले वसिआ अठसठि तीर्थ न्हाय ।
वण तृण त्रिभवण वसिआ कउडा मिठा खाय ॥
सप्त पतालॉ देखिआ असमाणी असमाणु ।
नानक भउ करणी जे मिलै सच रहै ईमाणु ॥ १ ॥
वीर सलामा[6] लेपु वरा पुदाई सच चउ दरगह कितु विशेप ।
जेहा बीजै सो लुणै हुकमी मिलै सु खाय ।
नानक सचे नामु विनु वट्ठा दुःख सहाय ॥ २ ॥
षालक कूँ[7] सुव्हान गोर निमाणी अधर्गी[8] ।
कुदरति के नीशाणु आए हुकमु फरेशते कुदरति के अउगान[9] ॥
तर्गश गुरजॉ छुट्टीआॅ खन्ने हत्थ कमाण ॥

---

(१) पाच फरिश्ते रूप उम्मति (निज बश सम्प्रदाय) जिस हजरत भगवत ने पैदा (उत्पन्न) किये हैं, उसको टोलो भाव ढूंढो। (२) किस के बराबर, कितना बडा। (३) वडी विस्तार वाली मेदनी (भूमि) सयुक्त वडा (राजा) जो हो उस से भी, वडा महाराजा होता है। सो वृथा ही अभिमान कर करके नष्ट हो जाता है। भाव ऐसे २ बड़े प्रतापी भी जब नही रहने पाते तो तुच्छ लोगो की क्या कहनी है। (४) एक से एक बढ़ा चढ़ा है । (५) सर्व समुद्र भाव समग्र संसार में ढूंढा तो अपना दिल ही इस सागर से पार उतारने वाला जहाज़ निकला। (६) हे भ्राता सलाम होवे उस भगवत को, वास्ते उस (मालक) के सच्च कहो। (७) कर्त्तार को ही स्मर्ण करो। (८) अंधेरी। (९) सिपाही, मददगार।

साँगा[1] सिपर आतशी पवन गलीं जंजीर ।
हुकमी बंन्न चलाया निंदक ज्यो वेपीर ॥
नानक दरगह मन्नीअहि सचु नामु कलि धीर ॥ ३ ॥
सिघ सिआलहुँ[2] सर्पहुँ डरपहु सो घर कीना-गोर ।
धट्टे खउरू[3] कर गए दुर्मत ठढे वैर ।
भाई सके मुहब्बती जेतडे फथिआ[4] देन दुआय ।
नानक गल्लाँ कूडीआँ सच्चा एक षुदाय ॥ ४ ॥
गुनाही बन्नि चलाया जेते कीए बिकार ।
गुनहा[5] सदी पोटली चुक न सकाँ भारु ॥
अग्गै डूँगर[6] धुधली पिछै सिर जदार[7] ।
अगै सागर आतशी क्योँ करि उतराँ पार ॥
कऊए मारहि सीस चढ़ि वर्खनि ज्योँ अँगिआर ।
नानक किथै छुटीअै हुकमी होवै मारि ॥ ५ ॥
चशमे[8] कढे अउगुणी अध घोरु अंधयारु ।
कंन्नी कोलू पीड़ीअै नासीं गंध गुवारु ।
जीभ कटाए कउल[9] सिर सचु विसारण-हारु ।
कोपुर[10] उत्तै ढाढडी जलदी करै पुकार ॥
त्रिश्ना रख न सकए वेपीराँ गावारु ।
अउगुण गुणी वपशीअन नानक सोई सार ॥ ६ ॥
ज्योँ तिलु तावण पीडीअै पिजे तद चढाइ ।
कागत वाँगी कुटीआ मुंगलीए इशकु[11] चढ़ाइ ॥
लोहे वाँगू ताईअै भपै[12] तै विललाइ ॥

(१) दो या तीन ऊगली खडी करने से जैसा आकार बनता है इस प्रकार का शस्त्र। (२) गीदडों से। (३) अहकार वशि हूए, परमस्ती कर गए। (४) फत्वा=अत समय 'यत्र आया तत्र गता' इस प्रेत मत्र उच्चारण पूर्वक तृण तोडने का श्लोक। (५) गुनाहो की गठडी। (६) आगे तो धुदूकार मय बडा ऊचा पर्वत है। (७) जिद का अरि (शत्रु), काल। (८) आले। (९) वचन (प्रतिज्ञा) के ना पालने के कारण। (१०) कपाल क्रिया करते समय जब जलती हुई म्रितक देह के खोपडे पर चोट चलाई जावेगी तो इस प्रकार घुह शब्द करेगी मानो फलानत (ड्रम) का बाजा बज रहा है। (११) शिकजो में खेंचेंगे, कागज वत मुगलीओं से कूट २ कर। (१२) तपेगा और विरला करेगा।

सन्नी[1] पकडि चलाईऐ अहिरणि सिर वीचार ।
घणीअर[2] मारे तित ताल ज्यौं कहै लोहारु ॥
नानक सच्चे नामु विनु ना उरवार न पारु ॥ ७ ॥
पैरीं कडे सार[3] दे सिर तपे आकाशि ।
पातालौं पति उत्तरे परत्रिय रत्ता मास ।
थम्मॉ नालि लगाईऐ कोइ न आवै पासि ॥
भी फिरि[4] लाय विछोडीऐ लोबा करै फरीआदि ।
अउगणिआरे[5] नानका सभो कोई वाद ॥ ८ ॥
भठी अंदरि पाईआ मिली अगन सलाइ[6] ।
बालू रेत भखाईआ दिचै अगनि जलाइ ॥
अदर भुजे धाण ज्यौं तडफै तै बिललाय ।
आपि वपशै नानका किसनो कहीऐ जाय ॥ ९ ॥
इखु जिवें रस कढीऐ सभ सिर आईऑ भार ।
खाणा पीणा पैनणा मन की पुशी पुआरु ॥
मनथेऑ[7] लेखा मॅगीऐ जिन कीता वापारु ।
हथॉ पैरॉ चाकरी करि फुरमाई कारु ॥
जीभ पुकारे दरि खडी चखि चखि साद विकारु ।
कन्न देन जगाहीऑ मनि झूठा कूडिआरु ॥
नासॉ लेइण[8] मुकरे[9] अधे दे सिरि मारु ।
इद्री सभ जग मोहिआ बद्धा जमु कै दुआरु ॥
रल[10] करि विद्धुण सुहिआ आरण ज्यौं लोहारु ।
नानक सतिगुर सहजि न भेटिआ नॉ उरवार न पारु ॥ १० ॥
सत्तर वेरॉ रेतीऐ तीर जिवैं कलवूतु[11] ।
सोने वॉगी ढालीऐ सहजे इहु कम्म कीतु ॥

(१) जबूर । (२) धर्म राय (लोहार) जिस प्रकार आज्ञा करेगा उसी तरह पर वदानों की एक तार चोट पर चोट मारेंगे । (३) फुलादी लोहे के काटे पावो में चुभेंगे । (४) लगा लगा कर फिर पीछे हटाय २ कर तप्त थम्मो से लगावेंगे । (५) अपराधी । (६) तप्त की हुई सूलागें देवेंगे । (७) मन के पास ते । (८) नेत्र । (९) काम करके फिर जाना । (१०) सभी इद्रिय आदि ने मिल कर दु खी कर डाला । (११) लिंग शरीर-जिसका कि पूर्ण यथार्थ ज्ञान हुए बिना कदाचित भी बीज नाश नहीं हुआ करता ।

घोडे वॉग फुलाईआ अजगर जीनु सहाइ ।
नानक वद्धा काल का फिरि फिरि आवै जाय ॥ ११ ॥
जलि थलि दुशमन केतडे[1] वण त्रिण मारण हार ।
घरि घरि वैरी नानका सच्ची सुरत अपार ॥ १२ ॥
त्रै जम जोहिन लोइणी रक्त नेत्र विक्रालि ।
सभ जगु तिनका भक्खु[2] है निर्दया जम कालि ॥
नानक पकड चलाया हुकमी हुकमि वीचारि ।
इहु तनु अगै तूँ पसम तूँ रखहिं तूँ मारि ॥ १३ ॥
मात पिता न बँधपो ना वईअर[3] ना वीरु ।
नॉ सुत्त नॉ लछमी क्यौं करि बँधा धीरु ॥
नॉ तर्गश न धनपडो नॉ सिपर[4] तलवारि ।
तपै कडाहा अहिनिसी[5] देखहु गुर वीचारि ॥ १४ ॥
धर्म घोड़ा सत जीन करि जति की पाखर[6] मान ।
पच तत्तु सर बाणि खगु सिपरि सचु निदानि ॥
नानक गुरमुख सचु मनि दरगहि पावहि मानि ॥ १५ ॥
ब्रह्मा आइ न आखसी वेद पडै मुख चारु ।
किश्न[7] किसदा वपुडा जि हुकमु लए अवतार ॥
सिउ[8] सालाहिन दरिखडे देवी देव असख ।
अपुठा होय त झुर मरां सचु सदा वपशिदु ॥ १६ ॥

इति श्री प्राणसगली श्री गुर ग्रथे जीउ नसीहत करण नाम इकीसवा ध्याउ सपूर्ण ॥ २१ ॥

---

(१) कितने ही । (२) भोजन । (३) स्त्री । (४) ढाल । (५) रात दिन (एकसार) । (६) ऊपर डालने वाला पलाणा घोडे का । (७) कृष्ण किसका बेचारा है । (८) शिवजी कई एक ।

शुद्धि पत्र

नं० पृष्ठ	नं० पौडी	नं० टिप्पण	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
२	सूचीपत्र	४ सत्र	सुन्त ते उत्पति	सुन्न ते उत्पति
"	"	६ "	अध्माय	अध्याय
१४०		(१) सत्र २	भा ——— ह	भी ——— हैं
		(७) सत्र ५	एश्वय	ऐश्वर्य
		(१०) सत्र ७	नश्चे	निश्चे
१४५		(६) सत्र २	साकार	सा कार
१५०	८		चौपड	चौपड
१६६	३०		भातरि	भीतरि
१७०		(१)	उधर से यद	इधर से बद
१७५		(३)	थूली में	धूली में
१८७	२५		तहि तहा तरू	नहि तहा तरू
(पृष्ठ नं)			१७८	१८७
१९१		(१) सत्र ६	लोक रक्षाथ	लोक रक्षार्थ
२००		सत्र १५	वात एक हा ह	वात एक ही है
"		" ३२	ज्ञान (गन)	ज्ञान (गुन)
२२४		(२)	'आय पाठ होने में	'आद्य पाठ होने में
२४०	५१		कालु जालु तसु	कालु जालु तिसु
२४८	१७ कडी ४		क्योंकार	क्यों करि
"	१८ कडी १		बिनु जग आपु	बिनु गुर आपु
२६३	६ कडी ३		बै न मरहि तू ठगीए	बै न मरहि न ठगीए
२६७		(३)	सिद्धा का	सिद्धात को
२७०		(५)	(उलाट करि)	(उलटि करि)
२८०		(५)	सच्चा	सच्च
२८४	४ कडी ३		फथिआ॰	फाथिआ॰
"		(१२)	निरला	निरलाप

पाठक महाशयोँ की सेवा मैँ प्रार्थना है कि इस पुस्तक-माला के जो दोष उनकी दृष्टि मैँ आवैँ उन्हैँ हमको कृपा करके लिख भेजैँ जिस मैँ वह दूसरे छापे मैँ दूर कर दिये जावैँ और जो दुर्लभ ग्रंथ संतबानी के उन को मिलैँ उन्हैँ भेज कर इस परोपकार के काम मैँ सहायता करैँ।

यद्यपि ऊपर लिखे हुए कारनोँ से इन पुस्तकोँ के छापने मैँ बहुत खर्च होता है तो भी सर्व साधारण के उपकार हेतु दाम आध आना फी आठ पृष्ठ रायल से अधिक किसी का नहीँ रक्खा गया है। जो लोग सब्सक्रैबर अर्थात पक्के गाहक होकर कुछ पेशगी जमा कर देँगे जिस की तादाद दो रुपये से कम न हो उन्हैँ एक चौथाई कम दाम पर जो पुस्तकेँ आगे छापैँगी बिना माँगे भेज दी जायँगी यानी रुपये मैँ चार आना छोड़ दिया जायगा, परंतु डाक महसूल उनके ज़िम्मे होगा और पेशगी दाम न देने की हालत मैँ वी० पी० कमिशन भी उन्हैँ देना पड़ेगा। जो पुस्तक अब तक छप गई हैँ (जिनके नाम आगे लिखे हैँ) सब एक साथ लेने से भी पक्के गाहकोँ के लिये दाम मैँ एक चौथाई की कमी कर दी जायगी पर डाक महसूल और वी० पी० कमिशन लिया जायगा।

अब दादू दयाल की बानी हाथ मैँ ली गई है।

प्रोप्रैटर, बेलवेडियर छापाखाना,

जून, १९१३ ई०

इलाहाबाद।

फ़िहरिस्त छपी हुई पुस्तकों की

तुलसी साहेब (हाथरस वाले) की शब्दावली और जीवन-चरित्र	२)
,, ,, रत्न सागर मय जीवन चरित्र	॥=)
,, ,, घट रामायन दो भागों में, मय जीवन चरित्र पहिला भाग	१)
,, ,, दूसरा भाग	१)
गुरु नानक साहेब की प्राण संगली सटिप्पण (प्रथम भाग) जीवन-चरित्र सहित	१)
गुरु नानक साहेब की प्राण संगली सटिप्पण (द्वितीय भाग)	१)
गरीबदास जी की बानी और जीवन चरित्र	॥=)
कबीर साहेब का साखी संग्रह (२१५२ साखियाँ)	॥)॥
कबीर साहेब की शब्दावली और जीवन-चरित्र, भाग १ दूसरा एडिशन	॥)
,, ,, शब्दावली भाग २	॥=)
,, ,, शब्दावली भाग ३	।)
,, ,, ज्ञान गुदड़ी व रेख़ते	≡)
,, ,, अखरावती	-)
,, ,, अखरावती का पूरा ग्रंथ जिस में १७ चौपाई दोहा और सोरठा विशेष हैं	-)॥
धनी धरमदास जी की शब्दावली और जीवन चरित्र	।=)
पलटू साहेब की शब्दावली (कुंडलिया इत्यादि) और जीवन-चरित्र, भाग १	॥)
पलटू साहेब की शब्दावली, भाग २	।-)॥
चरनदास जी की बानी और जीवन चरित्र, भाग १	॥)॥
,, ,, ,, भाग २	।≡)॥
रैदास जी की बानी और जीवन चरित्र	।-)॥
जगजीवन साहेब की शब्दावली और जीवन चरित्र, भाग १	॥-)
,, ,, शब्दावली भाग २	॥-)
दरिया साहेब (बिहार वाले) का दरियासागर और जीवन चरित्र	।-)
,, ,, के चुने हुए पद और साखी	≡)॥
दरिया साहेब (मारवाड़ वाले) की बानी और जीवन-चरित्र	।)॥
भीखा साहेब की शब्दावली और जीवन चरित्र	।≡)
गुलाल साहेब (भीखा साहेब के गुरू) की बानी और जीवन चरित्र	॥-)॥
बाबा मलूकदास जी की बानी और जीवन-चरित्र	≡)
मीरा बाई की शब्दावली और जीवन चरित्र	।-)
सहजो बाई की बानी (विशेष नये पदों के साथ) और जीवन चरित्र	।-)
दया बाई की बानी और जीवन चरित्र	=)॥
गुसाईं तुलसीदास जी की बारहमासी	)॥
यारी साहेब की रत्नावली और जीवन चरित्र	-)॥
बुल्ला साहेब का शब्दसार और जीवन चरित्र	=)॥
केशवदास जी की अमीघूंट और जीवन चरित्र	-)
धरनीदास जी की बानी और जीवन चरित्र	।)
अहिल्याबाई का जीवन-चरित्र अँग्रेज़ी पद्य में	=)

मूल्य में डाक महसूल व वाल्यू पेएबल कमिशन शामिल नहीं है।

मैनेजर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।

Printed at The Belvedere Steam Printing Works, Allahabad, by E. Hall.